रीतियुगीन और आधुनिक स्वच्छन्द काव्य-धाराएँ

डॉ॰ कमला सिंह

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी॰ फिल्॰
उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

संस्करण	प्रथम, १९८६ ई०
प्रकाशक	स्मृति प्रकाशन १२४, शहराराबाग, इलाहाबाद-२११००३
मुद्रक	एकेडमी प्रेस ६०२, दारागंज, इलाहाबाद
मूल्य	एक सौ रुपये मात्र (रु० १००-००.मात्र)

प्राक्कथन

साहित्यिक ऐतिहासिकों ने हिन्दी रचना-संसार का प्रवृत्तिगत आधार पर काल-विभाजन किया है लेकिन किसी भी काव्यधारा को सन्-संवत् की सीमा में पूर्णत: आबद्ध करना कठिन है क्योंकि कोई भी काव्यधारा न तो अप्रत्याशित रूप से अस्तित्व में आती है और न किसी काल-बिन्दु पर आकर सदा के लिये विलीन हो जाती है। निर्धारित काल-सीमा के बाहर भी दोनों ओर उसका क्षीण प्रवाह अनिवार्यत: गतिमान रहता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उल्लिखित स्वच्छन्द काव्यधाराओं के अनुशीलन में इसी आधार पर काल-सम्बद्ध लचीला दृष्टिकोण अपनाया गया है और स्थूल रूप से रीतियुगीन स्वच्छन्द काव्यधारा को सन् १६०० से १८५० और आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधारा को सन् १६०० से १६२५ के बीच प्रवहमान मानते हुए कुछ चुने हुए कवियों की रचनाओं का प्रवृत्तिगत काव्यानुशीलन किया गया है। इस चुनाव में मैंने स्वच्छन्दता से काम लिया है किसी पूर्वाग्रह से नहीं, विशेषरूप से आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के चुनाव में। रीतिकाल से रसखान, आलम, घनानन्द, बोधा, ठाकुर और द्विजदेव तथा आधुनिक काल से श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय, गोपालशरण सिंह, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' एवं गुरुभक्त सिंह 'भक्त' की निर्धारित काल-सीमा में आने वाली उन रचनाओं को अध्ययन का आधार बनाकर तुलनात्मक अनुशीलन किया गया है, जिनमें स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन हुआ है, ताकि अभिप्रेत की पूर्ति के साथ ही अनावश्यक विस्तार से भी बचा जा सके, फिर भी विषय के प्रतिपादन में परिपूर्णता लाने के प्रयास में शोध प्रबन्ध का आकार अपेक्षाकृत विस्तृत तथा कार्य श्रमसाध्य हो गया है।

सन् १६२६ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास में रीतिमुक्त, भावप्रवण कवियों की काया पर लगे रीति के पंक को धोकर उन्हें रीतिबद्ध कवियों की पंक्ति से अलग किया और रीतिमुक्त कवियों में घनानन्द को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करते हुए, श्रीधर पाठक को 'सच्चे स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तक' कहा। इतना ही नहीं, उन्होंने रीतिकालीन एवं आधुनिक दोनों युगों के स्वच्छन्द कवियों की काव्य-प्रवृत्तियों की ओर भी संकेत किया लेकिन संक्षेप में, क्योंकि इतिहास जैसे ग्रंथ में इससे अधिक विचार करने का अवसर नहीं था। आचार्य शुक्ल के दिशा-निर्देश से प्रेरित होकर आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र की सूक्ष्मान्वेषिणी दृष्टि ने रीतिमुक्त कवियों की भावप्रवणता का नये सिरे से संस्कार किया लेकिन आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के रचना-विधान पर उन्होंने किन्हीं कारणों

से विचार नहीं किया। आगे चलकर अनेक सुधी समीक्षकों ने रीति-स्वच्छन्द एवं आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधाराओं पर अलग-अलग, अपने-अपने ढंग से गहराई से विचार किया है।

रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा पर विचार करने वाले विद्वानों में प्रमुख हैं— शम्भूनाथ बहुगुणा (घनानन्द), चन्द्रशेखर पाण्डेय (रसखान और उनका काव्य), डॉ० मनोहरलाल गौड़ (घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा), डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा (रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा, रीतियुगीन काव्य), अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी (द्विजदेव और उनका काव्य), डॉ० माजिदा असद (रसखान और भक्ति भावना), लीलाधर वियोगी (रसखान भक्त और कवि), चन्द्रकला गुप्त (हिन्दी कृष्ण-काव्य में स्वच्छन्दता-मूलक प्रवृत्तियाँ), डॉ० राजबुद्धि राजा (घनानन्द संवेदना और शिल्प), रामदेव शुक्ल (घनानन्द का काव्य), शशि सहगल (घनानन्द का रचना-संसार), डॉ० चन्द्रशेखर (रीतिमुक्त कविता (मुक्त रचना विधान, रीतिकालीन स्वच्छन्द काव्यधारा) अभिव्यंजना कौशल), डॉ० किशोरीलाल (घनानन्द काव्य और आलोचना) और डॉ० रामफेर त्रिपाठी (रीतिमुक्त : नया परिदृश्य)। इन विचारकों में डॉ० मनोहरलाल गौड़, डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा एवं डॉ० चन्द्रशेखर का रीतिमुक्त काव्य-चिन्तन अपेक्षाकृत पर्याप्त गम्भीर तथा व्यापक है।

स्वच्छन्दतावाद एवं आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधारा पर विचार करने वाले विद्वानों में प्रमुख हैं—डॉ० रामचन्द्र मिश्र (श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य), डॉ० रामेश्वरप्रसाद अग्रवाल (रामनरेश त्रिपाठी व्यक्तित्व एवं कृतित्व), नन्दकिशोर (मुकुटधर पाण्डेय और उनका काव्य), डॉ० अजब सिंह (आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ), डॉ० त्रिभुवन सिंह (आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द काव्यधारा), दुर्गाशंकर व्यास (स्वच्छन्दतावाद), डॉ० जगदीश गुप्त (स्वच्छन्दतावाद का दार्शनिक विवेचन), डॉ० शिवकरण सिंह (स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन), डॉ० कृष्णमुरारी मिश्र (स्वच्छन्दतावाद का स्वरूप विश्लेषण)।

उपर्युक्त विचारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य आचार्यों तथा सुधी महारथियों ने भी अपने समीक्षा ग्रंथों में रीति-स्वच्छन्द एवं आधुनिक स्वच्छन्द काव्य के कथ्य एवं शिल्प का पर्याप्त चिन्तन, मन्थन तथा गहन विश्लेषण किया है। इनमें प्रमुख हैं— सर्वश्री भगीरथ मिश्र, परशुराम चतुर्वेदी, डॉ० नगेन्द्र, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, रामशंकर शुक्ल रसाल, डॉ० बच्चन सिंह, डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, डॉ० रामविलास शर्मा, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० हरदेव बाहरी, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, प्रो० सुधीन्द्र, डॉ० नामवर सिंह आदि।

सुधी समीक्षकों एवं अनुसंधायकों द्वारा दोनों कालखण्डों की स्वच्छन्द काव्यधाराओं पर जो भी चिन्तन हुआ, उससे उसमें संचित कोश का एक सीमा तक समुचित मूल्यांकन तो हो गया लेकिन अभी तक जो भी वैचारिक मन्थन हुआ उससे इन काव्यधाराओं का स्वच्छन्दतावादी स्वरूप अलग-अलग दृश्य-फलकों पर ही उभर सका। दोनो काव्यधाराओं को एक ही दृष्टि से देखकर उनके अन्तःसम्बन्धों एवं स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों की सापेक्षिक विशिष्टता तथा उत्कर्षापकर्ष को परखने का कार्य उपेक्षित रहा। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में इसी अभाव की पूर्ति की गयी है तथा दोनों कालखण्डों की स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्तियों के विशद विश्लेषण के अनन्तर तुलनात्मक अनुशीलन कर दोनों के बीच समान-असमान तथा नवीन तत्त्वों का उद्घाटन किया गया है। इस प्रकार हिन्दी की दोनों स्वच्छन्द काव्यधाराओं में व्याप्त स्वच्छन्दतावादी तत्वों का यह सम्यक् सापेक्ष तुलनात्मक अनुशीलन हिन्दी काव्य-जगत् के समक्ष प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्वच्छन्दता, मानव-मन की एक प्रबल मौलिक वृत्ति है जो जीवन के हर क्षेत्र में कृत्रिम अंकुश को नकारती है तथा नैसर्गिक प्रवाह का स्वागत करती है। प्राणि-मात्र में इसके प्रति सहज आकर्षण होता है। साहित्य में इसे जब भी महत्त्व मिला, जीवन्त साहित्य की सृष्टि हुई, इतिहास इस बात का साक्षी है। रीतिकाल में रीति-बद्ध काव्यधारा के समानान्तर तथा आधुनिक काल में इतिवृत्तात्मक काव्यधारा के समानान्तर स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति, परम्परा की सीमित परिधि से दूर, नैसर्गिक अभिव्यंजना का परिधान धारण कर जीवन की बहुरंगी आभा से मण्डित हो, आन्त-रिक स्पन्दन एवं परिवेश से ऊर्जा ग्रहण करती हुई आगे बढ़ती दिखाई देती है। लाक्षणिक भंगिमा एवं अर्थदीप्ति का जैसा सहज समन्वय रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा में प्राप्त होता है वैसा ही आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में भी व्याप्त है। प्रेम का उदात्त चिन्तन, सौन्दर्य-बोध का परिष्कार, वेदना की गहराई एवं आत्मप्रकाशन की प्रबल आकांक्षा दोनों ही काव्यधाराओं में दिखाई दी। यही नहीं 'प्रसाद' पर तो घनानन्द का स्पष्ट प्रभाव भी देखने को मिला। ऐसे ही प्रभावों से प्रेरित होकर तुलनात्मक अनुशीलन का यह प्रयास किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध को कुल छह आयामों में निबद्ध किया गया है।

प्रथम आयाम में स्वच्छन्दतावाद का मनोविश्लेषणात्मक दार्शनिक तथा ऐति-हासिक विवेचन करने के बाद उसकी प्रकृति तथा स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। तदनन्तर पाश्चात्य तथा भारतीय विचारकों के मतों को उद्धृत करते हुए अपना स्वतंत्र मत दिया गया है, साथ ही स्वच्छन्दतावाद में अन्तर्भुक्त विविध तत्त्वों एवं लक्षणों पर भी प्रकाश डाला गया है। इसी आयाम में रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा तथा आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधारा पर व्यापक रूप से विचार करते हुए छायावादी

एवं रहस्यवादी काव्य-प्रवृत्तियों का सम्यक् सापेक्ष विवेचन प्रस्तुत किया गया है तथा स्वच्छन्दतावाद, छायावाद और रहस्यवाद को आमने-सामने रखकर उसके पारस्परिक संबंधों तथा अन्तर्भेदों पर दृष्टिपात कर स्वच्छन्दतावाद को व्यापक, छायावाद को विशिष्ट तथा रहस्यवाद को अतिविशिष्ट किन्तु चिरन्तन काव्यधारा के रूप में समाकलित किया गया है।

द्वितीय आयाम के पूर्व खण्ड में परिवेशीय तथा मुस्लिम सभ्यता एवं संस्कृति के उन प्रभावों की समीक्षा की गयी है जिनसे रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा ने प्रेरणा ग्रहण किया था। इस काव्यधारा के कवियों को काव्य-सृजन की आन्तरिक प्रेरणा अन्तरंग प्रेमिकाओं से मिली और बाह्य प्रेरणा फारसी काव्य तथा सूफी साधना से। इसी आयाम के उत्तर खण्ड में रसखान, आलम, घनानन्द, बोधा, ठाकुर और द्विजदेव के कृतित्व का प्रवृत्तिगत आधार पर विस्तार से विचार किया गया है। रीति-स्वच्छन्द कवियों में घनानन्द शीर्षस्थ हैं। अतः उनके कथ्य एवं शिल्प को अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से देखा गया है।

तृतीय आयाम के पूर्व खण्ड में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक प्रभावों की चर्चा की गयी है जिनसे आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने बाह्य रूप से प्रेरणा ग्रहण किया तथा जिनका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव कथ्य एवं शिल्प पर पड़ा। इसी आयाम के उत्तर खण्ड में श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय, गोपालशरण सिंह, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और गुरुभक्त सिंह 'भक्त' के कृतित्व का प्रवृत्तिगत आधार पर विस्तृत अध्ययन किया गया है। इनमें भी आधुनिक स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक श्रीधर पाठक, उन्नायक रामनरेश त्रिपाठी तथा इस प्रवृत्ति को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने वाले 'प्रसाद,' 'पंत' और 'निराला' के कथ्य एवं शिल्प पर अधिक विस्तार एवं गहराई से विचार किया गया है।

आयाम चार. एवं पाँच में रीति-स्वच्छन्द एवं आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधाराओं की सामान्य प्रवृत्तियों का आकलन किया गया है। दोनों काव्यधाराओं की कथ्यगत एवं शिल्पगत प्रवृत्तियों के निर्धारण में उन कवियों को आधार बनाया गया है जिनके स्वच्छन्द रचना-संसार का आयाम दो एवं तीन में अनुशीलन किया गया है। प्रवृत्तिगत अध्ययन में कवि की भावयित्री प्रतिभा एवं रचना के गुणात्मक स्तर को तो ध्यान में रखा गया है लेकिन रचना-राशि को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया गया है।

आयाम छह इस शोध प्रबन्ध का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आयाम है जिसमें दोनों काव्यधाराओं की कथ्यगत एवं शिल्पगत प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन की सुविधा एवं प्रतिपाद्य में स्पष्टता लाने के उद्देश्य से इस

आयाम को तीन खण्डों में समानता, विभिन्नता एवं नवीनता में विभाजित किया गया है। समानता एवं विभिन्नता में उन विषयों को लिया गया है जिन पर दोनों कालखण्डों के कवियों ने अपनी लेखनी चलाई है तथा नवीनता में आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधारा में गृहीत सर्वथा नवीन विषयों पर विचार किया गया है। शिल्पगत प्रवृत्तियों के तुलनात्मक अध्ययन में भी यही प्रक्रिया अपनाई गयी है। तुलनात्मक अनुशीलन में रचना-राशि को आधार न बनाकर रचना की गुणवत्ता एवं प्रवृत्ति को आधार बनाया गया है।

जीवन-दृष्टि, काव्य-दृष्टि, प्रेम-भावन, भाव-प्रवणता एवं लाक्षणिक भंगिमा आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ है जिनमें समता का व्यापक तर्कसंगत आधार विद्यमान है। प्रेम-चिन्तन, प्रकृति-चित्रण, सौन्दर्य-बोध, वेदनानुभूति, कल्पनाशीलता, अभिव्यंजना-कौशल आदि के क्षेत्र में आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधारा में गुणात्मक विस्तार हुआ है अथवा व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया गया है। तुलनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत करते समय इन पहलुओं पर ध्यान रखा गया है। राष्ट्रीय-चेतना एवं देश-प्रेम, अतीतप्रेम, प्रकृति में रहस्य दर्शन, प्रकृति का मानवीकरण, सर्वात्मवाद, मानवतावाद, मिथक तथा प्रगीति गीति-रचना आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो हिन्दी की आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधारा में तो विद्यमान हैं लेकिन रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा में इनका कोई अस्तित्व नहीं। अतः इन काव्यांगों पर नवीनता वाले खण्ड में विचार किया गया है। इस आयाम की अवतारणा पूर्णतः मौलिक है तथा उपयुक्त उद्धरणों से अपने मत की पुष्टि की गयी है।

परिशिष्ट भाग में मात्रा तथा अक्षर-क्रम में मूल तथा सहायक ग्रंथों की सूची दी गयी है। शोध-प्रबन्ध में जिस संस्करण का उपयोग किया गया है, प्रायः उसी संस्करण के प्रकाशन वर्ष का उल्लेख किया गया है। जहाँ एक से अधिक संस्करणों का उपयोग किया गया है वहाँ पाद-टिप्पणी में ही उस संस्करण-विशेष का उल्लेख कर दिया गया है।

अब आभार-ज्ञापन का पुनीत कार्य शेष रह जाता है। मेरा प्रथम आभार रीति-साहित्य के अधिकारी मर्मज्ञ स्व० आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र और स्व० प्रो० लाला भगवानदीन को निवेदित है जिन्होंने घनानन्द, रसखान, बोधा, ठाकुर तथा आलम की बिखरी रचना-राशि का अथक श्रम से सम्पादन कर प्रकाशन कराया। अनुसंधायक वर्ग इस महान् कार्य के लिये उनका सदा ऋणी रहेगा। इसी क्रम में मैं उन सभी सुधी विद्वानों एवं आचार्यों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिनकी कृतियों से प्रस्तुत प्रबन्ध में सहायता ली गयी है तथा जिनकी उपलब्धियों से अगम भी सुगम हो सका है।

इस शोध-प्रबन्ध के प्रणयन में मेरे औत्सुक्य को सम्बल देने वाले हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ डॉ० किशोरीलाल गुप्त (भूतपूर्व प्राचार्य, हिन्दू डिग्री कालेज, जमानिया; गाजीपुर) और रीति साहित्य के अध्येता डॉ० किशोरीलाल (प्राध्यापक, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग) के प्रति विशेष आभार व्यक्त करना अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूँ जिनके अमूल्य सुझावों से मैं एक-एक पग सँभाल कर रख सकी हूँ तथा जिनके द्वारा अमित समय के लिए उपलब्ध किये गये अनेक दुर्लभ ग्रंथों से इस शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में अपरिमित सहायता मिली है। डॉ० बच्चन सिंह (भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, हिमांचल प्रदेश विश्वविद्यालय), डॉ० मोहन अवस्थी (प्रो० इलाहाबाद विश्वविद्यालय) को आभार व्यक्त करना आवश्यक समझती हूँ जिनके समय-समय पर मिलने वाले सुझावों से लाभान्वित होती रही हूँ। डॉ० त्रिवेणीदत्त शुक्ल, कु० सन्ध्या श्रीवास्तव (शोधछात्रा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय), पूज्यनीया उमा दीदी तथा उन सभी को अत्यन्त विनीत भाव से स्मरण करती हूँ जिनके सद्भाव, सहयोग एवं स्नेह का सम्बल ग्रहण कर मैं यह कार्य पूर्ण कर सकी हूँ।

प्रकाशक श्री बालकृष्ण त्रिपाठी जी के प्रति आभार प्रकट करना अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूँ जिन्होंने इस ग्रंथ के प्रकाशन का दायित्व स्वीकार किया। प्रूफ संशोधन के लिए श्री रमेश कुमार उपाध्याय के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहती हूँ, जिन्होंने बड़े परिश्रम और तत्परता से प्रूफ संशोधन का कार्य सम्पन्न किया।

इस शोध-प्रबन्ध का मूलाधार निर्धारित अवधि का अथक श्रम है परन्तु इस श्रम की सार्थकता का श्रेय शोध-प्रबन्ध के निर्देशक डॉ० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव (प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) को है जिनके कुशल निर्देशन में यह गुरुतर कार्य पूर्ण कर सकी हूँ। उनके लिये वाणी से क्या आभार प्रकट करूँ, जिनके लिए हृदय में श्रद्धा के घनीभूत भाव हैं।

इन शब्दों के साथ मेरा यह विनम्र प्रयास प्रस्तुत है जो वस्तुतः हिन्दी के विशाल स्वच्छन्द काव्य-सिन्धु में नौका-संतरण के समान ही है।

दिनांक, १४ जनवरी, १६८६ ई०

—कमला सिंह

विषय-सूची

———

अध्याय १

स्वच्छन्दतावाद

स्वच्छन्दता का अर्थ :

मानव जीवन एक अविरल प्रवाह है, जो सम-विषम मार्गों पर अपनी विशिष्ट लय एवं गति के साथ स्वच्छन्दतापूर्वक बहता रहना चाहता है। स्वच्छन्दता उसकी एक मूल प्रवृत्ति है। एक विशेष विधान के अन्तर्गत बाह्य रूप से बँधकर भी मानव अपने जीवन में समरसता एवं स्पन्दनहीनता को पसन्द नहीं करता क्योंकि स्वच्छन्दता उसके 'अहं' का एक स्थायी अंग है। लेकिन उसकी यह स्वच्छन्दवृत्ति जब भी मर्यादा का बन्धन तोड़ कर निरंकुश हो जाती है, सामाजिक अभिजात वृत्ति प्रभावी होकर उसे नियंत्रित कर देती है तथा उसका स्थान स्वयं ग्रहण कर लेती है। यह नवीन व्यवस्था भी अपने समस्त संभाव्य को भोग लेने के बाद अतिशयता के कारण अपनी जीवनी शक्ति खो देती है तथा प्रतिक्रियास्वरूप स्वच्छन्दवृत्ति पुनः प्रभावी हो जाती है। "साहित्य का पेण्डुलम बराबर क्लासिकल से रोमांटिक, रोमांटिक से क्लासिकल की ओर हिलता रहता है।"[1] काल-फलक पर इन दोनों व्यवस्थाओं के बीच कोई सरल भेदक-रेखा खींचना कठिन है, क्योंकि इनमें से कोई भी प्रवृत्ति पूर्णतः समाप्त नहीं होती। एक ही समय में दोनों प्रवृत्तियों का समानान्तर चलते रहना अथवा एक प्रवृत्ति के अन्तर्गत दूसरी प्रवृत्ति का भी यत्र-तत्र उपस्थित रहना अथवा एक ही कवि में दोनों ही प्रवृत्तियों के प्रति अनुराग का पाया जाना असंभावी नहीं। वास्तव में स्वच्छन्दता साहित्य की सामयिक प्रवृत्ति नहीं वरन् यह उसकी जन्मना शाश्वत प्रवृत्ति है, जो प्रत्येक युग के साहित्य के मूल में अपना अस्तित्व बनाये रखती है।

स्वच्छन्दतावाद का मनोविश्लेषणात्मक विवेचन :

'फ्रायड' के अनुसार मानव-अहं (इगो) तीन शक्तियों—इदम् (इड), आदर्शाहंकार (सुपर इगो) और तथ्य सिद्धान्त (रिएलिटी प्रिन्सिपुल) द्वारा अनुप्रेरित रहता है। मानव-मन की समस्त स्वप्नशीलता, सृजनशीलता एवं महत्त्वाकांक्षा इदम् (इड) मन के अवचेतन भाग में पलती हैं। अतः रोमांसिकता 'इदम्' की अभिव्यक्ति का परिणाम होती है।[2] 'फ्रायड' द्वारा उल्लिखित मानव-अहं की व्याख्या करते हुए

---

१. दिनकर : शुद्ध कविता की खोज, पृ० ३८, प्र० सं०, १९६६ ई०।

२. रवीन्द्र सहाय वर्मा : रोमांसवादी साहित्य शास्त्र, पृ० ३, ४, सन् १९५७ ई०।

एफ० एल० ल्यूकास ने प्रतिपादित किया है कि साहित्य में यथार्थवाद 'रियलिटी प्रिन्सिपुल' का आधार लेकर चलता है, स्वच्छन्दतावाद 'इड' का और परम्परावाद 'सुपर इगो' का।[1] आदर्श में नैतिकता का तथा यथार्थ में तत्कालीन सभ्यता का कठोर नियन्त्रण रहता है। इस प्रकार के नियन्त्रणों के रहते 'इदम्' मन में पल्लवित होने वाली स्वप्नशीलता के प्रसार का अवकाश कहाँ? इसी कारण स्वच्छन्दतावाद में समस्त नियन्त्रणों से मुक्ति की प्रबल आकांक्षा विद्यमान रहती है।

स्वच्छन्दतावाद का दार्शनिक विवेचन :

'क्रोचे' के अनुसार कला-सृजन की प्रक्रिया के चार सोपान हैं—(१) अरूप-संवेदन, (२) कल्पना द्वारा उसकी आन्तरिक अन्विति, (३) आन्तरिक अभिव्यंजना और (४) शब्द-रंग-रेखा आदि में मूर्तीकरण। मानस-क्षेत्र से सम्बन्धित आन्तरिक अभिव्यंजना को वह सर्वश्रेष्ठ मानता है तथा शब्द-रङ्ग-रेखा की सहायता से भौतिक क्षेत्र में निर्मित बाह्य-अभिव्यंजना (पुनर्सृजित कृति) को उसकी अपेक्षा निकृष्ट।[2]

स्वच्छन्द कवि स्वानुभूतियों के प्रकाश को पूर्ण तन्मयता, तारतम्यता, वैयक्तिकता एवं विशिष्टता के साथ साहित्य में प्रतिबिम्बित करने का प्रयास करता है, जिससे अभिव्यंजना के प्रसार के लिये उन्मुक्त दिगन्तव्यापी गगन सहज ही उपलब्ध हो जाता है। क्रोचे द्वारा प्रतिष्ठापित अभिव्यंजना का मौलिक स्वरूप ही वस्तुतः स्वच्छन्द काव्य की मूल चेतना है, आत्मा है। अभिव्यंजना स्वच्छन्दतावाद का आन्तरिक आलोक है और स्वच्छन्दतावाद, अभिव्यंजनावाद का बाह्य शब्द प्रकाश। "जिस प्रकार अभिव्यंजनावाद शुद्ध आत्मपरक है उसी प्रकार स्वच्छन्दतावाद भी।"[3] अभिव्यंजनावाद का सर्वाधिक शुद्ध प्रसार स्वच्छन्दतावाद में ही संभव है। इसके विपरीत परम्परावाद तथा यथार्थवाद दोनों ही वस्तुपरक हैं। इसमें कवि पुनर्सृजित कृति की ही प्रतिकृति बनाता है। जिससे वह अभिव्यंजना के सत्य स्वरूप से दूर चला जाता है। जो सत्य है, वही शिव है तथा वही सुन्दर है। अतः स्वच्छन्दतावादी काव्य सत्य के अधिक निकट होने के कारण शिव है, सुन्दर है, श्रेष्ठ है। मानव-मन में व्याप्त मूल प्रवृत्तियों (स्वच्छन्दता उनमें से एक) को स्पन्दित करने वाले काव्य की श्रेष्ठता का अनुमोदन करते हुए अर्नाल्ड ने लिखा है—"निश्चय ही वे (कार्य-

---

१. डॉ० शिवकरण सिंह : स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १०, सन् १९६७ ई०।

२. डॉ० रामसागर त्रिपाठी, डॉ० श्यामा मिश्र : समीक्षाशास्त्र के भारतीय तथा पाश्चात्य मानदण्ड, पृ० ४८४-८५, सन् १९७२ ई०।

३. डॉ० त्रिभुवन सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ५२, तृतीय सं० १९७७ ई०।

व्यापार) उत्कृष्ट हैं जो मानव के सहज संस्कारों को सबसे अधिक आन्दोलित करें, जिनका मानव में स्थायी वास होता है और जो काल-निरपेक्ष होती हैं।"[1]

स्वच्छन्दतावाद का ऐतिहासिक विवेचन :

यूरोप में 18वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में 'रोमाण्टिसिज्म' नाम से एक विशेष साहित्यिक काव्यधारा को स्वीकृत, प्रचारित तथा प्रसारित किया गया, जिसे हिन्दी में प्रायः समान विशिष्टताओं से युक्त काव्य के लिये स्वच्छन्दतावाद के नाम से अभिहित किया गया। वस्तुतः अंग्रेजी के रोमाण्टिसिज्म में ही स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों एवं विशिष्टताओं का समग्र रूप से प्रतिफलन हुआ है। हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी काव्य में इस प्रवृत्ति का समग्र रूप नहीं मिलता। ऐसी दशा में अंग्रेजी रोमांटिक काव्य के आधार पर ही इसकी विशिष्टताओं का आकलन करना समीचीन होगा। "अंग्रेजी साहित्य में सर्वप्रथम 'चॉसर' के काव्य 'नाइट्स टेल' में रोमानी चेतना का दर्शन मिलता है।"[2] "१६वीं शताब्दी में 'स्पेन्सर' के कल्पना-बहुल काव्य 'फेयरी क्वीन' में तथा कालान्तर में 'शेक्सपीयर' के काव्यों में रोमांटिक प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन हुआ।"[3] लेकिन काल के प्रभाव से धीरे-धीरे अंग्रेजी की रोमांटिक काव्यधारा सिमटती चली गयी। १७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक आते-आते शास्त्रवाद ने रोमांटिक चेतना का गला घोंट दिया। यह आगस्टन-युग था जिसमें 'पोप' और 'ड्रायडन' ने अपनी स्थूल, चमत्कारिक एवं आलंकारिक रचनाओं द्वारा काव्य को शास्त्रीयता के कठोर बन्धनों में जकड़ दिया। सुदीर्घ काल तक शास्त्रीयता की संकीर्ण परिधि में बुद्धि-व्यायाम करते-करते कविगण एकरसता से ऊबने लगे। फलतः रूढ़ियों के बन्धन टूटने लगे, नियमों के कूल ढहने लगे तथा स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति पुनः सिर उठाने लगी। १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 'गोल्डस्मिथ' की तीन कृतियाँ—'दी हरमिट', 'दी ट्रेवलर', तथा 'दी डिजर्टेड विलेज' प्रकाश में आयीं। ये कृतियाँ शास्त्रीयतामूलक होते हुए भी नवीन मानवीय भावनाओं, भावावेगों तथा कल्पनाशीलता को समेटे हुए थीं। इस प्रकार अतिशय शास्त्रीयता के प्रतिक्रियास्वरूप १८वीं शताब्दी का अन्तिम चरण आते-आते रोमांटिक साहित्य का पुनरुत्थान हो गया।[4]

---

१. डॉ० नगेन्द्र, डॉ० सावित्री सिन्हा : पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा, पृ० २६, सन् १९६६ ई०।

२. विलियम हेनरी हडसन कृत : अंग्रेजी साहित्य का इतिहास, अनु० जगदीश बिहारी मिश्र, पृ० १८-२२, प्र० सं०, १९६३ ई०।

३. वही : पृ० ५४।

४. वही : पृ० १८८-८९।

फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने रोमांटिक साहित्य को सर्वाधिक बल प्रदान किया। 'रूसो' (बैक टू नेचर का नारा) 'वाल्टेयर' तथा 'गेटे' के विचारों ने 'वर्ड्सवर्थ' 'शेली' 'कालरिज' तथा 'बायरन' को अत्यधिक प्रभावित किया। जर्मनी में शुष्क बौद्धिकता के विरुद्ध तीव्र वैचारिक प्रतिक्रिया हुई। 'काण्ट' तथा 'हीगल' ने अपने अध्यात्म तथा सौन्दर्य-दर्शन द्वारा कला को बुद्धि के स्थान पर अनुभूति का विषय घोषित कर स्वच्छन्दतावादी आत्म (सेल्फ) का निर्माण किया। 'कालरिज' इससे सर्वाधिक प्रभावित हुआ। यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति के प्रतिक्रियास्वरूप मानवीय-प्रेम में प्रबल आस्था का संचार हुआ, जिसका प्रभाव 'ब्लैक', 'बर्न्स', 'वर्ड्सवर्थ' तथा 'कालरिज' पर विशेष रूप से पड़ा। 'वर्ड्सवर्थ' को तो प्रकृति ने जादू की तरह मोह लिया था। मध्ययुगीन रोमानी चेतना, जिसका प्रस्फुटन 'चॉसर', 'स्पेन्सर', 'शेक्सपीयर' के काव्यों में हुआ था, का उल्लेखनीय प्रभाव अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी विचारधारा पर पड़ा। इस प्रकार फ्रांस की राज्यक्रान्ति तथा मध्ययुगीन रोमानी चेतना के सामूहिक प्रभाव ने अंग्रेजी रोमांटिक विचारधारा को एक रोमांटिक आन्दोलन का रूप दे दिया जिससे अंग्रेजी काव्यधारा में यह युग एक विशिष्ट युग हो गया।[१]

रोमांटिक आन्दोलन के प्रथम चरण में जेम्स टामसन, विलियम कॉलिन्स, ग्रे, काउपर, बर्न्स आदि कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनकी कविता में प्रकृति-प्रेम, संवेदनशील भावुकता, कल्पनाशीलता, रहस्यबोध, राष्ट्रीय चेतना आदि स्वच्छन्द तत्त्वों की अभिव्यक्ति का अवसर मिला। रोमांटिक आन्दोलन के द्वितीय चरण में वर्ड्सवर्थ, कालरिज, शेली, कीट्स, बायरन आदि महान् कवियों का पदार्पण हुआ जिन्होंने इस आन्दोलन को अपने अप्रतिम साहित्य से लोकप्रिय, व्यापक और समृद्ध बनाया।[२]

स्वच्छन्दतावाद के मूल स्वरूप का पूर्ण ढाँचा इन दोनों चरण के कवियों के काव्य में निर्मित हुआ है। द्वितीय चरण के कवियों ने तो स्वच्छन्दता के समस्त उपकरणों को अपने काव्य में प्रस्तुत करके स्वच्छन्दतावादी काव्य को चिरस्मरणीय बना दिया। बायरन एक ओर क्रान्तिद्रष्टा था तो दूसरी ओर स्वच्छन्द प्रेम का पुजारी। उसके व्यक्तित्व में 'अहं' पूर्णरूपेण क्रियाशील था। व्यक्ति तत्त्व उसकी रचनाओं में मुखर हो उठा है। 'शेली' सौन्दर्य का उपासक तथा आदर्श एवं उन्मुक्त प्रेम का अमर गायक था। उसकी कृतियों में आदर्शवादी स्वच्छन्दता का प्राधान्य है। कालरिज के लिये कल्पना सभी मानवीय अनुभूतियों की सजीव शक्ति थी।

---

१. विलियम हेनरी हडसन कृत अंग्रेजी साहित्य का इतिहास, अनु० जगदीश बिहारी मिश्र : पृ० १८-२२।

२. डॉ० जगदीश गुप्त : स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचन, पृ० ५७, सन् १९७७ ई०।

उसकी रचनाओं में प्रेम एवं कल्पना-वैभव का प्राधान्य है। 'कीट्स' ने सर्व सौन्दर्य-मय सिद्धान्त को स्वीकारा तथा सौन्दर्य को सत्य एवं शक्ति का केन्द्र मान कर अपने काव्य में कल्पना और सौन्दर्य की व्यापक सृष्टि की। 'वर्ड्सवर्थ' मानव एवं प्रकृति का कवि था। प्रकृति उसके लिये अप्रतिम सौन्दर्य की स्वामिनी, अनन्त प्रेम की राशि तथा असीम आनन्द की स्रोत थी। ''वह ऐसा महान् रोमांटिक कवि है जिसने शेक्सपीयर से स्वतन्त्रता, मिल्टन से कलात्मक सौन्दर्य, स्पेन्सर से कल्पना-वैभव तथा चॉसर एवं प्राचीन लोकगीतों से लोकतत्त्वों को ग्रहण कर उन्हें ऐसे अनूठे समन्वय में प्रस्तुत किया कि उसका काव्य रोमांटिक साहित्य का अक्षय निधि बन गया।''[1] 'वर्ड्सवर्थ' तथा 'कालरिज' के संयुक्त प्रयासों से सन् १७६८ ई० में लिरिकल बैलेड्स (Lyrical Ballads) का प्रकाशन हुआ जिसे 'स्वच्छन्दतावाद का घोषणा-पत्र' कहा जाता है।

स्वच्छन्दतावाद की प्रकृति तथा उसका स्वरूप-विश्लेषण :

पाश्चात्य साहित्य में रोमांटिसिज्म शब्द का प्रयोग जिस साहित्य के लिए किया गया उसके मूल में शास्त्रवाद तथा नव्य शास्त्रवाद की जकड़बन्दियों के विरुद्ध तीव्र विरोध का भाव था। इन विरोधों को ध्वनित-प्रतिध्वनित करने वाला साहित्य ही यूरोप में स्वच्छन्दतावादी साहित्य के नाम से अभिहित किया गया। वस्तुतः साहित्य के क्षेत्र में पुरानी रूढ़ियों का परित्याग तथा नवीन विचारों का ग्रहण ही स्वच्छन्दतावाद है। पाश्चात्य तथा भारतीय विचारकों ने स्वच्छन्दतावाद की प्रकृति तथा उसका स्वरूप-विश्लेषण करते हुए विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं, जिससे उसकी विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है।

स्वच्छन्दतावाद के पाश्चात्य विचारक :

काम्प्टन-रिकेट की दृष्टि में ''रोमांटिसिज्म, तीव्रतम संवेदना एवं उच्च काल्पनिक अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति है, साथ ही, एक कल्पनापूर्ण दृष्टिकोण है जिसने अनेक कलाओं को प्रभावित किया है और दर्शन तथा इतिहास पर भी अपना प्रभाव डाला है।''[2] इसमें रहस्य का एक सूक्ष्म-बोध, समृद्ध बौद्धिक कौतूहल और

1. डॉ० जगदीश गुप्त : स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचन, पृ० ५७, सन् १६७७ ई०।
2. Romanticism, generally speaking, is the expression in terms of art of sharpened sensibilities, heightened imaginative feeling; and although we are concerned only with its expression in literature, Romanticism is an imaginative point of view that has influenced many art forms, and has left its mark also on philosophy and history.

   —Arthur Compton-Rickett : A History of English Literature, Thomas Nelson and Sons Ltd., London, 1956, p. 292.

जीवन की मौलिक सरलताओं की एक प्रवृत्ति विद्यमान रहती है।[1] एफ० एल० लूकस के अनुसार "स्वच्छन्दतावादियों का सामान्य तत्व नियन्त्रणों से मुक्ति है जिसमें बुद्धिगत चेतना के निम्न स्तर पर यथार्थ ज्ञान तथा समाज विषयक बोध द्वारा नियन्त्रण आरोपित किया जाता है।"[2]

प्रो० एबर क्राम्बी रोमाण्टिसिज्म को "आभ्यन्तरिक अनुभवों में केन्द्रित होने के लिए बाह्य अनुभवों से अन्तः प्रयाण"[3] मानते हैं। 'हरफोर्ड' का विचार है कि "यदि आन्तरिक अनुभूति कलाकार के व्यक्तित्व में तादात्म्य स्थापित कर असमाविष्ट हो जाय तो रोमाण्टिक हो जाती है।"[4] स्पेण्डर ने रोमाण्टिसिज्म को बाह्य कविता से भिन्न कवि के आन्तरिक अनुभूति का ही एक अंग माना है।"[5] प्रो० कैजामियाँ के

---

1. May we not say that the features most insistent in Romanticism are a subtle sense of mystery, an exuberant intellectual curiosity and an instinct for the elemental simplifities of life.
   —Arthur Compton-Rickett : A History of English Literature, p. 292.
2. I have suggested that Romanticism have as their common element a lifting of controls. The controls exerted on the more primitive and impulsive side of the mind by its sense of reality and its sense of society.
   —F. L. Lucas : Literature and Psychology, p. 136.
3. Indeed for a general proposition, Romanticism can hardly be defined more precisely than a tendency to rely on inner experience.
   —Aberr Combie : Romanticism, London Martin Secker 1926, p. 125.
4. If it has more of personal idiosyncrasy which is extra-vagant in the eyes of men, it is romantic.
   —Herford : "The age of Wordsworth" (Introduction) G. Bell and Sons Ltd., London (1960) P. XIV.
5. Romanticism is a tendency away from an external type of poetry towards one in which external nature appears to become part of the inner consciousness of the poet.
   — Stephen Spender : "A Choice of English Romantic Poetry" (Preface), The Dial Press New York, (1947), p. 14.

अनुसार "रोमाण्टिसिज्म आत्मविजय में निहित नहीं है। इसमें लेखक के व्यक्तित्व का विशेष स्थान है क्योंकि संवेदनशीलता और कल्पना वैयक्तिकता के आवश्यक तत्त्व हैं।"[1] इस प्रकार प्रो० कैजामियाँ रोमाण्टिक काव्य के निर्माण में सघन भावावेग एवं समृद्ध कल्पना के संयोग को आवश्यक मानते हैं। रोमाण्टिक कविता के बारे में कवि और समालोचक कालरिज का मत है—"(रोमाण्टिक) कविता सौन्दर्य के माध्यम से तात्कालिक आनन्दोद्रेक के लिए भावों को उद्वेलित करती है।"[2] लिरिकल बैलेड्स की भूमिका में रोमाण्टिक कविता के बारे में वर्ड्सवर्थ कहते हैं—"एकान्त क्षणों में सशक्त अनुभूतियों का उच्छल प्रवाह कविता है।"[3]

स्वच्छन्दतावाद के भारतीय विचारक :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्वच्छन्दतावाद के मूल में 'अनुभूति की सच्ची नैसर्गिकता"[4] मानते हैं। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "रोमाण्टिक साहित्य की वास्तविक उत्सभूमि वह मानसिक गठन है जिसमें कल्पना के अविरल प्रवाह से घन-संश्लिष्ट निविड़ आवेग की ही प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड़ आवेग ये दो निरन्तर घनीभूत मानसिक वृत्तियाँ ही इस व्यक्तित्व-प्रधान साहित्यिक रूप की जननी है।"[5] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

---

1. English Romanticism does not consist in the triumph of Self. The personality of the writer has a characteristic place in it, because sensibility and imagination are the very essensce of individuality.

   — Legouis and Cazamion : A History of English Literature, J. M. Dent and Sons Ltd., London (1961), p. 996.

2. It is the excitement of emotion for the purpose of immediate pleasure through the medium of poetry.

   —S. T. Coleridge : "Biographia Literaria", J. M. Dent and Sons Ltd., London (1949), p. 215.

3. Poetry is an overflow of powerful emotions reflected in tranquility. —Preface to Lyrical Ballads, p. 157;

४. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६०१, सं० २००३ वि०।

५. हजारी प्रसाद द्विवेदी : रोमाण्टिक साहित्य शास्त्र की भूमिका (डॉ० देवराज उपाध्याय कृत), पृ० १, प्र० सं०, १९५१ ई०।

इस धारा के मूल में 'स्वतन्त्रता की लालसा और बन्धनों का त्याग'[१] मानते हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार "स्वच्छन्द-काव्य भाव-भावित होता है, बुद्धि-बोधित नहीं, इसलिये आन्तरिकता उसका सर्वोपरि गुण हैं।"[२] पुनश्च "स्वच्छन्द कवि में सामाजिक बन्धनों को तोड़ कर जीवन की स्वच्छन्द भूमि में विचरण करने की लालसा"[३] विद्यमान रहती है। डॉ० नामवर सिंह के अनुसार "स्वच्छन्दतावाद प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा है।"[४] डॉ० त्रिभुवन सिंह रोमांटिक विचारधारा को "साधारण अथवा सामान्य का विलोम"[५] मानते हैं। डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल के शब्दों में 'अतीत के प्रति ललक और अनागत की लालसा रोमांसवाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति है।"[६] डॉ० जगदीश गुप्त के अनुसार स्वच्छन्द काव्यधारा के मूल में "आन्तरिक अनुभूतियों के निर्बन्ध, निष्प्रयास उच्छलन की चाह, लोक रंजन का भाव तथा प्राकृतिक सुषमा के अंकन की अभिलाषा" विद्यमान है।[७] डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार "यह एक प्रकार की मानसिक चेतना है जिसमें व्यक्ति अन्तर्मुखी होकर बाह्यजगत् की अपेक्षा अन्तर्जगत् को, बौद्धिकता की अपेक्षा सौन्दर्य को, परम्परा की अपेक्षा नूतनता को एवं संघर्ष की अपेक्षा प्रेम को अधिक महत्त्व देने लगता है।"[८]

निष्कर्षत: स्वच्छन्दतावाद परम्परागत रूढ़ियों, रीति-नीतियों, आदर्शों एवं मूल्यों की जकड़बन्दियों से मुक्त एक ऐसी साहित्यिक काव्यधारा है जिसकी बाह्य प्रकृति विद्रोहपरक, रचनात्मक, समन्वयात्मक, उदार, लोकरंजक, विस्मयात्मक एवं किञ्चित

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृ० ३८७, द्वितीय सं०, २०१३ वि०।
२. डॉ० मनोहरलाल गौड़ : रोमांटिक साहित्यशास्त्र : पृ० ५, सं० २०१५ वि० 'परिचय'।
३. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : हिन्दी का समसामयिक इतिहास, पृ० २३, सन् १९५७ ई०।
४. डॉ० नामवर सिंह : छायावाद, पृ० १५।
५. डॉ० त्रिभुवन सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा, पृ० २३, तृतीय सं०, सन् १९७७।
६. रामेश्वर लाल खण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी-कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० ३१९, सन् १९५८ ई०।
७. डॉ० जगदीश गुप्त : स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचन, पृ० ९, सन् १९७७ ई०।
८. डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त : हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ० २२, सन् १९६५ ई०।

रहस्य-दर्शन की है तथा जिसके अन्तरंग में गहन अनुभूति, तीव्र संवेदना, भावावेग, साहसिकता, अहंवादिता, वैयक्तिकता, अतीत-प्रेम, प्रकृति-अनुराग, परिष्कृत प्रेम-भावना, अनासक्त सौन्दर्यबोध एवं नवोन्मेषिणी समृद्ध कल्पना का प्राधान्य है।

स्वच्छन्दतावाद के विविध तत्त्व :

(१) **वैयक्तिकता**—स्वच्छन्दतावादी काव्य में कवि की वैयक्तिकता और उसकी विषयी-प्रधान दृष्टि ही मुख्य होती है। स्वच्छन्दतावादी कवि की वैयक्तिकता ही प्रेम, सौन्दर्य-बोध, कल्पना-तत्त्व, करुणा तथा विषाद, रहस्यानुभूति आदि स्वच्छन्द तत्त्वों की सृष्टि करती है।

(२) **प्रेम**—प्रेम, स्वच्छन्दतावादी काव्य का प्रधान तत्त्व है। स्वच्छन्दतावादी कवि का प्रेम प्रायः तीन क्षेत्रों में प्रकट होता है—(अ) मानव क्षेत्र (ब) प्रकृति क्षेत्र (स) अलौकिक क्षेत्र।

(३) **सौन्दर्य-बोध**—स्वच्छन्दतावादी कवि स्थूल से सूक्ष्म की ओर, लौकिक से अलौकिक की ओर, व्यष्टि से समष्टि की ओर तथा ऐन्द्रिय से अतीन्द्रिय की ओर अग्रसर होता है। इसी कारण उसकी दृष्टि विषयपरक सौन्दर्य से आकृष्ट होकर अन्ततः विषयीपरक हो जाती है। वह कल्पना द्वारा अनुपम सौन्दर्य का उद्‌घाटन करता है।

(४) **प्रकृति-प्रेम**—प्रकृति स्वच्छन्दतावादी कवि की प्रमुख प्रेरक शक्ति है। प्रकृति के साथ तादात्म्य होने के कारण स्वच्छन्दतावादी कवि प्रकृति के नैसर्गिक स्वरूप को मानवीय भावनाओं से अनुरंजित एवं सचेतन देखता है तथा कभी-कभी प्रकृति में रहस्य-दर्शन भी करता है।

(५) **कल्पना**—स्वच्छन्दतावादी कवि बाह्य वस्तुओं को कल्पना की अन्तर्दृष्टि से देखता है तथा सौन्दर्य का भावन एवं सृजन करता है। कल्पना रोमांटिक काव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसके अभाव में स्वच्छन्दतावादी काव्य की सृष्टि ही असम्भव है। कल्पना के योग से स्वच्छन्दतावादी काव्य में कुरूप, अनाकर्षक वस्तु भी आकर्षक, सुन्दर एवं मनोहर बन जाती है। परिष्करण, उदात्तीकरण, सत्यान्वेषण का कार्य कल्पना प्रदत्त अन्तर्दृष्टि द्वारा ही स्वच्छन्द कवि पूर्ण करता है।

(६) **करुणा एवं विषाद**—रोमांटिक कवि आदर्शोन्मुखी तथा स्वप्नद्रष्टा होता है। यथार्थ जीवन में उसके कल्पना-लोक का प्रासाद जब ध्वस्त होने लगता है तो वह करुणा एवं विषाद से भर उठता है। ऐसी दशा में प्रायः वह पलायनवादी भी हो जाता है। स्वच्छन्दतावादी कवि की वैयक्तिक वेदना और निराशा विश्व करुणा में प्रकट होती है। दुःखवाद, निराशा, पलायन, भाग्यवाद एवं करुणा से ग्रस्त होते हुए भी स्वच्छन्दतावादी कवि का अन्तःकरण ऊर्ध्वमुखी होता है।

(७) **विस्मय एवं रहस्यानुभूति**—स्वच्छन्दतावादी काव्य में असाधारण, अलौकिक तथा अनन्त के प्रति जहाँ विस्मय एवं जिज्ञासा की भावना व्यंजित होती है वहीं उसमें पर्याप्त रहस्यानुभूति की भी अभिव्यंजना होती है।

(८) **विद्रोही भावना**—स्वच्छन्दतावादी काव्य में अन्तः तथा बाह्य दोनों के प्रति विद्रोह का भाव होता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य सामाजिक रूढ़ियों, विषमताओं, बन्धनों, अन्यायों तथा शास्त्रानुशासित नियमों के प्रति विद्रोह करता है तथा उसे उखाड़ फेंकने के लिये सतत तत्पर रहता है। इस प्रकार वह युगानुकूल नूतन काव्य-धारा का सृजन करता है।

(९) **शिल्पगत नवीनता**—स्वच्छन्दतावादी काव्य-शैली की मूल प्रवृत्ति निबर्न्धता है। स्वच्छन्दतावादी कवि की भावानुभूति की तीव्रता ही भाषा, छन्द, अलंकार, शैली का स्वरूप-निर्धारण करती है। उसकी भाषा-शैली भावानुकूल होने के कारण आडम्बरहीन होती है तथा छन्द-विधान, छन्द का बन्धन तोड़कर भावानुकूल अपना रूप धारण करता है। अभिव्यंजना की नैसर्गिकता स्वच्छन्दतावादी काव्य का विशिष्ट गुण है।

यद्यपि स्वच्छन्दतावादी काव्य देश-काल की सीमाओं से अनाबद्ध होता है तथापि अंग्रेजी साहित्य में एक काल-विशेष के काव्य के लिए यह शब्द अभिहित होकर निम्न लक्षणों को व्यक्त करता है :

(१) अनुभूति तथा कल्पना इस काव्यधारा के दो आधारभूत स्तम्भ हैं। इसमें संवेदनशील स्वच्छन्द कवियों की तीव्र आन्तरिक अनुभूतियाँ ही घनीभूत होकर मुखरित होती हैं। यह काव्य बुद्धि का क्रिया-व्यापार न होकर, हृदय का क्रिया-व्यापार होता है। भावावेग ही इसमें प्रधान होता है, जिसकी सम्प्रेषणीयता के लिए कल्पना का अविरल प्रवाह इसमें विद्यमान रहता है।

(२) यह काव्य मूलतः आत्मपरक होता है। कवि आत्म-कथात्मक शैली में अपनी भावानुभूतियों को शब्द-रूप देता है। इसी कारण यह उपयोगितावाद, यथार्थवाद तथा आदर्शवाद के प्रति उदासीन रहता है। इस काव्यधारा में कवि का अहं ही ध्वनित होता है। आत्म-प्रसार की आकांक्षा तथा व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावना उसे नवीन अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है।

(३) प्रचलित परम्पराओं एवं रूढ़ियों का परित्याग तथा नवीन विचारों का ग्रहण इसके प्रमुख लक्षण हैं। स्वच्छन्दतावादी काव्य किसी भी प्रकार के सामयिक अथवा साहित्यिक बन्धन को स्वीकार नहीं करता। इसी कारण वह काव्य-शिल्प के समस्त बन्धनों को तोड़ कर नवीन छंद-विधान, नवीन भाषा तथा नवीन भाव-बोध से काव्य का संस्कार करता है। इसकी शैली भी स्वच्छन्द होती है जो भावानुसार

अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करती है। अतीत के प्रति ललक तथा स्वर्णिम भविष्य की लालसा, बन्धनहीनता के कारण ही इस काव्य-धारा में दृष्टिगोचर होती है।

(४) अभिजात वर्ग, अभिजात दृष्टि, अभिजात काव्य-विषयों को महत्त्व न प्रदान कर यह व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, मानव-मात्र तथा सामान्य को महत्त्व देता है। इसी कारण इसमें मानवतावादी स्वर की प्रधानता रहती है।

(५) प्रकृति-अनुराग तथा प्रकृति के विविध उपकरणों एवं उसके क्रिया-व्यापारों के प्रति आत्मीयता का भाव इसमें विद्यमान रहता है। स्वच्छन्दतावादी कवि प्रकृति के दृश्य तथा व्यक्त स्वरूप के साथ ही उस अदृश्य तथा अव्यक्त स्वरूप को भी चित्रित करता है जो बाह्य आवरण के भीतर छिपा रहता है। उसकी दृष्टि स्थूल से सूक्ष्म की ओर रमण करने का प्रयास करती है।

(६) काव्य-शिल्प तथा रूप-चित्रण दोनों में ही स्वच्छन्दतावादी काव्य बाह्या-डम्बर तथा कृत्रिमता का परित्याग करता है तथा सहजानुभूति को ही बिना किसी बनाव-सिंगार के अभिव्यंजित करता है।

(७) प्रेम और सौन्दर्य इस काव्यधारा के दो प्रमुख उपादान होते हैं, जिसके भीतर मानव-मानवेतर जगत् के समस्त उपकरण सिमटकर स्वतः आ जाते हैं। स्वच्छन्द कवि इन दोनों का ग्रहण तत्त्व-दर्शन के रूप में करता है।

(८) इस काव्यधारा की प्रकृति विकासात्मक, उदार, समन्वयात्मक, विस्मया-त्मक, अन्वेषणात्मक तथा लोकरंजक होती है।

रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा :

'रीति' वस्तुतः 'काव्य रीति' का संक्षिप्त रूप है।[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास में 'रीति' शब्द का प्रयोग रस, अलंकार, पिंगल, नायक-नायिका-भेद आदि शास्त्रीय काव्यांगों के लिए किया है। 'रीति' का सम्बन्ध शास्त्रीयता से है जो रीति-नीति की विधायिका शक्ति है। स्वच्छन्दता, कवि की अन्तश्चेतना में व्याप्त वह मौलिक वृत्ति है जो रीतिशास्त्र के बन्धनों को उखाड़ फेंकना चाहती है। साहित्य में ये दोनों विचारधाराएँ कभी साथ-साथ चलती हैं तो कभी एक-दूसरे के बाद। रीतिकाल में इन दोनों ही विचारधाराओं का प्रबल प्रवाह विद्यमान था। रीति से बद्ध और मुक्त रति का जितना गहन चिन्तन रीतिकाव्य में हुआ, उतना हिन्दी साहित्य के किसी युग में नहीं।

सुधी समीक्षकों ने इस चिन्तन-धारा के काव्यकारों को रचना-वैशिष्ट्य के आधार पर दो वर्गों में विभक्त किया है—रीतिबद्ध और रीतिमुक्त। प्रथम वर्ग उन

---

१. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली (वाङ्मुख), पृ० २, सं० २००९ वि०।

कवियों का है, जिन्होंने पराये प्रेम को, प्रेम के कृत्रिम व्यापार को काव्य में काल्पनिक अभिव्यक्ति दी। इस वर्ग के कवि रीति के बन्धनों से जकड़े हुए थे। इनका पथ पूर्व निर्धारित था और ये एक निश्चित परिधि के भीतर ही बुद्धि-व्यायाम करते रहे। रीति और रति ही इनका अभिप्रेत था। शास्त्रीयता से इन्हें अगाध प्रेम था। "काव्यजीवन की व्याख्या है—(रीतिबद्ध) कवि इसे भूल चुका था। इसलिए जीवन से दूर विलास-भवन एवं केलि-उद्यान के गान गाने में ही वह प्रवृत्त रहा। वियोग-जनित नायिकाओं की निःश्वासों और अभिसारिकाओं की साज-सज्जा में उसने अपने को भुला दिया। काव्य अपनी वास्तविक भूमि से भटक गया।"[१]

इस चिन्तनधारा के कवियों का द्वितीय वर्ग ऐसे उन्मुक्त गायकों का है जो नख से शिख तक प्रेम के स्वाभाविक रंग में डूबा हुआ था। इस वर्ग के कवियों ने अपने वैयक्तिक जीवन में सच्चा प्रेम किया, उसे भोगा और जो कुछ उनके संवेदन-शील हृदय ने अनुभव किया, उसे ही अपने काव्य में अभिव्यक्ति दी। यदि राधा-कृष्ण या किसी अन्य नायक-नायिका के प्रेम-व्यापार को अपने काव्य में ग्रहण भी किया तो स्वानुभूति के रंग में रँगकर। कविता को इन कवियों ने हृदय का व्यापार बनाया, बुद्धि का व्यवसाय नहीं। इनका प्रेम-चिन्तन स्वच्छन्द था। "ये मनावेग के प्रवाह में बह कर कविता लिखा करते थे। इनकी दृष्टि में काव्यशास्त्र के नियम, उपनियम नहीं रहते थे। इसलिए उनके काव्य में जीवनगत स्वच्छन्दता तथा काव्य-गत स्वच्छन्दता दोनों के दर्शन होते हैं।"[२] इस वर्ग के कवियों को रीतिमुक्त कहा गया। इनमें प्रमुख हैं—रसखान, आलम, घनानन्द, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव।

रीतिमुक्तों का जीवन-दर्शन स्वच्छन्द था। पारिवेशिक घात-प्रतिघातों ने उनकी जीवन-दृष्टि और व्यक्तित्व को सँवारा था। इस धारा का प्रायः प्रत्येक कवि अपने वैयक्तिक जीवन में किसी-न-किसी रूपसी के नयन-शर से आहत अवश्य हुआ था। रसखान लौकिक प्रेम में निराश होने के बाद ही ईश्वरोन्मुख हुए। इसी से उनका प्रेमी-रूप भक्त-रूप की अपेक्षा अधिक मुखर है। घनानन्द ने रूपसी सुजान के प्रेम में सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण किया, वैभव-विलास का परित्याग किया, लेकिन ईश्वरोन्मुख होकर भी सुजान को न भुला सके। शेख आलम ने अपनी प्रिय रँगरेजिन के लिए अपना धर्म छोड़ा, पर अपने प्रेम पर आँच न आने दी। बोधा ने सुभान के लिए लोक-मर्यादा छोड़ा पर प्रीति की रीति न छोड़ा। ठाकुर

---

१. डॉ० रामचन्द्र मिश्र : श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० ५७, सं० २०२६ वि०।

२ ॅ० मनोहरलाल गौड़ : घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० २३१, सं० २०१६ वि०।

विवाहिता सुनारिन की एक झलक पाने के लिए उसकी गलियों में सामाजिक अपयश की परवाह न कर चक्कर लगाते रहे। ये सभी-के-सभी मुक्त प्रेमी थे। वास्तविक नारी ने उनके जीवन को झकझोर डाला था। लाज-संकोच, मान-अपमान और लोक-रीति की इन्हें रंचमात्र परवाह नहीं थी।

एक ओर उन्मुक्त प्रेम के ये दीवाने थे तो दूसरी ओर समाज का कठोर बन्धन उनके समक्ष अभेद्य दीवार बन कर खड़ा था। फलस्वरूप घुटन और अवसाद से इनका भाव-जगत् भर उठा। उस समय जन-साधारण में भी असमानता और संकीर्णता के विरुद्ध असन्तोष के भाव प्रबल थे। सामाजिक परिवेश के समान ही हिन्दी-काव्य भी रीति-नीतियों, शास्त्रीय नियमों-उपनियमों के कठोर बन्धन में आबद्ध था। पंक्तिबद्धता से इन कवियों को चिढ़ थी और स्वच्छन्दता से अटूट लगाव। जाति, धर्म, कुल, मर्यादा और जड़ता का अतिक्रमण कर प्रेम को लोकोत्तर तथा जीवन्त स्वरूप प्रदान करना इनका अभिप्रेत था। फलस्वरूप रूढ़ियों के कठोर बन्धन को इन आत्मचेता कवियों ने साहसपूर्वक तोड़ा और जीवन तथा काव्य दोनों में स्वच्छन्द पथ का अनुसरण किया।

रीतिमुक्त कवियों के जीवन का हर क्षेत्र स्वच्छन्द था। दरबारों की रंगीनियों के बीच भी ये अपनी विशिष्टता, स्वाभिमान और अहं को अक्षुण्ण बनाये हुए थे। न उन्हें धन की लिप्सा थी न यश की। दरबार में रहते हुए भी ये दरबारी परिवेश से दूर थे। दरबारी चाटुकारिता और ऐश्वर्य-भोग की आकांक्षा से ये विरत थे। सिद्धान्ततः जीवनगत तथा काव्यगत स्वच्छन्दता ही उनका वरेण्य था।

रीतिमुक्त कवि काव्य-रीतियों से परिचित थे, तथापि उनके स्वच्छन्द जीवन-दर्शन के समान ही उनका काव्य-प्रणयन भी स्वच्छन्द था। उधार का प्रेम, उधार का विषय और उधार का भाव-बोध उन्हें स्वीकार नहीं था। सप्रयास काव्य-सृजन उनकी दृष्टि में हेय था। शास्त्रीय नियमों के चौखटे में कविता को फिट करना उन्हें खटकता था। "ये कविता बनाते नहीं थे, उन्हें काव्य का वेग बना देता था। प्रेम में लीन होने पर काव्य का प्रवाह आप-से-आप बाहर आ जाता था। कोई पच्चीकारी करने की आवश्यकता नहीं थी।"[१] सप्रयास कविता लिखने की अपेक्षा वे कविता से स्वयं अपना संस्कार किया करते थे—'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोंहि तो मेरो कवित्त बनावत।'[२] ये प्रकृत्या स्वच्छन्द प्रेमी थे। अंतः प्रेम का माधुर्य विरह की ठेस खाकर स्वतः ही वाणी में ढलता रहा। दूसरों के भावों का अपहरण उन्हें अभीष्ट नहीं था। स्वानुभूतिक अभिव्यंजना से वे संतुष्ट हो जाया करते थे।

---

१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली (प्रस्तावना), पृ० ११, सं० २०२१ वि०।

२. वही : पृ० ७५।

रीतिमुक्त कवियों ने अपना विशिष्ट काव्यादर्श स्वयं निर्धारित किया था। आत्मविभोर होकर काव्य-सृजन एवं हृद्गत भावों का रूपायन उन्हें अभीष्ट था। ये मनःशान्ति एवं अपने हृदय का बोझ हल्का करने के लिये कविता करते थे। बिना किसी लाग-लपेट के स्वानुभूतियों की अभिव्यक्ति ही उनका अभिप्रेत था। काव्य-सम्प्रदायों तथा रीति-नीतियों का अनुसरण उनके सिद्धान्त के प्रतिकूल था। न रीति-बद्ध कवि इन्हें लुभा सके और न भक्त कवि। "जिस प्रकार ये रीति से अपने को स्वच्छन्द रखते थे, उसी प्रकार साम्प्रदायिक नीति से भी।"[१]

काव्य-सृजन में बाह्य साज-सज्जा और अलंकरण की न तो उन्हें आवश्यकता थी और न आग्रह। सीधे अथवा राधा-कन्हाई की ओट लेकर इन कवियों ने अपनी ही प्रेमानुभूतियों को काव्य में उड़ेल दिया है। काव्य की बद्ध लीक को छोड़कर खुले राजमार्ग पर दौड़ लगाने की इनमें प्रबल आकांक्षा थी। इसी कारण विषय, भाषा, भाव, शैली तथा अलंकारों के मोह में वे नहीं पड़े। शब्द-शोधन अथवा पद-साधन में माथा-पच्ची करने की अपेक्षा वे अपने हृदय को ही टटोलते रहे। भाव-जगत् में डूबने के कारण वे अपने समसामयिकों से बहुत आगे निकल गये।

वैयक्तिकता रीतिमुक्त काव्यधारा की सर्वनिष्ठ विशिष्टता है। इसके पूर्व हिन्दी-काव्य में वैयक्तिकता का प्रवेश प्रायः नहीं हो पाया था। समसामयिक रीति-बद्ध कवि भी लोकानुभूति को ही शास्त्रीय चौखटे में फिट किया करते थे। रीति-मुक्तों ने आरोपित प्रेम-व्यापार का प्रायः बहिष्कार किया और यदि कहीं अपनाया भी तो स्वानुभूति के आधार पर। इन कवियों ने अपने ही प्रेम-व्यापार अथवा लौकिक प्रेमकथा का अपने काव्य में मर्मोद्घाटन किया है। इनकी नायिकाएँ सुरूपा हैं जिनकी रूप-चेष्टाओं को इन कवियों ने अपनी आँखों से देखा है, जिनके प्रणया-घात को उन्मुक्त भाव से स्वयं सहा है। प्रायः यही वैयक्तिक प्रणय-व्यापार उनकी काव्यगत उद्भावना का ग्राह्य विषय है।

संवेदनशीलता समस्त भाव-राशि का आदि स्रोत है। प्रायः सभी रीति-स्वच्छन्द कवि संवेदनशील थे। उनके हृदय में भाव-तरंगों की अतुल लहरियाँ उठा करती थीं। इस प्रकार भावावेग की दशा में वे जो काव्य-सृजन करते थे, उसमें भाव-प्रवणता का आना स्वाभाविक था। ये भाव के धनी थे। अन्तःकरण की अतुल भाव-राशि को मुक्त भाव से काव्य में उड़ेल देना ही इनका साध्य था। इसी कारण इनकी कविताओं में भाव-प्रवणता एवं आभ्यंतरिकता का प्रबल प्रवाह विद्यमान है। रसमग्न होने पर इन कवियों की लेखनी से भाव-स्रोत स्वतः ही फूट पड़ता था।

रीति-स्वच्छन्द कवि अपनी ही उमङ्ग पर थिरकने वाले और किसी भी 'कार्य-व्यापार के अतरङ्ग में प्रवेश कर तलस्पर्श करने वाले कुशल कलाकार थे।

---

१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली, पृ० २१।

ऊपरी सतह पर तैरते रहने से इन्हें सन्तोष नहीं मिलता था। बुद्धि का उपयोग उन्होंने उसी सीमा तक किया जहाँ तक हृद्‌गत भावों की सुरक्षा को कोई खतरा न हो। कल्पना की उर्वर भूमि को भावना की रसधारा से सींचकर काव्य को मन-भावन रत्नों से सज्जित करने में वे पटु थे। भावावेग में रीतिमुक्त कवि स्वयं बह जाया करते थे। इसी से उनकी वाणी में भंगिमा एवं अभिव्यंजना में बाँकपन स्वतः ही आ गया है।

कल्पना, काव्य की जीवनी शक्ति है। रीति-स्वच्छन्द कवियों ने कल्पना का पर्याप्त सहारा लिया है लेकिन इनके काव्य में न तो कल्पना की उड़ान है और न समारोह। कल्पना के अतिरेक से ये बचते थे, क्योंकि उन्हें इस बात का भय था कि ऐसा करने से भाव छिन्न-भिन्न हो जायेगा और काव्य अपना नैसर्गिक स्वरूप खोकर निरीह बन जायेगा। भाव के धनी ये कवि केवल कल्पना का सम्बल लेकर अपनी काव्य-यात्रा में आगे बढ़े हैं।

विप्रलम्भ-शृंगार की सृष्टि में कल्पनाएँ विशेष क्रियाशील रहती हैं जब कि संयोग-शृंगार की उद्‌भावना के समय उनका दामन प्रायः छूट जाता है। घनानन्द इसके अपवाद हैं क्योंकि उनका संयोग-शृंगार भी विप्रलम्भ-शृंगार की उर्वर भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित है। बोधा ने संयोग-शृंगार की सृष्टि के लिये जहाँ कल्पना को तिलांञ्जलि दे दिया है वहाँ चित्र स्थूल, मांसल और नग्न हो गया है—'तिय की गही पिय ने बाँह। तब तिय कही नाहीं नाँह।'[१] जहाँ उन्होंने कल्पना का सहारा लिया है वहाँ प्रायः अश्लीलता का लोप हो गया है—'मो दिल होई सुखी तबहीं, जब रङ्ग में भावति भंग पिआवै।'[२]

रीति-स्वच्छन्द कवियों के काव्य का मूल कथ्य प्रेम है। वे प्रेम और प्रणय के साधक थे। प्रणयशीलता उनकी कवित्व शक्ति की मूल प्रेरणा-स्रोत थी। यही उनके जीवन का सम्बल था, आत्मा का चेतन अंग था। इसकी जीवनी-शक्ति पर उन्हें पूर्ण आस्था थी। प्रणयशीलता इनके काव्य में दो रूपों में अभिव्यंजित है—सीधे आत्मकथात्मक शैली में तथा राधा-कन्हाई की ओट लेकर। घनानन्द और बोधा ने प्रथम प्रकार के प्रणय-कथन को अधिक अपनाया है तथापि इनके काव्य में राधा-कृष्ण का प्रणय-व्यापार भी अनुभूतियों की लपेट में आ गया है। रसखान, ठाकुर और आलम ने अपने काव्य में राधा-कृष्ण के प्रणय-प्रसंगों को अधिक स्थान दिया है। दोनों ही दशाओं में इन कवियों ने वैयक्तिक अनुभूतियों को ही वाणी दी है। आरोपित अथवा कल्पित प्रणय-व्यापार की इनके काव्य में कहीं भी व्यंजना नहीं है।

---

१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : बोधा ग्रन्थावली, पृ० ११६।
२. वही : पृ० १८।

रीति-स्वच्छन्द कवियों का प्रणय-चिन्तन प्राय: तीन प्रकार का है—परिणीत, अपरिणीत तथा तटस्थ। आलम एवं बोधा का प्रणय-चिन्तन परिणीत, रसखान और घनानन्द का अपरिणीत तथा ठाकुर का तटस्थ भाव का है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों का प्रेम-चिन्तन ऊर्ध्वगामी है। अपने जीवन के आरम्भ में वे लौकिक प्रेम के पुजारी थे, मध्य में उनका प्रेम विरहाग्नि में तपकर कंचन होता गया और अन्त में उसका पर्यवसान भगवत् प्रेम में हो गया है। वस्तुत: इन कवियों के लिये प्रेम एक जीवन-दर्शन था जिसकी प्रकृति ऊर्ध्वमुखी थी।

प्रेम स्वच्छन्द कवियों के काव्य का मूल विषय है जिसकी विविध स्थितियाँ उनके काव्य में अभिव्यंजित हैं। प्रेम के कंटकाकीर्ण पथ पर पूर्ण निष्ठा, अटूट आस्था एवं दृढ़ संकल्प के साथ चलकर इन कवियों ने जो कुछ भोगा, अनुभव किया, उसे ही अपने काव्य का विषय बनाया। संयोग-सुख तो उन्हें अत्यल्प ही मिला, लेकिन विरह-वेदना की अतुल राशि इन्हें धरोहर में मिली, जिसे उन्होंने आजीवन अक्षुण्ण बनाये रखा। प्रेम-चिन्तन में निखार का प्रमुख कारण विरहोद्दीप्ति की स्थायी स्थिति ही है।

विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत रीति-स्वच्छन्द कवियों ने प्रेम-वैषम्य और 'प्रेम की पीर' को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है। फ़ारसी साहित्य और सूफी चिन्तन-पद्धति में प्रेम की दोनों स्थितियाँ स्वीकृत हैं। आलम, ठाकुर और द्विजदेव शुद्ध भारतीय प्रेम-पद्धति के कवि हैं जबकि रसखान और घनानन्द के काव्य में 'प्रेम की पीर' आत्मसात् होकर झलक मारती है जिसका स्पष्ट रूप है इश्कमजाजी की इश्कहकीकी में परिणति अर्थात् लौकिक प्रेम का अलौकिक प्रेम में पर्यवसान। घनानन्द का ब्रह्म-विरह 'पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हें, धरनी में धसौं कि अकासहिं चीरौं'[१] में प्रेम की पीर से सम्पृक्त है। रसखान को भी बिना लौकिक प्रेम के ब्रह्मानन्द की अनुभूति नहीं होती।[२] बोधा ने यद्यपि अलौकिक प्रेम की डुग्गी बड़े उत्साह से पीटी है लेकिन प्रेम-लीला से आगे नहीं बढ़ सके।[३]

---

१. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली (सुजानहित), छं० सं० ४१६, प्र० वाणी वितान, वाराणसी, सं० २००६ वि०।

२. आनन्द-अनुभव होत नहिं, बिना प्रेम जग जान।
कै वह विषयानन्द कै ब्रह्मानन्द बखान।
—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली, प्र० वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी, सं० २०२१ वि०, पृ० १०७।

३. इश्कहकीकी है फुरमाया। बिना मजाजी किसी न पाया।
—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : बोधा ग्रन्थावली (विरह वारीश) प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०३१ वि०, पृ० ५४।

रीतिमुक्त कवियों का प्रेम एकोन्मुख था। अपनी प्रेमिकाओं से इन्हें प्रतिदान नहीं मिला, लेकिन इनके प्रेम में दृढ़ता एवं परिपक्वता थी, जिसके कारण इन्हें विषम-विरह का हलाहल हँसते-हँसते पीने में आनन्द की अनुभूति होती थी। प्रणय-संघातों से उनका हृदय बिंध गया था, जिससे मार्मिक संवेदनाएँ रिस-रिस कर उनके काव्य-कानन को सतत सींचती रहीं। प्रेम को जीवन का सर्वोत्तम तत्त्व मान कर इन कवियों ने उसका आत्म-मंथन किया और अपने काव्य को उदात्त प्रेम से अलंकृत किया।

स्वच्छन्द कवियों ने वासना के पंक में नख-शिख डूबे हुए प्रेम के रीतिकालीन शरीरी स्वरूप को भावात्मक स्वरूप प्रदान किया, केवल बोधा का काव्य कहीं-कहीं स्थूल शारीरिकता से बोझिल हो गया है। उनका प्रेमी-रूप अतिशय स्वच्छन्द हो गया है। घनानन्द ने अपने काव्य में प्रेम को इतनी ऊँचाई पर पहुँचा दिया है कि वह दिव्य आभा से आलोकित हो उठा है।

रसखान का प्रेम प्रारम्भ से ही उदात्त था। प्रेम का संयोग-पक्ष इन कवियों के काव्य में गौण है, जब कि वियोग-पक्ष सम्पूर्ण काव्य का प्रधान स्वर बन गया है। वियोग के कारण ही इनके काव्य में प्रेम का भावात्मक एवं उदात्त स्वरूप व्यापक रूप से व्यंजित है।

प्रेम ही इन स्वच्छन्द कवियों के सम्पूर्ण काव्य में स्पन्दित है। चाहे वह मुक्तक हो या प्रबन्ध काव्य, वे प्रेम की मुख्य धारा से इधर-उधर नहीं गये हैं। इनके काव्य में प्रेम का परम्परागत रूप प्रायः नगण्य है। जहाँ विहारी की नायिका प्रिय को अपनी ओर आकृष्ट करने की अभिलाषा से छम्म से आकर झम्म से जाने का बहाना ढूँढ़ती है, वहीं बोधा कहते हैं—'लोक की लाज औ सोच अलोक को वारियै प्रीति के ऊपर दोऊ।'[1] वस्तुतः उनकी प्रेम-व्यंजना को न तो नायिका-भेद के चौखटे में फिट किया जा सकता है और न नायक-नायिका के परम्परागत प्रणय-व्यापार के झरोखे में।

रीतिमुक्ति कवियों ने प्रेम का नैसर्गिक स्वरूप ग्रहण किया है जिसके कारण उसमें सौम्यता, गंभीरता तथा उदात्तता का व्यापक समावेश है।[2] रीतिबद्ध कवियों का प्रेम अतिशय मांसल हो गया है जब कि रीतिमुक्त कवियों के प्रेम में मांसलता प्रायः तिरोहित हो गयी है। इन कवियों के प्रेम में अनन्यता है, एकोन्मुखता और एकांत समर्पण की भावना है। इनमें स्वाभिमान है लेकिन अहं की गंध नहीं, प्यार

१. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : बोधा ग्रन्थावली, सं० २०३१ वि०, पृ० ४६।
२. 'प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान।'
—आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली (प्रेमवाटिका), पृ० १०७।

का दान है लेकिन प्रतिदान की आकांक्षा नहीं। ये डंके की चोट पर सच्चा प्रेम करते हैं और प्रेम करने के लिए अन्यों को ललकारते भी हैं। प्रेम इन कवियों की दृष्टि में जीवन-जगत् का सर्वोत्तम तत्त्व है।

रीति-स्वच्छन्द कवि इन्द्रिय-भोगी कम आत्म-भोगी अधिक थे। इनका सम्पूर्ण काव्य वस्तुतः विरह काव्य है जिसमें प्रेम का भावन देश-काल की सीमाओं को लाँघकर शाश्वत स्वरूप ग्रहण कर लेता है। वास्तव में ये प्रेमोन्मत्त रसिक थे, संयोग-सुख के लोभी नहीं; प्रेम-योगी थे, भोगी नहीं।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने लोक-जीवन के मोद, मंगल पक्ष की ओर भी दृष्टिपात किया है जिसकी ओर रीतिबद्ध कवियों का ध्यान नहीं गया था। इन कवियों ने तत्कालीन समाज में प्रचलित त्यौहारों, पर्वों तथा वैवाहिक संस्कारों का हृदयग्राही चित्रण किया है। ठाकुर ने अपने काव्य में बुन्देलखण्ड के त्यौहारों जैसे—अखती, तीज, हरियाली, झूला, वटपूजन, होली आदि का रीतिमुक्त शैली में हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। हिन्दू संस्कार का इतना विशद चित्रांकन अन्यत्र दुर्लभ है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों की पैनी दृष्टि प्रकृति की रमणीयता की ओर भी गयी है। घनानन्द, आलम के काव्य में प्रकृति पृष्ठभूमि के रूप में आयी है जिसके मूल में परम्परागत उद्दीपन विभाव ही क्रियाशील है। 'द्विजदेव' इस दिशा में इस धारा के कवियों में सबसे आगे हैं। 'द्विजदेव' ने प्रकृति की रमणीयता का स्वच्छन्द निरीक्षण कर उसकी अनुपम छटा का हृदयस्पर्शी चित्र खींचा है। वे प्रकृति के आलम्बन रूप को भी ग्रहण करने में सफल हुए हैं।

रीतिकाल का सम्पूर्ण रीतिबद्ध साहित्य आलंकारिक चमत्कारों एवं नायिका-भेद के सौन्दर्य-व्यापारों से सुसज्जित है। रीति-स्वच्छन्द कवियों ने पंक्तिबद्धता की इस पद्धति को त्यागा तथा नवीन शिल्प को अपने काव्य में स्थान दिया। स्वच्छन्द कवियों ने अभिव्यंजना की अलग-अलग शैली अपनायी है। जैसे—रसखान की सरस, सरल, भाव प्रधान शैली, घनानन्द की विरोधाश्रित तथा हृदयवेष्टित भाव-प्रवण शैली, बोधा की विरहोद्दीप्ति प्रधान लाग-लपेटविहीन शैली तथा ठाकुर की लोकोक्ति प्रधान प्रवाहपूर्ण शैली। इन सभी की शैलियों में अपनी-अपनी निजता तथा विशिष्टता का समावेश है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों की शैली की द्वितीय विशेषता है आत्मकथात्मक शैली में वैयक्तिक अनुभूतियों का काव्यगत शब्द-प्रकाशन। हिन्दी साहित्य में लौकिक प्रेम-भावना का आत्मकथात्मक शैली में प्रकाशन सर्वप्रथम इन कवियों के काव्य में ही हुआ है। हिन्दी काव्य-परम्परा में यह शैली सर्वथा नवीन है।

इनकी शैली की तीसरी विशेषता है कविता-कामिनी को अलंकृत करने में

बाह्य साज-सज्जा का त्याग। रीतिबद्ध कवियों ने अलंकारों के संयोजन से चमत्कार की सृष्टि की, लेकिन रीतिमुक्त कवियों ने हृदयवेष्टित आन्तरिक भाव-राशि से कविता-कामिनी का श्रृंगार किया। घनानन्द ने शैली में शक्ति-संचार तथा चमत्कार पैदा करने के लिए प्रायः लक्षणा-व्यंजना शब्द-शक्तियों का सहारा लिया है। ठाकुर ने लोकोक्तियों द्वारा, बोधा ने दो टूक उक्ति-वैचित्र्य द्वारा अपने काव्य को सँवारा है। वस्तुतः आलंकारिक चमत्कारों के मोह-जाल से विरत रहकर ही रीतिमुक्त कवियों ने रचना की, तथापि इनकी रचनाएँ अपनी मार्मिकता से हृदय की गहराइयों को छू लेती हैं।

रीति-स्वच्छन्द कवियों की शैली की चौथी विशेषता यह है कि इन कवियों ने अरबी, फ़ारसी, बुन्देली, पंजाबी, भोजपुरी तथा अवधी आदि के देशज शब्दों को ग्रहण कर हिन्दी के शब्दकोश को समृद्ध किया और शब्दों का नवीन अर्थ-चेतना से संस्कार किया। लक्षणा तथा व्यंजना की शब्द-शक्तियों को इन कवियों ने असाधारण रूप से बढ़ाया। भावानुसार भाषा के प्रयोग में ये सिद्धहस्त थे। मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रयोग से इनकी शैली जीवन्त हो उठी है। लगभग सभी रीति-स्वच्छन्द कवियों की भाषा और शैली भाव-बोधित है जिसका उत्स इनका संवेदनशील अन्तःकरण है। तत्कालीन लोकप्रिय छन्दों जैसे—कवित्त, सवैया में ही इन कवियों ने रचना की है, लेकिन अपनी वैयक्तिक विशिष्टता की मुहर लगाकर। घनानन्द तथा बोधा ने परम्परा से थोड़ा हट कर रेखता तथा उर्दू के छन्दों का भी प्रयोग किया है। इनकी अतिशयोक्तियाँ भी भाव-बोधित हैं, हास्यास्पद नहीं।

रीति-स्वच्छन्द कवियों की दृष्टि प्रबन्ध रचना की ओर भी गयी। आलम ने 'माधवानल कामकन्दला' तथा 'श्याम सनेही' दो प्रबन्ध काव्य लिखे तथा बोधा ने एक प्रबन्ध काव्य 'माधवानल कामकन्दला' लिखा। इन काव्यों में अतीत प्रेम की ललक परिलक्षित होती है।

निष्कर्षतः रीति-स्वच्छन्द कवियों का मूल स्वर प्रेम है जिसके चारों ओर इन कवियों ने अपनी वाणी का वैभव निदर्शित किया है। भक्ति-भावना तथा रीति-आग्रह से ये मुक्त थे। वीर गाथाओं की ओर इनकी अभिरुचि नहीं थी। इनका हृदय तो लौकिक प्रेम में नख-शिख आसक्त था, लेकिन यह आसक्ति प्रायः उदात्त थी। ये प्रेम की उमंग पर थिरकने वाले प्रेमोन्मत्त गायक थे, बुद्धि के संकेत पर नाचने वाले हृदयहीन प्रेमी नहीं। लीक से हटकर स्वच्छन्द मार्ग का अनुसरण करने वाले इन प्रेमी कवियों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। अपनी शैलीगत विशिष्टताओं के कारण ये अलग ही पहचाने जाते हैं। वैयक्तिक प्रेमानुभूतियों की अभिव्यंजना का श्रीगणेश कर इन कवियों ने स्वच्छन्द धारा का मार्ग प्रशस्त किया जिस पर आगे चलकर हिन्दी के स्वच्छन्द काव्य-साहित्य का विकास हुआ।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधारा :

स्वच्छन्दता की प्रक्रिया शाश्वत है। यह किसी भी देश या काल के साहित्य को जीवन्त रखने के लिये अनिवार्य है। समाज परिवर्तनशील है और इस परिवर्तनशील समाज की भावनाओं के साथ कण्ठ-स्वर मिलाकर चलने वाला साहित्य ही जिन्दा रह सकता है, इतिहास इस बात का साक्षी है। वस्तुतः प्रासंगिकता को बनाये रखने वाला साहित्य ही स्वच्छन्दतावादी साहित्य है, जो समय की गति को पहचान कर अपना कायाकल्प करता चलता है। स्वच्छन्दतावाद की जो प्रवृत्ति जड़ता को समाप्त कर नवीनता को जन्म देती है, उसका प्रभाव कविता के स्वरूप, भाव, भाषा और शिल्प सभी पर पड़ता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य को वर्तमान स्तर पर पहुँचने में विकास और विरोध की एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरना पड़ा है। प्रबन्ध काव्यों के रूढ़िगत स्वरूप को मुक्तकों ने भंग किया और मुक्तकों की शास्त्रीय नीरसता को प्रगीतों ने तोड़ा है। हिन्दी को खड़ीबोली तक पहुँचने में डिंगल, पिंगल, सधुक्कड़ी, अवधी तथा ब्रजी के बीच अपना रूप निखारते हुए आगे बढ़ना पड़ा। काव्य-शिल्प का आधुनिक सूक्ष्म कलात्मक रूप स्थूल अभिव्यंजना की विविध विधाओं का अतिक्रमण करता हुआ अपने गन्तव्य को पा सका है।

वीरगाथा-काल और भक्ति-काल में शास्त्रीय एवं रूढ़िगत बन्धन अधिक कठोर नहीं थे, लेकिन रीतिकाल में आकर विषय और स्वरूपगत जड़ता अपनी चरमावस्था को पहुँच गयी जिसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई। घनानन्द जैसे रीति-स्वच्छन्द कवियों ने शास्त्रीयता का मोह भंग कर स्वच्छन्द काव्यधारा के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। आधुनिक कवियों को जहाँ एक ओर रीतिमुक्त काव्य की भावानुभूतिक धारा प्रेरणा प्रदान कर रही थी, वहीं दूसरी ओर अंग्रेजी के ज्ञान से उनका सम्पर्क पाश्चात्य साहित्य से भी हुआ। पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क से उनके सामने फ्रांस की राज्यक्रांति, जर्मनी की सांस्कृतिक क्रांति एवं इंग्लैण्ड का जन-जागरण युग अत्यन्त स्पष्ट होकर नाचने लगा, जिसने भारतीय जन-मानस को झकझोर डाला। भारतीयों ने अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया, तुलनात्मक दृष्टि से अपनी कमी को पहचाना और काव्य को विस्तृत परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया। इस प्रकार हिन्दी कविता की आधुनिक स्वच्छन्द धारा विकास की एक लम्बी प्रक्रिया एवं प्रभाव का परिणाम है।

हिन्दी काव्य में स्वच्छन्दतावाद के अंकुर घनानन्द, ठाकुर, बोधा आदि रीतिमुक्त कवियों के काव्य में निकल चुके थे। लेकिन समय के साथ यह भावना दब गयी थी। भारतेन्दु-युग में आकर स्वच्छन्दता का क्षीण स्वर पुनः सुनाई देने लगा, परन्तु उस युग का कवि भारत की दुर्दशा पर क्षुब्ध होकर केवल अपनी संवेदना ही व्यक्त करने का साहस जुटा सका। भारतेन्दु-युग एक प्रकार से आधुनिक क्लासिकल

युग था। भारतेन्दु-युगीन काव्य साहित्य में प्राचीन और नवीन का अभिन्न गठबंधन हुआ। "वस्तुतः भारतेन्दु-युग का काव्य-मन्दिर मध्य युग की विचार-शिलाओं पर निर्मित था जिस पर नवीन विचार-विषयक आड़ी-बेड़ी रेखाओं के चित्र अंकित हो गये थे। प्राचीन के साथ नवीनता का यह समावेश ही काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों की ओर इंगित करता है।"[१]

स्वच्छन्दतावादी काव्य के मूल तत्त्व जैसे वर्तमान के प्रति असन्तोष, परम्परागत रूढ़ियों के प्रति विद्रोह तथा शास्त्रीय विषयों के प्रति उपेक्षा के भाव भारतेन्दु-युग में जन्म लेने लगे थे। काव्य मानवीय लोक-भूमि पर प्रतिष्ठित होने का स्पष्ट संकेत देने लगा था। परिवर्तन की ये प्रवृत्तियाँ विषय, छन्द तथा भाषा के क्षेत्र में अंकुरित हो रही थीं। "शताब्दियों से हिन्दी-कविता भक्ति या श्रृंगार के रंग में रँगी चली आ रही थी। केवल चुम्बन और आलिंगन, रति और विलास, रोमांच और स्वेद, स्वकीया और परकीया की कड़ियों में जकड़ी हुई हिन्दी कविता को भारतेन्दु ने सर्वप्रथम विलास-भवन और लता-कुंजों से बाहर लाकर लोक-जीवन के राजपथ पर खड़ा कर दिया। हिन्दी कविता में भारतेन्दु ने सर्वप्रथम समाज के वक्षःस्थल की धड़कन को सुनाया।"[२] भारतेन्दु-मण्डल के कवियों ने नायक-नायिका के प्रेम से ऊपर उठकर देश-प्रेम तथा मानव-प्रेम को अपने काव्य का विषय बनाया। भारतेन्दु ने 'भारत-दुर्दशा' में भारत की दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण किया लेकिन वे इतना साहस नहीं जुटा सके कि परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़कर समाज को मुक्त हवा में साँस लेने का सन्देश देते। भारतेन्दु-युग में प्रकृति-चित्रण की ओर भी विशेष अनुराग दिखाई दिया तथा लौकिक प्रेम के गीत भी विशेष मादकता से गाये गये। इस प्रकार नये-नये विषयों की ओर काव्यधारा को मोड़ने की प्रवृत्ति भारतेन्दु-युग में दिखाई पड़ी लेकिन अभिव्यंजना का ढंग तथा प्रकृति-निरीक्षण की दृष्टि वही पुरानी थी। "नूतन वर्ण्य-विषय के लिये इन कवियों की दृष्टि मानवेतर सृष्टि की ओर भी गयी पर उसमें परम्परा-पालन का आग्रह हृदय की रमणीयता से अधिक दृष्टिगोचर होता है।"[३]

भारतेन्दु और उनकी मण्डली के कवि ब्रज-भाषा के पोषक थे। लेकिन लोक-भाषा खड़ीबोली को अपने काव्य में स्थान देकर इन कवियों ने भाषा के क्षेत्र में भी अपनी स्वच्छन्द भावना का परिचय दिया। लोक-जीवन के स्पन्दन तथा लोक-धुन के ग्रहण में खड़ीबोली ने महत्त्वपूर्ण योग दिया। भारतेन्दु-युग में जिस प्रकार

---

१. रामचन्द्र मिश्र : श्रीधर पाठक और हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० २०-२१, सन् १९५९ ई०।

२. डॉ० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता का क्रान्ति-युग, सन् १९४७ ई०, पृ० २६।

३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५९५, सं० २०३८ वि०।

ब्रज-भाषा के साथ खड़ीबोली का प्रयोग होने लगा था उसी प्रकार प्राचीन छन्दों जैसे—सवैया, कवित्त, दोहा आदि के साथ लोक प्रचलित छन्दों जैसे—कजली, बिरहा, रेखता तथा मल्हार आदि का भी प्रयोग किया गया। भारतेन्दु ने लोकप्रिय लावनी, कजली तथा बँगला के पयार छन्द में कविताएँ लिखकर स्वच्छन्द भावना का परिचय दिया।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारतेन्दु से भी आगे बढ़कर लोकप्रिय कजली तथा कबीर छंदों में सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इससे स्पष्ट है कि भारतेन्दु-युग में भाषागत, छंदगत तथा विषयगत परिवर्तन के लक्षण प्रकट होने प्रारम्भ हो गये थे। तथापि 'भारतेन्दु-युग में रोमांटिक तत्त्व उभर कर नहीं आ पाये थे, परन्तु उसने आगे के विद्रोही युग की भूमिका प्रस्तुत कर दी थी।[1]

भारतेन्दु-युग में यदि किसी कवि को स्वच्छन्दतावादी कह सकते हैं तो वह केवल ठाकुर जगमोहन सिंह हैं। भाषा एवं छन्द के क्षेत्र में ठाकुर साहब परम्परावादी ही थे, लेकिन विषय एवं भावगत स्वच्छन्दता उनके काव्य में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। प्रकृति एवं प्रेम को लेकर उन्होंने नवीन प्रयोग किये। उनके काव्य में स्वच्छन्दतावादी आत्मकथात्मक शैली में प्रेम का स्वानुभूतिक उदात्त स्वरूप चित्रित है। संस्कृत कवियों से बिम्ब-ग्रहण की परम्परा को अपना कर प्रकृति का संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करके हिन्दी में सर्वप्रथम प्रकृति को श्रृङ्गार के उद्दीपन-विभाव से मुक्त करने का मौलिक प्रयास ठाकुर साहब ने किया। उनकी प्रेमचर्या तथा प्रकृति-अनुराग को देखकर आचार्य शुक्ल ने लिखा है—"प्राचीन सस्कृत काव्यों के प्राकृतिक वर्णनों का संस्कार मन में लिये हुए, प्रेमचर्या की मधुर स्मृति से समन्वित विन्ध्य-प्रदेश के रमणीक स्थलों को जिस सच्चे अनुराग की दृष्टि से उन्होंने देखा, ध्यान देने योग्य है!"[2] स्वच्छन्द भाव-बोध की दृष्टि से 'स्वप्न' 'श्यामा' 'श्यामालता', 'प्रेम सम्पत्ति लता' तथा 'श्यामा सरोजनी' उनकी उल्लेखनीय काव्य-कृतियाँ हैं। इन कृतियों में ठाकुर साहब की वैयक्तिक प्रेमानुभूति के उदात्त स्वरूप का प्रस्फुटन प्रकृति-अनुराग की स्वच्छन्द भावभूमि पर हुआ है। 'श्यामा स्वप्न' में तो कवि का प्रेम-दर्शन सप्राण हो उठा है।

पं० श्रीधर पाठक को आधुनिक स्वच्छन्दतावाद का जनक माना जाता है। सन् १८८६ ई० में पाठक जी ने अंग्रेजी के कवि 'गोल्डस्मिथ' कृत 'दी हर्मिट' का काव्यानुवाद 'एकान्तवासी योगी' नाम से प्रकाशित कराया। खड़ीबोली में रचा गया यह हिन्दी का प्रथम काव्य-ग्रन्थ है, जिसमें लावनी छंद में उदात्त प्रेम का मधुर

१. डॉ० रघुवंश : हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ, भूमिका, पृ० २, सन् १९५८ ई०।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५९९, सं० २०३८ वि०।

स्वर झंकृत हुआ है। "एकान्तवासी योगी स्वच्छन्द काव्य-धारा का अग्रदूत है।"[1] इस ग्रन्थ की लोकप्रियता से प्रेरित होकर 'पाठक' जी ने 'गोल्डस्मिथ' के दो अन्य ग्रन्थों 'डिजर्टेड विलेज' तथा 'दी ट्रेवलर' का क्रमशः 'ऊजड़ ग्राम' एवं श्रान्त-पथिक' नाम से काव्यानुवाद किया। पाठक जी ने इन अनुवादों की ओट में भारतीय ग्राम्य-जीवन की सरलता, करुणा, प्रकृति-सुषमा एवं वैयक्तिक निछल प्रेम को सफलतापूर्वक चित्रित किया है। "सीधी-सादी खड़ीबोली में अनुवाद करने के लिये ऐसी प्रेम-कहानी चुनना जिसकी मार्मिकता अपढ़ स्त्रियों तक के गीतों की मार्मिकता के मेल में हो, पंडितों की बँधी हुई रूढ़ियों से बाहर निकल कर अनुभूति के स्वतन्त्र क्षेत्र में आने की प्रवृत्ति का द्योतक है।"[2] द्विवेदी-युग में रचित मौलिक काव्य-ग्रन्थ 'देहरादून' और 'कश्मीर सुषमा' में पाठक जी का मौलिक प्रकृति-अनुराग मुखरित हुआ है। इन काव्य-ग्रन्थों में प्रकृति के प्रति उनकी आत्मीयता एवं नवीन सौन्दर्य-बोध का दर्शन होता है। "उन्होंने प्रकृति को मानवीय भावों और व्यापारों से पूर्ण देखा और उसके प्रति स्पन्दन प्राप्त किया। मानव की अनुगामिनी प्रकृति इनके काव्य में मानव की स्वामिनी बन गयी।"[3] हिन्दी खड़ीबोली कविता के लिए पाठक जी ने अंग्रेजी के समान अन्त्यानुप्रासहीन नवीन छन्दों की योजना की, जिसमें संगीत तत्त्व की प्रधानता है। इस प्रकार "पं० श्रीधर पाठक ने जिस स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तन किया, उसने वस्तुगत, शैलीगत तथा छंद-सम्बन्धी सभी पारम्परित नियमों की उपेक्षा की।"[4]

आधुनिक हिन्दी कविता के स्वरूप को प्रतिष्ठित करने का मुख्य श्रेय आचार्य प्रवर महावीरप्रसाद द्विवेदी को है। यद्यपि उनका मूल स्वर इतिवृत्तात्मक, उपदेश-गर्भित तथा सुधारवादी था, तथापि उन्होंने तुतलाती तथा घुटनों के बल चलती खड़ीबोली को बोलना और चलना सिखाया। "द्विवेदी जी ने रीतिकालीन भाषा-प्रयोग, की कलात्मकता एवं विषयगत संकीर्णता का प्रबल विरोध किया, जिससे क्षीयमान रीतिगूँज प्रायः समाप्त हो गयी।"[5] सामान्य मानव के जीवन एवं उसकी अनुभूतियों के चित्रण की ओर कवियों को प्रेरित करके, काव्य में खड़ीबोली के महत्त्व को

---

१. डॉ० अजब सिंह : स्वच्छन्दतावाद : छायावाद, पृ० ७६, सन् १९७५ ई०।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५७४, सं २०३८ वि०।
३. डॉ० अजब सिंह : आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० ६९, सन् १९७५ ई०।
४. डॉ० त्रिभुवन सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा, पृ० ३५, सन् १९७७ ई०।
५. डॉ० जगदीश गुप्त : स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचन, पृ० ६७, ६८, सन् १९७७ ई०।

प्रतिष्ठापित करके तथा हिन्दी का भाषागत संस्कार करके द्विवेदी जी ने हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन को अप्रत्यक्ष रूप से बल प्रदान किया, लेकिन कवियों के सामने सबसे बड़ी चुनौती द्विवेदी जी का इतिवृत्तात्मकता के प्रति प्रबल आग्रह था। द्विवेदी जी की यह इतिवृत्तात्मकता विषय, छंद, भाषा तथा भावना आदि सभी क्षेत्रों के विकास में बाधक थी। वैज्ञानिक-बुद्धिवाद के प्रसार ने द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति पर गहरी चोट की, जिससे मानव जीवन के प्राचीन मूल्यों, आदर्शों तथा मान्यताओं के जीर्ण-शीर्ण प्राचीर ढहने लगे। समाज तथा साहित्य दोनों में परम्पराओं एवं रूढ़ियों का परित्याग किया जाने लगा। समाज-सुधार, राष्ट्रीय जागरण एवं स्वतंत्रता-प्राप्ति की भावना समाज में प्रबल हो उठी। ऐसे परिवेश में कविगण प्रेम और विरह के गीत गाकर अथवा नायक-नायिका की भाव-भंगियों में खोकर कैसे जिन्दा रह सकते थे? अतः तत्कालीन कवियों के लिए यह अनिवार्य हो गया कि वे स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन में अपना कण्ठ-स्वर मिलाकर चलें। परिणामस्वरूप द्विवेदी-मण्डल के कवि भी स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन से प्रभावित हुए बिना न रह सके। मैथिलीशरण गुप्त तथा रामचरित उपाध्याय ने राष्ट्रीय-भावना से प्रेरित होकर जो काव्य रचा, उसमें स्वच्छन्दतावाद के प्रति आकर्षण के भाव हैं। गुप्त जी की 'भारत-भारती' में राष्ट्रीय-जागरण का प्रबल स्वर ध्वनित हुआ है। उन्होंने प्रकृति का स्वतंत्र निरीक्षण कर परम्परामुक्त रमणीय चित्र भी खींचा है जो किसी भी रूढ़ परम्परा के अन्तर्गत नहीं आता।[1]

द्विवेदी-मण्डल के कवियों पर द्विवेदी जी का गम्भीर प्रभाव था जिससे वे एक सीमा से आगे बढ़ने का साहस नहीं कर सके, यद्यपि उनके मन में भी इस नयी धारा के प्रति आकर्षण था। द्विवेदी-मण्डल के बाहर के कवि द्विवेदी जी के प्रभाव से प्रभावित तो थे लेकिन वे अपने ढंग पर सरस और भावपूर्ण कविताएँ लिखने में लीन थे। श्रीधर पाठक की स्वच्छन्द काव्यधारा पर आगे चल कर पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक', 'मिलन' तथा 'स्वप्न' तीन स्वच्छन्द काव्यों की रचना की। ये तीनों ही काव्य काल्पनिक कथानकों को आधार बनाकर सर्वथा नवीन ढंग से लिखे गये। विषयगत नवीनता के साथ ही शिल्पगत नवीनता तथा भावपूर्ण कल्पनाशीलता इन काव्यों में दर्शनीय है। इन खण्डकाव्यों में "इनकी कल्पना ऐसे मर्म-पथ पर चली है जिस पर मनुष्य मात्र का हृदय स्वभावतः ढलता आया है। ऐतिहासिक या

---

१. चारु चन्द्र की चंचल किरणें,
खेल रही हैं जल-थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है,
अवनि और अम्बर तल में॥
मैथिलीशरण गुप्त : पंचवटी, पृ० ५, सं० २००५ वि०।

पौराणिक कथाओं के भीतर न बँधकर अपनी भावना के अनुकूल स्वच्छन्द संचरण के लिये कवि ने नूतन कथाओं की उद्भावना की है।"[1] श्रीधर पाठक के बाद द्विवेदी जी के प्रभाव से जो स्वच्छन्द धारा दब-सी गयी थी, पुनः पं० रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में आकर अपने प्रकृत-पथ पर चलती दिखाई पड़ने लगी। "दार्शनिक दृष्टि से उसमें व्यक्ति स्वातंत्र्य, राष्ट्रीय-चेतना, रोमांटिक प्रेम-बोध, प्रकृति-बोध, रहस्य-बोध, मानवतावाद, परिष्कृत नारी-भावना आदि सभी स्वच्छन्द तत्त्वों की सृष्टि हुई है।"[2]

स्वच्छन्दतावादी उत्थान के द्वितीय चरण में पं० मुकुटधर पाण्डेय, ठा० गोपालशरण सिंह, राय देवीप्रसाद पूर्ण, गुरुभक्त सिंह 'भक्त' आदि कवि दिखाई देते हैं। मुकुटधर पाण्डेय ने 'पूजा-फूल' में अपनी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन किया है। पाण्डेय जी की स्वच्छन्द काव्य-कृतियों को देखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"प्रकृति प्रांगण के चर-अचर प्राणियों का रागपूर्ण परिचय, उनकी गति-विधि पर आत्मीयता व्यंजक दृष्टिपात, सुख-दुःख में उनके साहचर्य की भावना—ये सब शर्तें स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद के पद-चिह्न हैं।"[3]

गुरुभक्त सिंह 'भक्त' के काव्य-ग्रन्थ 'सरस सुमन', 'कुसुम कुंज' तथा 'वंशी ध्वनि' तथा 'वनश्री' में प्रकृति के साधारण-से-साधारण उपकरण एवं उनके क्रिया-व्यापार कवि की पैनी दृष्टि की पकड़ में आ गये हैं। 'माधवी' में प्रेम के लौकिक तथा अलौकिक दोनों पक्षों का उदात्तीकरण हुआ है। उनकी अन्य कृति 'मानसी' में नारी-जीवन का करुणामय चित्र अंकित है। 'कादम्बिनी' और 'सुमना' में कवि ने प्रकृति और जीवन के संश्लेषणात्मक चित्र स्वच्छन्द भावभूमि पर चित्रित किया है। इन कवियों के काव्य में अनुभूति की प्रधानता, कल्पनाशीलता, प्रेम की उदात्तता, नवीन सौन्दर्य-बोध, प्रकृति के भव्य रूप का तटस्थ निरीक्षण तथा प्रकृति क्रिया-व्यापारों के प्रति आत्मीयता व्यंजक दृष्टि एवं देश-प्रेम के निर्बन्ध रूप का दर्शन हमें मिलता है।

हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का पूर्ण विकसित रूप प्रसाद-काल (१९२०-१९२५ ई० के बीच) में मिलता है। इसे स्वच्छन्दतावाद का स्वर्ण-युग कह सकते हैं। 'प्रसाद' की 'प्रेम-पथिक', 'झरना' तथा 'आँसू', 'पंत' की 'वीणा 'ग्रन्थि' तथा 'पल्लव' एवं 'निराला' की 'अनामिका' तथा 'परिमल' पूर्ण विकसित काल की रचनाएँ हैं

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, तेरहवाँ संस्करण, पृ० ५९४।
२. डॉ० जगदीश गुप्त : स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचन, सन् १९७७ ई०, पृ० ६७।
३. आ० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६५८, सं० २०३८ वि०।

जिनमें विषय, भाव, भाषा, छन्द एवं शैली के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन देखने को मिलता है।

डॉ० श्रीकृष्ण लाल ने विकास की दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को दो चरणों में विभाजित किया है। १६००-१६१६ के प्रथम चरण को उन्होंने 'सैद्धान्तिक स्वच्छन्दतावाद' का चरण कहा है। इस चरण में कवियों का उद्देश्य १६वीं शताब्दी की कविता के संकुचित दृष्टिकोण के प्रति असन्तोष और उसकी अतिशय नियमबद्धता एवं साहित्यिक पाण्डित्य के प्रति विरोध प्रकट करना था। प्रथम पक्ष प्रकृति और मानव-जीवन को उसके संकीर्ण वातावरण से मुक्ति तथा द्वितीय पक्ष कविता के सभी बाह्य उपादानों—भाषा, छन्द, साहित्यिक रूप और परिभाषा— में प्रत्यक्ष हुआ। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इसी चरण के उन्नायकों में से थे। १६१६-१६२५ के द्वितीय चरण को डॉ० साहब ने दार्शनिक, कलात्मक तथा साहित्यिक आन्दोलन के रूप में मान्यता दी है। यह चरण मैथिली-शरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय आदि की स्फुट रचनाओं से प्रारम्भ होकर 'प्रसाद', 'पन्त' और 'निराला' के काव्य में पूर्ण विकसित स्वरूप धारण कर लेता है।[1] भावाभिव्यक्ति एवं अभिव्यंजना-कौशल की दृष्टि से यह चरण क्रमिक रूप से स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता गया है। अनुभूति की तीव्रता, भाव-प्रवणता, कल्पना-शीलता, ऊर्ध्वमुखी प्रेम-सौन्दर्य बोध, प्रकृति के विविध उपकरणों एवं उसके क्रिया-व्यापारों के प्रति आत्मीयतापूर्ण दृष्टि तथा रहस्य-दर्शन एवं देश-प्रेम की भावना का पुष्ट स्वरूप इन कवियों के काव्य में मिलता है। 'प्रसाद', 'पन्त' तथा 'निराला' इस काव्य-धारा के चरमोत्कर्ष के कवि हैं। वस्तुत: यह गीति काव्य का युग है। अभिव्यंजना की सूक्ष्म कलात्मक शैली का विकास एवं भावगत सूक्ष्मता का पूर्ण उत्कर्ष इन कवियों के काव्य में हुआ है। इस युग में आकर "स्वच्छन्दतावादी कवि अनुभूति की अभिव्यक्ति में इतना तन्मय हुआ कि छन्द के बन्धन ही टूट गये।"[2] 'निराला' ने मुक्त छन्द परम्परा का 'जुही की कली' में श्रीगणेश किया, जो आधुनिक कवियों के काव्य का कण्ठहार बना हुआ है।

श्रीधर पाठक तथा अन्य समसमायिक कवियों के काव्य में अंग्रेजी रोमांटिक काव्य से मिलती-जुलती विशेषताओं को देखकर हिन्दी में प्रथम बार १६३० ई० के आस-पास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल के काव्य के लिये स्वच्छन्दतावाद शब्द का प्रयोग किया। शुक्ल जी के इस संकेत से हिन्दी काव्य समीक्षकों का ध्यान इस विशिष्ट युग की ओर आकृष्ट हुआ। आचार्य शुक्ल तथा अन्य सुधी समीक्षकों

---

१. डॉ० श्रीकृष्ण लाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २५-४३, सन् १६४२ ई०।

२. डॉ० अजब सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, पृ० ८२।

ने एक स्वर से इस बात को स्वीकार किया है कि 'गोल्डस्मिथ' ने जिस अभिजातीय परम्परा को तोड़कर काव्य को लोक-जीवन के करीब लाया तथा 'वर्ड्सवर्थ', 'शेली', 'कीट्स', 'बायरन' और 'कालरिज' ने जिन भावों तथा विचारों का अपने काव्य में प्रकाशन किया, तत्कालीन परिवेश के उपयुक्त होने के कारण हिन्दी स्वच्छन्दतावादी कवियों ने न्यूनाधिक रूप से उसे अपने काव्य में ग्रहण किया। हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन अंग्रेजी रोमांटिक आन्दोलन के समान प्रचण्ड आँधी का रूप तो न ले सका, लेकिन "यह आन्दोलन विचित्र जादूगर बनकर आया था। जिधर को भी इसने एक मुट्ठी गुलाल फेंक दी, उधर का क्षितिज लाल हो गया।"[१]

आधुनिक हिन्दी स्वच्छन्दतावाद में कल्पनाशीलता, अनुभूति की अभिव्यक्ति, व्यक्तिवाद, मानवतावाद, उदात्त-प्रेम एवं सौन्दर्य-बोध, रहस्य-दर्शन, विद्रोह, विषाद तथा असन्तोष की भावना, अतीत-प्रेम, देश-प्रेम, प्रकृति-प्रेम एवं लोक-जीवन की ओर झुकाव का प्राधान्य है। मिथक, बिम्ब-विधान, प्रतीक-योजना, अप्रस्तुत-योजना, लाक्षणिक भंगिमा एवं प्रगीतात्मक तत्त्वों का समावेश आदि इसकी शिल्पगत विशिष्टताएँ हैं। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के प्रायः समस्त तत्त्व और उसकी समस्त विशेषताएँ आधुनिक हिन्दी स्वच्छन्दतावाद में न्यूनाधिक रूप से समाहित हो गयी हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय परिवेश में पल्लवित होने के कारण युग की माँग के अनुरूप देश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता का एक नया स्वर भी उसके साथ जुड़ गया है।

स्वच्छन्दतावाद : छायावाद :

स्वच्छन्दतावाद का पूर्ण विकास अंग्रेजी कवि 'वर्ड्सवर्थ', 'शेली', 'कीट्स' तथा 'बायरन' की रचनाओं में हुआ है। अतः अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के परिप्रेक्ष्य में ही छायावाद का विवेचन समीचीन होगा। हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का दर्शन अंशतः रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों के काव्य में तथा यथेष्ट रूप से द्विवेदी-युगीन स्वच्छन्द कवियों के काव्य में मिलता है। सामान्यतः छायावाद का प्रारम्भ हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के पश्चात् १६२५ ई० से माना जाता है। छायावादी कवि 'प्रसाद,' 'पंत' तथा 'निराला' की प्रारम्भिक रचनाओं में स्वच्छन्दतावाद का चरम विकास हुआ लेकिन इन कवियों की बाद की रचनाओं में कुछ विशिष्टताओं के समावेश से स्वच्छन्दतावाद का स्वरूप किञ्चित् संशोधित हो गया है, जिसे छायावाद के नाम से अभिहित किया जाता है। अतः छायावाद को यदि हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का संवर्द्धित संस्करण कहें तो अनुचित न होगा।

हिन्दी साहित्य में क्रान्तिकारी स्वरूप ग्रहण कर अवतरित होने वाले छायावाद को अपने जन्म के साथ ही गंभीर विवादों तथा आलोचनाओं का शिकार होना

१. रामधारी सिंह 'दिनकर' : चक्रवाल की भूमिका; पृ० २१, सन् १६५६ ई०।

पड़ा। इन विवादों के प्रायः तीन पक्ष रहे हैं—(१) छायावाद की मौलिकता तथा स्रोत को लेकर, (२) नूतन काव्यधारा अथवा शैली मात्र स्वीकार किये जाने को लेकर, और (३) रहस्यवाद तथा छायावाद के परस्पर सम्बन्ध को लेकर। इतिवृत्तात्मकता के पोषक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इसे साहित्य-उपवन में लांगूल जैसे विशेषण से विभूषित किया।[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्वच्छन्दतावादी काव्य को नैसर्गिक तथा छायावादी-काव्य को साम्प्रदायिक कहा तथा ईसाई संतों के छायाभास (फैंटास्पाटा) और आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिम्बालिज्म) के अनुकरण पर की जाने वाली कविताओं से इसकी उत्पत्ति का संबंध जोड़ा[२] तथा इसे नवीन काव्यधारा न मानकर अभिव्यंजन की रोचक चित्रभाषा प्रणाली मात्र माना है।[३]

ऐसा प्रतीत होता है कि पुराने समीक्षकों तथा आचार्यों ने छायावाद में निहित अतिशय वैयक्तिकता, दुरूहता, अस्पष्टता एवं काव्य में शरीरी व यथार्थवादी पक्ष की घोर उपेक्षा से चिढ़ कर ही छायावाद की इतनी तीव्र भर्त्सना की। नवीन समीक्षकों ने इसकी आत्मा को पहचाना, इसके प्राणतत्त्व को ढूँढ़ा तथा इसके अस्तित्व को एक नूतन काव्यधारा तथा स्वतंत्र दर्शन के रूप में स्वीकार किया। डॉ० नगेन्द्र ने पहले तो छायावाद को "स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह"[४] माना लेकिन बाद में यह स्वीकार किया कि "छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावनात्मक दृष्टिकोण है।"[५] डॉ० नगेन्द्र ने छायावादी काव्य को रोमानी काव्य से अभिन्न इस आधार पर माना है कि दोनों के मूल में जागरण और कुण्ठा के भाव निहित हैं।[६] डॉ० देवराज ने "आध्यात्मिकता को इसका आवश्यक स्वर न मानकर इसे लौकिक प्रेम-काव्य तथा प्रकृति काव्य का सम्मिश्रण बताया।"[७] डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार "छायावाद वास्तव में हृदय की अनुभूति है, वह भौतिक संसार के क्रोड़ में प्रवेश कर अनंत-जीवन का तत्त्व ग्रहण करता है और उसे हमारे वास्तविक जीवन में जोड़कर हृदय में जीवन के प्रति एक गहरी संवेदना, आशावाद प्रदान

---

१. डॉ० शिवकरन सिंह : स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४८, सन् १९६७ ई०।

२. आ० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४४८, सं० २०३८ वि०।

३. वही : पृ० ४४४।

४. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, पृ० १३, सन् १९६६ ई०।

५. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, पृ० २०।

६. वही : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५५४, सन् १९७६ ई०।

७. डॉ० देवराज : छायावाद का पतन, पृ० २१, सन् १९४८ ई०।

करता है।"[१] डॉ० त्रिभुवन सिंह की दृष्टि में "छायावाद मुख्यत: भाव प्रबलता से प्रेरित कल्पनाप्रवण अन्तर्दृष्टि है जो वास्तविकता को नहीं बल्कि छाया को ग्रहण करता है।"[२]

छायावाद के अस्तित्व पर किये जा रहे प्रहारों से व्यथित होकर छायावादी कवियों ने भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। छायावाद के प्रवर्तक कवि 'प्रसाद' ने "वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति"[३] को छायावाद की संज्ञा प्रदान किया। 'महादेवी' जी ने प्रारम्भ में छायावाद को रहस्यवाद का प्रथम सोपान माना लेकिन बाद में यह स्वीकार किया कि "छायावाद तत्त्वत: प्रकृति के बीच में जीवन का उद्‌गीथ है।"[४]

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद के हिमायती नवीन समीक्षकों के भी दो वर्ग हैं। प्रथम वर्ग उन समीक्षकों का है जो छायावाद को स्वानुभूतिमयी, भावप्रबलता से प्रेरित एक कल्पना-प्रवण लौकिक प्रेम-काव्य मानता है जिसमें प्रकृति का चेतनमय स्वरूप साकार हो उठा हो। द्वितीय वर्ग उन समीक्षकों का है जिन्होंने छायावाद को रहस्यवाद तथा अध्यात्म से इस प्रकार आच्छादित कर दिया है कि वह काव्य न रह कर दर्शन का हौवा बन गया है।

छायावाद के उत्स को लेकर भी समीक्षकों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ समीक्षकों ने छायावाद का उत्स अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद से जोड़ा है तो कुछ ने बँगला साहित्य से। वस्तुत: छायावाद भारतीय परिवेश में अंकुरित होने वाला एक विशिष्ट काव्यान्दोलन है जिसके मूल में तत्कालीन सामाजिक—राजनीतिक पुनर्जागरण, सांस्कृतिक क्रान्ति तथा आध्यात्मिक व मानवीय चेतना क्रियाशील रही, साथ ही, इस धारा के प्रमुख कवियों की रचनाओं पर अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद, बँगला साहित्य, अभिव्यंजनावाद, मध्यकालीन संस्कृत-साहित्य, सूफीकाव्य, गांधीवादी विचारधारा तथा भारतीय एवं बौद्ध-दर्शन का मिला-जुला प्रभाव पड़ा है। इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि छायावादी कवि अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित अवश्य रहे हैं।

---

१. डॉ० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३१, सन् १९५४ ई०।
२. डॉ० त्रिभुवन सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा, पृ० ६१, सन् १९६१ ई०।
३. जयशंकर प्रसाद : काव्यकला एवं अन्य निबन्ध, पृ० ५३।
४. महादेवी वर्मा : साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, चयन गंगा प्रसाद पाण्डेय : पृ० ८८, सन् १९६६ ई०।

वास्तव में छायावाद पर सर्वाधिक प्रभाव कवीन्द्र रवीन्द्र का पड़ा है जिनके काव्य में 'शेली' 'कीट्स' तथा 'वर्ड्सवर्थ' के काव्यों से मिलती-जुलती अभिव्यंजनाओं के दर्शन होते हैं। रवीन्द्र की दार्शनिकता, चिन्तन-प्रणाली तथा शैली के स्वच्छन्द काव्य-चिन्तन ने छायावादी चतुष्टय को किसी न-किसी रूप में प्रभावित अवश्य किया है। यह भी उल्लेखनीय है कि सभी प्रकार के प्रभावों को छायावाद ने अपने भीतर स्वाभाविक रूप से आत्मसात् कर लिया है।

छायावादी-युग के प्रथम उत्थान के कवियों ने अंग्रेजी तथा बँगला से प्रेरणा भी ग्रहण की, पर उसी रूप में जैसे एक जीवित साहित्य दूसरे जीवित साहित्य से प्रेरणा लेता है। छायावादी काव्य अपनी परम्परा से विच्छिन्न विदेशी काव्य नहीं, परिवर्तित परिस्थितियों में अपनी ही सामंजस्यशील आर्य-साहित्य-साधना का एक युगानुकूल मोड़ है।[1] वस्तुतः छायावाद न तो अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का भारतीय संस्करण है और न तो बँगला साहित्य से अपहृत काव्य-शैली मात्र, वरन् यह युग की आकांक्षा के अनुरूप हिन्दी साहित्य में प्रभावित होने वाली एक अभिनव काव्य-धारा है जिसकी आत्मा शुद्ध स्वदेशी है, भले ही प्रभाव बाहरी रहा हो। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि छायावाद, सामन्तवाद-साम्राज्यवाद विरोधी एक प्रगतिशील काव्यान्दोलन था जिसने लौकिक जीवन, वर्तमानता, इतिहास-बोध, धर्मनिरपेक्षीकरण, मूल्यपरक सौन्दर्यबोधात्मकता, भावों की गतिशीलता और उदात्तता की चेतना का विकास किया था।

स्वच्छन्दतावाद तथा छायावाद प्रायः एक-सी परिस्थितियों में दो भिन्न देशों तथा कालों की, पूर्व साहित्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया की उपज है, दोनों ही में स्थूल से सूक्ष्म की ओर प्रयाण की प्रवृत्ति है; दोनों के मूल में जागरण एवं कुण्ठा के भाव निहित हैं; स्वानुभूति की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति तथा कल्पना का अविरल प्रवाह दोनों में समान रूप से है; अतीत प्रेम, मानवीय प्रेम, सौन्दर्य प्रेम और वेदना-विवृत्ति का दर्शन दोनों में होता है; रहस्य-दर्शन की जिज्ञासा दोनों के साथ जुड़ी हुई है फिर भी छायावाद स्वच्छन्दतावाद नहीं है। इन दोनों काव्यधाराओं में इतनी समानता है कि इनके बीच भेदक रेखा खींचना यदि असम्भव नहीं है तो कठिन अवश्य है। तत्त्वतः इन दोनों में कोई मौलिक अन्तर नहीं है।

व्यक्तित्व-विभिन्नता के कारण जिस प्रकार अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कवियों की रचनाओं तथा उनके विचारों में पूर्ण साम्य नहीं है उसी प्रकार छायावादी कवियों के विचारों में भी पूर्ण साम्य नहीं दिखाई देता। फिर भी इन दोनों काव्य-धाराओं के बीच आश्चर्यजनक रूप से साम्य है, लेकिन वह अनुकरण-साम्य पर उतना आधारित नहीं है जितना परिस्थिति-साम्य पर। एक बात तो निर्विवाद रूप

---

१. प्रो० क्षेम : छायावाद की काव्य साधना, पृ० ७।
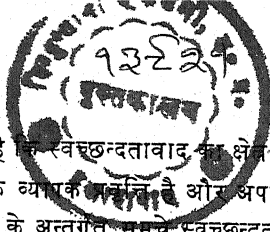
से कही जा सकती है कि स्वच्छन्दतावाद का क्षेत्र असीम है जबकि छायावाद का ससीम। स्वच्छन्दतावाद एक व्यापक प्रवृत्ति है और अपने भीतर छायावाद को निहित किये है किन्तु छायावाद के अन्तर्गत समूचे स्वच्छन्दतावाद को नहीं अटाया जा सकता ।[1]

स्वच्छन्दतावाद एक व्यापक प्रवृत्ति है और छायावाद विशिष्ट, इसे जानने के लिए तथा इनके बीच के अन्तर को समझने के लिए उन प्रवृत्तियों पर सापेक्ष रूप से विचार करना आवश्यक है जो इनके मूल में निहित हैं।

अनुभूति तथा कल्पना :

अनुभूति तथा कल्पना कवि-कर्म के लिये अनिवार्य तत्त्व हैं। अनुभूति की सार्थकता उसकी संवेद्यता तथा प्रेषणीयता में है और यह कार्य कल्पना द्वारा सम्पन्न होता है। भावावेग ही अनुभूतियों को अभिव्यक्ति के स्तर तक पहुँचाने में सहायक होते हैं। इसी कारण इन दोनों धाराओं के कवि अन्तरोन्मुख हुए तथा उनकी कल्पना व्योमविहारिणी बनी।

'प्रसाद' आत्मानुभूति को केन्द्रीय शक्ति मानते हैं। 'पंत' और 'निराला' अनुभूति और अभिव्यक्ति के सामंजस्य पर बल देते हैं। 'महादेवी' जी की दृष्टि में काव्यानुभूति, सौन्दर्यानुभूति और रहस्यानुभूति एक-दूसरे के पर्याय हैं। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कवियों ने नर-नरेतर जगत् के विविध उपकरणों एवं उनके क्रिया-व्यापारों को संवेदना के गहरे रंग में रँग कर देखा है तथा अपनी अनुभूति को ही कवि-कर्म के लिये आधार बनाया है। कवि का मूल गुण अनुभूति की तीव्रता है तथा कल्पना उसकी सहयोगिनी है। कल्पना दोनों धाराओं के कवियों के लिये सर्जना की केन्द्रीय शक्ति है।

अंग्रेजी के रोमाण्टिक काव्य में कल्पना की पूर्ण प्रतिष्ठा का श्रेय 'कालरिज' को है। 'कालरिज' कल्पना को ऐक्य-विधायक शक्ति मानता है, 'ब्लैक' की दृष्टि में "कल्पना उस यथार्थ को अनावृत्त करती है जो दृश्य वस्तुओं के द्वारा आच्छन्न रहता है।"[2] वह कल्पना को दैवी मानता है। 'ब्लैक' और 'कालरिज' दोनों ही मस्तिष्क को आध्यात्मिक सत्ता का केन्द्र मानते हुए कल्पना को उसकी प्रधान शक्ति के रूप में मान्यता देते हैं। 'वर्ड्सवर्थ' की कल्पना का जो निखार प्रकृति के प्रांगण में हुआ है वह अद्‌भुत है। 'शेली' कविता को कल्पना की ही अभिव्यक्ति मानता है तथा भाषा को कल्पना और अभिव्यक्ति के बीच संबंध सूत्र जोड़ने वाली कड़ी।

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : प्रस्तोता, शिवकुमार मिश्र, कवि सुमित्रानन्दन पंत, पृ० १६, सन् १९७९ ई०।

२. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : पश्चिमी आलोचनाशास्त्र, पृ० ३११, सन् १९६५ ई०।

'प्रसाद' जी कल्पना को कविता की भाँति श्रेयमय प्रेय मानते हुए कहते हैं—

'हे कल्पना सुखदान
तुम मनुज जीवनदान
तुम विशद व्योम समान।'[१]

स्वच्छन्दतावादियों के अनुसार भी अक्षय, अनन्त तथा विराट् सबकी संभावनाएँ कल्पना में छिपी हैं। 'पंत' ने 'ब्लैक' के समान ही कल्पना को 'ईश्वरीय प्रतिभा का अंश' माना है। प्रसाद की कल्पना में जहाँ अतीतोन्मुख प्रेम की प्रधानता है वहीं 'पंत' की कल्पना मूलतः स्वप्न के रूप में रही है और वह 'शेली' के समान ही स्वप्नलोक विहारिणी है। 'पंत' ने शिल्प, राग, छंद आदि को कल्पना के रंग में रँग कर ही देखा है। 'शेली' भाषा को, कल्पना एवं अभिव्यक्ति के बीच की सीमा तथा सम्बन्ध सूत्र बनाने वाली मानता है। 'पंत' जी भी अनुभूति और अभिव्यक्ति के सामंजस्य के लिये भाव और भाषा के सामंजस्य को अनिवार्य मानते हैं।

'निराला' ने कविता को 'कल्पना के कानन की रानी' कह कर 'शेली' के समान उसे कल्पना की अभिव्यक्ति माना है। काव्यात्मक धरातल पर उनकी कल्पना जहाँ छंद के बंध को तोड़ती है वहीं सामाजिक धरातल पर सामाजिक रूढ़ियों के जकड़बन्ध को तोड़ती हुई दृष्टिगोचर होती है। 'निराला' की कल्पना में विराट् की उपासना का प्राधान्य है। उनकी कविताओं में 'वर्ड्सवर्थ' के समान ही विश्व-बन्धुत्व का भाव विद्यमान है।

महादेवी जी की कल्पना यथार्थ को स्पर्श करने का प्रयास करती है तथा कविता को रंग देने में ही अपनी सार्थकता समझती है। कवि और दार्शनिक के परस्पर सम्बन्धों पर विचार करती हुई वे लिखती हैं—"कवि का वेदान्त ज्ञान जब अनुभूतियों से रूप, कल्पना से रंग और भाव-जगत् से सौन्दर्य पाकर साकार होता है तब उसके सत्य में जीवन का स्पन्दन रहेगा, बुद्धि की तर्क-शृंखला नहीं।"[२] इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी जी ने कल्पना की विधायिनी तथा अन्वेषिणी शक्ति को पहचाना है। 'महादेवी' के समान ही 'वर्ड्सवर्थ' भी कल्पना को बुद्धि की पूर्ण उदात्त अवस्था मानता है।

"छायावादी कवि रेखाओं से अधिक महत्त्व स्पन्दन को देता है।"[३] साथ ही, "वह अपनी परिधि में प्रकृति और जीवन का रूप-दर्शन ही नहीं, स्पन्दन भी घेरना

---

१. प्रसाद, चित्राधार, पृ० १४१।

२. महादेवी वर्मा : साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध : चयनकर्ता गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ० ४२, सन् १९६६ ई०।

३. वही : पृ० ७९।

चाहता है ।"[१] अर्थात् वह दृश्य वस्तुओं का चितेरा नहीं, उसकी आत्मा का चितेरा है । 'ब्लैक' के काव्य में भी यथार्थ को अनावृत्त करने के पीछे यही भावना छिपी हुई है । छायावादी कविताओं में प्रकृति को कल्पना का सर्वोत्तम माध्यम माना गया है। प्राकृतिक वैभव के साथ छायावादियों का उसी प्रकार रागात्मक सम्बन्ध था जिस प्रकार स्वच्छन्दतावादियों का । 'वर्ड्सवर्थ' तथा 'पंत' की कल्पना का जो निखार प्रकृति-प्रांगण में हुआ है वह अद्भुत है ।

छायावादी तथा स्वच्छन्दतावादी दोनों धाराओं में कल्पना की संवेद्यता प्रायः तीन क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होती है—प्रथम नारी स्वरूप की अभिव्यंजना में, द्वितीय बिराट् की उपासना में, तृतीय अतीत तथा भविष्य की झाँकी प्रस्तुत करने में । दोनों धाराओं के कवियों ने ललित कल्पना-विलास को नकारा है और विधायिनी कल्पना-सृजन को विशेष महत्त्व प्रदान किया है । शृङ्गारिकता की शाश्वत भावनाओं को अश्लीलता के कलंक से धोकर उसे उदात्त स्वरूप प्रदान करने का श्रेय इसी कल्पना-वैभव को है, अन्यथा ये कवि अश्लील मांसलता के कलंक से अपने को शायद ही बचा पाते ।

सौन्दर्य-बोध :

अंग्रेजी रोमांटिक कवियों का सौन्दर्य-बोध उपयोगितावाद की प्रचलित परम्परा के सर्वथा विरुद्ध था । रोमांटिक कवियों की दृष्टि में सौन्दर्य वस्तुगत नहीं, व्यक्तिगत सत्ता है, मन सौन्दर्य का ग्राहक नहीं, निर्माता होता है । छायावादी कवियों में व्यक्तिस्वातंत्र्य तथा आत्म-प्रसार की प्रबल आकांक्षा थी, जिससे उन्हें क्रान्तिकारी अन्तर्दृष्टि मिली । छायावादी कवियों का सौन्दर्य-बोध वस्तुतः इसी अन्तर्दृष्टि का परिणाम है । इन कवियों ने भी दृश्य को अनावृत्त करके सौन्दर्य का भावन किया और हमारे सौन्दर्य-बोध का परिष्कार कर उसे एक व्यापक तथा सूक्ष्म आधार प्रदान किया ।

'प्रसाद' ने सौन्दर्य को प्रायः भावात्मक आधार पर देखा है । 'निराला' का सौन्दर्य-बोध उनका काव्य-बोध है जो वस्तुगत या व्यक्तिगत न होकर अपनी सीमा में असीम तथा निर्बन्ध है । 'पंत' का सौन्दर्य-बोध उनकी सौन्दर्य-भावना है जिसका स्वरूप विकासमय रहा है । प्रकृति, नारी, मानव तथा काव्य-शिल्प में उनकी इसी सौन्दर्य-भावना का प्रसार है । उनके सौन्दर्य-बोध का प्रसार गत्यात्मक रहा जो क्रमशः स्थूल सौन्दर्य-प्रधान से भाव-प्रधान तथा भाव-प्रधान से ज्ञान-प्रधान होता गया है । उनकी प्रारम्भिक सौन्दर्य-लिप्सा अन्त में आकर विश्व-मंगल की भावना में बदल गयी है । पंत ने सौन्दर्य के माध्यम से समस्त जगत् तथा उसके क्रिया-व्यापारों को

१. वही : पृ० ८४ ।

देखा है। इस प्रकार उनके सौन्दर्य-बोध में रोमांटिक सौन्दर्य-बोध की वह केन्द्रीय भावना विकसित हुई है जो सौन्दर्य को उपयोगिता से सर्वथा भिन्न मानती है। 'अकेली सुन्दरता कल्याणि, सकल ऐश्वर्यों की संधान।'[१] में उनकी इसी सौन्दर्य-भावना का विकास है।

छायावाद का सौन्दर्य-बोध एक मानवीय सौन्दर्य-बोध रहा है जिसके पीछे राष्ट्रीय-जागरण और सामाजिक प्रेरणा शक्ति के रूप में रही है। छायावादी सौन्दर्य-बोध का निर्माण करने वाले उपकरणों में अंग्रेजी विचारकों के यन्त्र-युगीन सौन्दर्य-बोध के अतिरिक्त रवीन्द्र का भी सौन्दर्य-बोध रहा है जिसमें आधुनिक यंत्र-युग का सौन्दर्य-बोध तथा प्राचीन-आध्यात्मिक सौन्दर्य-बोध समन्वित हो गया है।[२] महादेवी जी का सौन्दर्य-बोध अन्तर्मन की जिस व्यापक पीठिका पर निर्मित हुआ है, वहाँ सभी प्रकार के सौन्दर्य अखण्ड सौन्दर्य-चेतना में समाहित हो जाते हैं। उनका सौन्दर्य-बोध देश-काल तथा रुचि-विशेष की सीमाओं को स्वीकार नहीं करता, वह सनातन है, अपरिवर्तनशील है।

नारी तथा प्रकृति का सौन्दर्याङ्कन छायावादियों का प्रमुख विषय रहा। छायावादी कवियों ने नारी के आन्तरिक सौन्दर्य का सूक्ष्म भाव-चित्र ही खींचा है। कहीं-कहीं तो यह सूक्ष्मता इतनी अतिशय हो गयी है कि नारी का शरीर कल्पना-मात्र बन कर रह गया है। जहाँ कहीं छायावादी काव्य में स्थूल मांसल सौन्दर्य आया भी है, कल्पना-वैभव के योग से उसका वासनात्मक प्रभाव इतना क्षीण हो गया है कि मात्र सिहरन-सी पैदा करके रह जाता है। नारी-सौन्दर्य की भाँति ही प्रकृति-सौन्दर्य पर भी छायावादी कवि मुग्ध हुए हैं। वे प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य में नारी-सौन्दर्य अथवा परोक्ष-सत्ता के सौन्दर्य की अनुभूति करते थे। उन्हें प्रकृति-व्यापार तथा उसके सौन्दर्य में अलौकिक सत्ता का संस्पर्श दृष्टिगोचर हुआ। स्वच्छन्दतावादियों के समान ही छायावादी कवियों ने भी सौन्दर्य को व्यापक पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित करके हमारे सौन्दर्य-बोध को परिष्कृत करने का सराहनीय प्रयास किया है।

प्रेम-भावना :

छायावादी रचनाओं में प्रेम वह केन्द्रीय शक्ति है जो नर-नरेतर जगत् के सम्पूर्ण उपकरणों को एक सूत्र में आबद्ध किये हुए है। इन कवियों का प्रणय-दीक्षित व्यक्तित्व उनके काव्य में मुखर हो उठा है। वह नारी तथा प्रकृति के साथ ही सम्पूर्ण मानवता को अपने भीतर समेटे हुए है। 'प्रसाद' ने प्रेम को मूल शक्ति माना है जो अलौकिक सौन्दर्य से सदैव मंडित रहता है। कामायनी में प्रेम का सर्वथा नवीन

१. सुमित्रानन्दन 'पंत' : पल्लव (नारी रूप), पृ० ११२।
२. सुमित्रानन्दन 'पंत' : आधुनिक कवि, पृ० १३, सन् १९६४ ई०।

स्वरूप दृष्टिगोचर होता है जो शैवागमों के प्रत्यभिज्ञा दर्शन पर आधारित आनन्द-वाद है। 'निराला' जिस प्रकार अक्खड़ कवि थे उसी प्रकार अक्खड़ प्रेमी भी थे। 'जुही की कली' में कवि की प्रणयानुभूति प्रकृति के उन्मुक्त प्रणय-व्यापारों में साकार हो उठी है। 'पंत' के काव्य में प्रेम किशोर-वय कम्पन तथा कौतूहल लिये हुए है। उनकी प्रेम-भावना का अरुणोदय सौन्दर्य-प्रेम से होता है जो क्रमशः प्रकृति, नारी तथा मानव-प्रेम में विकसित होता गया है। उनके प्रेम में सहजता, सरलता तथा भावुकता का प्राधान्य है। 'महादेवी' जी ने प्रेम-भावना को प्रेम-तत्त्व के रूप में देखा है जो प्रायः रहस्यमय है। उनका लौकिक-प्रेम अलौकिक-प्रेम की ओर उन्मुख होता गया है। वे अलौकिक-प्रेम को ही आदर्श-प्रेम मानती हैं।

'कहाँ नहीं है स्नेह साँस-सा सबके उर में।'[१] में 'पंत' के प्रेम की सर्वव्यापकता, 'प्रेम सही ही तुम असूत्र हो उर-उर के हीरों का हार।'[२] में 'निराला' के प्रेम की महानता तथा 'मुसकाता संकेत भरे नभ, अलि क्या प्रिय आने वाले हैं।'[३] में 'महादेवी' के प्रेम की अलौकिकता इस तथ्य की साक्षी है कि छायावादी प्रेम शरीर का क्रिया-व्यापार न होकर प्रायः मानसिक भावभूमि पर अनुभूति का क्रिया-व्यापार रहा।

'शेली' प्रेम का अमर गायक था। उसकी प्रेम-भावना का आधार सौन्दर्य-प्रेम था। 'बायरन' जितना ही क्रान्तिकारी था उतना ही स्वच्छन्द प्रेम का पुजारी भी था। वास्तव में दोनों धारा के कवि सौन्दर्य एवं प्रेम के कवि थे, लेकिन उनकी प्रेम-भावना वासना की संकीर्ण वारिधि को लाँघ कर मानव-प्रेम की ओर उन्मुख होती गयी है। 'प्रसाद', 'पंत' तथा 'महादेवी' की प्रेम-भावना में जहाँ अलौकिक-प्रेम का संस्पर्श अधिक है वहीं 'निराला' की प्रेम-भावना में मानवीय-प्रेम का उद्बोधन अधिक है।

यद्यपि छायावादी कवियों ने मधुचर्या को अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया है तथापि वे मधुचर्या के उन्माद में भी मानवीय-प्रेम तथा राष्ट्र-प्रेम को भूले नहीं हैं। 'निराला' के काव्य में मानवतावादी स्वर जन-मानस की चेतना को झकझोर कर सचेत बना सकने में समर्थ हुआ है। स्वच्छन्दतावादी कवि छायावादियों की अपेक्षा लोक-जीवन को संस्पर्श करने में अधिक सफल हुए हैं। छायावाद में 'निराला' इस ओर अधिक उन्मुख दिखाई देते हैं। वास्तव में छायावादी कवियों की प्रणयानुभूति में भी लौकिक से अलौकिक की ओर, वैयक्तिक से मानवीय की ओर उन्मुख

---

१. सुमित्रानन्दन 'पंत' : (उच्छ्वास), पृ० ११, सन् १९२२ ई०।
२. 'निराला' : अनामिका (प्रेम के प्रति), पृ० ३२, सं० २००५ वि०।
३. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० ६५, सन् १९३९ ई०।

होने का बीज निहित था जो सामाजिक नियंत्रण तथा उसके अध:पतन एवं अवसाद के प्रभाव से काव्य में स्वत: प्रस्फुटित हो गया ।

कुण्ठा, करुणा, वेदना, निराशा तथा पलायन की भावना :

वेदना, करुणा तथा दु:ख की भावना रोमांटिक कविताओं में सर्वत्र विद्यमान है । छायावादी कवि अपने प्रेम काव्य के स्वयं नायक हैं । भग्नाशा ने उनके संवेदन-शील हृदय में कुण्ठा, घुटन, करुणा, निराशा और जीवन से पलायन की भावना को भर दिया था । 'प्रसाद' के सम्पूर्ण काव्य में 'घनीभूत पीड़ा' की प्रधानता है, वेदना उनके काव्य का यथार्थ है जबकि आनन्द उसका आदर्श । 'निराला' के काव्य में वेदना का आधार मानवीय दु:ख है । 'पंत' आशावादी स्वप्नद्रष्टा थे । अत: वेदना को उन्होंने यथा-सम्भव वाणी नहीं दी; लेकिन कुण्ठा से वे भी मुक्त नहीं हो सके हैं । 'महादेवी' का जीवन ही 'नीर भरी दु:ख की बदली'[1] है। उनके काव्य में विरह का ज्वार तथा करुणा की लहर अविरल उठा करती है । वस्तुत: वैयक्तिक विषाद तथा बाह्य करुणा छायावादी कविताओं में लिपटा हुआ है । इसके मूल में इन कवियों की वैयक्तिक प्रणय-कुण्ठा तथा तत्कालीन सामाजिक अवसाद से उत्पन्न पीड़ा ही व्याप्त है ।

छायावादी कवियों के हृदय-सागर में प्रेम-तरंगों का उत्थान-पतन आजीवन चलता रहा, क्योंकि प्रेम की मादकता का आभास तो उन्हें हुआ था लेकिन वे जीवन भर प्रेम-पिपासु ही बने रहे । इसी कारण उनके काव्य में निराशा, वेदना, घुटन और पलायन का मूक स्वर ध्वनित हुआ है ।

प्रकृति-प्रेम :

रोमांटिक कवियों की प्रेरणा का मूल स्रोत प्रकृति रही है । 'वर्ड्सवर्थ', 'बायरन' तथा 'शेली' प्रकृति-प्रेमी कवि थे । 'वर्ड्सवर्थ' के लिये तो प्रकृति, उसके दर्शन तथा संस्कार का अंग बन गयी थी । उसका प्रकृति-प्रेम संवेगात्मक तथा रूपात्मक न होकर भावनात्मक था । प्रकृति उसके लिए आनन्द, शक्ति और प्रेरणा की स्रोत थी, साथ ही, वह नर-नरेतर जगत् के बीच सम्बन्ध सूत्र जोड़ने वाली शक्ति थी । 'शेली' प्रकृति को एक आदर्श प्रेमी की तरह प्यार करता था । 'बायरन' के लिए प्रकृति ऐश्वर्य की राशि थी । 'कीट्स' प्रकृति-व्यापारों का अनन्य चितेरा था ।

छायावादी कवियों ने प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया था । इसी से छायावाद में प्रकृति सचेतन, मानव-भावनाओं से अनुरंजित, आलम्बन एवं उद्दीपन विभावों से उद्वेलित तथा विराट् की आभा से आलोकित दृष्टिगोचर होती है । 'प्रसाद' 'वर्ड्सवर्थ' की भाँति प्रकृति को मानव-मानव और मानव तथा बाह्य

---

१. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० २२७, द्वितीय सं०, सन् १९४७ ई० ।

जगत् में सम्बन्ध सूत्र जोड़ने वाली शक्ति मानते हैं। वे प्रकृति के उग्र तथा कोमल दोनों रूपों के चितेरा रहे हैं। 'पंत' की दृष्टि में प्रकृति सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है। वे प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। उनका प्रकृति-अनुराग शनैः-शनैः सौन्दर्य-प्रधान से भाव-प्रधान और भाव-प्रधान मे ज्ञान-प्रधान होता गया है। 'महादेवी' जी छायावाद को ही तत्त्वतः प्रकृति के बीच में जीवन का उद्‌गीथ मानती हैं। 'निराला' ने प्रकृति के ऊपर नारी-क्रिया-व्यापारों का आरोपण कर वासनात्मक चित्र उरेहने में अद्‌भुत सफलता पायी है। 'जुही की कली' तथा 'शेफालिका' इसके अनन्य उदाहरण हैं। 'पन्त' के लिए तो प्रकृति-अनुराग, किशोरी के अनुराग से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है—

> 'छोड़ द्रुमों' की मृदु छाया
> तोड़ प्रकृति से भी माया
> बाले तेरे बाल जाल में
> कैसे उलझा दूँ लोचन।'[1]

वस्तुतः छायावादी कवियों की प्रेम-भावना का बहुमुखी विकास हुआ है जिससे उनके प्रेम में प्रकृति सुन्दरी सिमट कर स्वतः आ गयी है। "प्रसाद प्रकृति के रूपों द्वारा प्रेम-रहस्य का संकेत करते हैं, निराला दार्शनिक तत्त्वों की व्यंजना करते हैं, 'पंत' प्रकृति को प्राणमयी देवी मान कर कल्पना करते हैं और महादेवी की तो वह सहचरी ही है।"[2]

प्रकृति-रहस्यवाद :

प्रकृति-रहस्यवाद का दोनों धाराओं में पूर्ण विकास हुआ है। विराट् सत्ता की आभा से आलोकित प्रकृति में चेतना के आरोप का यही आधार है। स्वच्छन्दतावादी कवि 'ब्लैक,' 'शेली' तथा 'वर्ड्सवर्थ' की कविताओं में इसका दर्शन होता है। 'वर्ड्सवर्थ' को प्रकृति के दृश्य आवरण के भीतर विराट् सत्ता का आभास मिलता है। प्रकृति उसके व्याकुल हृदय को आनन्द देने वाली, मानवता का शान्ति और करुण संगीत सुनाने वाली तथा मानव-प्रकृति का दर्शन कराने वाली चिरन्तन सत्ता का आगार है। 'शेली' भी सर्वात्मवाद के सिद्धान्त में विश्वास करता था। उसे प्रकृति और जीवन, वस्तु और आत्मा के अन्तर्द्वन्द्व में सत्य की विजय की निश्चित आशा दिखाई देती है। वह प्रकृति को परम सत्ता का प्रतिबिम्ब नहीं मानता, फिर भी उसकी प्रकृति विषयक रचनाओं में अनन्त सत्ता का रहस्यमय चित्रण हुआ है।

स्वच्छन्दतावादी रचनाओं की भाँति छायावादी रचनाओं में भी प्रकृति-रहस्यवाद का दर्शन मिलता है। 'पंत' का काव्य प्रकृति-रहस्यवाद से भरा पड़ा है।

---

१. 'पन्त' : पल्लव, पृ० ८४, सन् १९७७ ई०।

२. डॉ० त्रिभुवन सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा : तृतीय संस्करण, १९७७ ई०, पृ० १०८।

'न जाने सौरभ के मिस कौन, सन्देशा मुझे भेजता मौन' में जहाँ कवि को विराट् सत्ता से मिलन का अनजाना मौन निमंत्रण मिलता है वहीं 'आत्मा है, सरिता के भी, जिससे सरिता-सरिता है।'[१] में कवि को प्रकृति के अस्तित्व में आत्मा (परमात्मा का एक अंश) का दर्शन होता है। 'प्रसाद' को प्रकृति में विराट् के पूर्ण का नहीं, अखण्ड सत्ता का दर्शन मिलता है—

'सिर नीचा कर किसकी सत्ता, सब करते स्वीकार यहाँ।'[२]

'महादेवी' जी के लिये प्रकृति विराट् सत्ता का आगार है। प्रकृति के कण-कण में अलौकिक सत्ता का अस्तित्व उन्हें दिखाई देता है। उनका प्रिय साकार है, साथ ही, अलौकिक भी। वाजपेयी जी के अनुसार "महादेवी जी सगुण साकार कोटि की रहस्यवादिनी हैं।"[३] इस प्रकार हम देखते हैं कि सर्ववाद में विश्वास होने के कारण छायावादी कवि प्रकृति के कण-कण को विराट्-जीवन से स्पन्दन ग्रहण करने वाला उपकरण मानता है, उसके रहस्यवाद का भी यही आधार है।

अतीत-प्रेम :

स्वच्छन्दतावादियों में 'शेली' तथा 'कीट्स' पर मध्यकालीन 'ग्रीक देव कथाओं' का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। 'कीट्स' ग्रीक देव कथाओं में अपने स्वप्नों का समाहार पा सका था, जहाँ उसके प्रेम एवं सौन्दर्य की प्यास बुझने में समर्थ हो सकी। छायावादियों ने भी अतीतकालीन कथाओं एवं सांस्कृतिक उपाख्यानों को नवीन दृष्टि तथा नये संदर्भ में देखने और उसे अपने काव्य में रूपायित करने का प्रयास किया। 'प्रसाद', 'निराला' तथा 'महादेवी' जी ने वेदों, उपनिषदों तथा प्राचीन गौरवपूर्ण कथाओं से प्रेरणा ग्रहण की है। कामायनी में शैव प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर प्रतिपादित 'प्रसाद' का आनन्दवाद इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। अतीत के प्रति प्रेम, वर्तमान के प्रति उदासीनता तथा भविष्य की लालसा इन कवियों का जीवन-दर्शन बन गया है।

अहं :

स्वच्छन्दतावादी कवियों में 'बायरन' अहं का जीता-जागता प्रतीक था। उसमें फ्रायड के 'अहं' का नग्न स्वरूप पूर्णरूप से क्रियाशील था लेकिन उसका 'उच्च अहं' मूक दिखाई देता है। 'शेली' के काव्य में 'अहं' का मध्य मार्ग मुखरित हुआ है। छायावाद में आत्म-प्रकाशन की प्रबल आकांक्षा दृष्टिगोचर होती है

१. 'पंत' : पल्लव (मौन निमंत्रण), पृ० ८५।
२. 'प्रसाद' : कामायनी, आशा सर्ग, पृ० २८।
३. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि सुमित्रानन्दन पंत; प्रस्तोता शिवकुमार मिश्र, प्र० सं०, १९७६ ई०, पृ० २३।

जिसके मूल में इन कवियों का अहंवादी व्यक्तित्व ही क्रियाशील है। 'निराला' के व्यक्तित्व में 'अहं' अपने पूर्ण उदात्त रूप में विद्यमान दिखाई देता है। 'करना होगा यह तिमिर पार, देखना सत्य का मिहिर द्वार' में 'निराला' का राष्ट्रवादी 'अहं' मुखर हो उठा है। वस्तुतः छायावाद में चित्रित सौन्दर्य-बोध, सामाजिक-सांस्कृतिक पुनर्मूल्यांकन, राष्ट्र-प्रेम एवं स्वच्छन्द प्रेम में इन कवियों का 'अहं' ही प्रतिध्वनित हुआ है। 'प्रसाद' के काव्य की रसात्मक संवेदना, 'पंत' के काव्य की मनोहर मधुरिमा, 'निराला' के काव्य की प्रबल ओजस्विता तथा 'महादेवी' जी के काव्य की धधकती विरह-वेदना में वैयक्तिक अनुभूतियों की ही मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

काव्य-शिल्प :

प्रतीकवाद, इन दोनों धाराओं के कवियों की, साहित्य को एक सर्वथा नवीन देन है। स्वच्छन्दतावादी कवियों में 'शेली' प्रतीकों के प्रयोग में सर्वाधिक सिद्धहस्त थे। परदा, नाव तथा बजड़ा उनके मुख्य प्रतीक रहे हैं। उसका 'परदा' कोई साधारण पर्दा नहीं वरन् वह एक ऐसा झीना आवरण है जो अपने भीतर विविध भावनाओं को छिपाये हुए है। उसकी 'नाव' आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करने का, 'नदी' मानव-जीवनधारा का तथा 'बजड़ा' आत्मा का प्रतीक है। छायावादियों में 'प्रसाद' प्रतीकों के अमर शिल्पी हैं। उनका 'आँसू' प्रतीकों का विशाल भाण्डार है। 'कामायनी' में भावों के साथ प्रतीकों का मणिकांचन संयोग हुआ है। इस महाकाव्य में 'मनु' मन, 'श्रद्धा' कामना, 'इड़ा' बुद्धि तथा किलात्, पुरोहित आदि आसुरी शक्तियों के प्रतीक हैं। 'निराला' की 'जुही की कली' में प्रतीकों की आन्तरिकता एवं प्रतीकात्मक विधान द्वारा 'जुही की कली' का मानवीकरण अभूतपूर्व है।[1] अमूर्त को मूर्त रूप देने, प्रस्तुत के लिये अप्रस्तुत की योजना का विधान करने तथा प्रकृति के मानवीकरण में प्रतीकों की नवीन योजना का संधान करने में छायावादी कवि अद्वितीय रहे हैं। वस्तुतः आत्मा की अतुल गहराइयों में झिलमिलाती कल्पना तरंगों को शब्द रूप देने में छायावादी प्रतीक-काव्य-साधना का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

---

१. 'विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी, स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल, कोमल, तनु तरुणी ? जुही की कली
दृग बन्द किये शिथिल पत्रांक में
वासन्ती निशान्त थी।'
—('निराला' : परिमल, जुही की कली) पृ० १७१, सन् १६६६ ई०।

अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद की भाँति ही छायावादी-युग का काव्य भी शिल्पगत सम्पन्नता, भाषागत सौन्दर्य एवं छन्दगत विविधता के लिये प्रख्यात है। रस की निष्पत्ति के लिये अनुभूति ही इनके काव्यों में उत्तरदायी है। भाषा और भावों के सामञ्जस्य पर इन कवियों ने सर्वाधिक बल दिया है। रचना-शिल्प के क्षेत्र में अभिव्यक्ति की सूक्ष्म कलात्मक प्रणाली विकसित करके छायावाद ने हिन्दी में क्रान्ति का बिगुल बजा दिया।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने स्वच्छन्दतावाद और छायावाद के बीच भेदक रेखा खींचते हुए कहा है—"तमाम दीगर प्रवृत्तियाँ दोनों में समान हैं किन्तु छायावाद का विशिष्ट चरित्र उसकी आध्यात्मिक रुझान में देखा जा सकता है।"[१] जहाँ तक उसकी आध्यात्मिकता के संस्पर्श की बात है वह छायावाद में स्वच्छन्दतावाद की अपेक्षा अधिक अवश्य है लेकिन उसमें आध्यात्मिकता का संस्पर्श सर्वत्र विद्यमान हो, ऐसी बात नहीं। छायावादी रचनाओं की एक लम्बी शृंखला आध्यात्मिक संस्पर्श-विहीन भी है। अतः आध्यात्मिकता की अनिवार्यता को छायावाद में स्वीकारना उचित नहीं जान पड़ता। छायावादी काव्य मूलतः आध्यात्मिक नहीं है। दोनों ही काव्यधाराओं के मूल में एक ही वैचारिक तत्त्व क्रियाशील दृष्टिगोचर होता है और वह है बन्धनों को तोड़ कर स्वच्छन्द काव्य-भूमि पर विचरण करने की लालसा। वस्तुतः छायावाद, स्वच्छन्दतावाद का एक विकसित सोपान है जो अपनी विशिष्ट परिधि में सम्पूर्ण सम्भाव्य को भोग चुका है जबकि स्वच्छन्दतावाद की अन्य शाखाएँ-प्रशाखाएँ विकास की विभिन्न स्थितियों से गुजरती हुई न जाने किस ओर चली जा रही हैं।

स्वच्छन्दतावाद और छायावाद में अन्तःभेद

स्वच्छन्दतावाद का अर्थ है, पुराने छंद बंध या साहित्यिक रूढ़ियों को तोड़ना, जिससे साहित्य-सरिता का जो प्रवाह एक गड्ढे में आकर रुक गया था वह नवजीवन को लेकर, पुरानी परम्पराओं को छोड़कर पुनः प्रवाहित हो चले। यह नवीन प्रवाह नये विषयों, नयी भावनाओं, नवीन अलंकरण-विहीन सरल भाषा तथा नये छन्दों को लेकर चली। कालान्तर में इस सहज धारा में थोड़ा अन्तर आया। कवि विश्व के सभी विषयों को छोड़कर आत्म-केन्द्रित हो उठा। वह अपने ही सुख-दुःख, अपने ही प्रेम-विरह, अपने ही कसक-टीस को व्यक्त करने लगा। 'प्रसाद' जी ने इसी को 'स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति' कहा है और 'निराला' जी ने इसी को 'मैंने मैं शैली अपनाई' कहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद पर एकांगी रूप से

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : प्रस्तोता—शिवकुमार मिश्र; कवि सुमित्रानन्दन 'पंत', प्र० सं०, १९७६ ई०, पृ० १६।

विचार किया है। उन्होंने छायावाद को 'अभिव्यंजना की रोचक चित्र-भाषा प्रणाली मात्र' कहा है। छायावाद, स्वच्छन्दतावाद से शैली की इस दृष्टि से भी अलग हुआ। स्वच्छन्दतावादी काव्य सरस, सरल भाषा में लिखा गया। छायावादी काव्य में वक्रता लिये हुए लाक्षणिक पदावली का प्रयोग हुआ, जो अपने यहाँ की सहज रूप से चली आती हुई लक्षणा शब्द-शक्ति से उतना प्रभावित नहीं था, जितना कि अंग्रेजी कवियों के अमूर्त अप्रस्तुत-विधान, विशेषण-विपर्यय आदि गुणों से युक्त लाक्षणिक पदावली से। इस लाक्षणिक पदावली से द्विवेदी-युगीन पाठक और समीक्षक अपरिचित थे। इसीलिए उन्हें लगा कि वैष्णवों की पंगति में कोई गोरा घुस आया है। अस्तु, स्वच्छन्दतावाद और छायावाद में मूलतः दो ही अन्तर है।

(१) विषय की दृष्टि से छायावादी काव्य स्वानुभूतिपरक होता है और 'मैं' शैली में लिखा जाता है।

(२) शैली की दृष्टि से इसकी भाषा लाक्षणिकता और वक्रता लिये हुए होती है।

वास्तव में स्वच्छन्दतावाद बहुत व्यापक है, इसके भीतर छायावाद समाविष्ट हो जाता है। हिन्दी की छायावादी कविता स्वच्छन्दतावादी कविता का ही विकसित रूप है।

स्वच्छन्दतावाद : रहस्यवाद

रहस्यवाद का अर्थ—रहस्यवाद एक ऐसी काव्यधारा है जिसमें कवि की सूक्ष्म दृष्टि जीवन और जगत् के व्यक्त और दृश्य क्षेत्र के भीतर और परे, अव्यक्त और अदृश्य सत्ता को ढूंढ़ने का प्रयत्न करती है। रहस्यवाद के मूल में उस अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा क्रियाशील रहती है जो नर-नरेतर जगत् के समस्त उपकरणों का नियमन करती है। रहस्यवादी कवि जब इन उपकरणों में व्यक्त सौन्दर्य और उसके क्रिया-व्यापारों को जिज्ञासु भाव से देखता है तो वह भाव-विह्वल हो उठता है। उसे कण-कण में परोक्ष सत्ता का रहस्यमय सौन्दर्य दिखाई देता है जिससे उसकी रागात्मिका वृत्ति ऊर्ध्वमुखी होकर चरम सत्ता के व्यक्त-अव्यक्त रूपों के साथ तादात्म्य स्थापित करने को मचल उठती है। भाव-विह्वलता की इस स्थिति में भावावेग ही शाब्दिक अभिव्यक्ति पाकर कल्पना के सहारे रहस्यवादी काव्य में मुखरित होता है। इसी आधार पर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने कवि में 'समष्टि सौन्दर्य दृष्टि' को रहस्यवाद माना है।[1]

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ० १६२, सन् १९६३ ई०।

काव्य में रहस्यानुभूति एक प्रकार से 'परोक्ष के प्रति जिज्ञासा है'। वेदों, उपनिषदों तथा गीता में वर्णित रहस्यवाद सर्वात्ममूलक है। चिन्तन के क्षेत्र का यही सर्वात्मवाद भावानुभूति एवं कल्पना का सम्बल पाकर काव्यगत रहस्यवाद का रूप धारण करता है। "चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्य-वाद है।"[१] रहस्यवाद वस्तुतः ज्ञान से अधिक अनुभूति है।

हिन्दी काव्य में रहस्यवाद का विकास :

(अ) मध्यकाल—भारत में दर्शन के क्षेत्र में रहस्यात्मक विचारधारा की सत्ता अत्यन्त प्राचीन है। वेदों, उपनिषदों तथा गीता में सर्वात्ममूलक अद्वैत दर्शन पर गहन चिन्तन हुआ है। इसी अद्वैत चिन्तन से प्रेरणा ग्रहण कर मध्ययुग में नाथों और सिद्धों ने अपनी साधना के लिए साधनात्मक रहस्य-भावना का प्रवर्तन किया तथा उसके साथ सूफियों के प्रेम तत्त्व को समन्वित करके हिन्दी काव्य में सर्वप्रथम साधनात्मक रहस्यवाद की नींव डाली। सूफियों ने अलग से आध्यात्मिक प्रेम की झाँकी प्रस्तुत करते हुए भावात्मक रहस्यवाद का श्रीगणेश किया। निर्गुण सन्तों ने, जिनमें 'कबीर' प्रमुख थे, सिद्धों और नाथों के साधनात्मक रहस्यवाद, प्राचीन भारतीय अद्वैतवाद तथा सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद को समन्वित करके हिन्दी में सहजतामूलक (स्वाभाविक) रहस्यवाद को जन्म दिया। सूफी सन्तों की उत्कट प्रेम-भावना से प्रभावित होकर 'जायसी' ने अपने प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य 'पद्मावत' की रचना की। यह हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है जिसमें चित्रित प्रेम और विरह के ईश्वरोन्मुख संकेत स्वाभाविक रहस्यवाद की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हैं। रहस्यवाद का अब तक का स्वरूप सम्प्रदाय-विशेष की साधना-पद्धति पर आधारित था, जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साम्प्रदायिक रहस्यवाद की संज्ञा देते हुए काव्यमूलक रहस्य-वाद की श्रेणी में नहीं रखते। वस्तुतः स्वाभाविक रहस्य का दर्शन हमें सूफी और सन्तों के काव्य में ही मिलता है, भले ही उनके काव्य में दर्शन घुल-मिल न कर अन-पचा रह गया हो।

भक्तिकाल की सगुणोपासना में रहस्यवाद के विकास का कोई अवसर नहीं था और रीतिकाल में यह प्रवृत्ति स्थूल मांसलता के बोझ से दब-सी गयी।

(ब) आधुनिक काल—आधुनिक काल में आकर पाश्चात्य साहित्य तथा बँगला के प्रभाव से स्वच्छन्दतावाद के विकास के साथ ही रहस्यवाद नयी दृष्टि, नयी चेतना, नये भाव-बोध और नये शिल्प के साथ हिन्दी काव्य में इतने व्यापक रूप में प्रकट हुआ कि विचारकों को बाध्य होकर उसे एक अलग काव्य धारा के नाम से

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग— २, (काव्य में रहस्यवाद), पृ० ६६, सं० २०१० वि०।

अभिहित करना पड़ा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में रहस्यवाद के नाम से एक नवीन काव्य-धारा का प्रथम बार उल्लेख किया।[१] संभवतः छायावादी रचनाओं में आध्यात्मिक संस्पर्श की व्यापकता को देखकर ही आचार्य शुक्ल ने रहस्यवाद के नाम से एक निश्चित काव्य-धारा का संकेत किया। वस्तुतः छायावादी युग की आध्यात्मिक रंग में रँगी कविताओं की मुख्य धारा ही आधुनिक हिन्दी रहस्यवाद का मेरुदण्ड है।[२] 'रहस्यवाद' छायावादी कविता की प्रवृत्ति-विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है।

आधुनिक रहस्यवाद का स्वरूप :

आधुनिक हिन्दी के रहस्यवाद पर प्राचीन भारतीय दर्शन, मध्यकालीन सन्तों के साधनात्मक रहस्यवाद, कवीन्द्र रवीन्द्र की गीतांजलि तथा पाश्चात्य रहस्यवाद में विकसित सौन्दर्य-बोध का मिला-जुला प्रभाव पड़ा, जिससे उसका स्वरूप मध्ययुगीन रहस्यवाद तथा यूरोपीय प्रतीक-रहस्यवाद से बहुत-कुछ भिन्न हो गया है। अद्वैतवाद पर आधारित सन्त कवियों के रहस्यवाद में साम्प्रदायिक साधना तथा धार्मिक अंध-विश्वास की प्रधानता थी तथा काव्यगत सौन्दर्य गौण था। मध्ययुगीन रहस्यवाद प्रायः सामाजिक कुरीतियों और सामंती शोषण व्यवस्था से अभिशप्त किसानों तथा अछूतों की जीवन-दृष्टि का सूचक है। योरोपीय रहस्यवाद पूँजीवादी व्यवस्था से हताश मध्यवर्ग की प्रतिक्रियावादी विचारधारा से पोषित है। आधुनिक हिन्दी-रहस्य-वाद स्वतन्त्रता प्रेमी मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की जीवन-दृष्टि का अंग है। आधुनिक रहस्यवाद में धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों का स्थान जिज्ञासापूर्ण विवेक ने ले लिया है। कबीर के रहस्यवादी चिन्तन में विरह-वेदना के चिह्न स्पष्ट हैं लेकिन आधुनिक रहस्यवाद में अश्रुपात से अधिक अन्तर्दाह होता है। यद्यपि प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति पाने की प्रबल आकांक्षा के कारण आधुनिक रहस्यवाद में भी मध्ययुगीन रहस्य-चिन्तन की झलक मिल जाती है और पश्चिमी आकर्षण से उसमें योरोपीय प्रतीक-रहस्यवाद के भी बीज मिल जाते हैं लेकिन समष्टि रूप में यह दोनों से भिन्न है। आधुनिक हिन्दी रहस्यवाद व्यक्तिवादी, भाववादी, अध्यात्मवादी, मानवतावादी, प्रकृतिवादी तथा कलावादी हो गया है।

अंग्रेजी रोमांटिसिज्म का आधुनिक हिन्दी रहस्यवाद पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा। अंग्रेज़ी स्वच्छन्दतावाद में सर्वात्मवाद तथा मानवतावाद से प्रभावित रहस्यवाद घुल-मिल-सा गया है। अंग्रेजी सर्वात्मवाद भारतीय अद्वैतवाद के मेल में है जिसे

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५८, सं० १९९३ वि०।
२. 'छायावाद-युग की आध्यात्मिक रंग में रँगी कविता की प्रधान धारा रहस्यवाद है' —डॉ० शंभूनाथ सिंह : छायावाद-युग, पृ० ७०, सन् १९५२ ई०।

हिन्दी कवियों ने सहर्ष ग्रहण किया। इसी प्रकार रोमांटिक काव्य में चित्रित मानवतावादी रहस्य-भावना भारतीय वेदान्त के मोक्ष के समान है जिसे हिन्दी में बड़े उत्साह से अपनाया गया। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी रहस्यवाद में प्राच्य और पाश्चात्य विचारों का सुन्दर समन्वय हुआ है।

'महादेवी' जी रहस्य-भावना को शुद्ध प्रेम-भावना मानती हैं, अन्तर केवल यही है कि वह प्राणी-प्राणी का प्रेम न होकर आत्मा-परमात्मा का प्रेम है।[1] 'प्रसाद' के 'अहम् और इदम् के तादात्म्य' में, 'निराला' की 'सामन्तवादी जीवन-दृष्टि' में, 'पंत' के 'सौन्दर्य-बोध' में तथा 'महादेवी' के 'व्यष्टि और समष्टि की एकता' में सर्वात्ममूलक रहस्यवाद की ही झलक मिलती है। शुक्ल जी का सर्वात्मवाद से यही अभिप्राय है कि मूर्तामूर्त, व्यक्ताव्यक्त, चिदाचिद् जो कुछ है, सब ब्रह्म ही है। जगत् जिस रूप में हमारे सामने है, उसमें भी ब्रह्म का ही प्रभाव है। वस्तुतः यही दार्शनिक विचारपिण्ड आधुनिक रहस्यवाद में गलकर, ढलकर काव्य-रस बन गया है।

वस्तुतः प्रभाव, प्रेरणा एवं विकास की एक लम्बी काव्य-यात्रा को पूर्ण करके हिन्दी काव्य में रहस्यवाद ने अपना जो आधुनिक स्वरूप निर्मित किया है उसमें निम्नांकित विशेषताएँ हैं—

१. आधुनिक हिन्दी-रहस्यवाद में अद्वैत चिन्तन तथा आध्यात्मिक प्रेम का विशुद्ध काव्यात्मक स्वरूप विद्यमान है। उसका अद्वैत चिन्तन प्राचीन भारतीय दर्शन से तथा आध्यात्मिक प्रेम, सूफी प्रेम-दर्शन से प्रभावित तथा अनुप्राणित है।

२. उसमें मानवतावादी स्वर की गूंज है। अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य के प्रभाव से हिन्दी में प्रथम बार यह गूंज सुनाई पड़ी। इसके अन्तर्गत प्रेम के एकान्त प्रसार से आसुरी वृत्तियों के उन्मूलन तथा अखण्ड मानवता की उपासना का विधान किया गया है।

३. उसमें प्रकृति के विविध उपादानों एवं क्रिया-व्यापारों में परोक्ष सत्ता की दिव्य लीला का आभास कर उसकी अन्तश्चेतना के प्रति विस्मय, कुतूहल एवं जिज्ञासा प्रकट की गयी है। आधुनिक हिन्दी रहस्यवाद में यह विशेषता प्रमुख रूप से पाश्चात्य रोमांटिक काव्य एवं गौण रूप से मध्ययुगीन सूफी काव्य-परम्परा से आयी है।

४. अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य-शिल्प के प्रभाव से मध्ययुगीन हिन्दी रहस्यवाद के शिल्पगत स्वरूप में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। उसकी भाषा चित्रमयी हो गयी है। प्रतीकों की गम्भीर सांकेतिकता, लाक्षणिकता, नूतन अलंकार-विधान (मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, नादानुकृति आदि अलंकारों का ग्रहण), छाया-दृश्य-

---

१. विश्वम्भर मानव : महादेवी की रहस्य साधना, पृ० ५२, सन् १९६७ ई०।

विधान एवं नवीन प्रगीतात्मक छन्द-योजना ने उसके स्वरूप को सजाया, सँवारा और सूक्ष्म बना दिया है।

५. उसमें स्वाभाविक रहस्यवाद, प्रकृति-रहस्यवाद तथा मानवीय रहस्यवाद का अनूठा संगम हुआ है।

रोमाण्टिक काव्य में रहस्यवाद :

आर्थर विलियम महापकिन्स ने अंग्रेजी काव्य में व्यंजित रहस्यवाद को चर्च-रहस्यवाद, प्रकृति-रहस्यवाद एवं मानवतावादी रहस्यवाद में विभक्त कर उस पर सम्यक् विवेचन किया है।[१] चर्च-रहस्यवाद उसी प्रकार का साम्प्रदायिक रहस्यवाद है जिस प्रकार का सन्तों का साधनात्मक रहस्यवाद। स्वच्छन्दतावाद के विकास के साथ-साथ अंग्रेजी काव्य में प्रकृति-रहस्यवाद और मानवीय रहस्यवाद का विकास हुआ और वे उसके सर्वनिष्ठ अंग बन गये।

अंग्रेजी कवि 'ब्लैक' ने लौकिक व्यक्त सत्ता में अलौकिक अव्यक्त सत्ता के दर्शन के लिए अन्तर्दृष्टि विधायिनी कल्पना को साधन के रूप में प्रयुक्त किया है। 'एबरक्राम्बे' ने एक छोटी-सी कविता 'फूल्स एडवेञ्चर' में समाधि-वर्णन द्वारा यह बताया है कि बुद्धि, ज्ञान तथा देश-काल से परे जाकर ईश्वर का सामीप्य प्राप्त किया जा सकता है।[२] 'वर्ड्सवर्थ' के काव्य में प्रकृति-रहस्य का विकसित स्वरूप प्राप्त होता है। वह प्रकृति के ज्ञात तथा व्यक्त स्वरूप का चितेरा था। उसने प्रकृति में सर्वात्मवाद का दर्शन किया। उसके प्रकृति-प्रेम में न तो कुतूहल है और न सुख-विलास की कामना। वह विराट् के भव्य स्वरूप के प्रति संवेदनशील भी नहीं था। उसकी सहज रागात्मिका वृत्ति प्रकृति के साधारण-से-साधारण उपादानों में उलझी हुई थी क्योंकि उसका विश्वास था कि प्रकृति के कण-कण में उसके झीने पट के भीतर एक चिरन्तन सत्ता का अस्तित्व है जिसका दर्शन प्रकृति के सामीप्य द्वारा पाना सम्भव है। 'शेली' भी सर्वात्मवाद के सिद्धान्त में विश्वास करता था, लेकिन प्रकृति को उस परम सत्ता का प्रतिबिम्ब नहीं मानता। इसी से वह प्रकृति के माध्यम से परम सत्ता को प्रतीकित करता है।

१९वीं शताब्दी में पाश्चात्य रहस्यवाद का झुकाव मानवतावाद की ओर हो गया। 'डाउडेन' ने 'न्यू स्टडीज आव लिटरेचर' की भूमिका में मानवतावादी रहस्यवाद के स्वरूप का विश्लेषण किया है। अंग्रेजी कवि 'इट्स' ने अपनी कविता

१. डॉ० शिवकरण सिंह : स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अनुशीलन, पृ० १४२, सन् १९६७ ई०।

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग-२, (काव्य में रहस्यवाद) पृ० ७२, सं० २०१० वि०।

'रोज' द्वारा मानव-कल्याण का तथा 'एबरक्राम्बे' ने अपनी कविता 'इटर्नल बेंडिग' द्वारा मानव के सुखद भविष्य का रहस्यवादी चिन्तन किया। इस प्रकार पाश्चात्य साहित्य में मंगल की आशा से प्रेरित मानवतावादी रहस्यवाद का उदय हुआ। 'शेली' के काव्य में मानवतावादी रहस्यवाद का विकसित स्वरूप मिलता है।

आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद के विविध रूप :

(१) स्वाभाविक रहस्यवाद :

अद्वैत दर्शन पर आधारित स्वाभाविक रहस्यवाद का सर्वाधिक शुद्ध रूप सन्तों तथा सूफियों के काव्य में मिलता है लेकिन वहाँ दर्शन काव्य में अनपचा रह जाने के कारण भावमूलक काव्य-रस की अपेक्षित सृष्टि नहीं कर पाता। आधुनिक रहस्यवाद में विविध दार्शनिक विचारपिण्ड गल-पचकर काव्य-रस की तलस्पर्शी सृष्टि करने में समर्थ हुए हैं।

'निराला' के काव्य में माया, अद्वैत तथा विराट् के अनेकशः चित्र प्राप्त होते हैं। 'परिमल' में संगृहीत 'तुम और मैं' रचना में भारतीय अद्वैतवाद का सुन्दर एवं सरस काव्यात्मक निरूपण हुआ है।[१] परमात्मा और आत्मा के महामिलन की कल्पना 'पंत' की निम्नांकित पंक्ति में द्रष्टव्य है—

'फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में, हो जावें द्रुत अन्तर्धान।'[२]

'महादेवी' जी की गीतियों में आध्यात्मिक प्रेम, विरह तथा कुतूहल मिश्रित वेदना आदि से अन्त तक दृष्टिगोचर होती है। वे अलौकिक सत्ता को कभी प्रिय-रूप में तो कभी प्रियतम रूप में इंगित कर मिलन-विरह के गीत गाती हैं। प्रियतम की प्रतीक्षा में बैठी चिर-विरहिणी के हृदय में उठती भाव-तरंगों के अनेकशः चित्र उनकी रचनाओं में उपलब्ध होते हैं।[३] जीव और ब्रह्म के रहस्यमय अद्वैत सम्बन्ध को उन्होंने सगुण साकार रूप में चित्रित किया है—

'बीन भी मैं हूँ तुम्हारी रागिनी भी हूँ।'[४]

---

१. तुम तुंग-हिमालय-शृङ्ग और मैं चंचल-गति-सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कान्त-कामिनी-कविता।
× × ×
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म मैं मनोमोहिनी माया।
—परिमल : पृ० ८०-८१।

२. 'पंत' : पल्लव (छाया), पृ० १०६, सन् १६७७ ई०।

३. महादेवी वर्मा : यामा, पृ० १४५, सन् १६३६ ई०।

४. वही : पृ० ३६, सन् १६३६ ई०।

यदि 'महादेवी' जी का 'प्रिय' सपना बनकर आता है और जागृति में लौट जाता है,[1] तो 'प्रसाद' का 'प्रिय' मादकता बनकर आता है और संज्ञा के समान चला जाता है।[2] मध्ययुगीन संतों के पदों में ब्रह्मरन्ध्र में सतत गूँजते अनहद नाद का साधनात्मक प्रतीकों वाला स्थूल चित्रण हुआ है। 'कामायनी' में सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टि के साथ इसी निःस्वन अनहद नाद की गूँज हमें प्रकारान्तर से सुनाई देती है।[3] 'प्रसाद' परोक्ष सत्ता की विराटता और अनन्त रमणीयता की एक झलक अनुभव कर सहसा कह उठते हैं—

'हे विराट् ! हे विश्वदेव ! तुम कुछ हो, ऐसा होता भान।'[4]

प्रकृति-रहस्यवाद :

"आधुनिक रहस्यवादी कवि ने शेष प्रकृति में अपने स्फीत अहं को प्रतिष्ठित किया और इसी को उसने परम सत्ता अथवा परम चेतना के नाम के अभिहित किया।"[5] उपनिषदों के 'अहं ब्रह्मास्मि' को पुनर्जीवित करके आधुनिक विचारकों ने अपने उच्च अहं को काव्य में प्रतिष्ठित किया।

प्रकृति-रहस्यवाद हिन्दी के लिये सर्वथा नवीन है। हिन्दी कवियों में प्रकृति-रहस्यवाद के प्रमुख कवि 'पंत' हैं। 'पंत' ने 'वर्ड्सवर्थ' की भाँति प्रकृति के दृश्य आवरण के भीतर एक रहस्यमयी अदृश्य सत्ता का दर्शन किया। प्रकृति के रहस्यमय चित्र उनकी रचनाओं में भरे पड़े हैं। 'मौन निमंत्रण', 'विश्व वेणु', 'नक्षत्र' आदि रचनाएँ प्रकृति-रहस्यवाद के बहुरंगी चित्रों से परिपूर्ण हैं।[6]

जिस प्रकार 'शेली' ने प्रकृति को परम सत्ता का पूर्ण प्रतिबिम्ब नहीं माना है, उसी प्रकार 'प्रसाद' भी प्रकृति को विराट् की पूर्ण सत्ता नहीं मानते। 'प्रसाद'

---

१. 'वह सपना बन-बन आता
जगृति में जाता लौट।' —महादेवी वर्मा : यामा, पृ० १३८।

२. 'मादकता - से आये तुम
संज्ञा - से चले गये थे।' —आँसू : पृ० ३३।

३. 'उठती है किरनों के ऊपर कोमल किसलय के छाजन-सी,
स्वर का मधु निस्वन रन्ध्रों में जैसे कुछ दूर बजे बंशी।'
—कामायनी, पृ० ६८।

४. 'प्रसाद' : कामायनी : पृ० २८।

५. डॉ० नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ (रहस्यवाद) पृ० ६४, सन् १९६४ ई०।

६. सुमित्रानन्दन 'पंत' : पल्लव (मौन निमंत्रण), पृ० ८५-८७, (विश्व वेणु) पृ० ९६-९८, (नक्षत्र), पृ० ११४-११६, सन् १९७७ ई०।

को प्रकृति के विविध उपादानों एवं उसके क्रिया-व्यापारों में अखण्ड सत्ता की झलक मिलती है।[१]

'निराला' जी की दृष्टि में प्रकृति मानवीय भावनाओं से सम्पृक्त विराट् सत्ता का व्यक्त-दृश्य रूप है। 'तुम और मैं' तथा 'तरंगों के प्रति' जैसी रचनाओं में कवि की रहस्यमयी चेतना प्राकृतिक उपादानों में विराट् के अस्तित्व का आभास करते हुए अनेक रूपों में प्रकट हुई है। कवि तरंगों से औत्सुक्य और जिज्ञासा से अभिभूत हो पूछता है—

'किस अनन्त का नीला अंचल हिला-हिला कर
आती हो तुम सजी मंडलाकार ?'[२]

'महादेवी' जी की दृष्टि में प्रकृति में जो भी सौन्दर्य तत्त्व है वह परोक्ष सत्ता के अव्यक्त शाश्वत सौन्दर्य का ही व्यक्त लौकिक रूप है। प्रकृति उनके लिये शृङ्गार की वस्तु है, प्रियतम की ओर संकेत करने वाली सहचरी है। प्रकृति के विविध उपादान उस सुन्दर नारी-रूप विराट् के मोहक अंग हैं।[३]

मानवतावादी रहस्यवाद :

सार्वभौम-भावना आधुनिक रहस्यवाद का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। "आधुनिक रहस्यवादी कविताओं में जो उस परम प्रिय से मिलने की बात बार-बार कही जाती है वह इसी सार्वभौमिक भावना का काव्यात्मक रूप है।"[४] "यह सार्वभौमिक भावना आधुनिक विश्ववाद की ही आध्यात्मिक छाया है।"[५] जब कवि की अभिलाषाएँ दृश्य और ज्ञात जगत् में पूर्ण नहीं होतीं तो वह अज्ञात की लालसा से अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश कर उन्हें पूर्ण करने का प्रयत्न करता है। आधुनिक रहस्यवादी कवियों ने अपनी सिद्धि के लिये सामान्य मानव को भावना-स्फीत एवं कल्पना-रंजित मानव में परिणत कर दिया है और उसके माध्यम से अपनी सार्वभौमिक मानवीय भावना का प्रसार किया है।

अंग्रेजी काव्य की भाँति ही आधुनिक हिन्दी रहस्यवाद में मानवतावाद का विकास सबसे अन्त में हुआ है। रोमांटिक काव्य में चित्रित मानवतावादी रहस्य-भावना भारतीय वेदान्त के मोक्ष के समान थी, जिसे हिन्दी कवियों ने बड़े उत्साह से अपनाया। भारतीय साहित्य में सर्वप्रथम कवीन्द्र रवीन्द्र की 'गीतांजलि' में

---

१. 'जयशंकर प्रसाद' : कामायनी, पृ० ३४, सन् १९७४ ई०।
२. 'निराला' : परिमल (तरंगों के प्रति), पृ० ७६, सन् १९६६ ई०।
३. रूपसि तेरा घन केशपाश !
श्यामल-श्यामल कोमल-कोमल ; —यामा : पृ० १३२।
४. डॉ० नामवर सिंह : आधुनिक काव्य प्रवृत्तियाँ (रहस्यवाद), पृ० ६७।
५. वही : पृ० ६५।

मानवतावादी रहस्यवाद का प्रस्फुटन हुआ। कवीन्द्र रवीन्द्र ने लिखा है "सौन्दर्य से, प्रेम से, मङ्गल से पाप को एकदम नष्ट कर देना ही हमारी आध्यात्मिक प्रवृत्ति की एकमात्र आकांक्षा है।"[१] 'गीतांजलि' का हिन्दी कवियों के रहस्यवादी चिन्तन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

'प्रसाद' की 'कामायनी' में मानवीय रहस्यवाद का सुन्दर परिपाक हुआ है। उनका सामरस्य का सिद्धान्त सर्वमानवहितवाद को समाहित किये हुए है। 'कामायनी' में 'श्रद्धा' द्वारा 'मनु' को जिस अखण्ड आनन्द की अनुभूति कराई गई है, वह अपार्थिव लोक में ही संभव है। 'प्रसाद' ने एक ऐसे रहस्यमय दिव्य लोक की कल्पना की है जहाँ मानव-मानव में कोई भेद नहीं, समानता है, समरसता है, अखण्ड आनन्द की ज्योति का शाश्वत प्रसार है।[२]

'पंत' के काव्य में चित्रित भावी मङ्गल-आशा की कल्पना में मानवतावादी रहस्यवाद का बीज विद्यमान है। उनके ये चित्र रोमांटिक कवि 'शेली' के समान भविष्य की मङ्गलाशा को समेटे हुए हैं। स्वप्नद्रष्टा कवि विश्व-कल्याण की मानवीय भावना से अनुप्रेरित हो, सृष्टि में एक ऐसे समाजवादी समाज की रचना करना चाहता है जो 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की दिव्य शक्तियों से अनुप्राणित हो।[३] 'पंत' ने एक दार्शनिक की भाँति मानवीय सुख-स्वप्न की रहस्यमयी कल्पना बड़े आत्म-विश्वास के साथ की है। वे अपनी स्वप्निल कल्पना को साकार करते हुए 'युगान्त' में लिखते हैं—

'मैं सृष्टि एक रच रहा नवल, भावी मानव के हित भीतर।'[४]

स्वच्छन्दतावाद : छायावाद : रहस्यवाद :

स्वच्छन्दतावाद एक व्यापक प्रवृत्ति है जब कि छायावाद देश-काल-विशेष की रचना के लिये प्रयुक्त ससीम और आधुनिक रहस्यवाद उससे भी लघु छायावाद का

---

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर : प्राचीन साहित्य, पृ० ५२, सन् १९२७ ई०।

२. समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था॥
—कामायनी, पृ० २९४, सं० १९९३ वि०।

३. जग-जीवन में जो चिर महान, सौन्दर्य पूर्ण औ' सत्य प्राण,
मैं उसका प्रेमी बनूँ नाथ, जिसमें मानव हित हो समान।
—युगान्त, पृ० २९।

४. पन्त : युगान्त, पृ० ३५।

एक अंश मात्र।[1] जहाँ तक भारतीय वाङ्मय में रहस्यवाद के अभ्युदय तथा विकास का प्रश्न है, रहस्यवाद, वेद, उपनिषद्-काल से आरम्भ होकर कबीर, मीराँ, जायसी आदि से होता हुआ महादेवी वर्मा तक चलता आया है। इस प्रकार 'छायावाद' केवल आधुनिक काव्य-प्रवृत्ति रह गयी और रहस्यवाद सनातन तथा चिरन्तन।[2] वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद तथा रहस्यवाद देश-काल की सीमा से परे सनातन काव्य-धारा है जबकि छायावाद देश-कालगत वैशिष्ट्य के साथ हिन्दी के एक विशिष्ट युग की प्रमुख काव्य-वाणी है, जिसमें स्वच्छन्दतावाद तथा रहस्यवाद के विविध तत्त्व घुल-मिल कर एकाकार हो गये हैं।

हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद की व्यापक पृष्ठभूमि पर जब स्वानुभूतिपरक काव्य की रचना 'मैं' शैली में होने लगी, तब कवि अपने ही प्रेम और विरह को नवीन शैली में वाणी देने लगा। यह हिन्दी के लिये नयी बात न होते हुए भी नयी बात थी, क्योंकि कवि को अपने प्रेम की बात सहज रूप से कहने में थोड़ी हिचक होती थी, इसलिए वह अपने सहज प्रेम को गोपनीय बनाने के लिये उस पर 'अनन्त की ओर' 'उस पार' जैसे कुछ शब्द-प्रयोगों तथा लाक्षणिक-भंगिमा द्वारा रहस्य का एक झीना आवरण डाल देना चाहता था। लौकिक-अलौकिक प्रेम का जो कृत्रिम झीना पर्दा इस कविता पर पड़ा वह समीक्षकों को सह्य नहीं हो सका। वे यह मानने के लिये तैयार नहीं हुए कि इतनी अल्पायु के नवयुवक कैसे अलौकिक प्रेम की कविता लिखने लगे। बिना साधना के रहस्यभूमि में प्रवेश कैसा? इसलिये उन्होंने इसकी भर्त्सना की और इसीलिए प्रारम्भ में छायावाद और रहस्यवाद दोनों को एक समझने की भूल की गयी। यहाँ तक कि रहस्यवाद को छायावाद का मूल स्वर स्वीकार कर लिया गया।

वास्तव में छायावाद और रहस्यवाद स्पष्ट रूप से दो अलग-अलग काव्य-धाराएँ हैं।[3] छायावाद व्यापक शब्द है, इसमें आधुनिक रहस्यवाद का समावेश हो

---

१. 'रहस्यवाद, छायावाद का एक लघु अंश मात्र है।'— डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, पृ० ३२५, द्वितीय संस्करण।

२. डॉ० नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ (छायावाद), पृ० १३, तृ० सं०, १९६४ ई०।

३. "हमारा अपना मत है कि छायावाद और रहस्यवाद विशुद्ध रूप से दो भिन्न धाराएँ हैं। रहस्यवाद का सम्बन्ध अध्यात्म जगत् से है। इसकी चिन्तन प्रणाली में ब्रह्म का अनवरत ध्यान, इसकी समस्त सृष्टि में व्याप्ति पाने की भावना का ग्रहण प्रधान है।"
—डॉ० प्रेमनारायण टण्डन : हिन्दी साहित्य में विविध वाद, पृ० ४४०, सं० २०१० वि०।

सकता है। रहस्यवाद की सीमा संकुचित है। इसमें सारी छायावादी कविताएँ समाविष्ट नहीं हो सकतीं। इसलिये दोनों समानार्थक नहीं हैं।[१]

हिन्दी समीक्षकों के मध्य रहस्यवाद को लेकर एक बड़ा विवाद यह है कि असली रहस्यवाद कौन-सा है, सन्तों और सूफियों वाला या छायावादी चतुष्टय वाला? यह तो निर्विवाद है कि कबीर के पद आत्मा-परमात्मा के प्रेम-विरह से सम्बन्ध रखते हैं और उसके पीछे साधना का भी बल है लेकिन कुछ विचारकों ने कबीर के पदों में निहित कवित्व-तत्त्व पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है।[२] हजारीप्रसाद द्विवेदी कबीर आदि संत कवियों को रहस्यवादी कवि न मान कर मात्र साधक मानते हैं। इसके विपरीत दिनकर जी कबीर, दादू, रैदास, मीराँ और जायसी को ही सच्चा रहस्यवादी कवि मानते हैं, जिनका सम्पूर्ण जीवन परोक्ष सत्ता को अर्पित था और उनकी आस्था में साधना का बल था।[३] "कबीर जिस आकुलता के साथ 'हद्द' और 'बेहद्द' दोनों से परे किसी आनन्द-लोक में जाना चाहते हैं, वह अभूतपूर्व है।"[४]

यह सत्य है कि कबीर, जायसी आदि संत, सूफी कवियों के पदों में भारतीय अद्वैत दर्शन काव्य के साथ घुल-मिल कर काव्यात्मक सौन्दर्य की प्रायः वैसी भावात्मक सृष्टि नहीं कर सका है जैसी कि छायावादी काव्य में हुई है और उसमें काव्य-रस की भी कमी है लेकिन यह भी सत्य है कि प्रकृति और मानव के कार्य-व्यापारों में परोक्ष सत्ता की खोज रहस्यवाद का स्वाभाविक पद-चिह्न नहीं है।

---

१. "अपने मनोभावों की छाया प्रकृति में देखना और उस पर चेतना का आरोप करते हुए उसके साथ मानवीय प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करना छायावाद का क्षेत्र है और प्रकृति में विराट् पुरुष की सत्ता-स्फूर्ति का अनुभव करना, उसमें उसकी छाया अथवा प्रतिबिम्ब देखना तथा उसे ब्रह्म का अभिन्न अंग मानते हुए उसके कण-कण में दिव्य-चेतना और शक्ति का अनुभव करना रहस्यवाद है।"
—विजयेन्द्र स्नातक : रामेश्वर लाल खण्डेलवाल : महाकवि प्रसाद, पृ० २००।

२. "कबीर के रहस्य भरे पद हमारे हृदय को स्पर्श कर सीधे बुद्धि से टकराते हैं। अधिकतर उनके विचार ध्वनित होते हैं, भाव नहीं, जो गीत का विषय है।"
—महादेवी वर्मा : यामा की भूमिका, पृ० ७, सन् १९३९ ई०।

३. "छायावादियों में कोई कवि वैसा नहीं जैसा पहले के रहस्यवादी कवि, कबीर, दादू, रैदास, मीराँ या जायसी हुए थे, अर्थात् छायावादियों में से किसी भी कवि का जीवन-धर्म परोक्ष-सत्ता से एकात्म होने के ध्येय पर अर्पित नहीं था।"—रामधारी सिंह दिनकर : काव्य की भूमिका, पृ० २९५।

४. डॉ० नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ (रहस्यवाद), पृ० ७७, सन् १९६४ ई०।

रहस्यानुभूति की प्रायः चार विशिष्टताएँ होती हैं—अनिर्वचनीयता, क्षणिकता, झलक एवं विराट् सत्ता के साथ पूर्ण तादात्म्य। ये चारों अनुभूतियाँ कबीर आदि सन्तों में प्रायः विद्यमान थीं और काव्य-सृजन के विशेष क्षण में कुछ आधुनिक विरह-विदग्ध कवियों को भी इस प्रकार की अनुभूतियाँ हुई हैं। महादेवी जी उनमें प्रमुख हैं।

आधुनिक रहस्यवाद में स्वाभाविक रहस्यवाद, प्राकृतिक रहस्यवाद तथा मानवतावादी रहस्यवाद का अनूठा संगम हुआ है। इनमें स्वाभाविक रहस्यवाद ही वस्तुतः रहस्यवाद की प्रमुख धारा है और अन्य दो बाद में आकर उसमें मिलने वाली उपधाराएँ। साधना के बल की अनिवार्यता वस्तुतः स्वाभाविक रहस्यवाद के लिये है, अन्यों के लिये नहीं। साधना के लिये समाज से पलायन अनिवार्य भी नहीं। दृढ़ आस्था वाला साधक कहीं भी साधना कर सकता है।

महादेवी जी के आध्यात्मिक प्रेम के पीछे प्रायः साधना का बल है। उनकी कविताओं के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके हृदय में परम सत्ता के सामीप्य के लिये मर्मस्पर्शी तड़प है और उनकी विरह-वेदना में रोदन से अधिक अन्तर्दाह है। महादेवी और कबीर की साधना में केवल यही अन्तर है कि महादेवी जी के लिये परम सत्ता सगुण साकार है जब कि कबीर के लिये उसका अस्तित्व निर्गुण निराकार। भारतीय पद्धति में साधना की ये दोनों ही विधाएँ स्वीकृत हैं। वस्तुतः महादेवी जी सगुण साकार कोटि की सच्ची रहस्यवादिनी हैं।

यदि स्वच्छन्दतावाद, छायावाद तथा रहस्यवाद में अन्तर्निहित विशिष्टताओं के आधार पर देखा जाय तो हिन्दी में 'निराला' स्वच्छन्दतावाद, 'प्रसाद' और 'पन्त' छायावाद तथा 'महादेवी' जी रहस्यवाद का प्रतिनिधित्व करती हैं।

● ●

अध्याय २

रीतियुगीन स्वच्छन्द काव्य-धारा का विकास

(प्रेरणा-स्रोत एवं कृतित्व : १६००-१८५०)

प्रेरणा-स्रोत :

कविता कवि के व्यक्तित्व की अन्त:साक्ष्य है, आस्था की चरम परिणति है, युग-चेतना की प्रासंगिक अभिव्यक्ति है। वर्तमान में अप्रासंगिक रहकर भविष्य में रचना देने का जुमला हवाई है। समर्थ कवियों ने अपने युग को अधिकाधिक पहचाना है। कोई भी कवि या कलाकार चाहे कितना ही वैयक्तिक हो, अपने इर्द-गिर्द के परिवेश से पूर्ण निस्संग नहीं बना रह सकता। उत्तर मध्यकाल की सामन्ती व्यवस्था में भोगवाद अपनी चरम सीमा पर था। उस समय का कवि राज-दरबारों के वैभव-विलास का स्वयं भोक्ता था। ऐसी दशा में उसके व्यक्तित्व के निर्माण में स्वानुभूति एवं लोकानुभूति दोनों ही व्यापक रूप से सहायक हुईं। ये दोनों ही अनुभूतियाँ परिवेश से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार उनके काव्य पर परिवेशीय प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा, भले ही वह अनुकरणात्मक तथा प्रतिक्रियात्मक दोनों प्रकार का रहा हो।

संवेदनशील कवि उन विचारों को बड़े ही ललक के साथ ग्रहण करता है जो उसके संस्कार के अनुकूल हों। फारसी तथा सूफी साहित्य में लौकिक-अलौकिक प्रेम से सम्बद्ध उद्‌गारों की बहुलता है। रीति-स्वच्छन्द कवि प्राय: स्वयं असफल प्रेमी थे। संस्कारगत अनुकूलता के कारण उनकी प्रेम-पिपासा ने लौकिक प्रेम की तथा नैराश्य ने अलौकिक प्रेम की सूफियानी साधना के प्रति ललक प्रदर्शित की। फलस्वरूप मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति का व्यापक प्रभाव उनकी रचनाओं में लक्षित होता है।

परिवेशीय प्रभाव :

उत्तर मध्यकाल में साहित्यिक गतिविधियों के केन्द्र प्राय: राज-दरबार हुआ करते थे। फलस्वरूप राजाश्रय में रहकर रचे जाने वाले काव्य पर उसके परिवेश का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इन राज-दरबारों में शृङ्गारिक रंगीनी के समस्त प्रसाधन उपलब्ध थे। सुरा, सुन्दरी और वैभव के समस्त उपादान राजाओं और

सामन्तों की सेवा में अर्पित थे ।[१] सामान्य नागरिक असमर्थ, असहाय बन अभाव की पीड़ा से घुट रहा था। विडम्बना यह थी कि देश वैभव-सम्पन्न था लेकिन वह वैभव चन्द अभिजातों के सुख के लिए ,संरक्षित था। आर्थिक शोषण और नैतिक पतन से समस्त परिवेश दूषित था। वैभव की छत्रच्छाया में अभाव का साम्राज्य विचित्र विरोधाभास-सा था।

मुगल-साम्राज्य रंगीनियों, शृङ्गारिक विकृतियों एवं चंचल बालाओं की केलि-क्रीड़ाओं का केन्द्र बना हुआ था। कवि और कलाकार जन-साधारण के बीच पैदा होकर भी जन-साधारण से दूर राजाओं की महफिलों को सुशोभित कर रहे थे। समस्त प्रतिभा का अपहरण सुरा, सुन्दरी और साकी की महफिलों ने कर डाला था। बुद्धिजीवी वर्ग का समस्त स्पन्दन राजाओं तथा राज-नर्तकियों के इर्द-गिर्द सिमट कर रह गया था। कविगण अशर्फियों को हथियाने की होड़ में ही अपनी प्रतिभा का उपयोग कर रहे थे, जिससे उनकी बुद्धि-क्रीड़ा राजाओं के पास गिरवी हो गयी थी। समस्त काव्य-संसार नायिका की बाँहों में कैद हो गया था। 'बिहारी' हों या 'मतिराम', 'देव' हों या 'पद्माकर' सभी के लिए नायिका ही समष्टि थी।

प्रेम, भोग-विलास की सीमा में आबद्ध हो अपना मौलिक स्वरूप और गुण खो चुका था। उसमें जड़ता आ गयी थी। काव्य; हृदय का उद्‌गार न होकर बुद्धि का व्यवसाय बन गया था। सौन्दर्य, प्रेम का आलंबन न होकर भोग का साधन बन गया था। नायिका-भेद और नख-शिख-वर्णन काव्य के अनिवार्य अंग बन गये थे। वस्तुतः "उस युग का दरबारी जीवन एवं ढंग तत्कालीन कला, साहित्य एवं समाज पर अमिट छाप छोड़ गया।"[२]

"इस युग के साहित्य पर सामन्तीय वातावरण की पूरी छाया है।··· भोगवाद अपने चूड़ान्त पर था। रीति काव्य की वासकसज्जाओं को इससे सीधी प्रेरणा मिलती थी।"[३]

१. "उत्तर मध्यकाल में सामन्तशाही प्रथा का प्रचलन था। समाज का श्रेष्ठ व्यक्ति सम्राट् समझा जाता था। उसके नीचे बड़े-बड़े अमीर, सरदार, मनसबदार, राजकर्मचारी और प्रान्तीय सूबेदार थे। इनका जीवन बड़ा शान-शौकत का था। विलासिता कूट-कूट कर भरी थी। मदिरा, महिला और मांस के गुलाम थे। इनके पास 'हरम' होते थे जिसमें औरतें रहती थीं। कहा जाता है सम्राट् अकबर के 'हरम' में पाँच हजार स्त्रियाँ रहती थीं। दरबार में नृत्य और संगीत का खूब प्रचार था।"

—के० एम० मिश्र : उत्तरी भारत में मुस्लिम समाज, पृ० १२२, सन् १९७४ ई०।

२. ओम प्रकाश केला : भारतवर्ष का बृहत् इतिहास, पृ० १९०, सन् १९७२ ई०।

३. डॉ० नगेन्द्र : रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १०, सन् १९६१ ई०।

अतः नग्न श्रृङ्गारिकता, काल्पनिक प्रणय-व्यापार एवं यांत्रिक प्रेमाभिव्यंजना के विरुद्ध प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी, सो हुई। घनानन्द, बोधा, ठाकुर जैसे आत्मचेता कवियों का एक नया वर्ग उभर कर सामने आया। यह वर्ग स्वयं प्रेम-पिपासु था, संवेदनशील था और अपनी-अपनी नायिकाओं का स्वयं नायक था। इस वर्ग के कवियों ने स्वानुभव के आधार पर प्रेम, सौन्दर्य और काव्य-रचना का मानदण्ड ही बदल दिया। पराये प्रेम और परानुभव की बँधी-बँधाई अभिव्यंजना के स्थान पर स्वानुभूतिक एवं नैसर्गिक प्रेम की काव्य में अवतारणा हुई। यांत्रिकता तथा स्पन्दनहीनता के स्थान पर संवेदनशीलता एवं भावप्रवण गत्यात्मकता से काव्य की प्राण-प्रतिष्ठा की गयी। बहिर्मुखता का स्थान अन्तर्मुखता ने ले लिया। पिष्ट-पेषण से जो काव्य में नीरसता आ गयी थी वह दूर हो गयी। अन्तः और बाह्य में एकरूपता के फलस्वरूप कवि के आत्म (सेल्फ) का और उसके व्यक्तित्व का काव्य में प्रस्फुटन हुआ।

स्वच्छन्द कवि खुलकर अपनी अनुभूतियों को काव्य में व्यंजित करना चाहते थे, लेकिन नायिका-भेद, नख-शिख-वर्णन, ऋतु-वर्णन एवं प्रेम-निरूपण की पूर्व निर्धारित लीक का अनुसरण करने एवं रीति की सँकरी गली में धक्कमधक्का करने में आन्तरिक अनुभूतियों का स्वाभाविक प्रस्फुटन सम्भव न था। अतः इन कवियों ने इस बन्धनपूर्ण परम्परा को तोड़ा और हृदय की उमंग एवं मन की तरंग पर थिरकते हुए काव्य की सृष्टि की।

रीति-स्वच्छन्द काव्य पर परिवेशीय प्रभाव पड़ा। इसने वर्ण्य-विषय एवं उसके प्रस्तुतीकरण को व्यापक रूप से प्रभावित किया। यदि गहराई से विचार किया जाय तो रीति-स्वच्छन्द काव्य-धारा के उद्भव एवं विकास के मूल में एक बड़ा कारण तत्कालीन समाज का वह कठोर बन्धन था, जिसके प्रभाव से इन कवियों का जीवन अभिशाप बन. गया था। ये स्वच्छन्द प्यार का आनन्द लेते हुए जीना चाहते थे, लेकिन सामाजिक अंकुशों ने इनके प्यार का गला घोंट दिया। परिणाम-स्वरूप आक्रोश और विषाद से इनका जीवन भर उठा। जीवनगत विषाद ने ही 'प्रेम की पीर' को काव्य में वाणी दी। उस समय जिस प्रकार समाज दो खेमों में बँटा हुआ था, उसी प्रकार कवि समुदाय भी। एक शक्तिशाली वर्ग चाटुकार कवियों का था जो राजाओं द्वारा पोषित, संरक्षित तथा परम्परावादी था। दूसरा वर्ग उन स्वच्छन्द काव्यकारों का था जो दरबार में रहते हुए भी दरबारी परिवेश तथा उसके बन्धनों से मुक्त था। दोनों के बीच छींटाकशी होती रहती थी। 'सीख लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन'[१] 'जग की कविताई के धोखें रहै, ह्याँ प्रवीनन की मति

१. लाला भगवानदीन : ठा० ठ०, पृ० ४।

जाति जकी' [१] भड़ौओं की रचना तथा प्रशस्तिकार ब्रजनाथ का अपमान इसके ज्वलंत प्रमाण हैं।[२] इन स्वच्छन्द कवियों ने परम्परावादियों द्वारा पोषित, संरक्षित बन्धनों को साहसपूर्वक तोड़ा और स्वच्छन्द मार्ग का अनुसरण किया।

मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव :

मध्यकालीन राज-दरबारों में फारसी का बोलबाला था। इस समूचे युग में फारसी ज्ञान का केन्द्र तीन बार ईरान से हट कर भारत आया—एक बार ग़ज़नवी शासन में, दूसरी बार खिलजी शासन में और तीसरी बार मुग़लकाल में।[३] इसी से भारत में फारसी की समृद्ध परम्परा का आकलन किया जा सकता है। मुग़लकाल में यह परम्परा चरमोत्कर्ष पर थी। खिलजी, तुग़लक और गुलामवंश का शासन फारसी साहित्य का स्वर्ण युग था।[४] अमीर खुसरो इस काल का सर्वाधिक प्रसिद्ध शायर था। ग़ज़ल और मसनवी शैली में रचित उसकी शायरी संगीतात्मकता से ओत-प्रोत है।

---

१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली (प्रशस्ति), पृ० ३।

२. 'बैन कों चुरावै ताकौ मजमून लावै कूर,
कविता बनावै गावै रिजौली सी तान है।
× × ×
हुरकिनी सुजान तुरकिनी को सेवक है,
तजि राम नाम वाकौं पूजै काम धाम है।''
—घनआनँद ग्रन्थावली, वाङ्मुख (भड़ौए), पृ० ६६।

३. ''भारत में मुसलमानों का आगमन तीन बार हुआ—इस्लाम का प्रथम काल वह था जब मुहम्मद-पुत्र कासिम के नेतृत्व में सिन्ध पर आक्रमण हुआ, उस काल में इस्लाम अपनी प्राथमिक विशेषता लेकर आया था। दूसरा काल मुहम्मद ग़ज़नवी के आक्रमण से प्रारम्भ होता है। इस काल में इस्लाम धर्म ने हिन्दुओं के उस वर्ग को प्रभावित किया जिन्हें हिन्दुओं की सामाजिक कुरीतियों ने कुचल दिया था। तीसरा काल भारत में मुग़ल राज्य की स्थापना के बाद सम्पन्न हुआ।''
—सैयद इकबाल अहमद : शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास, पृ० ६७२, सन् १९६८ ई०।

४. ''भारत में मुसलमानों के आगमन के साथ ही आलिमों एवं सूफियों का भी आगमन हुआ। गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद, शर्की, सूरी और लोदी बादशाहों ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया।......इस युग में महान साहित्यकारों का जमघट था।''
—सैयद इकबाल अहमद : शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास, पृ० ६४६।

'फैजी' मुग़लकाल का सर्वश्रेष्ठ शायर था। मुग़ल-दरबारों में हिन्दी तथा संस्कृत के विद्वानों के साथ ही फारसी के शायर भी सम्मान पाया करते थे। इन शायरों और कवियों के बीच स्पर्द्धाएँ हुआ करती थीं। स्थानीय बुद्धिजीवियों में फारसी के शायरी की होड़ लगी रहती थी। साथ ही, विदेशी फारसी के शायर भी आमंत्रित किये जाते थे। परिणामस्वरूप अनुकूल परिवेश पाकर भारत में फारसी साहित्य का व्यापक रूप से प्रसार हुआ। फारसी काव्य के सम्पर्क से हिन्दी में प्रथम बार परकीया प्रेम की प्रतिष्ठा हुई। रीति-स्वच्छन्द कवि रीतिमार्गी कवियों की भाँति मुग़ल-दरबारों के अखाड़े में तो नहीं उतरे लेकिन वे परिवेशीय प्रभाव से मुक्त भी नहीं रह सके। इनके काव्य में विरह-वेदना की अधिकता एवं विषम प्रेम की प्रधानता के मूल में फारसी का ही प्रभाव है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

फारसी रसखान की मातृभाषा थी। स्वाभाविक है कि वे फारसी की आशिकी से परिचित रहे होंगे, लेकिन कृष्ण भक्ति के प्रभाव से उनका यह रूप मुखर न हो सका। लेकिन उनके काव्य में फारसी ढंग का विरह-वर्णन यत्र-तत्र झलक मारता है।[1]

घनानन्द पर फारसी का प्रभाव मुखर है। फारसी ने उनके कथ्य, शिल्प और भाषा तीनों को व्यापक रूप से प्रभावित की है। यद्यपि यह प्रभाव थोड़ा-बहुत उनकी सभी कृतियों पर है, लेकिन 'इश्कलता' और 'वियोगबेलि' पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। इन कृतियों में फारसी शब्दावली की प्रचुरता है। जैसे—हुस्न, महबूब, हुजूरी, दिलदार, करेजे, जुलम, दिलजानी, आसिक, जिगर, जानी आदि। फारसी के अनेकानेक शब्द इनकी कृतियों में मिलते हैं। फारसी शैली ने भी घनानन्द के काव्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया है।[2] 'वियोगबेलि' यद्यपि ब्रजभाषा में है लेकिन वह फारसी छन्द में विरचित है। कृष्ण को रँगीले, छबीले, रसीले, कहकर सम्बोधित करने के पीछे फारसी का ही प्रभाव है।[3] जुगुप्सात्मक उक्तियाँ घनानन्द के काव्य में प्रचुरता से मिलती हैं। 'इश्कलता' में तो स्थल-स्थल पर फारसीपन की झलक है।[4] 'सुजानहित' में फारसी के सूफी शायरों की प्रेम-पीड़ा आदि से अन्त तक झलक

---

१. रसखानि ग्रन्थावली (प्रेम वाटिका), पृ० १११, छं० ३३।

२. "स्वाभाविक है कि जब वे ही व्यक्ति फारसी और हिन्दी में कविता लिखते थे अथवा जब हिन्दी कवि विदेशी फारसी कवियों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में थे तो भाषाओं का परस्पर प्रभाव अनिवार्य था।"
—डॉ० हरदेव बाहरी : पर्सियन इन्फ्लुएन्स ऑन हिन्दी, पृ० ८।

३. घनआँनद ग्रन्थावली (वियोग-बेलि), पृ० १७०, छं० ३६।

४. वही : (इश्कलता), पृ० १७७, छं० १५, १६, १७, १६।

मारती है।[१] कृष्ण को बहेलिया तथा अपने को पक्षी की संज्ञा देकर बहेलिया द्वारा पक्षी का विद्ध होना, पंखों का उखाड़ दिया जाना आदि जुगुप्सापरक व्यापार फारसी के रंग-ढंग को समेटे हुए हैं।[२] इसी प्रकार की अनेकशः उक्तियाँ घनानन्द के काव्य में मिलती हैं जो फारसी के प्रभाव को परिलक्षित करती हैं। हिन्दी में इस प्रकार के वीभत्स क्रिया-व्यापारों के अंकन की परम्परा नहीं थी।

आलम ब्राह्मण होते हुए भी फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। इनके 'रेखते' इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं। इनके काव्य का अन्तरंग और बहिरंग दोनों पक्ष फारसी से प्रभावित हैं। उसे विद्वानों ने स्वीकार किया है।[३] 'माधवानल कामकदला' में परब्रह्म से लेकर चार खलीफाओं की जो वन्दना की गयी है तथा कथारंभ से पूर्व जिस पद्धति का संकेत किया गया है वे सब मसनवी शैली के प्रभाव के द्योतक हैं। आलम के काव्य में प्रेम सम्बन्धी सूफी आदर्श की एक झलक देखिए—

'जेहि तन तेज नेह कर होई, ब्रह्म ग्यान पुनि पावै सोई।'[४]

'ठाकुर' के काव्य में अटूट प्रेम की विशद चर्चा है। नितान्त ऐकान्तिक प्रेम के जिस प्रकार हृदयस्पर्शी किन्तु जुगुप्सापरक चित्र फारसी काव्य में उपलब्ध होते हैं, उसकी झलक कहीं-कहीं 'ठाकुर' के काव्य में भी मिलनी है।[५]

फारसी की आशिकी और बाजारू प्रेम-पद्धति का सर्वाधिक प्रभाव बोधा पर पड़ा है।[६] इनकी रचना 'इश्कनामा' भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से फारसी से

---

१. घनआँनद ग्रन्थावली (सु० हि०), पृ० ६७, छं० २०६।

२. वही : पृ० ७९-८०, छं० २४४।

३. (क) "इनके अनेक मुक्तक ऐसे हैं जिनमें भावात्मक तीव्रता, कथन की अतिशयता के साथ मिलकर सूफी काव्य की प्रकृति का आभास देती है।"

—डॉ० जगदीश गुप्त : रीतिकाव्य संग्रह, पृ० ३३५-३३६।

(ख) "कहीं-कहीं फारसी शैली के रस-बोधक भाव भी इसमें मिलते हैं।"

—आ० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २२७।

४. डॉ० रामकुमारी मिश्र : आलम कृत माधवानल कामकन्दला, पृ० ७७, सन् १९८२ ई०।

५. बरुनीन मैं नैन झुकै उझकै मनो खंजन मीन कै जाले परे।
दिन औधि के कैसे गनौं सजनी अँगुरीन के पोरन छाले परे॥

—ठा० ठ०, पृ० १७, छं० ६८।

६. "जैसे कुछ रीतिबद्ध रचना करने वाले फारसी की बाजारू प्रेम-पद्धति से प्रभावित हुए हैं वैसे ही रीतिमुक्त बोधा भी।"

—पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : घ० ग्र०, वाङ्मुख, पृ० ७४।

प्रभावित है।[1] अँधेरी गली में घात लगाकर केलि-क्रीड़ा करने वाले नायक-नायिका के भाग्य की जिस प्रकार उन्होंने प्रशंसा की है वह फारसी आशिकाना का चरमोत्कर्ष है।[2] इनकी प्रेम व्यंजना में जहाँ बाजारूपन की गन्ध है वहाँ भाव तो फीके पड़ गये हैं लेकिन आशिकी की छेड़छाड़ प्रखर है।

फारसी के प्रणय-काव्य का पर्याप्त प्रभाव रीति-स्वच्छन्द कवियों पर है। फारसी के शृंगारी कवि किसी सुन्दर नौजवान अथवा चंचल किशोरी के प्रेम में पागल पाये जाते हैं। उनका तन-मन रूप की रीझ और मिलन की प्यास से विक्षिप्त दिखाई देता है। चक्षुदर्शन की तड़प और प्रिय की प्राप्ति के लिए समस्त सुखों का परित्याग और लोक-लाज की अवहेलना समान रूप से रीति-स्वच्छन्द कवियों के काव्य में भी दिखाई देती है।[3]

फारसी की शायरी में प्रेम-विषमता की प्रधानता है। इस एकोन्मुखता में एक पक्ष समस्त समर्पण को उद्यत है तो दूसरा उदासीन। एक ओर उद्दाम आसक्ति है तो दूसरी ओर पूर्ण उदासीनता। वस्तुतः माशूक की क्रूरता पर ध्यान न देकर अपनी प्रेम-निष्ठा पर अडिग रहना और आशिकाना जिन्दगी का सच्चा लुत्फ लेना इनका अभिप्रेत बन गया था। प्रेम में यही एकोन्मुखता अथवा प्रेम-विषमता समान रूप से रीति-स्वच्छन्द काव्य में भी अभिव्यंजित है।

हिन्दी में इसके पूर्व सम-प्रेम की परम्परा थी। दोनों ओर प्रेम की आग सुलगती थी। मिलन में दोनों पक्षों की खुशी और विरह में दोनों पक्षों की तड़प समान रूप से स्वीकृत थी, जबकि फारसी में एकपक्षीय तड़प का ही विधान रहा है। निःसन्देह रीति-स्वच्छन्द काव्य में प्रेम-विषमता की व्यंजना का श्रीगणेश फारसी शायरी के प्रभाव से ही हुआ है। घनानन्द का तो सम्पूर्ण काव्य ही प्रेम-विषमता की

---

१. बोधा ग्रन्थावली, पृ० ६, छं० ३३।

२. वही : पृ० १८।

३. (क) 'एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।'

—बोधा ग्रन्थावली, पृ० ६, छं० ३१।

(ख) 'प्रेम फाँस मैं फँसि मरै, सोई जियै सदाहिं।

—रसखानि ग्रन्थावली (प्रेम वाटिका), पृ० ११०।

(ग) 'या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।'

—रसखानि ग्रन्थावली, पृ० ३५, छं० ३।

(घ) 'मूसर चोट की भीति कहा बद कै जब मूड़ दियो ओखरी में।'

—ठा० ठ०, पृ० ३६।

भित्ति पर खड़ा है।[१] अन्य स्वच्छन्द कवियों के काव्य में भी विषम-प्रेम ही प्रधान है।[२]

"स्वच्छन्द काव्य परम्परा को अपना रूप निर्मित करने में सूफियों की 'प्रेम की पीर' से काफी बल मिला।"[३] रीति-स्वच्छन्द काव्य में सूफी प्रवाह मुख्यतः तीन स्रोतों से पहुँचा है—प्रथम जायसी, निर्गुण सन्तों व कृष्ण भक्त कवियों के सूफियाना काव्य ग्रन्थों से, द्वितीय भारत में विदेशी सूफी प्रचारकों के माध्यम से, तृतीय देशी व विदेशी फारसी काव्य में आत्मसात् होकर, जिसके निकट सम्पर्क में ये कवि रहे हैं। गोरी शासकों के युग में फारस के कुछ विद्वान् सूफियों का भारत में आगमन हुआ। इन सूफियों ने भारत में सर्वसाधारण के बीच आध्यात्मिक उपदेश दिये और रहस्यवादी भावनाओं का प्रचार किया।

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने, जो अपने युग का सबसे बड़ा गीतकार हुआ, फारस से भारत में आकर सूफी मत की ज्योति को सर्वप्रथम प्रज्ज्वलित की। उसके काव्य में आध्यात्मिक भावों की रमणीयता अपने चरमोत्कर्ष पर है। फारसी में सूफी दर्शन से प्रभावित काव्य प्रभूत मात्रा में रचा गया है। फारसी में इश्कमजाजी (लौकिक) प्रेम के व्याज से इश्कहकीकी (अलौकिक प्रेम) की घोर साधना की गयी है। दोनों ही दशाओं में 'प्रेम की पीर' की प्रधानता है। एकोन्मुखता उसका विशेष गुण है। सूफियों की प्रेम-भावना की मुख्य विशेषता है लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम के उच्चतम सोपान पर पहुँचना अर्थात् इश्कमजाजी द्वारा इश्कहकीकी को प्राप्त करना। रीतिमुक्तों में रसखान, घनानन्द और बोधा के काव्य में सूफी प्रेम-साधना का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इन कवियों ने राधा-कृष्ण के माध्यम से अपनी विरह-वेदना को तो मुखरित किया ही है, सीधे अपनी प्रेमिकाओं को संबोधित करके भी अपनी 'प्रेम की पीर' को काव्य में प्रक्षेपित किया है। इनकी प्रेमिकाएँ आध्यात्मिक सत्ता की पर्याय बन गयी हैं।

बोधा ने इश्कमजाजी और इश्कहकीकी की कई स्थलों पर चर्चा की है, यद्यपि वे सच्चे प्रेमी की भाँति इसे पचा नहीं सके हैं। इश्कमजाजी के वासनात्मक मार्गों

---

१. घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥
—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ८६।

२. वा निरमोहिन रूप की राशि जऊ उर हेतु न ठानत ह्वै हैं।
× × × ×
आवत है नित मेरे लिए इतनो तो विशेष कै जानत ह्वै हैं।
—ठा० ठ०, पृ० १२, छं० ४५।

३. डॉ० बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, पृ० २८८।

पर तो इन्होंने लम्बी दौड़ लगाई है, लेकिन इश्कहकीकी के कठिन मार्ग पर पग रखने का साहस वे नहीं जुटा सके और नामोल्लेख करके ही उसे छोड़ दिये । इनकी रचनाओं में इश्कहकीकी (अलौकिक प्रेम) की शाब्दिक अनुगूंज यत्र-तत्र देखी जा सकती है ।[१] रसखान और घनानन्द ने इश्कमजाजी और इश्कहकीकी का माला तो नहीं जपा, पर उनके काव्य में चित्रित इश्कहकीकी (अलौकिक प्रेम) का स्वाभाविक सूत्र इश्कमजाजी में ढूँढ़ा जा सकता है ।

घनानन्द का सम्पूर्ण जीवन-दर्शन और प्रेम-साधना सूफी विचारधारा से प्रभावित है । सुजान के प्रेम ने उन्हें कृष्णानुरागी बना दिया । फलस्वरूप 'प्रेम की पीर' उनके जीवन और काव्य का अनिवार्य अंग बन गयी । 'इश्कलता', 'वियोग-बेलि' और 'सुजानहित' में 'प्रेम की पीर' की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है । कभी कवि सूफी साधकों की भाँति 'प्रेम की पीर' का महत्त्व प्रतिपादित करता है,[२] तो कभी विरहाघात पर अश्रुपात करता है ।[३] उसे ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व में जो प्रेम का अविरल प्रवाह दृष्टिगोचर हो रहा है वह अलौकिक प्रेम के तरंग से ही तरंगायित है ।[४]

रीति-स्वच्छन्द कवियों के काव्य में रहस्यानुभूति की जो झलक मिलती है उस पर सूफी दर्शन का बहुत-कुछ प्रभाव है । घनानन्द के काव्य में आध्यात्मिक गहराई का एक नमूना देखिए—

---

१. (क) 'इकमजाजी है जहाँ इश्कहकीकी खूब ।'—बोधा ग्रन्थावली, पृ० ५४ ।

(ख) 'सुन सुभान यह इश्कमजाजी । जो दृढ़ एक हक्क दिलराजी ।'

—वही : पृ० ५६, छं० ५६ ।

(ग) 'इश्कहकीकी है फुरमाया । बिना मजाबी किसी न पाया ।'

—वही : पृ० ५४, छं० ४० ।

२. 'पल-पल प्रीति बढ़ाय हुवा बेदरद है । आशिक उर पर जान चलाई करद है ।
घनी हुई महबूब सु मरम न छोलिये । आनँद जीवन ज्यान दया कर बोलिये ।
क्यों चितचोर किशोर हुवा बेपीर है । भौंह कमाने तान चलाया तीर है ।'

—घनआनँद ग्रन्थावली (इश्कलता), पृ० १७४ ।

३. 'बदरा बरसै रितु मैं घिरि कै नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं ।'

—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० २६ ।

४. 'ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमड़ि उफनायौ है ।'

—वही : पृ० ३८, छं० ११६ ।

'पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं धरती मैं धसौं की अकासहिं चीरौं ।'[१]

रसखान का प्रेमादर्श भारतीय चोले से सुसज्जित सूफी प्रेम-दर्शन है । उन्होंने आनन्द के दोनों छोर—विषयानन्द और ब्रह्मानन्द को प्रेमानन्द का अनिवार्य अंग माना है ।[२] यही प्रेम का लौकिक और दिव्य रूप है । "लौकिक पक्ष में इनका विरह-निवेदन फारसी-काव्य की वेदना की विवृत्ति से प्रभावित है और अलौकिक पक्ष में सूफियों की प्रेम-पीर से ।"[३] रसखान के काव्य का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि सूफी मत का विधिवत् निरूपण न होने पर भी उनके काव्य-दर्शन पर सूफी-साधना का व्यापक प्रभाव पड़ा है । "उनकी भक्ति का बाहरी स्वरूप भारतीय है किन्तु आत्मा सूफी साधना से रंजित है ।"[४] मनुष्य का खुदा से इश्क करना और स्वयं को उसमें लीन कर देना सूफी मत की आधारशिला है । रसखान भी खुदा के इश्क में 'मैं' और 'तू' का भेद समाप्त करते हुए कहते हैं—

'प्रेम हरी को रूप है त्यौं हरि प्रेम-सरूप ।
एक होई द्वै यौं लसैं ज्यौं सूरज औ धूप ।'[५]

सूफी साधक प्रेम-मार्ग में समस्त सांसारिक सम्बन्धों को त्याग कर अपना ध्यान अलौकिक सत्ता की ओर केन्द्रित कर लेता है । फारसी साहित्य में जो आशिकाना मसनवियाँ हैं उनमें प्रेमी को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है । रसखान के अनुसार भी प्रेम-मार्ग में साधक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ।[६] यह मार्ग अत्यन्त कठिन और अगम है ।[७] स्पष्ट है कि रसखान द्वारा निरूपित प्रेम सूफी साधना से पूर्णतया रंजित है ।

'प्रेम की पीर' की व्यंजना आलम ने भी बड़ी ही मर्मस्पर्शिणी युक्ति से की है । इश्क का दर्द इनके एक-एक काव्य में भरा पाया जाता है । अतः स्वच्छन्द

---

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० १२७ ।
२. 'आनँद अनुभव होत नहिं बिना प्रेम जग जान ।
कै वह विषयानन्द कै ब्रह्मानन्द बखान ।'
—रसखानि ग्रन्थावली, पृ० १०८ ।
३. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली (प्रस्तावना), पृ० १८ ।
४. डॉ० माजिदा असद : रसखान : काव्य तथा भक्ति भावना, पृ० १०९ ।
५. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली (प्रेमवाटिका), पृ० ११० ।
६. वही : पृ० ११० ।
७. वही : पृ० १०६ ।

कवियों ने प्रेम की यह पीर, फारसी-काव्यधारा की वेदना की विवृत्ति के साथ सूफी कवियों से ही ली है, इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता।[1]

'प्रेम की पीर' सूफी कवियों का प्रतिपाद्य विषय है। सूफी कवियों के समान ही रीति-स्वच्छन्द कवियों की भी 'प्रेम की पीर' विलक्षण है। रीतिमुक्त काव्य में प्रेम-वैषम्य, प्रीति की कठोरता एवं जुगुप्साव्यंजक व्यापारों के ग्रहण का मूल-स्रोत फारसी काव्यधारा है, यह असंदिग्ध है क्योंकि इसके पूर्व हिन्दी में ये विचार स्वीकृत नहीं थे।

सूफी तसव्वुफ पूर्णतया इश्क पर आधारित है। जिस प्रकार सूफी प्रेम-पद्धति में 'इश्क' की घोर साधना की गयी है उसी प्रकार रीति-स्वच्छन्द कवियों ने भी 'इश्क' को सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में अंगीकार किया है। प्रसिद्ध सूफी कवि "हाफ़िज' ने कहा है कि 'यदि तुम इतने बड़े ज्ञानी हो कि कुरानमजीद चौदह रिवायतों के साथ तुम्हें कंठस्थ हो तो भी वगैर इश्क के तुम्हारा काम नहीं चलेगा।''[2] 'रसखान' भी कहते हैं कि शास्त्र और क़ुरान पढ़ने से कुछ नहीं होगा, यदि 'इश्क' को नहीं जाना है।[3] फारसी के प्रसिद्ध कवि 'नजीरी' ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है।[4]

फारसी साहित्य में जो इश्कियाँ मसनवियाँ हैं उनमें प्रेमी को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। 'बोधा' ने प्रेम के मार्ग को कराल और तलवार के धार सदृश कहा है।[5] कुछ इसी से मिलती-जुलती बात 'हाफ़िज' ने भी कही थी।[6]

१. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली : वाङ्मुख, पृ० ४०, सं० २००६ वि०।

२. इश्कत रसद बफ़रयाद गर खुद बसान हाफ़िज।
कुरान ज़बर बखवानी बाचार दह रिवायत॥
—अलतकश्शुक अन मुहिम्मातुत तसव्वुफ, पृ० ४१६।

३. सास्त्रन पढ़ि पंडित भये, कै मौलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यौ नहीं, कहा कियौ रसखान॥
—रसखानि ग्रन्थावली, पृ० १०६।

४. किताबे हफ़ते मिल्लतगर बेखवांद आदमी आमी अस्त।
न खुवाद ताज़े जुज़ आशनाई दास्तानीए रा॥
—नफहाते अबीरी शरह दीवाने नजीरी, पृ० १००।

५. अति छीन मृनाल के तारहुँ तें तिहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
× × ×
यह प्रेम को पंथ कराल है जू तरवार की धार पै धावनो है।
—बोधा ग्रन्थावली, पृ० १।

६. बहरीस्त बहरे इश्क कि हीचश किनारा नीस्त।
आजा ज़ज़ा नीके जाय बेसिपारंद चारा नीस्त।
—अलतकश्शुक अन मुहिम्मातुत यसव्वुक, पृ० ४१०।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि रीति-स्वच्छन्द कवि फारसी साहित्य और सूफी प्रेम-पद्धति से केवल प्रभावित ही नहीं थे, वरन् उन्होंने वहाँ से भाव और विचार भी ग्रहण किये हैं।

कृतित्व :

काव्य-वैशिष्ट्य के आधार पर विद्वानों ने हिन्दी काव्य-धारा का विभिन्न कालों में विभाजन तथा उसका नामकरण किया है। लेकिन किसी भी काव्य-धारा को सन्-सम्वत् की अंकगणितीय सीमा में पूर्णरूपेण नहीं बाँधा जा सकता, कारण, कोई भी काव्यधारा न तो एकाएक अस्तित्व में आती है और न तो एकाएक विलीन हो जाती है। रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा का उद्भव भी पूर्व मध्यकाल में हुआ और उसका विकास उत्तर मध्यकाल की सीमा पार कर गया है। विद्वानों ने प्रायः एक स्वर से रसखान, आलम, घनानन्द, बोधा, ठाकुर और 'द्विजदेव' को रीति-स्वच्छन्द कवि माना है जिनका रचनाकाल पूर्वमध्य से उत्तरमध्य के बीच फैला हुआ है। इनमें से रसखान और आलम भक्तिकालीन हैं और शेष रीतिकालीन। रसखान रीतिकालीन स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक कवि हैं [१] और आलम इस धारा के उन्नायकों में से एक।[२]

अतः यहाँ रीतिकालीन स्वच्छन्द कवियों के साथ ही रसखान और आलम के काव्य-वैशिष्ट्य पर भी विचार किया जा रहा है। ऐसा करके पहले के सभी विद्वानों का अनुसरण ही किया जा रहा है और ऐसा न करने पर अध्ययन की पूर्णता से वंचित रहना पड़ता।

———

१. "अपने युग में सम्पूर्ण कृष्ण-भक्ति-काव्य के गेय पदों में रचे जाने की परम्परा होते हुए भी रसखान द्वारा कवित्त और सवैया को अपनाना उनकी स्वच्छन्द वृत्ति का सूचक है। वे किसी परम्परा के बन्धन में नहीं बँधे। उनकी भक्ति किसी साम्प्रदायिक सिद्धान्त में आबद्ध नहीं है। ......उनके काव्य में उनके स्वच्छन्द मन के सहज उद्‌गार हैं। इसलिए उन्हें स्वच्छन्द काव्यधारा का प्रवर्तक कहा जाता है।"
—डॉ० विजयेन्द्र स्नातक : हिन्दी साहित्य का इतिहास, सम्पादक डॉ० नगेन्द्र, पृ० २५४, सन् १६७६ ई०।

२. "आलम स्वच्छन्द कवि थे। स्वच्छन्द काव्य की प्रेरणा विदेशी अर्थात् फारसी की है। पर उसका पर्यवसान भी भारतीय सगुण धारा में हो गया।"
—आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० ६०६, सं० २०१७ वि०।

रसखान

प्रेम-निरूपण :

रसखान का काव्य प्रेम की मधुर और उदात्त अनुभूतियों से ओतप्रोत है। उनका हृदय आजीवन प्रेमानुभूति से द्रवित होकर कृष्ण के चरणों में स्तवन करता रहा। प्रेम की इसी उन्मुक्तता के कारण उन्हें भक्त कवियों में स्थान प्राप्त नहीं हुआ। रीति-मुक्त कवि प्रेम की उदात्तता के लिए प्रेम-विषमता का उद्‌गार सुनाया करते थे। प्रेमी-भक्त रसखान ने प्रेम के उदात्त एवं पुनीत स्वरूप को ही ग्रहण किया है। इसी कारण उनकी 'कुंज लीला' प्रेमी मन के मिलन-भूमि के रूप में प्रस्तुत की गयी है।

हिन्दी काव्य को रसखान की मौलिक देन, उनका प्रेम-दर्शन है। 'प्रेमवाटिका' जैसी छोटी-सी रचना में उन्होंने सूफी प्रेम को भारतीय चोले में सजाया है। वास्तव में सृष्टि का आधार ढाई आखर वाला एक लघु शब्द 'प्रेम' है। इसी प्रेम के अभाव में मानव-जीवन बोझिल हो उठता है और उसकी गतिशीलता समाप्त हो जाती है। "जहाँ एक ओर प्रेम की व्यापकता असीम है वहीं उसका स्वरूप भी अस्पष्ट है। प्रेम का स्वरूप 'इदमित्थं' के रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता, प्रेम एक अनिर्वचनीय अनुभूति है।"[१] रसखान की भक्ति का बाह्य स्वरूप भारतीय है, लेकिन उसकी आत्मा सूफी प्रेम-दर्शन से रंजित है।

रसखान प्रेम के उन्मुक्त गायक थे। उन्होंने परम्परागत प्रेम का पूर्ण रूप से परित्याग किया और अपने हृद्‌गत उन्मुक्त भावों को काव्य में रूपायित किया। "ये अपने को सहज भाव से प्रिय को आत्मसमर्पण कर देते हैं···इनका प्रेम नारी के स्थूल सौन्दर्य तक सीमित न रहा। यह ईश्वर-पर्यन्त ऊँचा उठा और समस्त विश्व का प्रेम, इस ईश्वर-पर्यावसायी प्रेम में समाने लगा।"[२] रसखान का प्रेम लौकिकता से अलौकिकता की ओर उन्मुख दिखाई देता है। उनके काव्य में वर्णित प्रेम का स्वरूप एकपक्षीय नहीं है। यद्यपि वियोग का वर्णन रसखान ने भी किया, लेकिन उनका यह वर्णन घनानन्द की तरह आदि से अन्त तक पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ नहीं है। यहाँ प्रेमिकाएँ कृष्ण को देखकर स्वयं मोहित हैं—

> "जा दिन तें निरख्यौ नँदनन्दन कानि तजी घर बन्धन छूट्यौ।
> चारु बिलोकनि कीनी सुमार सम्हार गई मन मार ने लूट्यौ।
> सागर को सरिता जिमि धावै न रोकी रहै कुल को पुल टूट्यौ।
> मत्त भयौ मन संग फिरै, रसखानि सरूप सुधारस घूट्यौ।"[३]

---

१. डॉ० लीलाधर वियोगी : रसखान भक्त और कवि : पृ० ३०, संस्करण १९७२ ई०।

२. डॉ० मनोहरलाल गौड़ : घनआनंद और स्वच्छन्द काव्यधारा : पृ० २४२।

३. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली, पृ० ८८, संस्करण २०२१ वि०।

यहाँ पर कवि ने बन्धन-मुक्त प्रेम की झाँकी प्रदर्शित की है। इनका प्रेम, संयोग-पक्ष की प्रधानता के कारण लौकिकता के अधिक निकट है।

रसखान प्रेमी-भक्त कवि थे। उन्होंने प्रेम को परमात्मा के समान अनिर्वचनीय, अकथनीय तथा सूक्ष्म एवं आदर्श माना है। उनका प्रेम उसी प्रकार वर्णनातीत है जिस प्रकार परमात्मा। वह गूँगे का मीठा फल है, इसीलिए प्रेम हरि-रूप है। सारा संसार उस इष्ट के अधीन है और वह इष्ट स्वयं प्रेम के अधीन है।[१] "प्रेम के बिना ज्ञान, कर्म और उपासना अहंमूलक होते हैं। प्रेम ही मनुष्य को दृढ़ आस्था प्रदान करता है।"[२] रसखान प्रेमोमंग के गायक कवि थे।

प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने लिखा है कि प्रेम चाहे विषय-वासना-युक्त अशुद्ध हो या परमार्थ-साधक शुद्ध, दोनों ही दशाओं में वह सुखकारी होता है। पहले से क्षणिक भोग-सुख और दूसरे से अक्षय परमानन्द की प्राप्ति होती है। विषयानन्द और ब्रह्मानन्द दोनों विपरीत दिशा के अनुगामी हैं। प्रेम आत्मवेष्टित होने के कारण अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है। पहला सुखाभास है और दूसरा यथार्थ सुख। विषयानन्द प्रेय होने के कारण श्रेयकर नहीं हो सकता, वह कामवासना को उद्दीप्त करता है जब कि ब्रह्मानन्द श्रेयमय प्रेय है।[३]

रसखान ने जिस प्रकार अपने को परम्परागत कवियों से पृथक् रखा, उसी प्रकार भक्त कवियों से भी। इसलिए यदि कोई हृद्‌गत संस्कार और विकास की दृष्टि से उन्हें भक्त कहना चाहे तो कह सकता है, पर वे स्वच्छन्द प्रेमोमंग के उन्मुक्त गायक थे। जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है—

'इक अंगी बिनु कारनहिं इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥'[४]

प्रेम में एकनिष्ठता सच्चे प्रेमी की कसौटी है। वह सहज, साधारण पारिवारिक प्रेम से परे होता है। प्रेम करना कोई सरल कार्य नहीं है। उसकी साधना बहुत कठोर होती है। उसमें प्राण तड़पते हैं, निकलते नहीं। केवल उसाँसें ही चला

---

१. रसखानि रत्नावली, पृ० ६८, छन्द ३६।
२. वही : पृ० ६४, छन्द २५।
३. 'आनँद अनुभव होत नहिं, बिना प्रेम जग जान।
कै वह विषयानन्द कै ब्रह्मानन्द बखान॥
—रसखान रत्नावली, पृ० ६०, छन्द ११।
४. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली, पृ० १०६।

करती हैं।[1] रसखान की दृष्टि में प्रेम के परम-निधि राधा और कृष्ण ही हैं तथा वे ही प्रेम की वाटिका को हरी-भरी रखने वाले माली-मालिन हैं।[2] उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रसखान ने अपने काव्य में जो प्रेम का स्वरूप निरूपित किया है वह उदात्त एवं प्रभविष्णु है। प्रेम का ऐसा सरस, सरल तथा हृदय को छू लेने वाला स्वरूप अन्यत्र दुर्लभ है। वास्तव में इन कवियों का प्रेम, भाव-भावित है, बुद्धि-बोधित नहीं।

सौन्दर्य-बोध :

रसखान का सौन्दर्य-बोध सहृदय-संवेद्य है। उन्होंने कृष्ण के रूप-माधुर्य का प्रभाव-जनित चित्रण अधिक किया है। कृष्ण सौन्दर्य के आलंबन हैं। उनकी रूप-माधुरी पर जड़-चेतन सभी मोहित हैं। कृष्ण का रूप ही रसखान का सर्वस्व है। कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर ब्रज की सारी गोपियाँ मोहित हैं। संध्या समय कृष्ण को मधुवन से आते हुए देखकर उनकी दिन भर की थकान मिट जाती है—"देखि सु आनन को रसखान तज्यौ सब द्यौस को ताप कसाला"।[3] सारे ब्रजमंडल में कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का, कुंडल-ललित एवं गंडस्थल पर क्रीड़ा करती अलक लटों का कोलाहल मचा हुआ है—"रौर परी छवि की ब्रजमंडल कुंडल गंडनि कुंतक केली।"[4] कृष्ण के रूप-सौन्दर्य, मुस्कान-माधुरी तथा मुरली-ध्वनि को लेकर कवि ने बड़ा ही सुन्दर भावाभिव्यंजन किया है।

रसखान स्वयं कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर मोहित थे। कृष्ण के रूप पर रीझ कर ही वे बादशाही खानदान की ठसक को भूल सके थे। उनका भाव-विस्तार अनुभूतिपरक होने के कारण अप्रतिम है। उन्होंने सैकड़ों छन्दों में कृष्ण के रूप-सौन्दर्य और बाँकपन पर गोपियों की आसक्ति को चित्रित किया है।

"कृष्ण की रसयुक्त वाणी को सुनकर तथा सुन्दर वेष को देखकर गोपियाँ अपने शरीर की सुधि भूल गयी हैं। उनकी आँखों से हया शब्द लुप्त हो चुका है। दिवानगी में उनके सर से दधि-पात्र गिर कर विखण्डित हो गया है।"[5] इसी प्रसंग में कवि ने परम्परागत उपमानों के सहारे शरीर के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य का स्थूल चित्रण भी कर डाला है, लेकिन अनुराग प्रभाव से मंडित यह रूप-चित्र परम्परागत सौन्दर्य-बोध से सर्वथा भिन्न है, अपने आप में बेजोड़ है।

---

१. 'प्रेम प्रेम सब कोउ कहै, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस॥'—वही : पृ० ६३, छं० २३।

२. वही : पृ० ५७, छं० १।

३. भवानी शंकर याज्ञिक : रसखान रत्नावली : पृ० ८६।

४. वही ; पृ० ८७।

५. रसखान-रत्नावली : पृ० ६२-६३, छं० ५७।

संयोग :

रसखान के काव्य में राधा-कृष्ण तथा गोपियों के संयोग पक्ष का बड़ा ही मार्मिक तथा आनुभूतिक चित्रण हुआ है। रसखान, राधा-कृष्ण तथा गोपियों के व्याज से अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों तथा जीवनगत संस्कारों को वाणी देने में पूर्णतः सफल हैं। उनके शृङ्गार-निरूपण में कहीं भी भावनाभास तथा रसाभास का दर्शन नहीं होता।[1]

रसखान ने नायिका की वयः सन्धि, प्रीति, उद्वेग आदि का निरूपण अत्यन्त मनोवेग से स्थान-स्थान पर किया है। "नायिका में वयःसन्धि का आगमन हो रहा है, उसकी कमर सुई के समान पतली और नेत्र कटाक्ष-युक्त हो चुके हैं। उसके हृदय के भाव बिजली की तरंगों के समान तरंगित होने लगे हैं, उसके अंग-प्रत्यंग में अनंग की लहरियाँ उठने लगी हैं एवं उरोजों से आभा विकीर्ण होने लगी है। यौवन की इस उमंग को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है कि किसी ने दीपक की बत्ती उकसा दिया है।"[2] इस प्रकार कवि ने नायिका के वयःसन्धि-चित्र में अपनी बिम्बात्मक दृष्टि का परिचय दिया है।

गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में लीन होकर सहज भाव से आत्मसमर्पण कर चुकी हैं। भावों के वेग ने सास-ननद के भय को समाप्त कर दिया है, मन का सत्य संसार के मिथ्या बन्धनों, नियमों तथा मर्यादाओं से ऊपर उठकर स्वच्छन्द भाव से कृष्ण के प्रेम में समाहित होने लगा है। गोपी कहती है कि "हे सखी ! श्री कृष्ण की मुस्कान-माधुरी तो एक क्षण के लिए भी नहीं भूलती है। पलकें यदि एक क्षण के लिए बन्द भी हो जाती हैं तो दूसरे ही क्षण वे कातर वाणी में कृष्ण को पुकार उठती हैं तथा पुतलियाँ वज्रवत् एक स्थान पर स्थिर हैं। उन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे योग-विद्या का संधान कर रही हैं।"[3]

दानलीला प्रसंग में कवि ने संयोग-शृङ्गार की उद्‌भावना गोपी, राधा तथा कृष्ण के माध्यम से की है। एक गोपी अपने मर्म का उद्‌घाटन करती हुई सखी से कहती है कि हे सखी ! आज दधि बेचने के लिए जाते समय कृष्ण ने राह रोककर निर्लज्जता-पूर्वक दान के बहाने मेरे यौवन-रस का पान किया है। मैं अपनी सारी व्यथा तुम्हें

---

१. माजिदा असद : रसखान : काव्य तथा भक्ति-भावना : पृ० ३४४।

२. बाँकी मरोर गही भृगुटीन लगीं अँखिया तिरछानि तिया की।
टाँक सी लाँक भई रसखानि सुदामिनि तैं दुति दूनी हिया की।
सोंहैं तरंग अनंग की अंगनि ओप उरोज उठी छतिया की।
जोबन-जोति सु यों दमकै उकसाई दई मनो बाती दिया की।
—रसखानि ग्रन्थावली : पृ० ५०।

३. रसखानि ग्रन्थावली : पृ० ५५।

कहाँ तक सुनाऊँ, आज मैं अकेली पड़ गयी थी इसलिए उन्होंने जो मेरे साथ किया, वह हमें बहुत अच्छा लगा।[1] रसखान का यह भाव-विधान अत्यन्त सुन्दर है।

रसखान ने संयोग-पक्ष में कृष्ण की बाल-लीला, गोचरण, चीरहरण, रासलीला, वन-लीला, गोरस लीला आदि प्रसंगों को लेकर अनेक मार्मिक उद्भावनाएँ की हैं। उनके काव्य में शृङ्गार रस का विशद परिपाक हुआ है। "इसे वर्णन शैली की विशेषता मात्र कहकर उपेक्षित नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसका मूलभूत सम्बल कवि की भावानुभूति है।"[2]

वियोग :

रसखान ने अपने काव्य में विप्रलंभ शृङ्गार को महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया। उनके काव्य में वास्तविक विरह की उत्पत्ति कृष्ण के मथुरा चले जाने पर हुई। "प्रेम में जितनी तीव्र अनुभूति मिलन में होती है उससे कहीं अधिक विरह में। विरह एक प्रकार से मिलन-काल में विकसित होने वाले प्रेम की गहनता एवं स्थिरता का प्रमाण है।"[3] प्रिय के मथुरा चले जाने पर प्रेमोन्मत्त गोपियाँ कितनी मर्मान्तिक पीड़ा का अनुभव करती हैं, उसको रसखान के अनुभवशील हृदय ने अच्छी तरह पहचाना है। प्रिय के दूर चले जाने पर सुखद स्मृतियाँ प्रायः बेचैन कर देती हैं। इसलिए प्रिया बीते हुए दिनों को पुनः वापस बुला लेना चाहती है। आचार्यों ने विप्रलंभ शृङ्गार के चार प्रकार (पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण) तथा उसकी दस दशाओं (अभिलाषा, चिन्ता, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, स्मृति, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण) की चर्चा किया है। रसखान स्वच्छन्द गायक थे, उनका मन शास्त्रानुधावन में नहीं लगा, फिर भी स्मृति, गुण-कथन, अभिलाषा, चिन्ता, प्रलाप आदि अन्तर्दशाएँ अनायास ही उनके काव्य में चित्रित हो गयी हैं।

पूर्वराग :

प्रिय को देखकर तथा उसके गुणों को सुनकर हृदय में जिस भाव का उदय होता है, उसे पूर्वराग कहते हैं। रसखान के काव्य में पूर्वराग के अनेक चित्र मिलते हैं। कृष्ण के सौन्दर्य को देखकर राधा आत्म-विस्मृत हो जाती हैं। कृष्ण के बिना उनको एक क्षण भी चैन नहीं मिलता। आँखें कृष्ण के बिना जल-हीन मीन की तरह तड़प रही हैं। फिर भी वे अपने नेत्रों को ही दोष देती हैं, क्योंकि उन्होंने ही दलाल की भाँति मन-रूपी मणि का क्रय-विक्रय प्रिय के हाथ कर दिये थे। यथा :

---

१. रसखानि ग्रन्थावली : पृ० ४८।

२. डॉ० जगदीश गुप्त : गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ३२६, संस्करण १९५७ ई०।

३. वही।

"नैन दलालनि चौहटें, मन-मानिक पिय हाथ।
रसखाँ ढोल बजाइकै, बेच्यौ हिय जिय साथ।।"[१]

मान :

रसखान के काव्य में मान का वर्णन अत्यल्प है। वास्तविकता तो यह है कि कवि को मानिनी के मान का कटु अनुभव आजीवन रहा। इसीलिए उन्होंने सखी से नायिका को मान न करने के लिए कहलवाया है—

'पिय सौं तुम मान कर्यौ-कत नागरि आजु कहा किनहूँ सिख दीनी।'[२]

रसखान ने कुब्जा के प्रति गोपियों के ईर्ष्या-भाव में मान की हल्की-सी झाँकी प्रदर्शित की है। कुब्जा को लक्ष्य कर गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण की करतूत को सुनकर हमारा हृदय सैकड़ों खण्डों में विखण्डित हो गया है। हम लोग तो यहाँ हैं, वहाँ पर उसने (कुब्जा ने) न जाने कौन-सा जादू कर दिया है कि कृष्ण लौटने का नाम ही नहीं लेते। उन्होंने जैसा हम लोगों के साथ किया है, वह तो हम लोगों का दिल ही जानता है। सारे ब्रज में लोग यही कहते हैं कि कृष्ण 'चेरी के चेरो' हो गये हैं।[३] यहाँ पर घायल प्रेम, आहत अहं के भाव का उद्घाटन कुब्जा द्वारा कराया गया है। कृष्ण का कुब्जा के साथ प्रेम-भाव दिखाकर इर्ष्यालु मान-भाव की परिकल्पना की गयी है।

प्रवास :

मान की भाँति प्रवास का वर्णन भी इनके काव्य में अत्यल्प है, लेकिन जो वर्णन उन्होंने किया है वह गम्भीर एवं संयत है। उन्होंने परम्परागत कवियों की भाँति दूरारूढ़ कल्पनाओं तथा ऊहात्मक उक्तियों का सहारा नहीं लिया। प्रियतम के प्रवासी हो जाने पर प्रिया निरन्तर प्रिय के आने की राह देखती रहती है तथा जिह्वा प्रिय के गुणों का गान करती रहती है। दिन गिनते-गिनते उँगलियाँ थक गयी हैं, लेकिन प्रिय-आगमन का कोई सगुन नहीं हो रहा है। मनभावन (प्रिय) सावन में ही आने को कह गये थे लेकिन उनकी यह 'औधि' बावन के पग के समान हो गयी है।[४] यहाँ पर रसखान ने नारी-मनोविज्ञान का अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।

---

१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली : पृ० ५६।
२. वही : पृ० ६८।
३. रसखान रत्नावली, पृ० १६०, छं० २४२।
४. 'मन हेरत घूँघरै नैन भए रसना रटि वा गुन गावन की।
अँगुरी गनि हारि थकी सजनी, सगुनौती चलै नहिं पावन की।
पथिकौ कोउ ऐसो जु नाहिं कहैं, सुधियौ रसखानि के आवन की।
मन भावन आवन सावन में कहीं औधि भई डग बावन की।'
—रसखानि ग्रं०, पृ० ११४।

अन्तर्दशाएँ :

यह पहले ही बताया जा चुका है कि इनके काव्य में अन्तर्दशाओं का पूर्ण परिपाक नहीं हुआ है। विप्रलंभ शृङ्गार के अन्तर्गत अन्तर्दशाओं का अपने आप ही आ जाना स्वाभाविक है। रसखान के काव्य में भी कुछ अन्तर्दशाएँ अनायास ही आ गयी हैं, जिनका वर्णन किया जा रहा है।

स्मृति, चिन्ता, अभिलाषा :

वसन्त-आगमन को देख कर सभी के प्रिय अपने-अपने आवास को प्रस्थान करने लगे हैं लेकिन प्रिय कृष्ण मथुरा से वापस नहीं आये। इसे देखकर गोपियाँ उद्विग्न हो उठी हैं और अपनी मनःस्थितियों का उद्घाटन करती हुई कहती हैं कि वसन्त-आगमन को देखकर सभी 'वन-वाटिका' पुष्पों से भर उठे हैं तथा भ्रमर गुंजार करने लगे हैं। कोयल की कूक सुन कर सभी के प्रिय विदेश से प्रस्थान कर चुके हैं लेकिन मेरे प्रिय (कृष्ण) तो इतने निर्मम हैं कि हम लोगों का दुःख वे समझते ही नहीं। इसी कारण अब कोयल की कूक से मेरे हृदय में हूक-सी उठने लगी है।[१]

गुण-कथन :

"कामदेव के समान कृष्ण की सुन्दर छवि आँखों में बस गयी है। उन्होंने जो विश्वासघात किया है उसको तो हम लोग मन-ही-मन सोच कर रह जाती हैं, लेकिन वे विचार कि कृष्ण मथुरा जाकर वापस नहीं आये मन-रूपी दरवाजे पर हमेशा अड़े रहते हैं। कृष्ण का इतना क्रूर व्यवहार होने पर भी हे सखी ! इन कमल के समान नेत्रों में हमेशा जल भरा ही रहता है। इतना ही नहीं, अपने ही हृदय पर अपना वश न होने के कारण अहर्निशि आँसुओं की झड़ी लगी रहती है।"[२] इस प्रकार स्पष्ट है कि विप्रलंभ शृंगार का रसखान ने जो भी न्यूनाधिक मात्रा में वर्णन किया है, वह बड़ा ही प्रभविष्णु है।

अभिव्यंजना-कौशल :

रसखान की काव्य शैली अत्यन्त सरस तथा मधुर है। उन्होंने अपनी वैयक्तिक भावानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए भक्त कवियों की गीति-शैली की परम्परा को तोड़कर कवित्त और सवैया शैली को अपनाया। उनका विषय-प्रतिपादन अत्यन्त ऋजु है। उन्होंने कहीं भी भाव-सम्प्रेषण के लिए अलंकार आदि का सहारा नहीं लिया है, किन्तु कहीं-कहीं उनके काव्य में वचन-भंगिमा, मुहावरे, लाक्षणिकता, अलंकार आदि का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक रूप में मिलता है। उनके काव्य में आये हुए ऐसे स्थल भी अपनी स्वाभाविक सरसता को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं।

---

१. रसखान रत्नावली : पृ० १५५ छं०, २३१।

२. वही : पृ० १०४ छं०, ९३।

'कारे बिसारे को चाहें उतारयो अरे विष बावरे राख लगाइकै'[१] में वचन-भंगिमा का सुन्दर परिपाक हुआ है, किन्तु ऐसे स्थल उनके काव्य में बहुत ही कम हैं। यद्यपि रसखान ने अपने काव्य में कहीं भी मुहावरों का सप्रयास संयोजन नहीं किया है, तथापि उनके काव्य में यत्र-तत्र लोक-प्रचलित मुहावरे स्वतः ही आ गये हैं। 'यह रसखानि दिना द्वै में बात फैलि जैहैं; कहाँ लौ सयानी चंदा हाथन छिपाइबो'[२] में 'हाथों से चाँद छिपाना' बहुत प्रसिद्ध मुहावरा है। लक्षणा को उन्होंने अपने काव्य में कहीं भी स्थान नहीं दिया। यदि भावों के साथ बह कर कहीं लाक्षणिक प्रयोग आ भी गये हैं तो वे अत्यन्त स्वाभाविक हैं—'तान सुनी जिनहीं तबहीं तित लाज विदा करि दीनी'[३] में लाक्षणिक प्रयोग स्पष्ट है।

यों तो प्रयत्न करने पर उनके काव्य में उपमा, रूपक, यमक, सन्देह आदि अलंकारों के उदाहरण कहीं-कहीं प्राप्त हो जाते हैं, लेकिन मुख्य रूप से भाव-सौन्दर्य की वृष्टि करते हुए उनके काव्य में अनुप्रास की ही छटा दृष्टिगत होती है। उनके प्रत्येक छंद में अनुप्रास है लेकिन सप्रयास नहीं। "दोऊ परैं पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैयाँ, उन्हें भूलि गई गैयाँ उन्हें गागर उठाइबो"[४] में अत्यन्त स्वाभाविक अनुप्रास है। इनके छंदों में भावों का ऐसा अनूठा संगुम्फन है कि पाठक का ध्यान चमत्कार की ओर न जाकर भावों पर ही टिका रहता है।

इसी प्रकार भावों के वेग में बहकर कुछ अलंकार भी स्वतः ही उनके काव्य में आ गये हैं। 'द्विरद को रद खैंचि लियो रसखानि हियै महि लाई विचार-सी, लीनी कुठौर लगी लखि तोरि कलंक तमाल तें कीरति डार-सी'[५] में हाथी के दाँतों की उपमा कीर्ति-रूपी डार से दी गयी है क्योंकि कवि-प्रौढ़ोक्ति को दृष्टि में रखकर ही विद्वानों ने यश का रंग उज्ज्वल माना है और हाथी का दाँत भी उज्ज्वल होता है। कलंक को कवि ने हाथी के काले रंगों से उपमा दी है। "मैया की सौं सोच कछु मटकी उतारे को न गोरस को डारे को न चीर-चीर डारे को।"[६] में आया हुआ प्रथम चीर का अर्थ साड़ी और दूसरे का अर्थ चीरना है। अतः यहाँ पर यमक अलंकार है। "हाँसी में हार हर्‍यौं रसखानि जू जो कहुँ नेक तगा टुटि जैहैं"[७] में रसखानि जू कवि के नाम का भी बोधक है और श्री कृष्ण की ओर भी संकेत करता है। इसलिए यहाँ श्लेष का संयोजन है। "खंजन नैन फँदे पिंजड़ा

१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली : पृ० ८७, सं० २०२१ वि०।
२. वही : पृ० ६५।
३. वही : पृ० ५६।
४. वही : पृ० ८४।
५. वही : पृ० ६६।
६. वही : पृ० ४६।
७. वही : पृ० ४८।

छबि नाहि रहे थिर थिर कैसें हू माई।"[1] में खंजन-रूपी नेत्रों को छबि-रूपी पिंजड़े में फँसाकर रूपक लाया गया है।

छंद :

रसखान ने अपने काव्य में दोहा, चौपाई, सवैया यही तीन छन्द मुख्य रूप से प्रयुक्त किये हैं। उसमें भी रसखान सवैया छन्द के लिए ही अधिक प्रसिद्ध हैं। लोग उनके सवैयों से इतने प्रभावित थे कि सवैया सुनाओ के स्थान पर 'रसखान सुनाओ' कहने लगे थे। वास्तव में सवैया छन्द सब छन्दों का राजा है। यह सवैया छन्द प्रारम्भ से ही ब्रजभाषा का लोकप्रिय छन्द रहा है। रसखान के सवैयों में आरोह-अवरोह, आनुप्रासिकता, कोमलकान्तपदावली एवं संगीत माधुर्य का अनूठा संगम है।

रसखान ने न केवल ब्रजभाषा के प्रचलित रूपों को ग्रहण किया, अपितु भक्ति और श्रृङ्गार की जो भावधारा अपने छन्दों में प्रवाहित की, वह प्रभविष्णु है। "सवैयाकार कवियों में रसखान अग्रगण्य माने जाते हैं। उनके रचित सवैयों में रसखान नाम सार्थक हो गया है।"[2] रसखान ने यद्यपि दोहा और कवित्त छन्द का भी प्रयोग किया है लेकिन उनके अक्षयकीर्ति के स्तम्भ सवैया ही हैं। "जो सफलता और विशिष्टता तुलसी, जायसी को दोहा, चौपाई शैली के प्रयोग में प्राप्त हुई है, जो निपुणता दोहे के प्रयोग में बिहारी ने दिखाई, गीति शैली में जो सिद्धहस्तता विद्यापति, सूर और मीराँ को प्राप्त हुई वही सवैया छन्द के प्रयोग में रसखान को प्राप्त हुई।"[3]

वास्तव में रसखान के सवैया छन्द इतने सरस, मधुर तथा हृदयग्राही हैं कि उनको जितना भी उच्च स्थान दिया जाय वह कम है। उनके भक्ति सम्बन्धी सवैया छन्द मार्मिक एवं हृदय को तलस्पर्श करने वाले हैं।

भाषा :

रसखान का भाव-पक्ष, कला-पक्ष की अपेक्षा अधिक सबल है। लेकिन कला-पक्ष को भी उन्होंने शून्य नहीं होने दिया है। भाषा इनकी शुद्ध टकसाली ब्रजभाषा है। उनकी भाषा में भावों की गंभीरता चुस्त अथवा सबल है। शब्दावली गूढ़ भावों की व्यंजना करने में पूर्ण रूप से सहायक है। छन्दों में शब्दों की कसावट तथा सजावट बड़े सुन्दर ढंग से की गयी है। रसखान ने देशज शब्दों से युक्त बोल-चाल की भाषा का अधिक प्रयोग किया है। यदि कहीं पर विदेशी शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया भी है तो उसे ब्रज की संस्कृति में ढालकर। यथा : अवधी के आहि, अस, अबारि आदि, फारसी के महबूब, जाँबाजी, नेजा, तमासो, गदर,

---

१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली : पृ० ५६।
२. डॉ० भवानी शंकर याज्ञिक : रसखान-रत्नावली : पृ० ३८।
३. डॉ० कृष्णदेव झारी : रसखान, पृ० ८६।

गरूर आदि। संस्कृत के आदर्श स्वरूप को ही उन्होंने ग्रहण किया है। यथा : शास्त्रन, वचनामृत, सूछम, कलत्न, मरम, बिस्वास, स्मृतिहि आदि।

रसखान की भाषा सर्वत्र मेघ के समान भावानुभूति की वृष्टि करती रहती है। ऐसा कोई सहृदय व्यक्ति न होगा जो उनकी भाषा और भाव को पढ़-समझ कर आप्लावित न हुआ हो। छंदों में कवि की मार्मिक अनुभूतियों की निश्छल अभिव्यक्ति हुई है तथा माधुर्य और प्रसाद गुण का सहज सामंजस्य है। शब्दों में लघु, ह्रस्व, अनुस्वार तथा अनुनासिक पदों द्वारा अद्भुत कान्ति प्रदर्शित की गयी है। अनुप्रास की छटा से उनके काव्य में कोमलता, सरसता, तारतम्यता, संगीतात्मकता तथा रसमयता के विविध प्रवाह प्रवाहित हैं।

शब्द-शोधन, बिम्ब-ग्रहण एवं चित्रात्मकता की अनूठी छटा भी रसखान के काव्य में देखने योग्य है। इनका बाँसुरी प्रसंग बिम्ब-चित्रों से भरा पड़ा है। कृष्ण की मुरली-ध्वनि सुनकर गोपिकाओं की क्या दशा हुई है, देखिए—

"जल की न घट भरैं मग की न पग धरैं।
घर की न कुछ करैं बैठी भरैं साँसु री॥
एकै सुनि लोट गईं एकै लोट-पोट भईं।
एकनि के दृगनि निकसि आए आँसु री॥
कहैं रसखानि सो सबै ब्रज-बनिता बधि।
बधिक कहाय हाय भई कुलहाँसु री॥"[1]

यहाँ पर कवि ने सरल, सरस शब्दावली के माध्यम से चाक्षुष तथा श्रवण बिम्बों की सफल व्यंजना की है। ऐसे बिम्बात्मक दृश्य रसखान के काव्य में पदे-पदे लक्षित हैं।

'दानलीला' प्रसंग में वचनवक्रता तथा राधा-कृष्ण के संवादों की नाटकीयता भाषा में चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं। कृष्ण अन्य गोपियों की तरह राधा से भी दान लेते समय छेड़-छाड़ करते हैं। इस पर राधा कह उठती हैं :—

श्री राधिका-गारी के देवैया बनवारी तुम कहाँ कौन,
हम तौ बृषभान की कुमारी सब जानो है॥[2]
श्री कृष्ण-एरी कहा वृषभानपुरा की, तौ दान दियैं बिन जान न पैहौ।[3]

रसखान पर 'सूर' का प्रभाव स्पष्ट है। उनके छन्दों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने 'सूर' का पदानुगमन अवश्य किया है। इस प्रकार परम्परा का पालन भी स्थान-स्थान पर अनायास ही हो गया है। "रसखान की

१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली : पृ० ५१।
२. वही : पृ० १०२।
३. वही : पृ० १०२।

काव्य-भाषा शुद्ध, परिमार्जित एवं साहित्यिक ब्रज है। माधुर्य एवं प्रसाद गुण के सहज समावेश ने उनकी काव्य-भाषा को अत्यन्त सरस और सजीव बना दिया है। विभिन्न लाक्षणिक प्रयोगों के कारण इसमें जो चुटीलापन आ गया है, उससे इसकी अर्थवत्ता और बढ़ गयी है। शब्द चमत्कार से मुक्त रह कर रसखान ने सिद्ध कर दिया है कि सरस और स्वाभाविक भाषा में रचित काव्य सहृदयों के हृदय को अधिक आनन्द प्रदान कर सकता है। अलंकार-मोह का उनके काव्य में सर्वथा अभाव है।"[1] निःसन्देह रसखान की भाषा में ब्रजभाषा का आदर्शतम रूप विद्यमान है।

———

१. डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २४५, संस्करण १९७६ ई०

आलम

प्रेम-निरूपण :

आलम के काव्य में वर्णित प्रेम का स्वरूप दो प्रकार का है—परिणीत और अपरिणीत। मुक्तक काव्य-कृति 'आलम-केलि' में अपरिणीत तथा 'माधवानल कामकन्दला', 'श्याम सनेही' में परिणीत प्रकार का प्रेम व्यंजित है। यद्यपि उनके प्रबन्ध काव्यों में प्रेम का पर्यवसान प्रेमियों के पाणिग्रहण में होता है, तथापि उसकी कथा उन्मुक्त प्रेम से सम्बन्धित है। प्रेमी-प्रेमिका पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं है। 'आलम-केलि' में कुछ छंद परम्परागत अवश्य हैं पर कुछ छंदों में उन्मुक्त प्रेम-भाव की कसावट अप्रतिम है। 'प्रेम तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना रसखान और घनानन्द की कोटि में होनी चाहिए।'[१] वास्तव में उनके काव्य में प्रेम की ऐसी उन्मादयुक्त उक्तियाँ प्राप्त होती हैं, जिसे पढ़ कर पाठक भाव-विभोर हो उठता है। आलम की प्रेम-व्यंजना उभयपक्षीय है, जहाँ पर प्रिय के न देखने तथा देखते रहने पर भी विषाद बना रहता है। प्रिय के समक्ष रहने पर नेत्र उन्हें टकटकी लगाकर देखते रहते हैं और दूर चले जाने पर निर्निमेष बने रहते हैं। इसलिए सुखी तो प्रिय ही है जिसे दूसरों की चिन्ता नहीं है।[२] उनके प्रेम में आदि से अन्त तक अभिलाषा की प्रधानता विद्यमान है।

कवि का प्रेम ही सम्बल है। उसने उसी का रूपायन अपनी काव्य-कृतियों में किया है। वह सच्चे प्रेम में सर्वस्व न्यौछावर करने को कहता है जिसमें कपट का पट बिलकुल नहीं होता, सब कुछ गुप्त या प्रकट आँखों से ही प्रकट हो जाया करता है। अर्थात् गुप्त या प्रकट भावों की पहचान प्रेमी दृष्टि कर ही लेती है।[३] "प्रेम की दुनिया बड़ी विचित्र होती है। उसमें मन जब एक बार उलझ जाता है, तब वह रूप-अरूप का विचार नहीं करता। प्रेमी चकोर रात-दिन का विचार किये बिना ही अपने प्रिय चन्द्रमा को एकटक देखता रहता है। इतना ही नहीं उसे अपने प्रिय (चन्द्रमा) के अभाव में दिन का प्रकाश भी अन्धकार-सा प्रतीत होता है। काँटों की कटुता की परवाह किये बिना ही पुष्प-प्रेमी भ्रमर पुष्प-बेलि के पास जाता है। वास्तव में प्रेम भी कँटीली पुष्प-बेलि के समान होता है जिसको प्राप्त करने के लिए प्रेमी को उसके काँटों (दुःख और अनेक झंझावातों) की परवाह नहीं रहती, जो गोपी कृष्ण को

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २२७, सं० २०३५ वि०।

२. आलम-केलि, पृ० ७८, छं० १८५।

३. आलम ऐसी प्रीति पर, सरबस दीजै वारि।
गुप्त प्रगट अँखियन मिलै, दियै कपट पट डारि।
—आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० ६१७।

काला कहती है वह गवाँर-सी लगती है। जिसे कृष्ण प्रिय हैं उसे उनकी श्यामलता भी उज्ज्वल प्रतीत होती है। जहाँ मन का लगाव होता है वहाँ रूप का कोई विचार नहीं होता। रीझ की बूझ कुछ विलक्षण होती है।"[1] यहाँ पर कवि के अनुभवनिष्ठ व्यक्तिगत प्रेम की सुष्ठु झाँकी प्रस्तुत की गयी है। "ये प्रेमोन्माद के कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार रचना करते थे, इसी से इनकी रचनाओं में हृदयतत्त्व की प्रधानता है। 'प्रेम की पीर' और 'इश्क का दर्द' उनके एक-एक वाक्य में भरा पाया जाता है।"[2] 'सूफ़ियों का मूल सिद्धान्त ही प्रेम है। उनके लिए प्रेम ही सब कुछ है। प्रेम ही मुक्ति का मार्ग है।'[3]

आलम का सम्पूर्ण काव्य प्रेम-रूपी जलप्लावन की धार से आप्लावित होता हुआ दिखाई देता है। प्रेम चाहे वात्सल्य हो अथवा प्रौढ़ावस्था का उसमें भाव अपने चरमोत्कर्ष पर व्यंजित होता दिखाई देता है। वात्सल्य रति में भाव साधारण होते हुए भी अभिव्यंजना कौशल प्रभविष्णु है।[4] प्रेम में अभिलाषा और लज्जा की आन्तरिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण उत्पन्न उद्वेग का कवि को अच्छा ज्ञान है। "प्रिय के समक्ष होने पर भी पूर्णरूप से दर्शन नहीं हो पा रहा है क्योंकि सर झुका हुआ है। जब वे बाँसुरी बजाते हैं तो मन बाहर जाने को उद्यत हो उठता है लेकिन तत्काल शरीर विकंपित हो उठता है तथा लज्जा के कारण नेत्र भी भाग नहीं ले पाते। इस प्रकार एक साथ रहने पर भी जीवन विषाद-युक्त ही बना रहता है।"[5]

दो हृदयों के महामिलन से प्रेम-रस का संचार होता है तथा जीवन में सजीवता आती है। प्रेमी, प्रिय के प्रेम में सर्वाङ्ग डूब कर ही संसार की नाना वस्तुओं का आनन्द लेता है। प्रेम में एक स्थिति ऐसी भी आती है जब प्रेमी को प्रिय के आनन्दातिरेक के समक्ष संसार का सारा सुख-साधन शून्य जान पड़ता है और वह संसार-सुख की अतुल राशि को प्रिय में ही देखने लगता है। ऐसा प्रेम की चरम परणति में ही होता है। आलम की मुक्तक रचना 'आलम-केलि' में प्रेम का यही स्वरूप मिलता है।

मनुष्य वही है जिसके हृदय में प्रेम हो। प्रेम-पूर्ण शरीर अमर होता है। वह तप्त स्वर्ण के समान है, उसे अग्नि और जल प्रभावित नहीं कर सकते और वही व्यक्ति ब्रह्मज्ञान का भी अधिकारी होता है।[6] प्रेम के अभाव में शरीर अन्धकार-युक्त कूप के

---

१. आलम-केलि, पृ० ६२, ६३, १४८।
२. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २२७, सं० २०३५ वि०।
३. डॉ० रामकुमारी मिश्र : आलमकृत माधवानल कामकन्दला, पृ० २६, संस्करण १६८२ ई०।
४. आलम-केलि, पृ० २, छं० ४।
५. वही : पृ० ८०, छं० ६०।
६. माधवानल कामकन्दला, पृ० ७७।

समान है जिसमें बिना प्रेम-रूपी दीपक के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कुछ दिखाई नहीं देता।[1] वास्तविक प्रेम तो पतंगा करता है जो प्रेमी दीपक को देखते ही उस पर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर वियोग के संताप से मुक्त हो लेता है।[2] प्रेमी प्रिय के प्रेम में सर्वाङ्ग डूब कर संसारी कार्यों से विरक्त हो जाता है तथा अपने को जीवों के एक छोटे-से संसार में बन्द कर लेता है।

आलम की काव्य-कृतियों में ऐकान्तिक प्रेम के अतिरिक्त लोक-गृहीत प्रेम का भी रूपायन हुआ है। 'श्यामसनेही' में कवि ने कृष्ण और सुदामा की मित्रता का बड़ा आह्लादक चित्र प्रस्तुत किया है। दोनों प्रबन्ध काव्यों में झंझावातों की उग्रता दिखा-कर प्रेम की पुष्टि की गयी है। "इस प्रकार प्रबन्धों में लोकोपकारी तथा मुक्तकों में अनुभूतिमय दोनों प्रकार के प्रेम को कवि आलम प्रेम-भाव की व्यापक पूर्णता के साथ हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं।"[3]

सौन्दर्य-बोध :

आलम रीतिमुक्त शृङ्गारी कवि थे। उन्होंने अपनी मुक्तक रचनाओं में नायिका के रूप-सौन्दर्य को तथा प्रबन्ध कृतियों में माधवानल, रुक्मिणी तथा कृष्ण के व्याज से अपने हृद्गत रूप-लिप्सा को चित्रांकित किया है। यद्यपि आलम का दृष्टिकोण रीतिबद्ध कवियों के समान नायिका के अंग-प्रत्यंग को एक-एक उक्ति में पिरोना नहीं था, लेकिन कहीं-कहीं अपवाद रूप में नायिका के नेत्रों का चित्रण उन्होंने स्वतन्त्र रूप से किया है। एक छंद में उन्होंने नायिका के नेत्रों के सौन्दर्य में समुद्र-मंथन से निकले चौदह रत्नों की कल्पना की है।[4]

नायिका के सौन्दर्य-निरूपण में उन्होंने कहीं पर कोई उपमान न्यौछावर किया है तो कहीं पर तिरस्कृत। नायिका की रसयुक्त वाणी, अंगों की आभा, कटि की क्षीणता, वेणी, बिखरी अलकावलियाँ, रूठना, अलंकरण, आँख, दाँत, नाक आदि सभी पर उन्होंने दृष्टिपात किया है।[5] ऐसे स्थलों पर कवि की स्वच्छन्द दृष्टि कुछ धूमिल-सी हो गयी है, क्योंकि रूप का भावप्रवण चित्रण इन स्थलों पर प्रायः नहीं हो पाया है। लेकिन जहाँ पर कवि ने सौन्दर्याङ्कन में भावुकता का सहारा लिया है वहाँ रूप में प्रायः निखार-सा आ गया है। एक स्थल पर कवि ने नायिका की प्रतिक्षण

---

१. माधवानल कामकन्दला, पृ० ७७।

२. वही : पृ० ४१।

३. डॉ० मनोहर लाल गौड़ : घनानन्द और स्वच्छन्द काव्य-धारा, पृ० २६३ द्वितीय संस्करण, सं० २०२६ वि०।

४. आलम-केलि : पृ० १५, छं० ३४।

५. वही : छन्द, २६, ६४, ८१, ३४४ तथा ३६१।

परिवर्तित देहद्युति का रूपांकन अत्यन्त तन्मयता से किया है । नायिका का सौन्दर्य विमोहित करने वाला है । उसके प्रत्येक क्रिया-व्यापार से नवीन कान्ति छलकी-सी पड़ती है । देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव ने उसे बड़े मनोवेग से सृजित किया है ।[१]

आलम ने वृषभानु-नंदिनी राधा का रूपांकन करते समय अत्यन्त सहृदयता का परिचय दिया है । उनका कहना है कि 'राधा मालती की माला के समान स्वच्छ एवं सौरभ-युक्त है तथा किसलय, कुसुम के समान कोमल एवं श्रेष्ठ पद्मिनी जाति की है । उनके खुले हुए सुगंधित केश मुक्ता-माला के सदृश हैं ऐसी अल्पवय राधा को देखकर हृदय शीतलता का अनुभव करता है । वे कमल-कलिका के समान ऐसी सुकुमार हैं कि स्पर्श करते ही मलीन हो जाती हैं ।'[२] ऐसी नवांगना राधा को देखकर कृष्ण केवल मुग्ध ही नहीं होते वरन् ऐसा रीझ जाते हैं कि उनका हृदय भी दो टूक हो जाता है ।[३] ऐसे स्थल कवि की अन्वेषक दृष्टि के परिचायक हैं । उन्होंने स्थान-स्थान पर रूप के प्रभाव, आकर्षण, रमणीयता का सरस चित्रण किया है जो कवि के स्वच्छन्द दृष्टि का परिचायक है ।

संयोग :

आलम के काव्य का मुख्य वर्ण्य-विषय प्रेम और श्रृङ्गार है । उसमें भी कवि की मूल प्रवृत्ति प्रेम-निरूपण की है । आलम ने गोपी-कृष्ण के माध्यम से प्रेम-संयोग का निरूपण किया है, वह सूक्ष्म, सरस एवं मधुर है । स्थान-स्थान पर आलम ने ब्रज के अनुरागमय वातावरण तथा कृष्ण की शरारतों का बड़ा ही मार्मिक तथा प्रभविष्णु चित्र प्रस्तुत किया है । उक्तियों को हृदयग्राही बनाने के लिए कवि ने सूक्ष्म कल्पना का सहारा लिया है । "इस भावधारा के सभी श्रृङ्गारी कवियों की भाँति उनकी भी कविताओं का मूल स्वर प्रेमोन्माद तथा प्रेम तन्मयता ही है ।"[४] आलम के काव्य में संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सम्यक् निरूपण हुआ है । आलम ने प्रथम दर्शन-जन्य प्रेम-चित्रण से संयोग पक्ष का प्रारम्भ किया है जो अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है। उनके वर्णनों में भावों का उत्कर्ष चरम-सीमा पर पहुँच गया है । नायिका नायक के अप्रतिम रूप-सौन्दर्य को अपने नेत्र-रूपी आँचल में बाँधना चाहती है लेकिन प्रेम की चिकनाहट के कारण बंधन बार-बार ढीला हो जाता है । मन और नेह दोनों अमूर्त

---

१. आलम-केलि, पृ० ८, छं० १७ ।

२. लाला भगवानदीन : आलम-केलि, छन्द : १९; ७६ ।

३. 'सिसुता की सानी बसै रूप की जुन्हाई जैसे,
आधे ही निहार नैना आधे आध कै गई ।'—वही : पृ० २७, छं० ६२ ।

४. डॉ० रामफेर त्रिपाठी : रीतिमुक्त कवि : नया परिदृश्य, पृ० २४, संस्करण १९८२ ई० ।

हैं और उन्हें कवि ने मूर्त रूप देने की चेष्टा की है। मन को बाँधना जहाँ एक ओर उसके वशीभूत होने का द्योतक है, वहीं दूसरी ओर मन जैसे सूक्ष्म वस्तु के क्रिया-कलाप को रूपायित करना कवि की सूझ-बूझ और उसकी कल्पना की प्रौढ़ता का द्योतक है। चिकने-से नेह में श्लेष अलंकार है लेकिन यहाँ पर कवि की दृष्टि चमत्कार पर नहीं है।[१]

रीतिमुक्त कवियों ने प्रेम के स्वरूप का निरूपण करते समय प्रेम की मार्मिकता का विश्लेषण सर्वथा नूतन पद्धति से किया है और रीतिबद्ध रचनाकारों की तुलना में उनका प्रेम-विषयक चित्रण परम्परामुक्त है। यद्यपि प्रेम-चित्रों की रचना में आलम ने वर्ण्य-विषय वही ग्रहण किया है जो रीतिबद्ध कवियों का था किन्तु उनके प्रेम-चित्रों में कल्पना का रंग नितान्त अनूठा और मौलिक है। आलम के प्रेम-विषयक छन्दों से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमभाव की व्यंजना को अधिक मार्मिक बनाने में उन्होंने किस प्रकार उक्ति-वक्रता का सहारा लिया है। यथा—गोपिका दूध दुहाने के बहाने कृष्ण का चक्षुदर्शन करने गयी है। कृष्ण का मन भी मोहित हो गया है। फलतः दोनों ही देह और गेह की सुधि भूल गये। इस ऐकान्तिक प्रेम में दोनों प्रेमी और प्रेमिका सर्वाङ्ग डूब गये हैं। यहाँ पर कवि ने प्रेम की चरम परिणति दिखाई है। सखी नायिका से कहती है कि तुम्हारे सेवार के समान खुले हुए बालों के बीच से तुम्हारे आधे मुख को देखकर कृष्ण का हृदय आधोआध हो गया है। उनके मुख से बात नहीं निकलती, होठ सूखता जाता है।[२] मन का आधोआध हो जाना कवि की गहरी प्रेम-तन्मयता तथा सूझ-बूझ का सूचक है और साथ ही, अर्थ-गर्भित भी है। वास्तव में इन कवियों पर फारसी काव्य-परम्परा की अमिट छाप है परन्तु फारसी की चमत्कारमूलक अतिशयता इन कवियों ने नहीं ग्रहण की। आलम का प्रेम-विषयक यह चित्र उनकी सहज चित्रण शैली का ज्वलंत उदाहरण है।

---

१. प्यारी पिय दोऊ पहिली ही पहचानि भये,
प्रान जनु पाये ज्यों-ज्यों राति नियराति है।
आलम सकुचि लग-लोगनि की लागी रहै।
दूरि-दूरि देखें डीठि कैसे कै अघाति है।
लाज हू की ठौर तिहि ठौर है सचेत,
इत कोर हूँ सों जोरि नैन सखी मुसकाति है।
बाँधति दृगंचलनि बीच कनु मानों चलि,
चिकने से नेह गाँठि छूटि-छूटि जाति है।
—आलम-केलि, पृ० २३, छं० ५३।

२. आलम-केलि, पृ० २०, छं० ४७।

शृङ्गारिक परिवेश में प्रेम तत्त्व के गायक आलम ने प्रेम-विह्वल गोपिका का निरूपण करते समय बड़ी दिव्य और मौलिक सूझ-बूझ का परिचय दिया है। उक्ति में वक्रता और भावों की तन्मयता है। उन्होंने एक छंद में गोपी के विस्मृति-जन्य प्रेम-भाव का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है। ऐसी मनोवैज्ञानिक उक्तियों में प्रेम अपने चरम सीमा पर पहुँच गया है। आलम ने रीति-जन्य विस्मृति का भाव तथा प्रेम की विविध भंगिमाओं का चित्रण इतनी गहराई और तन्मयता से किया है कि वह मनोविज्ञान की कसौटी पर सर्वथा खरा उतरता है।[1]

आलम ने राधा-कन्हाई की ओट लेकर यौवन की उमंग में कहीं-कहीं घोर शृंगारिक चित्र भी प्रस्तुत किया है। ऐसे स्थलों पर कवि की हृद्गत स्वच्छन्दता खुल कर मुखरित हुई है।[2] उनकी वर्णन-शैली में निजीपन की झलक है तथा उनकी उन्माद-युक्तउक्तियों में स्वाभाविकता मर्मवेधक है।

वियोग :

रीतिस्वच्छन्द कवि आलम ने प्रेम में होने वाले वियोग का बड़ा ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। यद्यपि उनके विरह-वर्णन में व्यक्तिनिष्ठता का अभाव-सा दिखाई देता है तथापि कहीं-कहीं पर उनकी विरह-युक्त चुभती हुई भावपूर्ण उक्तियाँ बड़ी अनूठी बन पड़ी हैं। उन्होंने विरह में होने वाली अन्तर्दशाओं का वर्णन शास्त्रीय पद्धति पर तो नहीं, किया है लेकिन भावातिरेक के कारण प्रायः सभी अन्तर्दशाएँ उनके काव्य में व्यंजित हो गयी हैं।

पूर्वराग :

आलम ने कामकन्दला के व्याज से वियोग-दशा का जो वर्णन किया है वह अपने आप में बेजोड़ है। नायक के गुण-कथन को सुनकर नायिका के हृदय में प्रेम का अंकुरण हो चुका है, अब उसके प्राण प्रिय को बिना देखे एक क्षण भी धैर्य धारण नहीं कर रहे हैं—

> 'बिन देखे अकुलाहिं, प्रान नहीं धीरज रहहिं,
> निस दिन भीजहिं चीर, नैना ही के नीरहि।'[3]

मान :

मान के प्रसंग में आलम कवि ने प्रकृति के परिवर्तित व्यापारों का आधार ग्रहण करके परम्परामुक्त चित्रों की जैसी मार्मिक उद्भावना की है, वह निश्चय ही श्लाघ्य एवं प्रशंसनीय है। इस सन्दर्भ में प्रस्तुत छन्द द्रष्टव्य है—

---

१. आलम केलि : पृ० ६४, छं० १५२।

२. लाला भगवानदीन : आलम-केलि, पृ० २३, २४।

३. डॉ० रामकुमारी मिश्र : माधवानल कामकन्दला, पृ० ८, संस्करण १९८२ ई०।

'मानिनी अनमनी ह्वै मौनी को सो मौन गह्यो,
मानो कहूँ मन गयो तेरे मन माँह सों।
रारि सों मुरारि बैठे हारी मनुहारि कै तू,
नारि यों निवारि आरि जोरि बाँह-बाँह सों।'[१]

प्रवास :

प्रवास-काल वियोगिनियों के लिये बहुत दुःखद और हृदय-विदारक होता है। अतः ऐसे समय पर प्रकृति के समस्त सुखद व्यापार उनके मन की रही-सही शक्ति को क्षीण कर देते हैं। एक तो वह काम से पीड़ित रहती है, दूसरे पवन आदि का प्रवेश उसे विषाद-बाण के समान बेध देता है। आलम ने इसी भाव की अभिव्यक्ति निम्नांकित पंक्तियों में की है—

'बारक जो ब्रजराज ब्रज तज्यो जब अब, सब मिलि एक बार बैरी भयो बरज्यों।
मूरख मयूख-हिम हुमकि-हुमकि हनै, हमहि यै जानै हिय हौं मैं हिमकर ज्यों।
× × × ×
एक मनु मारे मैं तो मार ही की मारी मरौं, दूजे मारे मरुत प्रवेश विष सर ज्यों।'[२]

करुण :

आलम ने अपनी प्रतिभा-प्रगलभता द्वारा करुण-वियोग की भी उद्भावना की है। प्रिय के वियोग में नायिका आँसुओं से भीगते हुए पसीज रही है और शनैः-शनैः क्षीण होती जा रही है, यही नहीं उसकी स्वर्णलता जैसी देह नमक की भाँति किस प्रकार गल रही है उसकी हृदय-विदारक अभिव्यक्ति कवि ने बड़ी सूझ-बूझ से की है।[३]

अन्तर्दशाएँ :

अभिलाषा : वियोग के समय प्रिय के सम्बन्ध में अनेक भावनाएँ उठा करती हैं। कभी-कभी प्रिय-मिलन के सम्बन्ध में बड़ी उदात्त भावनाएँ जागृत होती हैं जिसमें प्रियतम के लिए आत्मोत्सर्ग और आत्म-समर्पण की प्रवृत्ति बहुत कुछ उभर कर व्यक्त होती है। आलम ने इसी उदात्त भाव की अभिव्यक्ति अभिलाषा के अन्तर्गत की है। विरहिणी ईश्वर से कामना करती है कि हे ईश्वर! मेरी इन आँखों को पंख का वर दे दीजिये जिससे वे प्रियतम का दर्शन उड़कर कर सकें।[४]

---

१. लाला भगवानदीन : आलम-केलि, पृ० १८।
२. वही : पृ० १०१।
३. वही : पृ० ४४, छं० १०४।
४. माधवानल-कामकन्दला, पृ० ७९, छंद १०८।

चिन्ता :

वियोग में प्रिय-मिलन के बाद ऐसी भी स्थिति आती है कि अपना ही मन अपने वश में नहीं रह पाता, पलकें नहीं लगतीं, नेत्र खुले रहते हैं और रोम-रोम में कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है जो सारे अंग को जला डालती है।[1]

स्मृति :

अतीत की स्मृति से कभी-कभी कवि का भावुक एवं संवेदनशील हृदय इतना उद्वेलित हो उठता है कि वह अपनी सुधि-बुधि तक खो बैठता है। वियोगिनी राधा, कृष्ण के वियोग में मिलनावस्था के समस्त मधुर क्षणों को स्मरण करते हुए कह रही हैं कि हे कृष्ण ! जिन कुंजों में तुम्हारे साथ केलि की थी, उसका स्मरण आते ही मैं अपना सिर पीट लेती हूँ; उन स्थलों पर बैठ कर, चिन्ता-मग्न होकर छोटी-छोटी कंकरियाँ चुना करती हूँ। आज आपकी केवल कहानी सुन रहे हैं; लेकिन कभी ऐसा भी अवसर मिला था जबकि आप मेरे नेत्रों में बिहार करते थे।[2]

उन्माद : प्रलाप :

रीतिमुक्त कवि आलम ने फारसी काव्य-परम्परा के मुबालगा (अतिशयोक्ति) के दोषों से बचते हुए सहज और भावपूर्ण चित्रण किया है। "अभिलाषा का आधिक्य ही उन्माद एवं प्रलाप को जन्म देता है।"[3] "आलम-केलि" में कवि ने अनेक स्थलों पर हृदय की उदासीनता, भावुक मन की अकुलाहट का बड़ा ही सुन्दर चित्र अंकित किया है।[4]

उद्वेग :

आलम ने अपने मुक्तकों में आसन्न विरह से व्यथित प्रेमिका का जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त सजीव एवं मर्मस्पर्शी है। प्रवास के पूर्व जब प्रिय अपनी प्रिया को आलिंगन-पाश में आबद्ध कर लेता है तब वह अपना मस्तक नीचा कर लेती है। प्रिय के बार-बार अनुरोध पर वह अपना सर ऊँचा करती है, लेकिन ज्यों ही प्रिय के मुख को देखती है उसके नेत्रों से दो अश्रु-बिन्दु कपोलों पर ढुलक पड़ते हैं।[5] जिस समय उसका प्रिय प्रवास-विदा का प्रस्ताव रखता है, प्रेमिका के प्राण उसके हाथ में

---

१. आलम-केलि, पृ० ५६, छंद १४१।

२. आलम-केलि, पृ० ४।

३. डॉ० सुखस्वरूप श्रीवास्तव : रीतिकाव्य में श्रृंगार निरूपण : पृ० ७०, संस्करण १६७८ ई०।

४. आलम केलि : पृ० ४४, छन्द १०२।

५. वही : पृ० ५८, छन्द १३६।

६. वही : पृ० ६६-६७, छंद १५८।

नहीं रहते ।[१] मौलिक दृष्टि से उसका प्रसंग वियोग का नहीं है क्योंकि प्रिय उसके पास ही हैं, लेकिन भावी वियोग से व्यथित नायिका के उद्वेग-दशा का यह अत्यन्त मार्मिक चित्रण है जो वियोग का ही अनुभव कराता है ।

व्याधि, जड़ता :

चिर वियोग की दशा में किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति पैदा हो जाती है जो जड़ता को जन्म देती है । आलम ने इस स्थिति का चित्रण किया है । मिलन की लालसा, प्रिय से मिलन का न होना और प्रणय-प्रसंगों का स्मृति-पटल पर बार-बार उभरना प्रेमी को विक्षिप्त किये रहता है । तंत्र-मंत्र के जब सभी उपाय असफल हो जाते हैं तो उसके पास आह भरने के अतिरिक्त कोई चारा नही रह जाता ।[२]

मरण :

यद्यपि काव्य में अमंगल वर्णन वर्जित है तथापि आलम ने मरणावस्था का भी वर्णन अपनी प्रतिभा-प्रगल्भता द्वारा बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है । यह वियोग-जन्य पीड़ा की चरमावस्था है । जब सच्चा प्रेमी प्रिय के सम्बन्ध में कोई अशुभ समाचार सुनता है तो वह मरण को वरण करने में ही शान्ति का अनुभव करता है । "माधवानल कामकंदला" में ऐसा ही एक प्रसंग है जब कंदला द्वारा माधव के वियोग में प्राण त्याग दिया गया । इस समाचार से माधव पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है और तुरन्त प्राण-त्याग देता है ।[३]

अभिव्यंजना-कौशल :

आलम ने कलापक्ष को अन्य कवियों से अधिक महत्त्व प्रदान किया है, लेकिन वे उसके उपजीवी नहीं थे । उन्होंने अपने भावों की संवेद्यता को बनाये रखने के लिए शिल्पगत प्रसाधनों की उपेक्षा न कर उसे ग्रहण किया है लेकिन उन्होंने कलागत अलंकरणों को उतना ही ग्रहण किया है जितना कि उनकी कविता-कामिनी वहन कर सकती थी ।

भाषा की पुष्टता पर विश्वास रखने वाले कवि आलम ने अपने प्रबन्ध काव्यों में अत्यन्त सरल एवं सहज शैली के विधान द्वारा प्रबन्धगत सभी तत्त्वों का संगुम्फन किया है । इन कथा काव्यों में कवि की असाधारण काव्य-प्रतिभा मुखरित हुई है । उनके काव्य में आये हुए अलंकार उनके भाव एवं भाषा की पुष्टता को आलोकित करते हैं ।

आलम ने अपने काव्य में भाव एवं भाषा दोनों पक्षों को आलंकारिक रमणीयता प्रदान करने की पूरी चेष्टा की है । कवि को शब्दालंकारों में अनुप्रास और

१. आलम-केलि, पृ० ८३, छंद १५७ ।
२. लाला भगवानदीन : आलम-केलि, पृ० १९, छंद ४३. ।
३. डॉ० रामकुमारी मिश्र : माधवानल कामकन्दला, पृ० ९०-९१ ।

अर्थालंकारों में उत्प्रेक्षा विशेष प्रिय जान पड़ता है। अनुप्रास उनके काव्य में पदे-पदे लक्षित होता है।[1] उत्प्रेक्षालंकारों का प्रयोग कवि ने अधिकांशतः शृंगारिक परिवेश में ही किया है, लेकिन उनके काव्य में आयी हुई उत्प्रेक्षाएँ प्रसंगानुकूल हैं।[2] उनकी औपम्यमूलक दृष्टि भी सहज सौन्दर्य की अनुगामिनी है। यथा 'चन्दन चढ़ाये चन्द चाँदनी-सी छाई रही, चन्द्रमा-सी मुख छबि, हाँसी चन्द्रिका-सी है।'[3] इन अलंकारों के अतिरिक्त उनके काव्य में प्रसंगानुकूल यमक, रूपक, अतिशयोक्ति, उदाहरण, दृष्टान्त, व्यतिरेक, प्रतीक आदि अलंकारों के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। आलम की इस आलंकारिक वृत्ति को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अलंकारों के प्रति उनका विशेष आग्रह न होते हुए भी उनकी रुचि इस ओर अवश्य थी। "वे अलंकार-प्राण कवि न होते हुए भी अलंकारों की महत्ता और उपयोगिता पर विश्वास रखते थे।"[4]

आलम ने अभिव्यंजना-कौशल को अधिक सप्राण बनाने के लिए लोकोक्ति एवं मुहावरों का भी प्रयोग किया है—डीठि लाई, डीठि दई, ब्याह को बिहान, जी के लाले पड़ना, अबेर-सबेर आदि।

छन्द :

"आलम" का छन्द-विधान सेनापति, पद्माकर आदि कवियों जैसा बहुत उत्तम एवं सुगठित नहीं है। उनकी रचनाओं में कवित्त, सवैया, चौपाई, दोहा का अधिक प्रयोग हुआ है। उनके काव्य में अपवादस्वरूप दो छप्पय भी प्राप्त होते हैं। छप्पय, विषम मात्रिक छन्द है। यह रोला और उल्लाला दो छन्दों के योग से बनता है। इसमें २६, २८ मात्राओं वाला उल्लाला रखा जा सकता है। आलम ने २८ मात्रा का उल्लाला रखा। आलम के अधिकांश छन्द 'मनहरण' हैं। लय को ठीक करने के उद्देश्य से उन्होंने अनेक स्थानों पर शब्दों की संधियाँ भी की हैं। यथा : कैऽब (कै+अब) क्योंऽब, जबलोंऽब आदि। आलम के काव्य में सवैयों की अपेक्षा कवित्तों की संख्या अधिक है।

आलम ने "माधवानल कामकन्दला" में पाँच चौपाई के बाद एक दोहा रखा है, जो बड़ा ही सुष्ठु प्रतीत होता है। "श्याम सनेही" में कवि ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। दोहा, चौपाइयों के प्रयोग में उनकी भाषा का प्रवाह निर्बाध

---

१. (क) आलम-केलि : पृ० ४०, छंद ९५।
   (ख) वही : पृ० ४१, छंद ९७।

२. "बैठि कन्दला माधव पासा। सूर संग जनु चन्द्र प्रकासा।"
   —रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ३९०।

३. लाला भगवानदीन : आलम-केलि, पृ० ३८, छन्द ८८।

४. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा : रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ०३८९, संस्करण १९६७ ई०।

प्रवाहित होता रहता है। प्रारम्भ में छप्पय तथा भुजंगप्रयात की भी झलक मिलती है। मिश्र जी के शब्दों में—"आलम-केलि में अन्त के दो छप्पय को छोड़कर शेष छन्द कवित्त और सवैये में हैं। ब्रजी की प्रेम की कविता इन्हीं दो छन्दों में अधिक हुई है। दोहे में नाद कम पड़ जाता है। अतः अभिव्यक्ति को खुल कर खेलने के लिए इस छन्द में रंगभूमि भी पूरी नहीं मिलती।"[१]

भाषा :

आलम की काव्य-भाषा में निजीपन की झलक दिखाई देती है, जो कवि की सूझ-बूझ का परिचायक है। यद्यपि कवि को संस्कृत, अरबी, फारसी सभी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था, तथापि उसके प्रयोग में उसने पूर्ण संयम और समन्वय से काम लिया है। इनकी भाषा दोनों अतिवादों से बचकर चली है। आलम की भाषा तद्भव प्रधान है। उनकी 'ब्रजी बहुत कुछ परिष्कृत साहित्यिक है।"[२] संस्कृत के अधिकांश शब्द तद्भव रूप में आये हैं। उनका मूल रूप बहुत कम देखने को मिलता है। अरबी, फारसी के शब्द भी अपने मूल रूप में प्रयुक्त नहीं हैं। यथा-हिलाक (मृत्यु) फिराक (तलाश) बेखुद (बेसुध) इश्कमहरम (प्रेम का मर्म जानने वाला) सादक (सच्ची) हादक (सच्चा वैद्य) आदि।

शब्दों को अपभ्रंश रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति ब्रजभाषा के आग्रह और स्वभाव का परिणाम है। पदावली बरबस जुटाई हुई नहीं जान पड़ती। कुछ कविताओं में नाद-सौन्दर्य का उपयोग भी हुआ है जो काव्य-सौन्दर्य के साथ-साथ कर्ण-प्रिय भी लगता है। ऐसी शब्द-योजना उनकी सशक्तता का द्योतक है।[३] वास्तव में आलम की भाषा का प्रवाह निश्छल और वाग्धारा स्फीत है, जिससे पाठक भाव-मग्न हो जाता है तथा जिह्वा प्राकृत स्वाद की अनुभूति करने लगती है। उनके काव्य का अवलोकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि पूरी परम्परा के अध्ययन के अनन्तर ही वे काव्य रचना में प्रविष्ट हुए। उनके काव्य में "सूर" "तुलसी" से मिलते-जुलते छन्द भी प्राप्त होते हैं जो आगे के कवियों के लिए सर्वथा नवीन प्रयोग हैं। देव का "गोरो-

---

१. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का अतीत : पृ० ६०८, सं० २०१७ वि०।

२. आ० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ० २२७, सं० २०३५ वि०।

३. "दैहों दधि मधुर धरनि धर्‌यो छोरि खैहै,
   धाम तें निकसि धौरी धेनु धाई खोलि हैं।"
   —आलम-केलि : पृ० २, छन्द ४।

गोरो मुख आज ओरो सो विलानो जात ।''[१] की तुलना आलम के 'ओरती से नैना आंगु ओरो सो ओरातु है ''[२] से सहज रूप में की जा सकती है।

''माधवानल कामकन्दला'' की भाषा अकृत्रिम तथा सरस है। शैली वर्णनात्मक है। यह ग्रन्थ दोहा, चौपाइयों में निबद्ध किया गया है। ''श्याम सनेही'' अवधी भाषा में लिखा गया है। इनकी अवधी में न तो कृष्ण-काव्य की तरह संस्कृत-निष्ठता है और न तुलसी की तरह भाषा का संस्कार, बल्कि वह भाषा की दृष्टि से विद्यापति के अधिक निकट है। उनकी अवधी का स्वरूप सामान्यतः सरल और अकृत्रिम है। उसमें नागरिक रुचि की अपेक्षा अनगढ़ और गवाँरू प्रवृत्ति का अधिक मेल है।

---

१. देवकृत सुन्दरी सिन्दूर; सम्पा० डॉ० किशोरीलाल : पृ० ११७, संस्करण १९८३ ई०।

२. लाला भगवानदीन : आलम-केलि : पृ० ४५।

घनानन्द

प्रेम-निरूपण :

प्रेम में चित्त की तीनों वृत्तियों—इच्छा, ज्ञान और क्रिया का आनन्दप्रद संयोग होता है। 'प्रेम वस्तुतः इच्छा है जो ज्ञान का निर्देशन या नियंत्रण पाकर विशिष्ट या संयत रूप ग्रहण करती है।'[1] विवेक (ज्ञान) के अभाव में प्रेम असंयत एवं उच्छृंखल हो उठता है और वासना का पर्याय बन जाता है। रीतिमार्गी कवियों ने प्रेम के इसी पक्ष को रेखांकित किया है। रीतिकाल में प्रेम का केवल रीति और रतिपरक शृङ्गारिक रूप ही काव्य का विषय था। रीतिबद्ध कवियों ने शिशिर के व्याज से काम को उद्दीप्त करने वाले समस्त प्रसाधनों की चर्चा की है।[2] घनानन्द ने अपने काव्य में स्वच्छन्दता का परिचय देते हुए इस परम्परा को तोड़ा और प्रेम के उस उदात्त स्वरूप को समाज के सामने रखा जो रूप-रस-गंध की आकांक्षा से विरत एवं त्याग की पुनीत भावना से परिपूर्ण रहता है। उन्होंने प्रेम के समसामयिक प्रचलित रूप (प्रेमिका अथवा नायिका प्रेम) को ही अपनाया, लेकिन स्थूल शारीरिकता की संकीर्ण परिधि को लाँघकर, एक नवीन अन्तर्दृष्टि के साथ। इसी कारण वे प्रेम को रीति के दलदल से बाहर निकाल कर आत्मवेष्टित करने में सफल हो सके हैं।

घनानन्द का सम्पूर्ण प्रेम-काव्य वस्तुतः उनके व्यक्तिगत जीवन की आत्मकथा है, जिसका घटना-क्षेत्र कवि का संवेदनशील भावुक हृदय है। उन्होंने जीवन में जो कुछ भोगा, सौन्दर्य-स्वामिनी सुजान के साहचर्य या प्रेम में जो कुछ आनन्द या पीड़ा

---

१. डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० ८६।

२. गुलगुली गिल में गलीचा है गुनीजन हैं,
चाँदनी है, चिक है, चिरागन की माला हैं।
कहैं पद्माकर त्यों गजक गिजा है सजी,
सेज है, सुराही है, सुरा है और प्याला हैं।
शिशिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं,
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला हैं, विनोद के रसाला हैं,
सुबाला हैं, दुशाला हैं विशाल चित्रसाला हैं।
(पद्माकर कृत : जगत्विनोद, प्र० सं० १६५७, पृ० ६७)

का अनुभव किया, उसे ही अपने काव्य में रूपायित किया। वास्तव में 'घनानन्द ने पूर्ण आवेग के साथ मानवीय प्रेम का सुख-दुःख भोगा है।'[1] इसी कारण उनकी कविता हृदय के सच्चे भावोल्लास के साथ निस्सरित हुई। रीतिमार्गी कवियों की भाँति उनका काव्य बुद्धि-व्यायाम का प्रतिफल नहीं, वरन् हृदय की गहन प्रेमानुभूतियों, असीमित अभिलाषाओं एवं विरहजन्य घनीभूत पीड़ा का परिणाम है। वे दिल्ली अधिपति मुहम्मदशाह रँगीले के दरबार की रूपवती नर्तकी सुजान के एकनिष्ठ प्रेमी थे। सुजान से 'लौकिक प्रेम की दीक्षा पाकर ही ये पीछे भगवत् प्रेम में लीन हुए।'[2] प्रारम्भ में घनानन्द सुजान के तरल सौन्दर्य पर रीझे हुए थे, लेकिन संयोग-सुख का अवसर उन्हें बहुत ही कम मिला और जो मिला भी, वह प्रायः चक्षु-दर्शन से अथवा संयोग-सुख की काल्पनिक स्मृतियों से। 'विरह ही प्रेमी कवि की वास्तविक सम्पत्ति है, प्रवास-जनित वियोग उसके जीवन का पाथेय है जिसके सहारे वह स्वयं को सँभाल पाया है।'[3] इससे स्पष्ट है कि संयोग तथा वियोग से सम्बन्धित कवि का समस्त क्रिया-व्यापार प्रायः मानसिक तथा अनुभूतिजन्य है। इसी कारण घनानन्द का काव्य प्रेम के मांसल चित्रण से मुक्त तथा शाश्वत प्रेमानन्द से परिपूर्ण हो सका है। उनके काव्य में प्रेम की उदात्त भंगिमा ही प्रायः रूपायित है। प्रेम में घायल कवि के हृदय में जीवनगत उतार-चढ़ाव के साथ जो-जो भाव तरंगायित होते रहे, उसकी सशक्त लेखनी उन भाव-चित्रों में स्वाभाविक रंग भरती रही। प्रारम्भ में घनानन्द-सुजान का प्रेम-व्यापार नितान्त एकोन्मुख रहा हो, ऐसी बात नहीं। 'प्रिय सुजान प्रेमी के दृष्टिकोण को पहचानती है।'[4] उसकी दृष्टि के झूले पर वह रूप-गर्विता इस प्रकार झूम उठती है जैसे फूलों-भरी लता मंद पवन के झोंकों से हौले-हौले इठलाती हुई झूमती है।[5] धीरे-धीरे प्रिय की कृत्रिम उदासीनता से कवि की विरह-वेदना बढ़ती गयी। वियोगजन्य तड़प जितनी ही बढ़ती गयी, प्रेम विरहाग्नि में तप कर कंचन होता गया। अन्ततः लौकिक प्रेम का पर्यवसान अलौकिक प्रेम में हो गया। सुजान नर्तकी से परमात्मा (कृष्ण) का पर्याय बन गयी और घनानन्द उसके प्रेम के अनन्य पुजारी।

---

१. डॉ० रामदेव शुक्ल : घनानन्द का काव्य: पृ० २, संस्करण १९७९ ई०।

२. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ० २३२, सं० २०३५ वि०।

३. शशि शहगल : घनानन्द का रचना संसार, पृ० १३६, सन् १९८० ई०।

४. डॉ० रामदेव शुक्ल : घनानन्द का काव्य, द्वितीय सं० १९७९, घनानन्द : रीतिकाव्य पर पुनर्विचार की माँग, पृ० ५।

५. 'लाड़-लसी, लहकै-महकै अँग रूप-लता लगि दीठि झकोरै।
हास-विलास भरे-रस कंद सु आनन त्यों चख होत चकोरै।'
—विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, सु० हि०, पृ० ५६-५७।

एकनिष्ठता, उदात्त प्रेम का अनिवार्य तत्त्व है जिसका रीतिमार्गी कवियों में अभाव है। वहाँ कवि 'राधा-कन्हाई' की ओट में प्रेम का प्रसाद बाँटता फिरता है। वहाँ प्रेम का समस्त क्रिया-व्यापार उधार का है, कृत्रिम है। यही कारण है कि उनके काव्य में प्रेम का स्वरूप विकृत होकर विलास का प्रतीक बन गया है। वस्तुतः रीतिकाव्य की शृंगारिकता में प्रेम की एकनिष्ठता न होकर विलास की रसिकता ही प्रायः मिलती है और उसमें भी सूक्ष्म आन्तरिकता की अपेक्षा स्थूल शारीरिकता का प्राधान्य है।[१] इसके विपरीत घनानन्द के प्रेम में एकनिष्ठता है, विलास की रसिकता नहीं। वे अपनी प्रिया सुजान के रूप-सौन्दर्य में अलौकिक सत्ता की अनुपम कला-कृति का दर्शन करते-से प्रतीत होते हैं। रूप की रीझ से उत्पन्न प्रेम की आग कवि के हृदय में भीतर-ही-भीतर सुलगती रहती है और जब मुखरित भी होती है तो संयम का बाँध नहीं तोड़ती। कवि के इस मौन में पुकार है, प्रिय के प्रति अटूट आस्था है, जो प्रेम के प्रति उसके उदात्त दृष्टिकोण का परिचायक है। प्रिय से मिल कर भी प्रेमी चिर प्यासा है। यदि प्यास बुझ जाती तो भाव-वेग क्लान्त पड़ जाता। ऐसी दशा में प्रेमांकन में इतना निखार न आ पाता। वस्तुतः प्रणय की यही अबुझ-प्यास कवि की काव्य-सर्जना में ऊर्जा-स्रोत बनी रही।

घनानन्द के प्रेम का उद्भव-स्रोत सुजान का अप्रतिम सौन्दर्य है, जो साहचर्य से जन्म लेता है, रूप-गुण के प्रभाव से विकसित होता है और प्रिय की उदासीनता से ईश्वरोन्मुख होकर उदात्त स्वरूप ग्रहण करता है। प्रेमी कवि ने अपने इस विकासोन्मुख प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना की है। जिस प्रेयसी पर वह मुग्ध है, वह उदासीन है जब कि उसका प्रेम सारे संसार में फैल गया है। उसके नेत्र प्रिय की रूप-सुधा का पान कर उसके दास बन गये हैं। प्रेम का सागर अथाह है, उसकी थाह कैसे लगाई जा सकती है, यह सागर तो तट पर ही इतना गहरा है कि बुद्धि तट से ही वापस लौट आयी। उसमें आगे बढ़ने का साहस नहीं रह गया है, लेकिन निष्ठुर प्रिय के ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं।[२] प्रेम की पीड़ा का अनुभव करते समय कवि ने सर्वाधिक चित्रण आँखों की दयनीय दशा का किया है, जो प्रिय के रूप-सुधा का पान करके ही जीवित रह सकती हैं। सुजान के रूप-सौन्दर्य का पान करते हुए कवि कभी अघाता नहीं। यद्यपि उसके हृदय में सौन्दर्य-पान करने की अभिलाषा अनवरत विद्यमान रहती है, तथापि वह सौन्दर्य को भोगने का अभिलाषी नहीं, केवल चाक्षुष पान का अभिलाषी है।[३]

---

१. डॉ॰ नगेन्द्र : रीतिकाव्य की भूमिका, पृ॰ १५६, द्वि॰ संस्करण, १९५३ ई॰।

२. घनआनँद ग्रन्थावली, पृ॰ ५६, छं॰ १७१।

३. 'रूप-सुधा-रस-प्यास-भरी नितही अँसुवा ढरिबोई करेंगी।' —वही : पृ॰ १३८।

चिर अतृप्ति ही सच्चे प्रेमी की कसौटी है। घनानन्द का क्षण-क्षण नूतन होता हुआ अनुरागी चित्त कभी तृप्त नहीं दिखाई देता। नेत्र सुजान की रूप-सुधा से आपूरित होते रहते हैं। कर्ण में उसकी वाणी का अमृत झरता ही रहता है लेकिन कितनी ही मधुयामिनियाँ क्रीड़ा-विरत बीत गयीं। लाखों गुणों से युक्त प्रिय छाती से लगा हुआ है फिर भी न छाती तृप्त हो पाती है और न यही मालूम हो पाता है कि क्रीड़ा क्या होती है ? केवल विरह-विदग्ध प्रेमी ही इस इन्द्रियातीत साध्यभूत रस का अनुभव करने में समर्थ होते हैं। प्रेम-सागर की इसी अथाह गहराई के कारण रीति-बद्ध कवि इसके पास तक जाने का साहस नहीं कर सके और मात्र बाह्य अनुभवों का ही भावन करते रह गये। रीतिमार्गियों ने अनुरागी चित्त की अगम गति की चर्चा तो की, लेकिन वे प्रेम के रंग में स्वयं अन्तरंग डूब कर उसकी गहराई का थाह न लगा सके।[1] वास्तव में प्रेम, स्वच्छन्द कवियों के निकट ऐसा पारस है जिसके स्पर्श मात्र से मन क्षुद्र संवेगों से मुक्त, जड़ता से विरहित हो स्व के बन्धनों का अतिक्रमण करता हुआ ऊर्ध्वोन्मुखी हो उठता है।[2] घनानन्द का पूरा प्रेमांकन लौकिक है, इन्द्रियों से सम्बन्धित है, लेकिन अनुभूतिजन्य मानसिकता एक क्षण के लिए भी कवि का पीछा नहीं छोड़ती, जिससे प्रेमांकन में स्थूल मांसलता का बोध नहीं होता और अनुभूति, अनुभूति ही बन कर रह जाती है।

सौन्दर्य-बोध :

घनानन्द का सौन्दर्य-बोध उनके जीवन के समान ही प्रेम-रस प्रधान है। कवि ने प्रेम को एक तत्त्व के रूप में ग्रहण किया है जिससे उसका सौन्दर्य-बोध भी प्रेम की भाँति ही परिष्कृत है। रीतिमार्गी कवियों ने अपने सौन्दर्य-बोध को नायिकाओं के नखशिख मांसल चित्रण तक ही सीमित रखा। रीति और रति के चक्कर में फँस-कर वे इससे ऊपर नहीं उठ सके। घनानन्द ने न तो श्रृंगारिकता की शाश्वत भावनाओं को दबाने का प्रयास किया और न तो अपनी नायिका की शारीरिक माप-तौल कर काम को उद्दीप्त करने की चेष्टा की। सुजान के एकनिष्ठ प्रेमी होने के कारण वे सौन्दर्य को बाजारे-हुस्न नहीं बनाना चाहते थे। यही कारण है कि वे हमारे सौन्दर्य-बोध के परिष्कार में सफल हो सके हैं। उन्होंने रूप-वर्णन के प्रसंगों में शारीरिक अंगों के लावण्य, गति, मुद्राओं, हाव-भाव तथा आन्तरिक गुणों के प्रकाशन पर ही

---

१. 'या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय,
ज्यों-ज्यों बूड़े श्याम रंग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय।'
—बिहारी सतसई : पृ० २८६, छं० ६१०।

२. डॉ० जगदीश गुप्त : स्वच्छन्तावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचन : पृ० ८१, संस्करण १९७७ ई०।

अपना ध्यान केन्द्रित रखा। इसी कारण उनके सौन्दर्य-बोध में रूप-सौन्दर्य की अपेक्षा भाव-सौन्दर्य का प्राधान्य है।

रूप, गुण तथा आन्तरिक गुणों से मण्डित नायिका के सजीव सौन्दर्य के अनेकशः चित्र घनानन्द के काव्य में यत्र-तत्र विद्यमान हैं। ऐसे ही एक स्थल पर कवि ने नायिका के चितवन की गति के साथ गोरे मुख की शोभा, हृदय में ज्योति के समान फैलने वाली दसन द्युति तथा आन्तरिक प्रेम-भाव-वश अंगों के दुहरने, लचकने के सजीव सौन्दर्य की हृदयस्पर्शी झाँकी प्रस्तुत किया है।[१] मानसिक भाव-भूमि पर अवतरित इस सूक्ष्म चित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इससे नारी का कोई मांसल रूप नहीं उभरता। रूप, गुण, गति से सम्पन्न सौन्दर्य-चित्र के प्रभाव का परीक्षण निम्न पंक्तियों में किया जा सकता है—

'रावरे रूप की रीति अनूप नयो-नयो लागत जौं-जौं निहारिये।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिँ आन तिहारिये।'[२]

इस छंद में साकार और निराकार, स्थूल और सूक्ष्म, रीति और स्वच्छन्द का अद्‌भुत समन्वय है जिसके रसास्वादन से मन पर कोई वासनात्मक प्रभाव नहीं पड़ता, हृदय में मात्र सिहरन-सी पैदा होकर रह जाती है। घनानन्द ने रूप-सौन्दर्य का जो भी चित्र खींचा है वह सौन्दर्य-स्वामिनी अपनी प्रिया सुजान के रूप पर रीझ कर खींचा है। "अपने प्रिय का रूप-चित्र खींचने में घनानन्द ने रीतिबद्ध कवियों के समान स्थूल अप्रधान अंगों के आकार और व्यापार का वर्णन नहीं किया है। वे मुख्यतः प्रिय के तरल सौन्दर्य पर रीझे हुए हैं।"[३]

घनानन्द सौन्दर्यपारखी कवि थे। वे सौन्दर्य की अमूर्त तरंगों को बड़ी बारीकी से अनुरेखित करने में समर्थ थे। गौर वर्ण नायिका के तरल सौन्दर्य का एक गतिमय बिम्ब-चित्र प्रस्तुत है—

'अंग-अंग तरंग उठै दुति की,
परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै।'[४]

संयोग :

घनानन्द प्रेमी तथा रसिक कवि थे। उनकी प्रेरणा-स्रोत सुजान थी, जिसके रूप की रीझ से उनके हृदय में प्रेम का अंकुरण हुआ था। सुजान के प्रेम में संयोग

१. घनआनँद ग्रन्थावली, : पृ० ५८५, प्रकीर्णक छं० १।
२. वही : पृ० १५।
३. डॉ० बच्चन सिंह : रीतिकालीन प्रेमाभिव्यंजना, पृ० २३६।
४. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली : पृ० ५८५।

पक्ष का जो चित्रण उन्होंने किया है वह मूलतः अनुभूत्यात्मक है । यद्यपि इसमें कहीं-कहीं मांसल नग्न-चित्र भी देखने को मिलते हैं लेकिन "इनमें रीतिकालीन उच्छृंखलता नहीं है । इन रचनाओं के द्वारा मात्र ऐन्द्रियता पर बल देना ही घनानन्द का लक्ष्य नहीं था । उनका उद्देश्य तो अनुभूत सत्य को स्वर प्रदान करना था । उन्होंने जिस ईमानदारी के साथ अपने प्रेम की अभिव्यक्ति की है, प्रिय का रूपांकन किया है वह उन्हें शृंगारी कवियों से बहुत ऊँचा सिद्ध कर देता है ।"[१]

रीतिमार्गी कवियों की लेखनी जहाँ सुरतांत, विपरीत रति की स्थूल क्रियाओं तथा ऐन्द्रिक भोग-विलासों के अनुरेखन में उलझी रही, वहीं घनानन्द ने स्वच्छन्दता का परिचय देते हुए शुद्ध आत्मिक प्रेम का भाव-चित्र प्रस्तुत किया । संयोग वर्णन के अन्तर्गत कवि ने शुद्ध रति-क्रीड़ाओं का भी चित्रण किया है, किन्तु ये चित्रण नग्न होते हुए भी हृदय के गहन स्पर्श, सूक्ष्म आन्तरिकता एवं काव्य-कला के चमत्कार से कोई अश्लील प्रभाव नहीं छोड़ते । कितनी विचित्र दशा है—नायक-नायिका पर्यङ्क पर सोये हैं । नायिका, नायक को आत्मसमर्पण कर चुकी है, लेकिन उसकी मानसिक स्थिति उस दरिद्र की तरह ही है जो धन को दाँतों से पकड़ कर रखता है । आलिङ्गनबद्ध नायक का मन अभी भी विविध मनोदशाओं में ही रमण कर रहा है । यह मूलतः शरीर एवं मानस का संयोग है जो रीति-कवियों में दुर्लभ है ।[२] रीति कवियों का प्रेम भोगवाद तक ही सीमित रह गया है क्योंकि सच्ची अनुभूति के अभाव में वह अन्तरंग नहीं बन पाया ।

घनानन्द ने अपने काव्य में संयोग पक्ष का खुला चित्र भी छायांकित किया है । लेकिन उनका यह चित्रण बाह्य न होकर आन्तरिक है । उनका प्रेमी हृदय प्रिय का साक्षात्कार करना चाहता है । क्षण-क्षण नूतन होता हुआ अनुराग कभी तृप्ति की सीमा का स्पर्श नहीं करता । नेत्र बार-बार उस प्रेम-सुधा से आपूरित होते रहते हैं । प्रिया के वचन-रूपी मद से छके हुए प्रेमी के रोम-रोम में काम जागृत रहता है । प्रिया अपने कण्ठ-रूपी काँच की सुराही से वचन-रूपी तेज शराब (चोखे आसव) को अधर-रूपी प्याले में डाल कर स्नेहपूर्वक अथवा भेदपूर्वक पिलाती है । सघन आनन्द स्वरूप वह प्रिया सुजान स्वयं तो अपने रूप के नशे में मतवाली रहती है, किन्तु प्रेमी के कानों के रास्ते अपने अधरों के आसव को प्राणों तक पिला देती है । एक ओर वह वचन-रूपी आसव पिलाती है और दूसरी ओर पीने वाले की चेतना स्वयं पी जाती है और पीने वालों की यह दशा है कि रात-दिन पीने पर भी उनकी प्यास बढ़ती ही जा रही है ।[३] इस छन्द में तत्कालीन समाज में प्रचलित सुरा-सुराही-साकी

---

१. गणेशदत्त सारस्वत : घनानन्द : पृ० ४७, संस्करण १९७४ ई० ।

२. घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० २३-२४, छन्द, ७० ।

३. वही : पृ० ६०, छं० १८६ ।

सभी की चर्चा है। उस समय सर्वत्र सुरा और सुन्दरी का प्रसार था। ऐसे वाता-वरण में रह कर उससे पूर्णरूपेण विमुख होना असंभव है। लेकिन यहाँ पर प्रिया के सौन्दर्य और वाणी के नशीले प्रभाव से ही प्रिय के झूमने की बात है, काम का क्रिया-व्यापार सूक्ष्म मानसिक धरातल पर ही सम्पन्न हुआ है जिससे संयोग अनुभूति का विषय ही बन कर रह गया है। इसी प्रकार घनानन्द के अन्य संयोग चित्रों में भी कामुकता नहीं है क्योंकि उन्होंने भोग-विलासों की स्थूल क्रियाओं का छायांकन नहीं किया है। इनका पूरा-का-पूरा प्रेमांकन लौकिक है, इन्द्रियों से सम्बन्धित है, लेकिन अनुभूतिजन्य मानसिकता के संयोग से वह परिष्कृत और पुनीत हो उठा है। इस पवित्रता के पीछे कवि की सच्ची प्रेमानुभूति ही है। 'यह (संयोग वर्णन) स्थूल और शारीरिक नहीं है, भावात्मक है। कवि ने कहीं भी अश्लील चेष्टाओं का तथा ऐन्द्रिक भोग-विलासों का वर्णन नहीं किया।'[1] इसके विपरीत रीतिकाव्य की शृंगा-रिकता में विलास की रसिकता एवं स्थूल शारीरिकता का ही प्राधान्य है।

यद्यपि घनानन्द का संयोग शृंगार मूलतः अनुभूतिजन्य है और मानसिक धरातल पर ही अवस्थित है तथापि कहीं-कहीं वह अतिशयोक्तिपूर्ण तथा ऊहात्मक भी हो गया है। जैसे—"चोली-चुनावट-चीन्हें चुभें चपि होत उजागर दाग उतू के।'[2] ऐसी असाधारण रूप से सुकुमार प्रिया के साथ प्रेमी के संयोग-सुख की झलक भी निराली है। प्रेमी के अंग-अंग में उमंगें इतनी प्रबल वेग से उठ रही हैं कि वे वस्त्रों को फाड़ कर बाहर निकल जाना चाहती हैं। इस आवेग के साथ सुर-तांत का एक संयोग-चित्र द्रष्टव्य है—

> "सोए हैं अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग के रंग निस्यौं करि।
> केलि-कला-रस-आरस-आसव-पान-छके घनआनँद यौं करि॥"[3]

इन छन्दों पर रीतिकालीन परम्परा का प्रभाव परिलक्षित होता है लेकिन ऐसे ऊहात्मक तथा अतिशयोक्तिपूर्ण छन्द घनानन्द के काव्य में बहुत ही कम हैं। रीतिबद्ध कवियों ने संयोग-शृंगार के अन्तर्गत संयोगेच्छा को जागृत करने के लिए कटाक्ष, चुम्बन, आलिंगन, नखक्षत आदि उपादानों को अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। ऐसे परिवेश का प्रभाव घनानन्द पर पड़ना स्वाभाविक था। लेकिन उनका चित्रण बाह्य न होकर आन्तरिक है, स्थूल न होकर अनुभूत्यात्मक है; भोगादि का का साधन न होकर साध्यभूत है। "घनानन्द का प्रेम-वर्णन अनवरुद्ध और अकुण्ठ

१. डॉ० मनोहरलाल गौड़ : घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा : पृ० ३३५, प्र० सं०, २०१५ वि०।

२. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ४७, छं० १४६।

३. वही : पृ० ४५, छं० १३६।

है, उनके भाव बड़े वेग से फूटे हैं। पर उसमें एक आन्तरिक संयम है, एक संस्कार है जो कवि के निजी जीवन की और व्यक्तित्व की चीज है।"[1]

संयोग में वियोग :

घनानन्द के काव्य में संयोग में वियोग का बना रहना एक अनूठी कल्पना है जिसका हिन्दी साहित्य के इतिहास में कोई अन्य उदाहरण नहीं। उनका यह प्रेम अद्भुत है, जो अलग होने पर तो मिलन की कामना करता ही है, पर मिलने पर भी वियोग के भय से संत्रस्त रहता है। ऐसा संभवतः मिलन की क्षणिकता एवं अनिश्चितता के कारण ही है। उनके इस मिलन में आनन्द का अतिरेक तो है, लेकिन ऐसा उन्माद नहीं, जो संयम और संस्कार को विस्मृत कर दे। ऐसी सौन्दर्य-लिप्सा नहीं जो मानसिकता को एक क्षण के लिये भुला दे। 'उसमें आन्तरिकता की प्रधानता है। बुद्धि-विलास की अपेक्षा भाव-वैभव की अभिव्यक्ति है। संयोग में वियोग का प्राधान्य है। जितनी गहन और मार्मिक अनुभूति है, अभिव्यक्ति भी उतनी ही सूक्ष्म और अनूठी है।'[2] कवि की अभिलाषा जीवन-पर्यन्त तृप्ति नहीं पा सकी। यह अभिलाषा वियोग की ही भाँति संयोग में भी छाया की तरह प्रेमी की आन्तरिक व्यथा को व्यथित किये रहती है।

घनानन्द संयोग और वियोग दोनों में समरसता का अनुभव करते हैं। यद्यपि वे सुजान प्रिया के पास पौढ़कर संयोग-सुख का अपार आनन्द ले रहे हैं फिर भी उनके मन की गति रंकवत् है।[3] यह कैसी विषम स्थिति है कि प्रिय पास में बैठा है पर अनुभूति संयोग की न होकर वियोग की हो रही है।[4] प्रिय के मिलने पर भी अनमिले की अनुभूति हो रही है।[5]

---

१. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा : घनानन्द चयनिका, पृ० ३८।

२. गणेशदत्त सारस्वत : घनानन्द, पृ० ४७, संस्करण १६७४ ई०।

३. 'पौढ़े घनआनँद सुजान प्यारी परजंक, धरे घन अंक तऊ मन रंक-गति है।'
—घनआनँद ग्रं०, सु० हि०, पृ० २३, छं० ७०।

४. 'ढिग बैठे हू पैठि रहै, उर मैं धरकै खरकै दुख दोहतु है,

× × × ×

यह कैसो सँयोग न बूझि परै जु वियोग न क्यों हूँ विछोहतु है।'
—वही : पृ० ३४, छं० १०४।

५. 'कहा कहाँ आनँद के घन जानराय हौ जू,
मिले हूँ तिहारे अनमिले की कुसल है।'
—वही : सु० हि०, छं० ६१, पृ० २१।

संयोग में भी वियोग के बने रहने की बात कवि ने बार-बार दुहराई है। वह कहता है कि प्रेम अनोखा है, यह लगन भी अनोखी है क्योंकि मन हमेशा अधीर ही रहता है, हृदय की धड़कन तेजी से चलती रहती है, मिलने पर भी मिलने की-सी आनन्दानुभूति नहीं होती। प्रिय के पास बैठे रहने पर भी वियोग का खटका लगा ही रहता है। प्रिय-मिलन का सुख लेने भी नहीं पाते कि वियोग झाँकना शुरू कर देता है।[१] अन्त में वह विक्षिप्त होकर कहने लगता है कि यह न जाने कैसा वियोग है कि जो संयोग में भी पीछा नहीं छोड़ता है। देखने पर भी न देखने का भाव (या भय) बना रहता है। मिलने पर भी अनमिलन जैसा लगता है अर्थात् पृथकत्व की आशंका हर दशा में ग्रस्त किये रहती है।[२] प्रेम की यह कैसी अनोखी चाह (लगन) या आतुरता है कि बिछुड़ने पर मिलने की आकांक्षा होती है और मिलने पर वियुक्ति का भय मारे डालता है।[३]

चाह या अभिलाषा की यही शाश्वत वर्षा घनानन्द के काव्य में सर्वत्र मिलती है। उनके काव्य में संयोग में भी विरह-वेदना का कारण मनोरथों की भीड़ व वियोग की चिर दशा को बतलाया गया है। 'प्रेमी प्रिय का निरन्तर ध्यान करने से बौद्धिक वियोग का अभ्यस्त हो गया है। वियोग में हृदय-स्थित प्रिय से प्रलाप, भाषणादि नहीं हो सकता, यह अवस्था संयोग में भी बनी रहती है। संयोग वियोग तुल्य हो जाता है।'[४] संयोग में भी विरहानुभूतियाँ संयोग-सुख को स्वीकारने में बाधक बनी रहती हैं।

वास्तव में घनानन्द का प्रेम-निरूपण उनकी मानसिकता की उपज है। "संयोग की स्थिति में भी दोहरी स्थिति का दुःख प्रेमी के हृदय में वर्तमान रहना शास्त्रीयता के विरुद्ध है किन्तु एकनिष्ठ प्रेमियों को देखते हुए यह अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक लगता है। वास्तव में घनानन्द ने अपनी यथार्थ आत्मानुभूतियों से हमें शृङ्गार की उन सहज स्वाभाविक स्थितियों का दर्शन और आस्वादन कराया है जिसकी कल्पना शायद कोई काव्य-शास्त्री कभी न कर सका हो...।"[५]

---

१. घनआनँद ग्रन्थावली : पृ० ५८७, प्रकीर्णक छं० ६।

२. वही : पृ० ८६, छं० २७६।

३. बिछुरैं कित साँति मिले हूँ न होति, छिदी छतिया अकुलापन छुरी।
पृ० ११६, छं० ३८४।

४. डॉ० मनोहरलाल गौड़ : घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ३३७, सं० २०१५ वि०।

५. डॉ० रामफेर त्रिपाठी : रीतिमुक्त : नया परिदृश्य : पृ० ४८, संस्करण १९८२ ई०।

स्वप्न-संयोग :

संयोग कभी-कभी स्वप्न में भी हो जाया करता है किन्तु स्वप्न में प्रिय से सुखपूर्वक निर्बाध मिलन नहीं हो पाता। निद्रा-भंग न भी हो तो भी घेरने वाली अन्य बाधाएँ सदा विद्यमान रहती हैं। कभी मनोरथों की भीड़ आकर घेर लेती है तो कभी आँसुओं की बाढ़ संयोग-सुख का मिलना दूभर कर देती है।[1] संयोग-सुख में आँसू सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी हैं। इन आँसुओं के कारण ही प्रेमी सो नहीं पाता है। यदि सो जाता तो स्वप्न में प्रिय का दर्शन शायद हो जाता। कभी आँखें लग भी गयीं और प्रिय का दैवयोग से सामीप्य हो भी गया तो प्रिय को ठीक से देखने के पहले आँसू दौड़ पड़ते हैं।[2]

स्वप्न-संयोग की कल्पना जितनी स्वाभाविक है उतनी ही मनोवैज्ञानिक भी। अतृप्त आकांक्षाएँ स्वप्न के माध्यम से तृप्त होने का प्रयास करती हैं। घनानन्द के मन में अभिलाषाओं का ज्वार उठा करता था, जिसकी तृप्ति जागृत अवस्था में संभव नहीं थी। उनका हृदय संयोग-सुख पाने की अभिलाषा से अनवरत तड़पता रहता था, लेकिन संयोग-सुख की प्यास बुझ नहीं पाती थी। यही अतृप्त अभिलाषा स्वप्नावस्था में संयोग-सुख पाने का उपक्रम करती थी। इस प्रकार इनका संयोग भी आनुभूतिक है। आनन्द-विभोर होने पर आँसुओं का आ जाना स्वाभाविक ही है। स्वप्न में प्रिय के सम्मुख होने पर आनन्दातिरेक से आँसुओं का उमड़ पड़ना और उसके कारण प्रिय का झिल-मिल चित्र ही देख पाना आनुभूतिक यथार्थ है।

वियोग :

विरह, प्रकृत्या दुःखात्मक होता है, किन्तु सच्चे प्रेम की कसौटी विरह ही है। वियोग, घनानन्द के काव्य का प्राण है। वियोग ही प्रेमी कवि की वास्तविक सम्पत्ति है, जीवन का पाथेय है। वियोगी की सभी अन्तर्दशाओं का जैसा मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी चित्रण घनानन्द के काव्य में अनायास ही हो गया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कवि के विरह की जलन अनोखी है। जीवन भर उसका हृदय सुजान के प्रेम की विरहाग्नि से जलता रहा। यही विरह-व्यथा उसके काव्य का प्राण बन गयी। घनानन्द के शृंगार काव्य का बृहत्तर भाग विप्रलंभ शृङ्गार से समृद्ध है। 'प्रेम की पीर' उनके विरह-काव्य की आत्मा है, जिसे समझने के लिए पहले प्रेम-पीड़ा के कराल पंथ से गुजर कर विशेष अन्तर्दृष्टि प्राप्त करनी होगी। उनके

---

१. 'कबहूँ जौ दई-गति सों सपनो सों लखौ तो मनोरथ भीर भरै।
मिलि हूँ न मिलाप मिलै तनकौ उर की गति क्यों करि ब्यौरि परै॥''
—घनानँद ग्रन्थावली : पृ० २४, छं० ७२।

२. वही : सु० हि०, पृ० ७०, छं० २१४।

प्रशस्ति गायक 'ब्रजनाथ' ने कहा भी है—'समझै कविता घनआनँद की हिय-आँखिन प्रेम की पीर तकी ।'[१] ब्रजनाथ ने घनानन्द के काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति 'प्रेम की पीर' पर अधिक बल दिया है । प्राय: सभी रीति-स्वच्छन्द कवि फारसी और सूफी साहित्य से प्रभावित हुए हैं । घनानन्द पर भी इन दोनों का प्रभाव पड़ा है । सूफी काव्य में 'प्रेम की पीर' का तथा फारसी काव्य में 'प्रिय की कठोरता' का प्राधान्य है । सूफियों ने प्रेम के दो सोपान माने हैं—इश्कमजाजी (लौकिक) तथा इश्कहकीकी (अलौकिक) । सूफी साधक इश्कमजाजी की साधना द्वारा इश्कहकीकी को प्राप्त करता है । घनानन्द ने भी इश्कमजाजी में इश्कहकीकी का बीज पाया और उसे ही अपने काव्य का विषय बनाया । उन्होंने भारतीय प्रेमाख्यान की प्रचलित परम्पराओं के सूत्र पकड़ कर सूफियों के सिद्धान्त का उसके साथ समन्वय किया ।

शास्त्रीय दृष्टि से विप्रलम्भ शृङ्गार के चार अंग होते हैं— पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण । घनानन्द के काव्य में इन अंगों का नपा-तुला चित्रण तो नहीं मिलता, लेकिन अस्पष्ट रूप से ये चारों अंग स्वत: ही उनके काव्य में रेखांकित हो गये हैं । 'घनानन्द की दृष्टि इन भेदों पर नहीं गयी है । वे आकार को सँवारने वाले नहीं हैं । प्राणों का नि:श्वास-प्रश्वास प्रकट करते हैं ।'[२] उन्होंने जो कुछ अपने काव्य में अभिव्यंजित किया है उसका आधार भाव-प्रवणता ही है; विप्रलम्भ का शास्त्रीय विवेचन नहीं—'भावना-भूत-सरूप को ठानै ।'[३]

पूर्वराग :

मिलन से पूर्व गुण-कथन, श्रवण, चित्र-दर्शन या दूर से ही प्रत्यक्ष दर्शन के पश्चात् जिस पीड़ा की अनुभूति प्रेमीजनों को होती है, वह सभी पूर्वराग के अन्तर्गत आता है । स्वच्छन्द प्रेमी घनानन्द अपने प्रिय से हित की कामना करते हैं क्योंकि उनके प्राणों में प्रियतम समाया हुआ है । वे कहते हैं कि तुम तो उदार हो (सबको दिल देने वाली हो), दीनों पर दया करने वाली हो, फिर भी मेरी पुकार को अनसुनी कर क्यों तड़पा रही हो ? मेरे प्राण तो चातक के समान आप की ही रट लगाये हैं । यह बड़ी विचित्र बात है कि मेरा प्रेम आप ही तक सीमित रह गया और मेरा मन हमेशा आपके ही रूप-सौन्दर्य को देख कर पागल रहा और प्राप्ति के लिए विरहाग्नि में तप्त होता रहा । इसलिए हे प्रिय ! आनन्दघन की वर्षा करके आप

---

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली (प्रशस्ति), छं० २, पृ० ३ ।

२. मनोहरलाल गौड़ : घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा : पृ० ३०६ ।

३. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ३, छं० १ ।

कब तृप्त करियेगा।[1] यहाँ पर कवि ने बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। प्राण पर 'चातक' तथा प्रिय पर 'घन' का आरोप करके पारम्परिक रूपक की नियोजना की गयी है।

मान :

प्रिय सुजान मान करके बैठी है। पर प्रेमी भी कम हठी नहीं है, वह भी मनाने के लिये दृढ़प्रतिज्ञ है। यह जानते हुए भी कि प्रेम के मार्ग में शारीरिक और मानसिक कष्टों का डर रहता है, वह अपने प्रेम की टेक अन्त तक नहीं छोड़ता तथा आशा-रूपी चट्टान को जीवन की अन्तिम साँसों तक अपने सीने से लगाये रखता है। इसलिए प्रेम-प्रतिज्ञा के अथाह सागर में डूबते हुए देखकर भी प्रेमी रंचमात्र विचलित नहीं हुआ। दृढ़प्रतिज्ञ प्रेमी विरह-रूपी अग्नि को हृदय में जलाकर, उसके उद्वेग की आँच में शरीर के रोम-रोम की पीड़ाओं को तप्त करेगा। चाहे जितना भी कष्ट सहना पड़े, वह प्रिय के हृदय में दया उत्पन्न करके ही छोड़ेगा।[2]

प्रवास :

प्रिय प्रवास पर गया हुआ है। विरहिणी पवन को दूत बनाकर प्रिय का सन्देश लाने को कहती है क्योंकि पवन चारों दिशाओं का भ्रमण करता है। इसलिए इस कार्य (प्रियतम का सन्देश) को करने में वह सक्षम है। विरहिणी कहती है कि हे पवन! तुम दूसरों के हित के लिए ही जीते हो अर्थात् तुम दूसरों के प्राणों की रक्षा करने वाले हो और तुम्हारी दृष्टि में ऊँच-नीच तथा राग-द्वेष का भाव नहीं है। मेरे प्रिय सुजान (कृष्ण) अत्यन्त विभा-सम्पन्न हैं, लेकिन उन्होंने इस समय मुझसे मुख मोड़ लिया है। इतना ही नहीं उन्होंने मेरी पहचान भी भुला दी है। इसलिए तुम उनके चरणों की धूल ही लाकर दे दो। मैं उसी को पाकर धन्य हो जाऊँगी।[3] यद्यपि यहाँ पवन-दूत की कल्पना परम्परागत है तथापि अभिव्यंजना की सूक्ष्म कलात्मक शैली एवं आन्तरिकता के प्रभाव से यह चित्रण परम्परा से सर्वथा भिन्न हो गया है। इसी प्रकार कवि ने बादल को सन्देश-वाहक के रूप में चित्रित किया है—

'परकाजहि देह कों धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।

× × × ×

कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मों अँसुवानि हूं लै बरसौ॥'[4]

---

१. घनाआनँद ग्रन्थावली, पृ० ९-१०, छं० २४।
२. वही, पृ० ५५, छन्द १६९।
३. वही, पृ० ८४, छन्द २५९।
४. वही, पृ० १०८।

करुण :

नायक अथवा नायिका के परलोक अथवा इहलोक में चिर दूरत्व के बाद भी जहाँ संयोग होने की आशा बनी रहती है वहाँ करुण-वियोग होता है। प्रिय परदेश चला गया है। विरहिणी नाना प्रकार की यातनाएँ सह रही है। प्रिय के आने की कोई अवधि निर्धारित नहीं है और न आने की आशा है। वह सोचती है कि मैं अकारण ही राह देख रही हूँ। प्रिया अपने मन में यह विचार भी नहीं करती कि अगर मुझसे कोई पूछेगा तो मैं क्या उत्तर दूँगी। वह प्रिय निकट तो आता नहीं, इसलिए वह दूर से ही उसे प्रणाम करती है।[१] यहाँ प्रेमी की निष्ठुरता और प्रेमिका की दयनीय स्थिति का कारुणिक चित्र है।

नायिका की झूठी बातों पर प्रेमी ने विश्वास कर लिया था। इसी से नायक की बुरी दशा है। उसका कोई निदान भी नहीं दिखाई देता। अब तो प्राण चलकर होंठों तक आ गये हैं और प्रिय का सन्देश पाकर बाहर निकल जाना चाहते हैं।[२] वियोग की अतिशयता प्रिय को मृत्यु तक ले आयी है। कितनी विडम्बना है कि प्राण किसी आस में अधरों तक आकर भी रुके हुए हैं।

इस प्रकार की आन्तरिकता से यह स्पष्ट है कि घनानन्द ने शास्त्रानुधावन नहीं किया। विरहगत टीस, विवशता और वियोगजन्य दैन्य से उनका सारा काव्य ओत-प्रोत है। उनके विरह में एक सच्चे प्रेमी की मार्मिक तड़प अन्तर्निहित है। कवि की यही आन्तरिकता उसे परम्परागत कवियों से पृथक् कर देती है।

अन्तर्दशाएँ :

घनानन्द के काव्य में विप्रलम्भ शृङ्गार के अन्तर्गत पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण के समान ही वियोग की समस्त अन्तर्दशाएँ भी भावों के प्रवाह के साथ बह कर स्वतः ही आ गयी हैं। यहाँ तक कि उनका प्रत्येक छन्द वियोग की किसी-न-किसी अन्तर्दशा का बोधक है। इसी से प्रभावित होकर रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—'प्रेमदशा की व्यंजना इनका अपना क्षेत्र है। प्रेम की गूढ़ अन्तर्दशा का उद्‌घाटन जैसा उनमें है वैसा हिन्दी के किसी अन्य शृङ्गारी कवि में नहीं। इस दशा का पहला स्वरूप है हृदय या प्रेम का आधिपत्य और बुद्धि का अधीन पद।'[३] घनानन्द ने रीतिबद्ध कवियों की भाँति शास्त्रानुधावन नहीं किया, फिर भी सभी अन्तर्दशाएँ उनके काव्य में छन्दोबद्ध हो गयी हैं।

---

१. घनाआनँद ग्रन्थावली : पृ० ८८, छन्द २७३।

२. बही, पृ० १६, छन्द ५४।

३. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३३५, संस्करण १६४० ई०।

घनानन्द के विप्रलम्भ श्रृङ्गार में यद्यपि शास्त्रीय परम्पराओं का निर्वाह क्रमबद्ध रूप से स्वतः ही हो गया है तथापि उनका अभिप्राय यह नहीं था। उनके विरह-काव्य में शास्त्रीयता कम है, स्वच्छन्दता अधिक। रीति कवियों ने वियोग-स्थिति की तुलना पतंग, मीन, चातक से की है पर घनानन्द की विरह की स्थिति पतंग, मीन तथा चातक से बढ़ कर है। उनके उदात्त प्रेम में प्रिय पक्ष से केवल त्याग की अपेक्षा की जाती है, प्रतिदान की आकांक्षा नहीं, साथ ही, उसमें प्रिय पक्ष को प्रेम में मिट जाना भी अभीष्ट नहीं, वरन् विरहानुभूति में तड़पते रहना अनिवार्य है। दृष्टि की इस भिन्नता के कारण घनानन्द का विरह-काव्य, रीति कवियों की शास्त्रीय परम्परा से बहुत-कुछ मुक्त है।

जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं कि घनानन्द के विप्रलम्भ श्रृङ्गार के प्रत्येक छन्द को शास्त्रीय अन्तर्दशाओं के किसी-न-किसी चौखटे में फिट किया जा सकता है। उनके विरह-काव्य में कुछ छन्द ऐसे भी हैं जिनमें अनेक अन्तर्दशाएँ एक साथ ही उपस्थित हो गयी हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द को देखिये—

'लाल अभिलाषन की चिन्ता गुनकथनन,
सुधि करि दीन की, उदेक दशा दहियौ।
लाप के प्रलाप उनमाद के सँताप व्याधि,
पापिन की आप नेकु, बेगि सुधि लहियौ।
जड़ता कही न जात ज्यों तौ अति अकुलात,
सैनन कही है बात मेरी ओर चहियौ।
जानी दिल जान सों जु मानी वा सुजान सों,
निसानी दै कै प्रान सों निदान प्रान कहियौ।'[1]

इस छन्द में अभिलाषा, चिन्ता, गुण-कथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण अर्थात् विरह की दसों अन्तर्दशाएँ अन्तर्निहित हैं। घनानन्द को शास्त्रीय नियमों का पूर्ण ज्ञान था। 'यह दूसरी बात है कि इनकी उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा रीतिकाव्य की परम्परा के कारण कुंठित नहीं हुई है, वरन् उन सीमाओं का अतिक्रमण करके आगे बढ़ गयी है।'[2] जो कवि कविता को बुद्धि का क्रिया-व्यापार न मानकर हृदय का क्रिया-व्यापार मानता रहा हो, वह बुद्धि-साध्य शास्त्रीयता की साधना के चक्कर में पड़ा होगा, यह सोचना तर्कसंगत नहीं।

यह सत्य है कि घनानन्द पर परम्पराओं का विषयगत प्रभाव अवश्य पड़ा, लेकिन वर्णन की यान्त्रिकता से वे मुक्त रहे। अन्तर्दशाओं के उरेहने के चक्कर में न पड़कर केवल "भावना-भेद" तक ही उन्होंने अपने को सीमित रखा। इस प्रकार

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ५६२, छन्द २५ (प्रकीर्णक)
२. डॉ० रामदेव शुक्ल : घनानन्द का काव्य, पृ० १६, संस्करण १६७८ ई०।

तत्कालीन प्रभाव को वे अपनी प्रतिभा द्वारा भावनापूर्ण चित्रण की दिशा में मोड़ सके। अतः शास्त्रीय दृष्टि से घनानन्द के विरह-काव्य पर विचार करना न्यायसंगत नहीं। रीतिमुक्त कवियों के विरह-वर्णन पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते हुए डॉ० बच्चन सिंह ने लिखा भी है—"यह वियोग-वर्णन शास्त्रीय अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन आदि का नपा-तुला उदाहरण नहीं प्रस्तुत करता, इसलिए इसका विश्लेषण भी संगत नही।"[१]

काव्य-शिल्प :

घनानन्द के नेत्र रूप के लोभी थे और उनका हृदय प्रेम-पीर से विह्वल था। यही दो ऐसे कारण थे जिनके प्रभाव से इस प्रेमी को विलक्षण अन्तर्दृष्टि मिली। "प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण धीर पथिक तथा जबादानी का दावा रखने वाला ब्रजभाषा का ऐसा दूसरा कवि नहीं हुआ।"[२] काव्य-शिल्प का ऐसा निपुण पारखी एवं भाव-सौन्दर्य का ऐसा सरस चितेरा मध्य-युग में देखने को नहीं मिलता। रीतिमार्गियों की भाँति शब्द चमत्कार में न बह कर भावाभिव्यंजक दृष्टि से उन्होंने काव्य को देखा, यहाँ तक कि उनके कल्पना-संपृक्त एवं विचारोत्पादक पद भी भावात्मक प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहते। कवि के जीवन के समान ही उनका काव्य भी भावना प्रधान है। वस्तुतः उनका काव्य उनके जीवन का लक्ष्य भेद है—"लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।"[३] कहकर उन्होंने लोक की कविता (रीतिबद्ध कविता) से अपना प्रवृत्ति-भेद स्पष्ट कर दिया है। कवि की दृष्टि में सच्ची कविता की निष्पत्ति हृदय की मार्मिक अनुभूतियों के द्वारा ही हो सकती है। उनका विश्वास था कि बुद्धि का जो व्यवसायी है, उससे कविता का कोई सरोकार नहीं होता। हृदय पक्ष ही काव्य का प्राण होता है। रीझ ही कथन के क्षेत्र में पटरानी है, बुद्धि और कल्पना उसकी दासी मात्र हैं—"रीझि सुजान सची पटरानी, बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी।"[४] काव्य-सृजन में इस नवीन दृष्टि-बोध के होते हुए भी उनकी कविता को भाषा-प्रवीण सहृदय ही समझ सकते हैं।[५]

घनानन्द ने अपनी काव्य-कला को एक छन्द में व्यक्त कर दिया है जो उनकी काव्य-शिल्प विषयक दृष्टि को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। "पद की मृदुलता तथा अर्थ की मंजुलता से सम्पन्न रस और रूप अर्थात् आन्तरिक चारुता, बाह्य विमोहकता

१. डॉ० बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, पृ० २४७।
२. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ० २३१, सं० २०३५ वि०।
३. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ७५।
४. वही, पृ० १६।
५. 'जोग-वियोग की रीति में कोविद, भावना-भेद-स्वरूप को ठाने।
भाषा-प्रवीन, सुछन्द सदा रहै, सो घन जी के कवित्त बखाने।'
— वही, पृ० ३ (प्रशस्ति)।

में सर्वश्रेष्ठ मणिवत्, प्रभावपूर्ण, पदगत और अर्थगत अलंकारों से युक्त वाणी-रूपी वधू को जीभ-रूपी सखी कान की गली से ले जाकर रसज्ञ की हृदय-शय्या पर बिठा देती है। काव्य-कला में निपुण सुविज्ञ (प्रिय) ही अनुभूतियों की गोद में विलखने वाली वाणी के मर्म को समझते हैं अर्थात् कविता-रूपी दुल्हन काव्य-मर्मज्ञ, बुद्धिष्ठ की गोद में ही शोभायमान होती है। बुद्धिष्ठ ही कविता के साथ क्रीड़ा कर सकता है, उसके आनन्द का पारखी हो सकता है।"[१] काव्य की सफलता, संवेद्यता के साथ-साथ उसकी सम्प्रेषणीयता को बनाये रखने में है जिसकी एक छोर कला-सर्जक के हाथ में होती है और दूसरी रसज्ञ पाठक के हाथ में। घनानन्द इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे।

अभिव्यंजना कौशल :

काव्य-शिल्प सम्बन्धी सूक्ष्म सजगता एवं प्रौढ़ अभिव्यंजना-कौशल के दर्शन घनानन्द के काव्य में मिलते हैं। उनका काव्य स्वानुभूतिक नव्यता एवं विदग्ध प्रौढ़ता से युक्त है। उनका शब्द-चयन, अर्थ-गौरव एवं भाव-सौन्दर्य से मण्डित है। रीतिमार्गियों से भिन्न घनानन्द ने विलास का तटस्थ चित्रण न करके सौन्दर्य, गुण, व्यक्तित्व और प्रभाव का स्वानुभूत चित्रण किया है जिससे उसमें मौलिकता स्वतः आ गयी है। रीझ और प्रेम की पीर से कवि को जो एक सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि मिली थी उससे वह तल-स्पर्श करने में समर्थ हो सका।

घनानन्द के काव्य में सौन्दर्य-भंगिमा, भाव-गांभीर्य, उक्ति-सौष्ठव, कल्पना-प्रवणता तथा संयत शब्द-चयन की विशेषताएँ विद्यमान हैं। इन्हीं विशेषताओं को देख कर उनके प्रशस्तिगायक ब्रजनाथ ने उन्हें "नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन"[२] कहा था। उनके काव्य को पढ़-समझकर कोई ऐसा सहृदय न होगा जो आप्लावित न हुआ हो। घनानन्द के काव्य से प्रभावित होकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य की जो छटा उनमें दिखाई पड़ी, खेद है कि वह पौने दो सौ वर्ष पीछे आधुनिक काल के उत्तरार्द्ध अर्थात् वर्तमान की नूतन काव्यधारा में ही अभिव्यंजनावाद के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिये हुए प्रकट हुई।"[३]

घनानन्द के काव्य में अभिव्यंजना-कौशल के कई रूप उपलब्ध होते हैं। कहीं अर्थाभिव्यक्ति में उक्ति-वैचित्र्य है, कहीं लक्षणा-व्यंजना का चमत्कार है, कहीं अलंकारों की निराली छटा है तो कहीं बिम्ब-योजना अथवा नाद-सौन्दर्य की झलक।

---

१. घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ६२, छन्द १९२।
२. वही, (प्रशस्ति) पृ० ३, छन्द १।
३. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ० ३३९, सं० २०३५ वि०।

उक्ति-वैचित्र्य :

घनानन्द उक्ति-वैचित्र्य द्वारा अर्थाभिव्यक्ति की कला में बेजोड़ हैं। उक्ति-वैचित्र्य द्वारा प्रभावपूर्ण अभिव्यंजना के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

"सुधि सब भाँतिन सों बेसुध करति है।"[१]

उक्त छन्द में विरोधाभास के आधार पर उक्ति-वैचित्र्य की स्थापना की गयी है। इसी प्रकार एक अन्य छन्द देखिये, जिसमें मन लेकर छटाँक न देने की बात कही गयी है—

"तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।"[२]

घनानन्द का अलंकारों के प्रति कोई आग्रह नहीं था और न तो अलंकारों की योजना करके वे काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि में आस्था रखते थे, तथापि उन्होंने अनेक छन्दों में विभावना, उत्प्रेक्षा, सन्देह आदि अलंकारों द्वारा अभिव्यंजना-कौशल को सम्पादित किया है।

लाक्षणिकता :

घनानन्द ने लक्षणा शब्द-शक्ति का प्रयोग नाना रूपों में बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है। उनके काव्य में भोगी हुई पीड़ाओं का छायांकन है। उन्होंने भाषा की व्यंजकता को बढ़ा कर काव्य में अभिव्यंजना सौष्ठव लाने के लिए लाक्षणिक प्रयोग स्वच्छन्दतापूर्वक किया। "लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया, एक घनानन्द ही ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई।"[३] घनानन्द के काव्य में नवीन लाक्षणिक प्रयोग प्रचुरता से मिलते हैं। यथा—लोचनों की छवि पीना, स्मृति का सो जाना, आँखों का रूठ कर अलसाना, अंगों का रसरंग में अभिसिंचित होना, चाँदनी में सींचा जाना, अँगुलियों का किलक उठना, पवन का क्रन्दन आदि। कवि लक्षणा शब्द-शक्ति द्वारा अमूर्त तत्त्वों को भी मूर्तिमान कर देता है। यही कवि के इन लाक्षणिक प्रयोगों की मौलिकता है। घनानन्द के काव्य में लक्षणा और व्यंजना का अक्षय कोष विद्यमान है जिसके अवगाहन के लिए मर्मभेदिनी दृष्टि चाहिए।

बिम्ब-योजना एवं नाद सौन्दर्य :

बिम्ब-योजना घनानन्द की काव्य-कला का प्रमुख अंग है। इसका संयोजन कवि ने प्रायः रूप-वर्णन के प्रसंगों में किया है। नवीन नीले वर्ण की साड़ी में लिपटी नायिका सुजान के अंग-सौन्दर्य से उठती तरंगों को चित्रित करने वाली एक चाक्षुष बिम्ब-

---

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ५८६, छन्द ४, प्रकीर्णक।
२. वही : पृ० ८६, छन्द २६७।
३. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ० २३३।

योजना द्रष्टव्य है—"स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहैं अमावस-अंक उज्यारी।"[१] प्यासी आँखों के क्रिया-व्यापार को रूपायित करने वाली एक दूसरी बिम्ब-योजना देखिए—"अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं बरुनीन रुमांच ह्वै काँपति हैं।"[२] में मग-मापने का भाव प्रतिबिम्बित है। इसी प्रकार घनानन्द के काव्य में विविध स्थलों पर बिम्ब-विधान का सौन्दर्य देखा जा सकता है। उनका बिम्ब-विधान अत्यन्त सूक्ष्म, अनुभूतिपरक और अन्तर्भाव व्यंजक है।

घनानन्द अपने असाधारण भाषाधिकार से कतिपय छन्दों में नाद-सौन्दर्य उपस्थित करने में भी पूर्ण सफल हुए हैं—

"एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, बारी
तो-सो और कौन, मन ढरकौंहीं बानि दै।"[३]

छन्द :

घनानन्द ने अपने युग में प्रचलित, अप्रचलित विविध प्रकार के छन्दों को ग्रहण कर काव्य-रचना किया है। स्वच्छन्द रूप से छन्द-चयन और उन छन्दों में अपनी भाव-धारा का अबाध प्रकाशन उनकी क्षमता को लक्षित करता है। शृङ्गार रस की प्रवृत्ति के अनुकूल उनका सर्वप्रिय छन्द कवित्त और सवैया है जिसमें 'सुजान-हित' की रचना हुई है। इन छन्दों में कवि की कला और भावों का चरमोत्कर्ष दर्शनीय है। छन्द-विधान की दृष्टि से उनकी द्वितीय शैली भक्तों की भक्ति भाव-मूलक पद-शैली है जिसमें पदावली की रचना की गयी है। अपनी छोटी-छोटी रचनाओं में कवि ने भक्तिकाल के सर्वप्रिय छन्द दोहा और चौपाई का विधान किया है। इस शैली पर आधारित कृति 'कृष्ण कौमुदी' में दोहा प्रधान है और चौपाई गौण तथा अन्य रचनाओं में चौपाई प्रधान है और दोहा गौण। फारसी शैली से प्रभावित होकर घनानन्द ने 'वियोग बेलि' और 'इश्कलता' में उसी तर्ज पर छन्दों का विधान किया है। 'इश्कलता' में दोहा, अरिल्ल, माँझ और निशानी छन्द प्रयुक्त हैं जबकि 'वियोग-बेलि' में फारसी शैली से प्रभावित एक ही प्रकार के छन्द देखने को मिलते हैं। कवि की कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जिनमें छन्दों की मिली-जुली योजना देखने को मिलती है। इन रचनाओं में उपर्युक्त छन्दों के अतिरिक्त सोरठा, छप्पय, प्लवंग, बखै, त्रिभंगी आदि का भी प्रयोग हुआ है। 'गोकुल विनोद' तथा 'मनोरथ मंजरी' में कवि ने सर्वथा नये प्रकार के छन्दों को प्रयुक्त किया है। संगीतात्मकता, घनानन्द के काव्य की अन्यतम विशेषता है जिसके मूल में उनका

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ७७, छन्द २३८।
२. वही : पृ० ११०, छन्द ३४८।
३. वही : पृ० ८४, छन्द २५६।

छन्द-विधान तथा राग-रागिनियों का ज्ञान है। छन्द-वैविध्य कवि की स्वच्छन्द मनोवृत्ति का संकेत करते हैं।

भाषा :

घनानन्द की भाषा शुद्ध प्रांजल साहित्यिक ब्रज-भाषा है। "ब्रज-भाषा का शुद्ध साहित्यिक रूप घनानन्द को उत्तराधिकार में मिला था। मीराँ की स्पष्टता, तीव्रता, सरलता, सादगी; सूरदास की गेयता; नन्ददास का जड़ाव; देव की ऋजुता, लोच आदि गुण घनानन्द की भाषा को सहज ही मिल गये थे। लक्षणा के नवीन प्रयोग, विरोधाश्रित तथा समृद्ध शब्द-कोश द्वारा घनानन्द ने ब्रज-भाषा को कान्ति तथा मसृणता प्रदान कर उसे हर तरह से समृद्ध बना दिया।"[1] वस्तुतः शब्दातीत अर्थगौरव का एक चित्र देखिए—

'भोर तें साँझ लौं कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति।
मोहन सोंहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।'[2]

यहाँ पर आँखों के मन में आर्ति का उदय, आँखों के व्यक्तित्व को प्रकट करता है। इसी प्रकार घनानन्द की शब्दावली अनेक विशेषताओं से युक्त है। "वे भाषा के प्रयोग में असाधारण रूप से पटु थे। शब्दों में नयी-नयी व्यंजनाएँ भरना, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और गहरे-से-गहरे भावों को शब्दों में मूर्त करना वे भली-भाँति जानते थे। आवश्यकता के अनुसार शब्दों में लोच, संकोच, विस्तार, वक्रता आदि भी पैदा कर सकते थे।"[3]

घनानन्द का भाषा पर असाधारण अधिकार था। उनकी भाषा भावों के अनुसार स्वयं मोड़ लेती हुई चली गयी है। वह रीतिमार्गियों की भाषा से सर्वथा भिन्न है। उसमें संयमित शब्द-योजना, नाद-सौन्दर्य युक्त वर्ण-योजना तथा भावानुकूल प्रवाह का गुण विद्यमान है। पद्माकर की भाँति शब्द-चमत्कार के पीछे वे नहीं बहे हैं। यदि कहीं शब्द-चमत्कार दिखाई भी देता है तो वह सार्थक तथा भाव-गर्भित है। शब्द-चमत्कार के साथ अर्थ-चमत्कार की विशेषता से युक्त एक छन्द देखिये जिसकी पहली पंक्ति में सार्थक शब्द-चमत्कार तथा अन्तिम पंक्ति में शब्द-चमत्कार के साथ ही अर्थ-चमत्कार का सुन्दर समन्वय है—

---

१. डॉ० राजबुद्धि राजा : घनानन्द और शिल्प, पृ० ७५, संस्करण १९७६ ई०।
२. घनआनँद ग्रन्थावली : पृ० २११, छं० ८५।
३. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा : रीति स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ३७३, संस्करण १९७७ ई०।

"बरसैं तरसैं सरसैं अरसैं न कहूँ दरसैं इहि छाक छई"।

× × ×

रसमूरति स्यामहिँ देखत ही सजनी अखियाँ रसरासि भई"।"[1]

भावानुकूल शब्द-चयन तथा शब्द-क्रीड़ा करने में वे सिद्धहस्त थे। उन्होंने भाषा का सूक्ष्म भाव-बोध के साथ संस्कार किया है। "यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार उनका था, वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा, मानो उनके हृदय के साथ जुड़ कर ऐसी वशवर्तिनी हो गयी थी कि ये उसे अपनी अनूठी भाव-भंगी के साथ-साथ जिस रूप में चाहते थे, उस रूप में मोड़ सकते थे।"[2]

घनानन्द की भाषा कबीर की तरह पंचमेल खिचड़ी तो नहीं है लेकिन कुछ भाषाओं की शब्दावली का मिश्रण अवश्य है और यह उनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण ही है। उनके काव्य में ब्रजभाषा के अतिरिक्त अन्य देशी तथा विदेशी शब्दों का भी मेल है, ऐसा मेल जो घुल-मिलकर एकाकार हो गया है, साहित्यिक ब्रज-भाषा के साथ ठेठ ब्रजभाषा के शब्दों का मेल जैसे—भभक, हैली, न्यार, सौज, भोयो, सरयो, ढेल, अपचायौ, अवरी आदि; नवीन अप्रचलित शब्दों का मेल जैसे—कोबरे, ऊक, बिरचै, भकभूर, सिलसिला, हरतार, दिनदानी आदि; तद्भव शब्दों का मेल जैसे—जतन, परजंक, पदारथ, तीछन, उदेग, दीठि, इच्छन, सखी, कटाच्छ, नीति आदि। इसी प्रकार संस्कृत के तत्सम शब्द जैसे—प्राण, विष, खंजन, कुंज, मीन, मलय, पंकज, दिनेश आदि; पंजाबी के शब्द जैसे—सोहड़ा, कितबल, जीवाँ, भेडे, दिहाड़े, तुसाड़े, जाण्दा, घुड़िया आदि; डोगरी भाषा के शब्द जैसे—मजनू, तिनाँदा, तिज्जो, इत्थं, जित्थं आदि का उसमें मिश्रण है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों को भी सफलतापूर्वक ब्रज में ढाल कर अपने काव्य में प्रयोग किया है। जैसे इस्क, महबूब, आसिक, चस्माँ, चिमन, तीर, कमान, कहर, दसाला, हुकम, हुजूरी, खातर, जहर, शहर, जिगर, इलम, अक्कल, शराबी, यार, दिलदार, बेपीर, तकसीर आदि। इस प्रकार घनानन्द के काव्य में साहित्यिक ब्रज-भाषा तथा तत्कालीन जन-भाषा का अनूठा गंगा-जमुनी संगम है।

घनानन्द ने मुहावरों का प्रयोग बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है। इसी कारण उनकी भाषा में प्रवाह, लय तथा लोच है। घनानन्द की भाषा लक्षणा प्रधान है, और यह मुहावरों के कारण ही है। उनके काव्य में प्रयुक्त मुहावरे शारीरिक अंगों के मूर्त अथवा अमूर्त क्रिया-व्यापारों तथा भाव-बोधों की सुन्दर व्यंजना करते हैं।

---

१. घनआनँद ग्रन्थावली : पृ० १३२, छं० ४३४।

२. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ० २३३, सं० २०३५ वि०।

वे नेत्रों के क्रिया-व्यापारों तथा भाव-बोधों की सुन्दर व्यंजना करते हैं। नेत्रों के क्रिया-व्यापारों से संबंधित मुहावरे—आँखों की बानि, नेत्रों की छवि पीना, नेत्रों को ढुलकाना, नेत्रों की अनोखी बान पड़ना, एकटक देखना, नेत्रों पर पैर रख कर आना, नेत्रों के तारे होना, नेत्रों के बीच कृपा का कान होना, नेत्रों का वैरी होना आदि। अन्य अंगों के क्रिया-व्यापारों से संबंधित मुहावरे—होठों में हृदय भरना, गुलाल भरना, सीस का चढ़ना, पीठि का देना, हाथ पर पड़ना आदि। भावबोधक मुहावरे—साँसों का सुवासित होना, साँस का रोकना, रस बरसाना, लज्जा का नवेली होना, चितचोर होना, प्राणों का ग्राहक होना, लाज से लिपटना, झूठ की सच्चाई छकना, रुचि का राजा होना, हार का पहार लगना, धीरज का हाथ लगना आदि। घनानन्द के इन मुहावरों में उनके हृदय की टीस ही परिलक्षित है। ये मुहावरे रूप, गुण, भाव तथा व्यक्तित्व की व्यंजना करते हैं तथा कवि की आन्तरिक अनुभूतियों को तीव्रता प्रदान करने वाले हैं। 'अपनी भाषाओं के अनूठे रूप-रंग व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में कोई नहीं हुआ।'[१] उन्होंने स्वच्छन्दतावाद के जिस व्यापक धरातल को स्पर्श किया, वैसा प्रयास बीसवीं शताब्दी की काव्य-चेतना में ही देखने को मिला।

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ० २३३, सं० २०३५ वि०।

बोधा

प्रेम–निरूपण :

बोधा प्रेमोमङ्ग के गायक कवि थे। उन्होंने अपने काव्य में लौकिक प्रेम 'इश्कमजाजी' को आदर्श रूप में चित्रित किया है, जिसको उनका एक विशिष्ट पक्ष कहा जा सकता है। प्रेम में नई उमंग के कारण बोधा की आँखें दरबार की एक नृत्यांगना से उलझ गयीं और वे ऐसी उलझीं कि आजीवन सुलझ न सकीं। इसी कारण उन्हें अनेक प्रकार के कष्टों को भी सहना पड़ा और देश निकाला भी हुआ लेकिन प्रेम-मदिरा का पान कर छके हुए प्रेमी ने कभी आह तक नहीं भरी और न प्रेम पर किसी प्रकार की आँच आने दी। यद्यपि घनानन्द की सुजान की तरह सुभान ने भी उनका साथ नहीं दिया लेकिन बोधा उसकी परवाह न कर अपने प्रेम-पथ पर अन्त तक अडिग रहे। 'पपीहा बादल के पत्थर बरसाने पर क्या रुष्ट होता है' ?[1] फिर उन्होंने तो अपने प्रेम का निरूपण इस प्रकार किया है—

'अति छीन मृनाल के तारहु तें तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई-बेह तें द्वार सकीन, तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनो है।
कवि बोधा अनी घनी नेजहु तें, चढ़ि तापै न चित्त उगावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल है जू तरवार की धार पै धावनो है।''[2]

उक्त छंद से स्पष्ट है कि कवि को प्रेम-मार्ग में आने वाली सभी कठिनाइयों की जानकारी है, फिर भी उसने प्रेम किया और निभाया भी। यह उसके आत्मबल, आस्था और शौर्य का परिचायक है। यह सामान्य जन के वश की बात नहीं है। उन्होंने अपने प्रेम-पथ पर अडिग रहकर त्याग और बलिदान का एक अनोखा दृष्टान्त प्रस्तुत किया।

बोधा एक स्थान पर आगामी पीढ़ी को जैसे संदेश-सा देते हैं कि प्रेम मत करो क्योंकि प्रेम में व्यक्ति लुट जाता है, बिक जाता है और उसे तरह-तरह की यातनाएँ भी सहनी पड़ती हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'विरह वारीश' में प्रेम में होने वाली पीड़ाओं का व्यक्तिगत अनुभूतियों के आधार पर बड़ा सटीक चित्रण किया है। वास्तव में बोधा प्रेम के पपीहे थे। उनका प्रेम भी अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों की तरफ एकोन्मुख ही

---

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का अतीत : पृ० ६६७, प्र० सं०, २०१७ वि०।

२. बोधा ग्रन्थावली : पृ० १६, प्र० सं०, २०३१ वि०।

था। प्रवास के समय उन्होंने प्रिय को साथ लेना चाहा, लेकिन प्रिय ने उन्हें ठुकरा दिया, फिर भी यह प्रेम-पपीहा प्रवास में एक क्षण भी प्रिय को भुला न सका। वह लगातार अपनी रफ्तार से पिहकता रहा। 'प्रेम एकोन्मुख होता है। चकोर चन्द्रमा को ही चाहता है और चातक बादल को ही, वे दूसरे की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते।' यही स्नेह का सच्चा रूप है। इसे ही एकनिष्ठ सहज स्नेह कहते हैं जिसके प्रति पहले स्नेह हो गया फिर प्रेमी उसे ही देखता है। चकोरी का प्रिय चन्द्रमा न जाने कितनी दूर है, वह उसे ही देखती है। प्रेम के कारण प्रिय और प्रेमी के बीच देश-काल का अन्तर-महन्तर बाधक नहीं होता।[१]

प्रेमी कवि बोधा प्रिय सुभान के रूप-सौन्दर्य पर पूर्णरूपेण रीझ चुके थे। फिर क्या था प्रेम-रस की सरिता आप्लावित होने लगी। कवि प्रेम-चषक का पान कर उन्मत्त हो झूम उठा। 'उसने सारे संसार के सौन्दर्य को एक सुभान के आनन पर न्यौछावर कर दिया। यही नहीं, उसकी एक मुस्कान पर कितने ही शतक्रतु (इन्द्र) की पदवी भी लुटाने को तैयार हो गया। कज्जल-युक्त प्रिय की आँखें जिस तरफ नहीं घूमीं, उस तरफ प्रायः अँधेरा ही दिखाई देता है। उसके लिए ऐसे प्रिय को प्राप्त करना ही सारे संसार को प्राप्त करने के बराबर है, नहीं तो उसके लिए सारा संसार व्यर्थ है।'[२] ऐसा सहज स्नेह था इस प्रेम के गायक में, प्रेम के पपीहे में।

बोधा का अधिकांश समय प्रवास में ही व्यतीत हुआ। इसी कारण विरहानुभूतियों का सटीक चित्रण करने में वे समर्थ हो सके। 'विरह वारीश' में उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि 'हे स्वामी! अगर तू नर देह देना तो प्रेम मत देना, अगर भाग्यवश प्रेमी मिले भी तो प्रिय का वियोग न हो, और अगर प्रिय का वियोग भी देना हो तो मृत्यु भी साथ ही लिख देना।'[३]

बोधा में आत्माभिव्यंजन की प्रवृत्ति सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों से अधिक है। उन्हें जीवन में जिस समय जैसी अनुभूति हुई उसको उसी रूप में उन्होंने अभिव्यक्त कर दिया। इसलिए उनके काव्य में कहीं भी कृत्रिमता नहीं दिखाई देती। बोधा ने प्रेम में विरह का होना अनिवार्य बताया है क्योंकि विरह में ही सच्चे प्रेम की पहचान होती है, तप्त स्वर्ण की तरह उसमें निखार भी आता है। सच्चा प्रेम एक ही से होता है और प्रेमी अनेक प्रकार के कष्टों को सहता हुआ प्रिय को प्राप्त करने के लिए हर संभव प्रयास करता है। वह संसार में किसी की परवाह नहीं करता और न लोक-लाज की चिन्ता ही करता है। उनका कहना है कि गाँव-घर

१. आ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का अतीत : पृ० ६६६।
२. बोधा ग्रन्थावली : पृ० ६।
३. वही : पृ० २५।

तथा लोक-परलोक की चिन्ता करने वाला कोई हृदयहीन व्यक्ति तो हो सकता है पर प्रेमी नहीं हो सकता।[1] वास्तव में प्रेम-मन की दशाओं का जैसा प्रभविष्णु चित्रण बोधा ने किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

"बोधा में भी प्रेम की सच्ची पीर थी। ये प्रेम के चकोर कम, पपीहे अधिक हैं। ऐसी रसमग्न करने वाली उमंग थोड़े ही कवियों में मिलेगी। इनकी अधिकांश कविता प्रेममार्ग-निरूपिणी है।"[2] वास्तव में प्रेम त्याग का ही दूसरा नाम है। प्रेमी प्रेम के समक्ष समस्त वस्तुओं को हेय समझने लगता है। उसकी अनुरागपूर्ण दृष्टि केवल प्रिय को ही श्रेष्ठ आसन पर आसीन करती है। इस बात की पुष्टि बोधा की इन पंक्तियों द्वारा की जा सकती है।

'सुन सुभान यह इस्कमजाजी। जो दृढ़ एक हक्क दिलराजी।
पढ़ै पढ़ावै समुझै कोई। मिलै हक्क खादिम को सोई,'[3]

बोधा ने कहीं-कहीं पर अधिक कामान्ध होकर कामुकतापूर्ण उक्तियाँ भी लिखी हैं, जो उनके प्रेम में कलंक के समान हैं। उदाहरण के लिये निम्न छंद को देखिए—

'काँपत गात सकात बतात है, साँकरि खोरी निसा अँधियारी।
पातहु के खरकै छरकै घरकै उर लाय रहै सुकुमारी।
बीच में बोधा रमे रसरीति, मनो जग जीति चुक्यो तिहि बारी।
यों दुरि केलि करैं जग में, नर धन्य वहै धनि है वह नारी।'[4]

इन्हीं उक्तियों के आधार पर कुछ आलोचकों ने इनके प्रेम को बाजारू कहा है लेकिन ऐसी कामुकतापूर्ण उक्तियों में भी कवि की मुख्य प्रवृत्ति प्रेम-निरूपण की ही रही है। उनकी इस प्रकार की उक्तियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि उनके हृदय-तल में युवतियों के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान था। उन्होंने तरुणी की रति में ही अमृत-रस को प्राप्त किया। उनके काव्य पर फारसी का भी अंशतः प्रभाव दृष्टिगत होता है, लेकिन उसके आधार पर उन्हें पूर्ण रूप से फारसी काव्य-परम्परा से प्रभावित सिद्ध नहीं किया जा सकता। उनका सम्पूर्ण काव्य भारतीय लौकिक प्रेम-पद्धति पर लिखा गया है। डॉ० किशोरीलाल के शब्दों में "बोधा का हृदय विदेशी प्रभाव से

---

१. बोधा ग्रन्थावली. पृ० ४६।
२. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का अतीत : पृ० ६६८, प्र० सं०, २०१७ वि०।
३. बोधा ग्रन्थावली (विरह-वारीश); पृ० ५६, छन्द ५६।
४. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : बोधा ग्रन्थावली, पृ० १८।

बहुत-कुछ असंपृक्त हो गया है और उनमें अन्तर्वेदना की वही झलक मिलती है जो वैष्णव भक्ति की रचनाओं में मौजूद है।"[१]

सौन्दर्य-बोध :

सौन्दर्य का भावना से निकट का सम्बन्ध होता है। रूप-सौन्दर्य का माधुर्य, हृदय में भावुकता उत्पन्न होने पर स्वतः बढ़ जाता है। सौन्दर्य का यह चाक्षुष-ग्राह्य रूप अत्यन्त प्रभावशाली भी होता है। उत्तर मध्यकाल में स्थूल रूप से अंग-प्रत्यंग का वर्णन एवं सामूहिक सौन्दर्य-निरूपण ये दो विधाएँ काव्य में प्रचलित थीं। रीति-मुक्त कवि बोधा ने इन दोनों स्वरूपों का प्राविधान अपनी प्रबन्ध कृति 'माधवानल-कामकन्दला' में 'कन्दला' का स्वरूप-निरूपण करते समय किया है। 'कामसेन की सभा में जब माधव और कन्दला की दृष्टि एक-दूसरे से मिलती है तब माधव कन्दला को एकटक देखते ही रह जाता है।'[२] इसी प्रसंग में कवि ने परम्परागत ढंग से कन्दला के समग्र सौन्दर्य का प्रभविष्णु शिख-नख चित्रण भी कर डाला है।[३]

बोधा ने अपनी मुक्तक रचना 'इश्कनामा' में अपने प्रिया के रूप-सौन्दर्य का अवयवी निरूपण न कर उसकी रूप-राशि की अतिशयता को व्यंजित किया है। प्रेमी कवि बोधा अपनी प्रिया सुभान के सौन्दर्य पर कभी सारी सृष्टि के सौन्दर्य को न्यौछावर करते हैं तो कभी उसकी मुखाकृति पर आकृष्ट हो अपने हृदय की दशा को 'सावन के अन्धे' सी बताते हैं।[४] बोधा के काव्य में कहीं-कहीं पर सौन्दर्य का अत्यन्त प्रांजल स्वरूप पूरे मनोवेग से चित्रित हुआ है। एक छंद में उन्होंने देव-पूजन के लिये जाती हुई युवती की शोभा, पूजा की भावना एवं उसके रूप-माधुरी का चित्र बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से वर्णित किया है,[५] लेकिन ऐसे स्थल अत्यल्प ही हैं।

संयोग :

बोधा ने अपने काव्य में संयोग का जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसमें कहीं भी परम्परा-पालन का आग्रह नहीं है। उन्होंने स्थान-स्थान पर राधा-कृष्ण और गोपी-कृष्ण का मिलन-सुख दिखाकर अद्वैत भाव-युक्त प्रेम का बड़ा ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत

१. डॉ० किशोरीलाल : रीति कवियों की मौलिक देन : पृ० ४०६, संस्करण १९७१ ई०।

२. बोधा ग्रन्थावली, पृ० ९९।

३. वही, पृ० १०३।

४. 'बोधा सुभान को आनन छोड़ि न आनन मो मन आन अरूझै।
जैसे भये लखि सावन के अँधरे नर को सु हरो-हरो सूझै।'
—बोधा ग्रन्थावली, पृ० १०।

५. वही : पृ० ९।

किया है, जो उनकी स्वच्छन्द मनोवृत्ति का परिचायक है। उन्होंने अपने लौकिक-प्रेम पर अलौकिकता का लिहाफ नहीं चढ़ाया, वरन् अपने लौकिक प्रेम को ही उन्मुक्त रूप दिया। उनकी गोपियाँ लोक-लाज को प्रेम पर न्यौछावर कर देने को कहती हैं। आगे उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जो इन संसारी प्राणियों से भयभीत रहता है, उसे प्रेम-मार्ग में पैर नहीं रखना चाहिए।[१]

स्वच्छन्द कवियों ने प्रीति-विषमता के कारण संयोग-सुख का सौभाग्य बहुत कम प्राप्त किया। इसलिए उनके काव्य में वियोग की ही अधिकता दिखाई देती है फिर भी संयोग का भी चित्र यत्र-तत्र दिखाई देता है। यथा—गोपी, प्रिय-मिलन के सभी बाधक तत्त्वों को दूर करना चाहती हैं क्योंकि घर का कड़ा पहरा होने के कारण वह प्रिय से प्रेम तो करती हैं पर मिल नहीं पातीं।[२] यहाँ पर कवि की वाणी में उन्मुक्त प्रणय-व्यापार के समर्थन की गूँज है। इसी प्रकार बोधा ने कई छन्दों में अपने व्यक्तिगत प्रेम का मार्मिक उद्‌घाटन किया है, जिसे पढ़ कर प्रेमी हृदय उद्विग्न हो उठता है। उन्होंने प्रिया सुभान के प्रति अनुरक्ति प्रकट करते हुए कहा है—'बस मेरो कछू ना हुतो मन में, बिन देखे तुम्हें मनु मानत ना।'[३] इस प्रकार बोधा ने गोपी-कृष्ण के माध्यम से अपनी ही आन्तरिक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है। 'वास्तविकता तो यह है कि कवि ने 'विरह-वारीश' अथवा 'माधवानल कामकन्दला' चरित के ब्याज से आत्मचरिते को अभिव्यंजित किया है।'[४] कवि की रीति-निरपेक्षता, दिल की पुकार, अन्तःकरण की अभिलाषा की एक झाँकी देखिये—

> 'प्रीति की पाती प्रतीति कुँडी, दृढ़ताई की घोटन घोटि बनावै।
> मैन :मजेजन सों रगरै, चितचाह को पानी घनो सरसावै।
> बोधा कटाछन की मिरचैं, दिल साफी सनेह कटोरे हलावै।
> मों दिल होइ सुखी तबहीं, जब रंग में भावती भंग पिआवै।'[५]

---

१. 'लोक की लाज औ सोच अलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ।
× × ×
लोक की भीति डेरात जौ मीत तौ प्रीति के पैंड़े परै जनि कोऊ॥'
—बोधा ग्रन्थावली : पृ० ३।

२. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : बोधा ग्रन्थावली, पृ० ६।

३. वही : पृ० १३, छन्द ७५।

४. डॉ० रामफेर त्रिपाठी : रीतिमुक्त कवि : नया परिदृश्य, पृ० १०६; प्र० संस्करण, १९८२ ई०।

५. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : बोधा ग्रन्थावली, पृ० १८।

भंग-रूपक के माध्यम से अपने हृदय के मुक्त उल्लास को कवि ने जैसे उँड़ेल दिया है। स्वच्छन्द वृत्ति की यह अभिव्यक्ति अप्रतिम है। "मनोवेगों का निश्छल प्रवाह, प्रेमोन्माद की अतिरिक्त उत्कट अनुभूति, वैयक्तिक भाव-चिन्तन की मस्ती और भावदशाओं की निर्बन्ध, अकुंठित और अकृत्रिम अभिव्यक्ति ने बोधा को रीतिमुक्त शृंगारी भावधारा में विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। प्रकृति से रसज्ञ और भावुक होने के कारण प्रेम-रस इस कवि की रचनाओं से निचुड़ा-सा पड़ता है।"[1]

प्रीति-विषमता के कारण कवि की अतृप्त मनोदशाएँ कभी-कभी सजल हो उठती हैं और वह मनोवेग के प्रवाह में डूब कर शृंगार का आह्लादक चित्र भी प्रस्तुत कर देता है जो उसकी अश्लील मनोवृत्ति का परिचय देते हैं। इनकी रचना 'विरह-वारीश' में वर्णित ऐन्द्रिय संभोग के चित्र देखने योग्य हैं। उसमें कवि ने 'माधवानल-कामकन्दला' के व्याज से अपनी ही कुरुचिपूर्ण ऐन्द्रियता को वाणी दी है।[2]

वियोग :

प्राय: सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में प्रीति-विषमता के कारण संयोग की अपेक्षा वियोग की सबल अभिव्यक्ति हुई है। परम्परागत कवि ऊहाओं का अधिक प्रयोग करते थे। उनकी विरह-विदग्ध नायिका जिस गाँव में रहती थी उसके ताप से जलने के भय से उस गाँव में कोई पथिक नहीं जाता तथा शीशी का सेण्ट उसके शरीर पर पहुँचने के पहले ही भाप बन कर उड़ जाता था और वह वियोग में इतनी क्षीण हो जाती थी कि मृत्यु भी उसको ढूँढ़ नहीं पाती थी। इस प्रकार के अनेकश: चित्र इन कवियों के काव्य में मिलेंगे, जो अत्यन्त हास्यास्पद हैं। लेकिन स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में ऐसी उक्तियाँ खोजने पर भी नहीं मिलेंगी। कारण स्पष्ट है कि इन कवियों ने स्वयं प्रेम किया तथा भोग और वियोग के क्षणों में जो कुछ उनके अन्तराल में द्रवित हुआ, उसी को उन्होंने अपने काव्य में रूपायित किया।

इन कवियों का प्रेम वस्तुत: जगत् प्रसिद्ध था। यद्यपि इनकी प्रेमिकाओं ने इनका साथ नहीं दिया, फिर भी ये प्रेम के पपीहे उसकी परवाह न कर जीवन के अन्तिम क्षण तक अपनी रागानुभूति का आलाप करते रहे। बोधा के प्रेम पर रुष्ट होकर जिस समय राजा ने बोधा को देश-निकाले का दण्ड दिया, उस समय प्रेमी ने प्रिय के साथ चलने का अनुरोध किया, लेकिन प्रिय को वह स्वीकार्य न हुआ। दृढ़-प्रतिज्ञ प्रेमी शंकर की भाँति इस विष को हँसते-हँसते पी गया और प्रिय के दिले-

१. डॉ० रामफेर त्रिपाठी : रीतिमुक्त कवि : नया परिदृश्य, पृ० ११४।
२. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : बोधा ग्रन्थावली, पृ० ११६।

दौलत पर चोट न करता हुआ निकल पड़ा।[1] बोधा ने प्रवास के समय की उन मर्मान्तिक पीड़ाओं पर रीति का लिहाफ नहीं पहनाया। उन्होंने अपनी उन अनुभूतियों को स्वच्छन्द भाव से अभिव्यक्त किया। 'अपनी प्रियतमा से वियुक्त होकर कवि को अपार कष्टों का सामना करना पड़ा तथा विरह-सिन्धु में गोते खाने पड़े',[2] जैसा कि उन्होंने स्वयं अभिव्यक्त किया है।[3]

पूर्वराग :

विप्रलंभ शृङ्गार के अन्तर्गत पूर्वराग का प्रसंग वह प्रथम सोपान है जिस पर चढ़कर शनैः-शनैः प्रेम का मानस प्रवास करुण-अवस्था को प्राप्त होता है। बोधा के काव्य में पूर्वराग के अनेकशः चित्र परिलक्षित होते हैं। उदाहरण के लिये एक छन्द देखिए—

'बाला गई अपने गेह। लक्षित भयो ताको नेह।
× × ×
काहू दोष ना यहि धारि। भूली मंत्र के बस नारि।'[4]

प्रवास :

प्रियतम के प्रवासी होने पर पावस की काली घटा विरहिणी के मन के धैर्य को भंग कर देती है। ऊपर से दादुर, मोर, पपीहे की ध्वनि उसके मन को दोलायमान कर देते हैं। प्रियतम के बिछुड़ने पर विरह का ज्वर अहर्निश बढ़ता ही जाता है। उस समय विरही को कोई दिलदार नहीं दिखाई देता, जिससे वह अपनी व्यथा कहे। विरहिणी विरह-ताप से संतप्त है, उस पर मयूर का कल-कूजन सुन कर उसका हृदय काँप उठता है। पपीहा भी पी-पी की रट लगाये है। ऐसी दशा में बेचारी विरहिणी का हृदय विदीर्ण होता जा रहा है।[5]

---

१. 'इतराजी नरनाह की बिछुरि गयो महबूब।
बिरहसिन्धु बिरही सुकवि, गोता खायो खूब॥'
—बोधा ग्रन्थावली-विरह वारीश, पृ० २२, छंद १४।

२. डॉ० रामफेर त्रिपाठी : रीतिमुक्त कवि : नया परिदृश्य, पृ० १०३, संस्करण १९८२ ई०।

३. बोधा ग्रन्थावली : पृ० ७७।

४. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : बोधा ग्रन्थावली, पृ० ७८।

५. प्यारो हमारी प्रवासी भयो, तबतें जरियै बिरहानल तापन।
एते में पावस की या निशा, हियरा हहरै सुनि केकी कलापन।
चात्रिक एते करै बिनती, कवि बोधा छके अपनीये अलापन।
तू अपने पिय कों सुमिरै-सुमिरै हम तेरी जुबान को दापन।
—बोधा ग्रन्थावली : पृ० ९।

करुण :

बोधा ने माधव और कन्दला की प्रणय कथा का सूत्र पकड़कर आप बीती कथा को सुनाया है। उनके प्रबन्धकाव्य 'विरह-वारीश' में करुण-वियोग का चित्र यत्र-तत्र परिलक्षित होता है।[1]

अन्तर्दशाएँ :

अन्तर्दशाएँ, विप्रलंभ शृङ्गार की अनिवार्य दशाएँ हैं। सप्रयास इनका अनुरेखन न करने पर भी उन कवियों के काव्य में भावावेग के साथ बहकर ये स्वत: आ जाती हैं जो कवि होने के साथ-ही-साथ प्रेमजीवी भी हों। 'बोधा' विरह-विदग्ध प्रेमी थे। अत: कतिपय अन्तर्दशाओं का दर्शन उनकी रचनाओं में हमें मिलता है। वियोगावस्था में अभिलाषाओं और संयोग-सुख से संबद्ध स्मृतियों का ज्वार उठा करता है जिससे प्रेमी के मन की पीड़ा इतनी बढ़ जाती है कि वह प्रलाप करने लगता है। 'बोधा' ने स्मृति, अभिलाषा और मानसिक पीड़ा से उत्पन्न प्रलाप की स्थितियों का बड़ा ही हृदयस्पर्शी चित्र खींचा है।[2] जब प्रिय के मिलने की आशा क्षीण होने लगती है तो प्रेमी चिन्ताग्रस्त हो जाता है। उसका चित्त इतना उद्विग्न हो उठता है कि किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जड़ता और कभी-कभी उन्मादावस्था तक पहुँच जाता है। 'बोधा' ने चिन्ता[3], जड़ता[4] तथा उन्माद[5] की इन स्थितियों का भी अनुभूति संवेद्य हृदयग्राही विश्लेषण किया है।

काव्य-शिल्प :

अभिव्यंजना-कौशल—रीतिमुक्त कवि बोधा का अभिव्यंजना-कौशल उनके योगात्मक सिद्धि एवं आत्म-समाधि का ही विशद परिणाम है। उनके शिल्प में सर्वत्र उनकी आनुभूतिक प्राण-चेतना व्यंजित है। बोधा ने रीतिबद्ध कवियों के समान आकृति परिमार्जन एवं शिल्प-संस्कार में रुचि प्रदर्शित नहीं की, वरन् उन्होंने प्रकृति-परिवर्तन का कार्य किया है। अभिव्यंजना की दृष्टि से बोधा अपने कथ्य के अनुकूल हैं।

---

१. बोधा ग्रन्थावली, : पृ० ७६।
२. वही : पृ० ५७।
३. 'निज जिय की माधोनल कहै। मेरे जिय चिन्ता यह रहै।
×   ×   ×
मेरे चित्त प्रतीत है येही। बिछुरे मित्र न जियै सनेही।'
—विरह वारीश, पृ० १३८।
४. 'हौं तो दिवानी भई सो भई, उनसों न करी जड़ता बजिकै दई।'
—वही : पृ० ५७।
५. बोधा ग्रन्थावली : पृ० ६-१०।

बोधा शिल्प-चमत्कार के चक्कर में न पड़ कर अपने हृद्गत भावों की अभिव्यक्ति में ही प्रयत्नशील रहे। इसी कारण उनकी भाषा में घनानन्द जैसा कसाव नहीं है। लेकिन उनकी आन्तरिक ऊर्जा सजग है। बोधा ने बुन्देलखण्डी मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग किया है जिसके ऊपर उनका अर्थ-गौरव अवलम्बित है। ये मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ प्रदर्शन के लिए न आकर विशद प्रेम-निरूपण में सहायक हैं। उनके मुहावरों में विरह-व्यथित अन्तःकरण की आर्द्रता ध्वनित होती है। इन मुहावरों एवं लोकोक्तियों में उनके व्यक्तित्व की भी स्पष्ट छाप है। इन प्रयोगों द्वारा कवि ने अपने हृद्गत भावों का प्रकाशन अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक किया है। अस्तु 'बोधा के मुहावरे सृजन-प्रक्रिया की उपज हैं, जिनमें आत्मानुभूति की प्राण-चेतना स्पंदित रहती है।'[१] और इनमें 'ऐतिहासिक धरातल का एक शुद्ध दर्द भी बोलता है।'[२]

मुहावरे :

बोधा ने मुहावरों द्वारा मात्र अर्थ-गौरव की ही सृष्टि नहीं की, वरन् साधारण भाषा-प्रयोग द्वारा प्रेम की अत्यन्त गम्भीर व्यंजना करने में भी वे सफल हुए। उनके मुहावरों ने अभिव्यंजना-कौशल के आन्तरिक और बाह्य दोनों रूपों को बल प्रदान किया है। यथा : 'आँख लगना, आँख लगे की प्रीति, आँखें भर आना, आँखें वारना, आग लगाकर पानी को दौड़ना, काठ में पाँव देना, काम पड़ना, कुलकानी छोड़ना, खाट से लगना, गाँठ पड़ना, गाल बजाना, तलवार की धार पर चलना, दिल अपने हाथ न होना, दिल न हिलना, दिल में धरना, दिल में बसना, दिल में रखना, दिल में आग लगाना, दूसरे कान न पड़ना, धीरज धरना, नौ तेरह के बीच, बात न खोलना, भौंह चढ़ाना, मन की मन में रखना, माथे चढ़ना'[३] आदि।

लोकोक्ति :

बोधा के व्यक्तित्व का निखार मुहावरों से अधिक लोकोक्तियों में हुआ है। उनकी लोकोक्तियों में प्रणय-संकल्प की शाश्वत चेतना समाहित है। इन लोकोक्तियों

---

१. डा० चन्द्रशेखर : रीतिमुक्त कविता : मुक्त रचना विधान, पृ० १०४, संस्करण १९७९ ई०।

२. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४३५, तृतीय संस्करण, १९६२ ई०।

३. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : बोधा ग्रन्थावली, इ० ना०, ० ५, मा० का० क०, पृ० ९, ९३ इ० ना०, पृ० १२, मा० का० क०, पृ० ४१, २४, ४, ३४, ९१, १०१, ३९, इ० ना०, पृ० १, ७; १९, ७, १९, मा० का० क०, पृ० १३७, २४, इ० ना०, पृ० ६, मा० का० क०, ६०, २२, इ० ना०, ९, १२, १३।

ने कवि के अभिव्यंजना-कौशल में निखार ला दिया है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

(१) 'अरु पीर धरे तजि धीर सखी दुख को नहीं कापें बखानतु है'[१]
(२) 'प्रीति करे पुनि और निबाहै सो आशिक सब जगत सराहै'[२]
(३) 'प्रेम को पंथ हलाहल है सुतौ वेद पुरानऊँ गावत हैं'[३]
(४) 'एक बेर मरने परो बोधा यह संसार'[४]
(५) 'करन बार कर में रही तेरी करी प्रमान'[५]
(६) 'जो कदापि बिछुरै प्रिया मरै कि रोगी होय'[६]
(७) 'दृग लागै लोक अचरज सो लागत'[७]
(८) 'लोक हँसी परलोक नसाई'[८]

छन्द :

बोधा ने 'इश्कनामा' में कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा, बरवै आदि छन्दों को प्रयुक्त किया है। उसमें भी सवैया छंद कवि को विशेष प्रिय रहा है। 'इश्कनामा' में कवि ने दोहा, सोरठा छन्दों को मात्रा का हेर-फेर करके प्रयुक्त किया है। उमंगी कवि बोधा के छन्दों को उमंग में आकर गुरु को लघुवत् पढ़ने पर ही गति आती है। ऐसा उनकी स्वच्छन्द मनोवृत्ति के कारण ही है। वे साधन से अधिक साध्य पर बल देते थे।

विविध छन्दों में लिखी गयी बोधा की रचना 'विरह-वारीश' की कथा ऐतिहासिक होते हुए भी अति सरस और मधुर है। उन्होंने भावानुसार विविध छन्दों का इसमें प्रयोग किया है। उनकी इस प्रकार की कवि-प्रतिभा देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। उन्होंने बहुत-से ऐसे छन्दों को भी स्थान दिया है जो अप्रचलित तथा अल्प प्रचलित हैं। छन्दों की बहुलता ने उनकी भाषा को विकृत नहीं होने दिया। हृद्गत भावों की दृढ़ता के कारण ही उनकी भाषा एवं छन्द में भी दृढ़ता है। 'भाषा की स्वाभाविकता स्वच्छन्दमार्गी सभी कवियों की अपेक्षा बोधा में अधिक है।'[९]

भाषा :

रीति-स्वच्छन्द कवियों में बोधा का प्रमुख स्थान है। बोधा ने अपने भावों की अभिव्यक्ति में अलंकारों का सहारा नहीं लिया। इसी कारण उनकी भाषा प्रायः अनलंकृत है। भाव ही उनका साध्य था, भाषा तो केवल साधन मात्र थी। इसलिए

१-८. 'विश्वनाथप्रसाद मिश्र : इ० ना० ४, मा० का० क०, पृ० ५, इ० ना०, पृ० ३, मा० का० क०, पृ० ११४, १२६, ८८, ६६, ७५।

९. डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ० ३७७, संस्करण १९७६ ई०।

उन्होंने भाषा का अपेक्षाकृत परिष्कार नहीं किया, जिसके कारण उनकी भाषा में कहीं-कहीं च्युत-संस्कृति दोष आ गया है, किन्तु मुहावरों एवं लोकोक्तियों से पुष्ट होने के कारण उनके भाषागत दोष चन्द्रमा के कलंक के समान छिप जाते हैं। बोधा की भाषा चलती हुई, बोलचाल की भाषा है। कहीं-कहीं उसमें फारसी के भी शब्द आ गये हैं। उनकी भाषा प्रयास-साध्य नहीं है, वरन् अभिधात्मक है। भावों को जन-मानस तक पहुँचाने के लिए उन्होंने सरल तथा सरस भाषा का प्रयोग किया है। उसमें प्रवाह है। ठेठ और बोलचाल के शब्दों का प्रयोग उसमें सर्वत्र मिलता है। फारसी शब्दों के प्रयोग के कारण उनकी भाषा कहीं-कहीं दुरूह हो गयी है। इनके काव्य में प्रयुक्त फारसी के कुछ शब्द इस प्रकार हैं—कुलुफ, जुलुफ, महिरम, दिलमाहिर, कजाजी, गुमानी, खूबी, हबूबी, बेपरद, दिलसूर, महिरवाँ, मरजी आदि। बोधा के काव्य में प्रयोग-सौन्दर्य,[१] लाक्षाणिकता [२] तथा काव्य की गहराई एवं काव्याभास देखा जा सकता है।[३]

बोधा की भाषा चलती हुई प्रवाहपूर्ण है। रीतिबद्ध कवियों की तरह बोधा ने अपनी भाषा को अलंकारों से बोझिल नहीं बनाया। उनकी भाषा में सहजता तथा निजीपन है। "यद्यपि कवि के काव्य का कलेवर रीतिकालीन लगता है तथापि उसमें भाव-विधान और उपमान-विधान में बिलकुल स्वच्छन्द मति से काम लिया है।...शैली निरलंकृत है। प्रयुक्त छंदों में सवैयों की संख्या अधिक है और उन्हीं के माध्यम से सर्वाधिक रमणीय व्यंजनाएँ भी की हैं।"[४]

———

१. (क) 'बोधा कहे को परेखो कहा, दुनियाँ सब मास की जीभ चलावत।'
(ख) 'बाल मरे मधुमास छकी, यह क्वैलिया पापिनि पीसेई डारति।'
(ग) 'काहू सों का कहिबो सुनिबो, कवि बोधा कहे में कहा गुन पावन।'
—बोधा ग्रन्थावली, पृ० ४, ७, ८।

२. 'बोधा सु नीति निबाह करै घर ऊपर जाके नहीं सिर होऊ।'
—वही : पृ० ३।

३. (क) 'विष खाई मरै कै गिरै गिरि, दगादार तें यारी कभी न करै।'
—बो० ग्रं०, पृ० ११।
(ख) 'एकहि ठौर अनेक मुसक्किल, यारी कै प्यारी सों प्रीति निबाहिबो।'
—बो० ग्रं०, पृ० २४।

४. डॉ० रामफेर त्रिपाठी : रीतिमुक्त कविता : नया परिदृश्य,
पृ० ११४, संस्करण १९८२ ई०।

ठाकुर

प्रेम-निरूपण :

स्वच्छन्द कवियों के प्रेम-निरूपण में 'ठाकुर' का अपना विशिष्ट स्थान है। ठाकुर उमंगी एवं प्रेमी स्वभाव के कवि थे। इसलिए उनकी प्रवृत्ति प्रेम-सौन्दर्य-निरूपण में अधिक रमी है। रसिक कवि ठाकुर एक बार बिजावर में रहते हुए एक सुनारिन के रूप-सौन्दर्य पर रीझ गये थे। फिर क्या था वे रात-दिन उसी के इर्द-गिर्द मँडराया करते थे और रस-सिक्त हो प्रेम के छन्द सुनाया करते थे। सुनारिन भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रही। एक बार प्रिया (सुनारिन) के बीमार हो जाने पर कवि का प्रेमी हृदय बेचैन हो उठा तब उसने अपने हृद्गत भावों एवं मानसिक पीड़ाओं का उद्घाटन जिन शब्दों में किया, वह बेजोड़ एवं अनूठा है।[1] कवि की रस-सिक्त वाणी को सुनकर उसका सारा कष्ट दूर हो गया।

ठाकुर के इस प्रकार के छन्दों में जीवन की वास्तविकता के अनेक चित्र उनकी अनुराग की अरुणिमा से उभार पाकर अत्यन्त सुन्दर ढंग से रूपायित हैं। वास्तव में प्रेम ही इन कवियों का पाथेय रहा, इसी कारण वे प्रेम करने से अधिक उसके निर्वाह पर बल देते हैं। 'प्रीति करै मैं लगै है कहा, करिकै इक ओर निबाहियो बाको।'[2] प्रेम का जैसा सूक्ष्म प्रांजल स्वरूप इन कवियों के काव्य में दिखाई देता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। मन की सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों के निरूपण में ठाकुर बड़े ही प्रवीण थे। 'प्रिय मिलन को व्याकुल गोपी, एक साधारण व्यक्ति को ज्योतिषी समझ कर उसकी सेवा में तन्मय होकर यह जानने की चेष्टा करती है कि कृष्ण उस पर अनुरक्त होंगे या नहीं, वह अपनी ज्योतिष विद्या से विचार कर बता दे।'[3] यहाँ पर गोपिका के भोलेपन का चित्र सरल किन्तु हृदय को छू लेने वाला है। ज्योतिषी भी कम चतुर नहीं है। वह राधा को निराश नहीं करना चाहता— 'डोलत ही खोर खोर, हेरत तिहारी ओर तेरो बोल सुने, गैल भूलि जात धाम की।'[4] ठाकुर की इस प्रकार की उक्तियाँ प्रेमी जनों के मर्मस्थल को प्रभावित किये

---

१. 'गति मेरी यही निस बासर है, चित तेरी गलीन के गाहने हैं।
चित कीन्हों कठोर कहा इतनो, अरि तोहि नहीं यह चाहने हैं।
कवि ठाकुर नेक नहीं दरसी, कपटीन को काह सराहने हैं।
मन भावै सुजान सोई करियो, हमें नेह को नातो निबाहने हैं।'
—ठा० ठ०, पृ० १४।

२. लाला भगवानदीन, ठा० ठ०, पृ० ६, सं० १९८३ वि०।

३. वही, पृ० १६, छं० ३१।

४. वही, पृ० १६।

बिना नहीं रहतीं । उनके अनेकशः छन्दों में राधा और कृष्ण का प्रेम शत-सहस्र धाराओं में प्रवाहित हुआ है ।

सच्चे प्रेम में देश-काल का अन्तर अवरोधक नहीं हो सकता । शृङ्गार शिरोमणि कृष्ण के प्रेम को कवि ने सारी प्रकृति में परिव्याप्त दिखाया है—

'अपने अपने निज गेहन में, चढ़े दोऊ सनेह की नाव पै री ।
अँगनान में भीजत प्रेम भरे, समयो लखि मैं बलि जावँ पै री ।
कहि ठाकुर दोउन की रुचि सों रंग ह्वै उमड़े दोउ ठाँव पै री ।
सखी कारी घटा बरसे बरसाने पै, गोरी घटा नँदगाँव पै री ।'[1]

इस छन्द में प्रथम तीन चरण शुद्ध लौकिक शृङ्गार के हैं किन्तु चौथी पंक्ति में कवि ने 'बरसाने' और 'नन्दगाँव' का संकेत करके इसे अलौकिक बना दिया है, जिसके कारण सम्पूर्ण छन्द ही अलौकिक शृङ्गार की ओर उन्मुख दिखाई देता है । प्रेम के रूढ़िभंजक तथा उन्मुक्त स्वरूप का प्रदर्शन जैसा ठाकुर के काव्य में दिखाई देता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । ठाकुर की यही प्रेम-गर्भित दृष्टि उनके स्वच्छन्द चिन्तन की परिचायक है । शरीर के मांसल मिलन, अतीन्द्रिय आत्मसमर्पण, रसानुकूल सौन्दर्य दृष्टि का चित्रण कवि ने स्थान-स्थान पर किया है । प्रेम-रस में सर्वाङ्ग डूबी हुई राधिका का मन कृष्ण से एक क्षण के लिए भी दूर रहना नहीं चाहता । वे कहती हैं कि या तो कृष्ण स्वयं ही आकर बरसाने में रहें या फिर हम नन्दगाँव में चल कर निवास करें ।[2]

ठाकुर ने अपने प्रेम संयोग-चित्रण में कहीं-कहीं गोपियों के सामूहिक प्रेमालाप का भी चित्रण किया है । होली के समय गोपियाँ मर्यादा का बाँध तोड़कर कृष्ण के साथ गुलाल खेलने को तत्पर दिखाई देती हैं और कहती हैं कि—'आज बरजोरी को न दोष होत होरी में ।'[3] ठाकुर ने मिलनावस्था के बाधक तत्त्वों को भी कई छन्दों में दर्शाया है ।[4]

कवि ने जीवन के कटु अनुभवों के आधार पर जो प्रेम का निरूपण किया है वह अपने आप में बेजोड़ एवं अप्रतिम है । प्रेमी-कवि ठाकुर में प्रेम की इतनी दृढ़ता एवं कट्टरता है कि वे प्रिय की कृतघ्नता, उदासीनता एवं कठोरता का विचार किये बिना प्रेम की अपनी टेक पर अचल रहते हैं । वे अपने प्रिय के अतिरिक्त अन्य किसी की बात भी अपने मुख में नहीं आने देते और न अपने नेत्रों से किसी और का दर्शन

१. लाला भगवानदीन : ठा० ठ० : पृ० १२ ।
२. वही : पृ० १६, छं० ४४ ।
३. वही : पृ० २३, छन्द ६८ ।
४. वही : छन्द ५३, ६०, ६१ ।

करना चाहते हैं। वे प्रेम में प्रतिदान के इच्छुक भी नहीं, वे तो इतने से ही सन्तुष्ट हैं कि उनके द्वारा दर्शन की अभिलाषा से चक्कर लगाने का प्रिय को भान होगा।[१]

प्रेमी कवि ठाकुर की मुख्य प्रवृत्ति अपने व्यक्तिगत प्रेम को मर्मभरे शब्दों में उद्घाटित करना है। भावों को उसी रूप में प्रस्तुत करना कवि की निजी विशेषता है। काव्य के मूल में उनका यही अनुभवनिष्ठ प्रेम प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूप में उद्घाटित हुआ है। "काव्य में सच्चे, सरस और उमंग भरे अनुभूत भाव-चित्रण के कायल होने के कारण ठाकुर रीतिबद्ध कवियों की परम्पराभुक्त काव्य-सर्जन की रटन्त परिपाटी से उतने ही चिढ़ते थे, जितने गोरखपंथियों और कबीरपंथियों से तुलसीदास।"[२]

सौन्दर्य-बोध :

ठाकुर के काव्य की आलंबन राधा, कृष्ण एवं गोपियाँ हैं। उन्होंने कृष्ण को काव्य का नायक तथा राधा को मनमोहिनी नायिका के रूप में चित्रित किया है। ठाकुर के कृष्ण सुषमा-युक्त हैं तथा रति-केलि में निपुण एवं अपनी ओर आकृष्ट करने की अद्भुत क्षमता रखने वाले हैं। ठाकुर ने रूप-सौन्दर्य एवं हास-परिहास को अत्यन्त कुशलता के साथ चित्रित किया है। अधिकांश स्थलों पर कवि ने कृष्ण के सौन्दर्य का प्रभाव ही दिखाया है जो अत्यन्त मार्मिक है—"ठाकुर को सुखमा बरनै अरे काम लगै जिनको छबि पाइक, काहे न जाई सबै ब्रज देखन साँचहूँ साँवरो देखबे लायक।"[३] ऐसे ही अनेक स्थलों पर कवि ने कृष्ण एवं राधा के रूप-माधुर्य का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है।[४]

ठाकुर ने परम्परागत नखशिख निरूपण की विधा का प्रायः परित्याग किया है, लेकिन कहीं-कहीं प्रसंगवश प्रेम के साथ अवयवी सौन्दर्य का भी उन्होंने सरस

---

१. 'वा निरमोहिन रूप की रासि जोऊ उर हेतु न ठानति ह्वै है।
बार हूँ बार बिलोकि घरी घरी, सूरत तो पहिचानति ह्वै है।
ठाकुर या मन की परतीति है, जो पै सनेह न मानति ह्वै है।
आवत हैं नित मेरे लियें, इतनो तो विशेष कै जानति ह्वै है।'

—ठाकुर ठसक, पृ० १६।

२. डॉ० रामफेर त्रिपाठी : रीतिमुक्त कवि : नया परिदृश्य, पृ० ६५, संस्करण १६८२ ई०।

३. लाला भगवानदीन : ठाकुर ठसक, पृ० १०, छन्द ३२।

४. वही : पृ० १०, ११, छन्द ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३६।

चित्रण किया है। 'बरुनीन में नैन झुकै उझकै मनो खंजन प्रेम के जाले परे।'[१] में कृष्ण का नेत्र खंजन पक्षी के समान अनुराग उत्पन्न करने वाला है। 'दिन औधि के कैसे गनौं सजनी अँगुरीन के पोरन छाले पड़े।'[२] में अँगुलियों की कोमलता वर्णित है।

ठाकुर ने नेत्रों के वर्णन में अपनी रचनात्मक दृष्टि का परिचय दिया है। उनकी दृष्टि नेत्रों की सुन्दरता, कोमलता, तीक्ष्णता, लालिमा तथा रसीलेपन पर विशेष रूप से गयी है। उनका कटाक्ष-वर्णन अत्यन्त मनोरम है—'मनुष्य तरवार, बरछी, वज्र की चोट, विषपान एवं मृत्यु से भी बच सकता है लेकिन इन नेत्रों के कटाक्ष से घायल व्यक्ति का बचना असंभावी है।[३] जब नायिका के कटाक्ष-युक्त नेत्र हृदय में आकर अड़ जाते हैं तब उसका कोई उपचार नहीं कर सकता, क्योंकि इनके लगने पर कोई चोट तो दिखाई नहीं देती, लेकिन सारे शरीर में असह्य पीड़ा की अनुभूति होती रहती है। इन नेत्र-रूपी बाणों से सभी भयभीत रहते हैं।[४] ठाकुर ने सौन्दर्याङ्कन यद्यपि अत्यल्प किया है लेकिन इन अल्प वर्णनों में अत्यन्त सघनता है जो मानव मन को सीधे प्रभावित करती है।

वियोग :

भावों के परिवेश में ठाकुर ने विविध मनोदशाओं का चित्रण बड़ी तन्मयता से किया है। इन मनोदशाओं की अभिव्यक्ति में कवि ने कहीं भी अतिशयोक्ति का सहारा नहीं लिया है। स्वच्छन्दमार्गी अन्य कवियों के समान ठाकुर के काव्य में भी प्रेम-वैषम्य का ही चित्रण अधिक हुआ है। वियोग में उठने वाले नाना प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति कवि ने ऐसे सरस तथा कलात्मक ढंग से की है कि पाठक का ध्यान सहज ही आकृष्ट हो जाता है।

पूर्वराग :

पूर्वानुराग के अन्तर्गत स्वप्नावस्था में मिलन का चित्र प्रायः सभी सहृदय कवियों ने खींचा है। ठाकुर ने स्वप्नावस्था में मिलन की समस्त स्थितियों का वर्णन ऐसे रमणीय ढंग से किया है कि उसे पढ़कर निराश-मन की समस्त भावनाएँ सहसा एकाकार हो जाती हैं।

यथा :

'सापने हौं फुलवाई गई, हरि अंक भरी भुज कंठन मेली।
हौं सकुची कोउ सुन्दरी देखत लै जिन बाँह सो बाँह पछेली।

---

१. लाला भगवानदीन : ठा० ठ०, पृ० १७, छन्द ६८।
२. वही : पृ० १७, छन्द ६८।
३. वही : पृ० ६, छन्द २८।
४. वही : पृ० ६।

ठाकुर भोर भये गये नींद के देखहुँ तो घर माँछ अकेली।
आँख खुली तब पास न साँवरो बाग न बावरो वृक्ष न बेली।'[१]

मान :

वियोग के अन्तर्गत मान-प्रसंग का अत्यन्त सरस एवं रोचक वर्णन प्रायः रीतिबद्ध एवं रीतिमुक्त दोनों प्रकार के कवियों ने किया है, किन्तु प्रेम-भाव के उन्मुक्त प्रवाह में बहने वाले कवि ठाकुर ने इसके अन्तर्गत प्रेमिका की निष्ठुरता को प्रमुखता से वाणी दी है।[२]

प्रवास :

प्रवास को लेकर वियोगिनी नायिका की अन्तर्दशा का निरूपण अपने आप में एक मार्मिक दशा के रूप में समझा जाता है। प्रवासजन्य उत्पीड़न और मानसिक कचोट को नायिका सखी के माध्यम से व्यक्त करती है अथवा स्वयं ही वितर्क भाव से अपने प्रेम को प्रकट करने की चेष्टा करती है। ठाकुर ने एक छन्द में नायिका के वितर्क-भाव का बड़ा ही भावात्मक एवं प्रभविष्णु चित्रण किया है—

'काहे अरे मन साहस छाँड़त काहे उदास हो देह तजै है।
वे सुख वे दुख आये चले गये, एक-सी रीति रही नहिं रैहै।'[३]

प्रियतम के परदेश जाने पर नायिका को कोयल की पीक तथा बादलों का झुककर बरसना दोनों ही कष्टप्रद प्रतीत होने लगता है।[४]

अन्तर्दशाएँ :

अन्य रीति-स्वच्छन्द कवियों की भाँति ही ठाकुर ने भी अपने विरह-वर्णन में अन्तर्दशाओं का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर नहीं किया, लेकिन कुछ अन्तर्दशाएँ स्वयं भावों के साथ बह कर उनके काव्य में रूपायित हो गयी हैं।

अभिलाषा :

वियोग में निष्ठुर प्रिय के प्रति नायिका कठोर न बन प्रिय से सामान्य मिलन की अभिलाषा व्यक्त करती हुई कह रही है कि यदि आप हमारे पास नित्य न आ सकें तो अन्तराल देकर कभी-कभी ही दर्शन दे दिया करिये। ठाकुर ने इस भाव की व्यंजना अपनी सीधी सरल शब्दावली में इतने सुन्दर ढंग से की है कि लगता है कि कवि का हृदय प्रत्येक शब्द के साथ लिपटा चला आ रहा है। यथा :

१. लाला भगवानदीन : ठाकुर ठसक, पृ० २०।
२. सुन्दरी तिलक : पृ० ३७, सं० १९२९ वि०।
३. ठाकुर-ठसक : पृ० १८।
४. वही : पृ० ३०, छन्द १२२।

'रोज न आइयै जौ मनमोहन तौ यह नेक मतौ सुन लीजिये ।
प्रान हमारे तुम्हारे अधीन तुम्हें बिन देखै सु कैसे कै जीजिये ।
ठाकुर लालन प्यारे सुनौ बिनती इतनी पै अहो चित दीजिये ।
दूसरे तीसरे पाँचयें सातयें आठयें तो भला आइबो कीजिये ।'[1]

चिन्ता :

वसन्त ऋतु के आगमन पर प्रेम-पीड़ित नायिका की मनोव्यथा एवं चिन्ता-दशा का कवि ने इस प्रकार हृदयस्पर्शी चित्रण किया है—

'बौरे रसालन की चढ़ि डारन कूकत क्वैलिया मौन गहै ना ।
शीतल मन्द सुगन्धित बीर समीर लगे तन धीर रहै ना ।
ठाकुर कुंजन पुंजन गुंजन भौंरन को चै चुपैबो चहै ना ।
व्याकुल कीन्हों बसन्त बनाय कै जाय कै कन्त सो कोऊ कहै ना ।'[2]

स्मृति :

वियोग में प्रिय की मधुर स्मृति ही प्रियतमा को जीवित रखती है । ठाकुर के निम्नांकित छन्द में पूर्व स्मृतियाँ जिस काव्यात्मक धरातल पर साकार हो उठी हैं, वह अपने आप में बेजोड़ है—

'वे परबीन विचक्षन लोग बने सब पै कछु आन भए री ।
चीखे सवाद महा अति मीठे सु चीखे सुभाई नए ही नए री ।
ठाकुर कौन सों का कहिये अब वे चित चाहिबो वे समए री ।
वे दिन वे सुख वैसे उछाह सु वे सब बीर हियाय गये री ।'[3]

उद्वेग :

कभी-कभी प्रेमी के निराश मन में इतनी भावनाएं भर जाती हैं कि उसका मन उन्हें व्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाता है । जब उसकी कचोट और पीड़ा को सुनने वाला कोई कान नहीं मिल पाता तो वह अपने इस भाव को जिस गहराई से प्रकट करता है उसमें उसकी मार्मिक टीस और वेदना सहज रूप में उसके उद्वेग को प्रकट कर देती है । ठाकुर के काव्य में उद्वेग दशा के अनेकशः मार्मिक चित्र प्राप्त होते हैं । उदाहरण के लिए एक छन्द प्रस्तुत है—

'यह प्रेम कथा कहिबे की नहीं कहबोई, करो कोउ मानत है ।
पुनि ऊपरो धीर धरायो चहै तन रोग नहीं पहचानत है ।

---

१. लाला भगवानदीन : ठाकुर-ठसक, पृ० १३ ।
२. वही, पृ० २१ ।
३. सं० चन्द्रशेखर मिश्र : ठाकुर, पृ० ११ ।

कहि ठाकुर जाहि लगी कसकै नहिं से कसकै उर आनत है।
बिन आपने पायें बिवाई गये कोऊ पीर पराई न जानत है।'[१]

प्रलाप :

ठाकुर ने वियोग के अन्तर्गत प्रलाप-दशा का निरूपण जिस मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है उसमें उनकी आन्तरिक संवेदना सहज रूप में परिलक्षित होती है। विरहिणी की मूक व्यथा का विश्लेषण जिस प्रक्रिया से निम्न छन्द में किया गया है, उसे नायिका की प्रलाप-दशा का यथार्थ वर्णन कहा जा सकता है—

'आजु यहि कौतुक छको है नन्दनन्द बीर,
बरनो न जात सो विचित्र चित्र मो पै री।
चलु बलि तोहि दिखाय लाऊँ वन घनो,
पायो है निहार बलिहार भयो सो पै री।
ठाकुर कहत कहाँ नीलमणि सोन बेलि,
सुखमा सकेलि कै न उपमा अरो पै री।
घन को तिहारै तब वारै होत आपुन पै,
बीजुरी निहारै तब वारै होत तोपै री।'[२]

ठाकुर के प्रत्येक छन्द में उनका हृदय लिपटा हुआ जान पड़ता है। कवि ने अपने हृद्गत भावों की अभिव्यक्ति के लिए राधा-कन्हाई की ओट लिया है, जिसे परम्परागत प्रभाव ही कहा जा सकता है। ठाकुर के काव्यानुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि अन्तर्दशाओं के निरूपण में उनकी रुचि नहीं थी, वरन् काव्य में अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को वाणी देना ही उनका अभिप्रेत था।

अभिव्यंजना-कौशल :

ठाकुर स्वभावतः उन्मुक्त एवं स्वच्छन्द कवि थे। उन्होंने अपनी काव्य-विभूति को कहीं भी परम्परा के पंकिल में लुंठित नहीं होने दिया। वे परम्परा के घिसे-पिटे विधानों के प्रबल विरोधी थे। अनुकरणजीवी कवियों की उन्होंने अत्यन्त रोष-भरी मुद्रा में भर्त्सना की है।[३] उनका विचार था कि काव्य की शब्दावली एवं पदावली मोतियों की माला के समान संगुम्फित हो तथा लय, छन्द एवं शब्द-मैत्री का विधान हो। वे कथ्य में नवीनता तथा काव्य-विषय में हरिकथन के पक्षपाती थे।[४]

---

१. सम्पा० चन्द्रशेखर मिश्र : ठाकुर, पृ० ४२।
२. लाला भगवानदीन : ठाकुर-ठसक, पृ० १७।
३. वही, पृ० ४, ५, छं० १२।
४. 'मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ कथा हरिनाम की बात अनूठी बनाई सुनावै।' —वही : पृ० ५।

ठाकुर का अभिव्यंजना-कौशल अत्यन्त सरस एवं ऋजु है। सरलता एवं संवेद्यता ही उनकी शैली की प्रमुख विशेषता है। वे कथ्य में चमत्कार-वक्रता के पक्ष-पाती नहीं थे। सप्रयास अलङ्कारों का संयोजन उन्होंने कहीं नहीं किया है, लेकिन लोकोक्तियों का प्रयोग उन्होंने अलङ्कार के समान ही स्थान-स्थान पर किया है। यद्यपि उन्होंने अपने काव्य की गरिमा को मंडित करने के लिए लोकोक्तियों के अति-रिक्त मुहावरों का भी संयोजन किया है तथापि उनकी प्रवीणता एवं व्यक्तित्व को आलोकित करने वाली लोकोक्तियाँ ही हैं। इसी कारण उनके छन्दों में अत्यधिक भाव-प्रवणता है। उनकी सरस एवं निश्छल अभिव्यक्ति ही उन्हें रीति-कवियों से पृथक् कर देती है। "लोक-जीवन की स्वच्छता उनमें सर्वत्र है और लोकवाणी या लोकोक्ति से उन्होंने अपने को निरन्तर संयुक्त रखा है। उनके इस रूप का हिन्दी में कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। ठाकुर इस दृष्टि से सचमुच कवि ठाकुर हैं।"[1]

ठाकुर ने जहाँ एक ओर अत्यन्त सरस एवं स्वाभाविक शैली का आश्रय ग्रहण कर लोक-जीवन-दर्शन को स्पर्श किया है वहीं परमेश्वर विषयक धारणा से अनु-प्राणित होकर नीतिपरक चिन्तन को भी वाणी दी है। उनके काव्य में पिरोई गयी उक्तियाँ एवं लोकोक्तियाँ हृदय को छू लेने वाली हैं। वास्तव में ठाकुर की लोको-क्तियों को भारतीय संस्कृति एवं लोक-जीवन का प्राणवान पहलू कहा जा सकता है। इस कथ्य की प्रामाणिकता के लिए उनकी लोकोक्तियों की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

(क) या जग में फिर जीबो कहा जब आँगुरी लोग उठावन लागो।[2]

(ख) 'जो विष खाय सो प्राण तजै, गुड़ खाय सो काहे न कान छेदावै।'[3]

(ग) 'अब रैहै न रैहै यहौ समयो बहती नदी पाँव पखार लै री।'[4]

(घ) 'अपने अटके सुन एरी भटू निज सौत कै मायके जइयत है।'[5]

(ङ) 'मूसर चोट की भीति कहा बदिकै जब मूड़ दियो ओखरी में।'[6]

(च) 'चलु दूर भटू हौ वृथा भटकी लगै दूर के ढोल सुहावने री।'[7]

छन्द :

ठाकुर ने अपने काव्य में दो प्रकार के छन्दों का विधान किया है—कवित्त और सवैया। उसमें भी कवि को सवैया अधिक प्रिय जान पड़ता है। उनके छन्दों में घनानन्द की तरह ही लय और सौन्दर्य दृष्टिगत होता है। मत्तगयंद और दुर्मिल सवैयों में उनके भाव मंद-मंथर गति से चलते हुए जान पड़ते हैं। "अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों में ये (छन्द) सहज एवं स्वभाविक हैं।"[8]

---

१. सम्पा० चन्द्रशेखर मिश्र : ठाकुर, भूमिका, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ११, सं० २०३० वि०।

२-७. लाला भगवानदीन : ठाकुर-ठसक, पृ० ३७, ३८, ३९, ४० तथा ४१।

८. डॉ० महेन्द्र कुमार : सम्पा० डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास; पृ० ३७६, सन् १९७६।

ठाकुर ने इस दोनों छन्दों में भावों की जो सरिता प्रवाहित की है वह हिन्दी के कुछ इने-गिने कवियों में ही दिखाई देती है। "भाषा, भाव, व्यंजना, प्रवाह, माधुरी किसी भी विचार से ठाकुर का कोई भी कवित्त या सवैया उठाइये, पढ़ते ही मन नाच उठेगा।............एक-एक छन्द में इन्होंने एक-एक नयी योजना की है।"[१]

भाषा :

यों तो ठाकुर की काव्य-भाषा ब्रजभाषा है लेकिन उनकी मातृभाषा बुन्देलखण्डी थी। अत: उनकी रचनाओं में बुन्देलखण्डी शब्दों का बाहुल्य है। ठाकुर की भाषा लोकोक्तियों एवं मुहावरों से युक्त चलती हुई सरस बोल-चाल की भाषा है। 'उनकी भाषा में जहाँ एक ओर भाव-सौन्दर्य और माधुर्य का आकर्षण है वहीं भाषा की सुन्दरता और प्रवाह भी। उनकी भाषा अकृत्रिम और निर्व्याज है। उसे गढ़ने की आवश्यकता कवि को नहीं पड़ी।'[२]

भाषा प्रयोग में कवि का दृष्टिकोण व्यावहारिक था। वे भाषा की स्वच्छन्दता आदि की दृष्टि से ब्रजभाषा के उत्कृष्ट प्रयोगकर्ताओं में गिने जाते हैं। उनकी मूल प्रवृत्ति भावों को सरस एवं सहज रूप में अभिव्यक्त करने की थी। रीतिमार्गी कवियों की तरह ठाकुर ने भाषा को अलंकृत करके बोझिल नहीं बनाया, लेकिन लोकोक्तियों का प्रयोग अलंकार के समान ही स्थान-स्थान पर करके भाषा को सप्राण बना दिया है। इन लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग से उनकी भाषा और अधिक सरस एवं प्रवाहमय हो गयी है। ठाकुर जैसा लोकोक्ति-प्रयोक्ता हिन्दी साहित्य में अन्य कोई नहीं। "लोकोक्तियों का जैसा मधुर प्रयोग ठाकुर ने किया है वैसा और किसी कवि ने नहीं। इन कहावतों में कुछ तो सर्वत्र प्रचलित हैं और कुछ खास बुन्देलखण्ड की हैं। ठाकुर सच्चे, उदार, भावुक और हृदय के पारखी थे।"[३]

लोक-साहित्य से घनिष्ठतापूर्वक जुड़े रहने से उनकी भाषा अत्यधिक लोकप्रिय हो गयी है। "ठाकुर ने उन्हें (लोकोक्तियों को) भाषा का अलंकरण समझा। (लोक प्रचलित) लोकोक्तियों के द्वारा कवि शीघ्र ही लोक-मानस को छू लेता है।"[४] वैयक्तिक विशिष्टता को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए भी ठाकुर की भाषा लोक-जीवन की ओर झुकी हुई है।

---

१. आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० ६६६, सं० २०१७ वि०।

२. डॉ० कृष्ण चन्द्र वर्मा : रीति स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ३७८।

३. आ० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २६३।

४. सं० डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३७६, संस्करण १९७६ ई०।

द्विजदेव

प्रेम-निरूपण :

यद्यपि "द्विजदेव" श्रृङ्गारिक काव्य-परम्परा से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं, किन्तु कवि संस्कारतः इतना भावुक-हृदय एवं संवेदनशील है कि उसकी सहज प्रेमानुभूतियाँ अभिव्यंजना के विभिन्न मार्गों को स्वतः खोल लेती हैं। "द्विजदेव" की रचनाओं में चमत्कार की अतिशयता का सर्वथा अभाव है। जहाँ चमत्कारिक उक्तियाँ आयी भी हैं, वहाँ कवि की सहज भाव-तन्मयता के आवेग में चमत्कार प्रायः तिरोहित हो गया है।

यथा :

'अब मति दं री कान कान्ह की वसीठिन पै,
झूठे - झूठे प्रेम के पतौवन को फेरि दे।
× × × ×
नेह री कहाँ को जरि खेह री भई तो अब,
देह री उठाय वाकी देहरी पै गेरि दे।'[1]

"द्विजदेव" के इस छंद में प्रेम-तन्मयता स्वतः बिना लाग-लपेट के अभिव्यक्त हुई है। इसकी तुलना में उर्दू की इस उक्ति 'कासिद की लाश आ गयी खत के जवाब में' में ऐसी सहजता नहीं है। 'मेरी देह को उठाकर फेंक दो' में वैसी अस्वाभाविक अतिशयता नहीं है। इस छंद में उपालम्भ की गहन-भावना प्रतिध्वनित है। इसमें फारसी काव्य-परम्परा का भी प्रभाव लक्षित है।

"द्विजदेव" का संयोग वर्णन तो पूर्ण रूप से परम्पराओं से जकड़ा हुआ है लेकिन वियोग वर्णन में परम्पराओं का बंधन कुछ ढीला है। वियोग के प्रसंग में उन्होंने हृदय की अनेक अन्तर्दशाओं का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। वियोग के क्षणों में अतृप्त इच्छाएँ कल्पना का संबल लेकर मस्तिष्क में धूमिल बिम्ब का निर्माण करती हैं। प्रेमी इस बिम्ब के माध्यम से तृप्ति का अनुभव करता है। कृष्ण के लावण्ययुक्त सौन्दर्य को देखकर गोपिका की आँखों में लोना लग गया है— "तू जो कहै सखि ! लौनों सरूप, सो मो अँखियानि में लौनी गई लगि।"[2] चमत्कार की प्रवृत्ति का संकेत करते हुए भी भाव-मंडल से वह अपने को पृथक् नहीं करते वरन्

१. द्विजदेव : श्रृङ्गार बत्तीसी, छं० ३१, संस्करण १९०३ ई०।
२. द्विजदेव : श्रृङ्गार-लतिका, छं० ८२।

भावों के ही चारों ओर चक्कर लगाते हैं। यद्यपि इस छन्द में "लौंनी" शब्द के श्लिष्ट होने के कारण कवि ने असाधारण कौशल प्रदर्शित किया है लेकिन कवि की भावुक दृष्टि उलझी नहीं। प्रियतम के वियोग में निरन्तर बहने वाले आँसुओं की व्यंजना जिस ढंग से की गयी है उससे लगता है कि कवि का हृदय भी लिपटा हुआ है।

प्रेम वृत्तियों के निरूपण में 'द्विजदेव' ने प्रेमोन्माद तथा अन्तर्द्वन्द्व की मार्मिक अभिव्यंजना की है। यथा "एक गोपी कृष्ण से कह रही है कि हे कृष्ण एक ग्वालिन प्रेम-मदिरा का पान कर इस प्रकार उन्मत्त हो गयी है कि उसने मथानी और घी का पात्र फेंक कर मक्खन, मट्ठा और दही को यत्र-तत्र बिखेर दिया है। उसका पूरा शरीर वियोग के ताप से झुलस गया है तथा वह चारों ओर से भ्रमित हो प्रातः से ही इसी मार्ग पर बार-बार आकर दही-दही पुकार रही है।"[१] यहाँ पर आन्तरिक भाव है "जल गयी जल गयी।" विभ्रम हाव युक्त इस छन्द में प्रेमोन्माद छलका पड़ता है। विभ्रम का ऐसा सुन्दर चित्र सूर में भी देखा जा सकता है—"जहाँ-जहाँ गोदोहन कीन्हों सूँघत सोई ठाँव।" वियोगावस्था में मनोदशा का यह एक अत्यन्त सहज स्वभाविक चित्रण है।

"द्विजदेव" के समान इतनी अधिक भावनाओं का संगुम्फन अन्यत्र दुर्लभ है। भावों की अभिव्यक्ति में मनःतरंग के विशेष योग के कारण ही ऐसा है। कवि के मानस में मनःतरंगें हिलोरें ले रही थीं। इसी कारण भाव-चित्रों का निर्माण करने में कवि का संवेदनशील हृदय उफन पड़ा है। कवि के यही भाव-चित्र उसे रीतिबद्ध कवियों से अलग कर देते हैं। उनके काव्य में बुद्धि की अपेक्षा भाव तथा व्यक्तिगत अनुभूति की प्रधानता है। "उन्होंने श्रृङ्गार के रीतिग्रस्त वर्णनों के साथ-साथ हृदय की अनेक अन्तर्दशाओं का मार्मिक उद्घाटन किया है, जिससे वे घनानन्द की दिशा में बढ़ते प्रतीत होते हैं।"[२]

---

१. "डारे कहूँ मथनि विसारे कहूँ घी को भाँड़ा,
बिकल बिगारे कहूँ माखन मठा दही।
भ्रमि - भ्रमि आवत चहुधा ते सु याही मग,
प्रेम पय पूर के प्रवाहन मनो बही।
झुरसि गई धौं कहूँ काहू की वियोग झार,
बार - बार बिकल विसूरति जही तही।
एहो ब्रजराज एक ग्वालिनी कहूँ की आज,
भोर ही ते द्वार पै पुकारत दही - दही।"
.........श्रृङ्गार-बत्तीसी, छं० १३।

२. डॉ० महेन्द्रकुमार : सम्पा० डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३३७, संस्करण १९७६ ई०।

सौन्दर्य-बोध :

नख-शिख के परम्परागत विषय को भी 'द्विजदेव' ने अपने काव्य में रूपायित किया है लेकिन इस रूपायन में कोई क्रमबद्धता नहीं है। कवि का संवेदनशील हृदय जब कभी नायिका (राधा) के किसी अंग की शोभा से प्रभावित होता है, तब वह स्वहृदय के भावोद्गारों को सहज रूप में चित्रित कर देता है। इस प्रकार का सौन्दर्याङ्कन करते समय रूढ़िगत उपमाओं को नकारने में कवि ने रंचमात्र भी संकोच नहीं किया है। इसी कारण 'नख-शिख' जैसा परम्परागत विषय भी नवीन कलेवर धारण किये हुए है।

प्रायः सभी रीतिबद्ध कवियों ने नेत्रों की उपमा मीन, कमल की पंखुड़ी, अलिपुंज, कुरंग-शावक तथा खंजन से दी है लेकिन 'द्विजदेव' की दृष्टि में ये उपमाएँ व्यर्थ प्रतीत होती हैं। कारण यह है कि जो कमल की पंखुड़ी राधिका की एड़ियों की समता नहीं कर सकती, वह भला श्रेष्ठ नेत्रों की समता क्या कर सकती है? मीन भी राधा के नेत्रों की समता नहीं कर सकतीं क्योंकि जिस समय राधिका मान धारण करती हैं उस समय हाथ में मीन रेखा धारण करने वाले कृष्ण उनके पैरों पर झुक जाते हैं। भ्रमरों के रंग वाले नीलम राधिका के नूपुरों में लगकर उनकी चरण-सेवा करते हैं, भला नेत्रों की छवि से उनकी तुलना कैसे की जा सकती है।[1] राधिका की देह-दुति के रूपांकन में भी कवि ने समस्त रूढ़िगत उपमानों को तिलांजलि दे दी तथा सुमधुर पदावली में अलंकारों का सहारा लेते हुए देह-दुति का सौन्दर्य-बोध कराया है। पके रसाल, स्वर्ण कल्हार, कलानिधि, चम्पक, केतकी, चंद और मसाल की सुन्दरता राधिका के गात्र-सौन्दर्य की छाया के बराबर भी नहीं है।[2] राधिका के मन्द हास के समक्ष स्वर्ण, कपूर, कलानिधि और कुंदन की सुन्दरता भी फीकी लगती है। उसे शारदीय-चन्द्रिका जान कर चकोर पान करने के लिए दौड़ते हैं। राधिका के एक ही कटाक्ष से विद्युच्छटा की आभा मन्द पड़ जाती है। राधिका की वाणी में इतनी मधुरता एवं सुवास है कि उसके समक्ष पिक, चातक, मोर और चकोर आदि का कल-कूजन तथा कंज-गंध उससे पराजित हो जाती है।[3]

'नख-शिख' के इन उद्धरणों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की नायिका राधा इतनी सौन्दर्यशालिनी है कि उसके किसी भी अंग अथवा हाव-भाव की समता रखने वाला नर-नरेतर जगत् में कोई प्रतीक नहीं है। कवि के भाव-चित्रों में भाव-राशि का संकलन इतने प्रभावशाली रूप से हुआ है कि हम निःसंकोच उसे

१. श्रृंगार लतिका, छं० २१०।
२. वही, छं० २२०।
३. वही, छं० २१६।

ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवियों में रख सकते हैं । 'नख-शिख' रूपायन में अक्रमबद्धता, रूढ़िगत उपमानों की तिलांजलि एवं काम-गन्ध-हीन सौन्दर्य-बोध ऐसे तत्त्व हैं जो 'द्विजदेव' को रीतिबद्ध कवियों से अलग कर देते हैं । जो आलोचक उक्ति की गहराइयों में न जाकर केवल वर्ण्य-विषय का बाह्यावलोकन करके ही निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि 'द्विजदेव' का सौन्दर्य-बोध रीतिबद्ध है, वे किञ्चित् भ्रम में हैं । उनका नख-शिख वर्णन पूर्णरूपेण रीतिबद्ध नहीं कहा जा सकता ।

प्रकृति-प्रेम :

वसन्तागमन का वर्णन करते समय कवि ने परम्परा से थोड़ा अलग हट कर प्रकृति का स्वच्छन्द निरीक्षण किया और उसमें अपने हृद्गत भावों को पिरोकर अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्ति का परिचय दिया है ।[1] रीति काल में प्रकृति का ऐसा आलंबन चित्रण अद्भुत है । 'शृङ्गार लतिका' का आरम्भ कवि ने किसी मंगलाचरण से न करके, वसन्त आगमन के प्रकृति-चित्रण से किया है । भूमिका रूप में किये गये इस प्रकृति-चित्रण में कवि ने अतिशयोक्ति का आश्रय लेकर प्रकृति को लोकोत्तर सौन्दर्य प्रदान करने का स्तुत्य कार्य किया है । प्रकृति का स्वच्छन्द निरीक्षण करते समय कवि को जब जैसी उमंग उठी है, तब तैसी अभिव्यक्ति दी है । इसकी काव्य-कुशलता इनके वर्णनों से सिद्ध है ।

वसन्तागमन में वन की शोभा द्विगुणित हो उठी है । जड़-चेतन दोनों पर वसंत का प्रभाव समान रूप से पड़ा है । चकोरों की चहक, भँवरों का कल-निनाद और कोकिलों की कुहुक मन को छू लेने वाली है । कलिकाओं का पुंज एक साथ सहसा खिल उठा है, सुगन्ध भार से लदा मन्द पवन धीरे-धीरे गतिमान हो रहा है । मनमोहक वृक्षों में फूलों के खिल उठने से चारों ओर सुगन्धि की वर्षा हो रही है । ऐसे मनमोहक दृश्य को देख कर सौन्दर्य-प्रेमी नेत्रों में नींद कहाँ ?[2] लतिकाएँ पराग के वैभव से भर उठी हैं, जिन पर मँडरा रहे भ्रमरों का झुंड गुंजन कर रहा है। ऐसी दशा में शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन का प्रवाह इस बात का सूचक है कि ॠतुपति वसन्त का आगमन हो गया है ।[3]

---

१. अम्बिकादत्त वाजपेयी : द्विजदेव और उनका काव्य, पृ० २३४, सं० २०२४ वि० ।

२. शृङ्गार लतिका, छं० १४ ।

३. 'होन लागे सोर चहुँ ओर प्रति कुंजन में, त्यों ही पुंज-पुंजन पराग नभ छाइगो ।

× × × ×

आपु हुते आगे तें हरोलन के गोल, इत आवत हमारे उत रितुपति आइगो ।'

—शृङ्गार लतिका : छं० १५ ।

वसन्त-आगमन से प्रकृति की शोभा में जो वृद्धि हुई है, उसे देखकर सौन्दर्य-प्रेमी कवि के हृदय में एक उमंग-सी उठती दिखाई देती है। यहाँ पर कवि ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण न कर उसका स्वतन्त्र निरीक्षण किया है। "ऋतु-राज वसन्त के प्रभाव के सूक्ष्म अङ्कन में कविवर 'द्विजदेव' ने कहीं-कहीं परम्परा से सर्वथा पृथक् कौशल प्रदर्शित किया है। उनके वर्णन में अतिरंजना और दूरारूढ़ कल्पना के स्थान पर प्रकृति के सहज स्वाभाविक सौन्दर्य-परक चित्रों की प्रधानता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का मानस स्वतः वसन्तोत्सव मनाने के लिए जड़-चेतन पदार्थों के उल्लास के साथ मदोन्मत्त होकर त्वरित गति से भागता चला जा रहा है।"[1] कवि का प्रकृति के प्रति प्रगाढ़ अनुराग परिलक्षित है। प्रकृति के समस्त व्यापारों में आत्मीयता का प्रबल भाव हैं। चित्रण स्थूल होते हुए भी आन्तरिक भाव-तरङ्गों से तरङ्गायित है।

वसन्तागमन के व्याज से स्वप्न और जाग्रत अवस्था की संधि का सजीव चित्र दर्शनीय है। "केलिकुंजों में भौंरों की सुमधुर झंकार, कोयलों का कल-कूजन, गुलाबों की चतुर्दिक् चटकाहट, 'सहसा दक्षिण पवन का संचरण और मृगांकमूर्ति का पूर्ण कला के साथ आविर्भाव, प्रकृति परिवेश को मादकता से ओतप्रोत कर देता है। ऐसे वातावरण में भला कौन-सा सरस व्यक्ति निद्रा ले सकता है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि गुलाब की चटकाहट अथवा लवंग-लतिका का हिल जाना ही मात्र प्रेमी हृदय को दोलायमान करने के लिए पर्याप्त है।"[2] यहाँ पर कवि ने प्रकृति-सौन्दर्य का स्वतन्त्र निरीक्षण किया है लेकिन परम्परा के मोह को वह पूर्णरूप से त्याग नहीं सका है, इसी कारण यहाँ प्रकृति का आलम्बन रूप उद्दीपन-विभावों से आक्रान्त-सा हो गया है। यह दरबारी कवियों के प्रभाव के कारण ही है। 'दरबारी कवियों के निरन्तर साहचर्य से ही इनकी काव्य-प्रतिभा पुष्ट हुई।'[3]

कवि के हृदय में प्रकृति के प्रति आत्मीयता का भाव इतना प्रबल है कि ऋतुराज वसन्त के आगमन में भी उसे अपना ही राजकीय ठाट-बाट प्रतिभासित हो रहा है। देखिये कवि ने ऋतुराज वसन्त का कितना स्वाभाविक और आत्मीय चित्रण किया है—

---

१. डॉ० किशोरीलाल : रीति कवियों की मौलिक देन, संस्करण १९७१ ई०, पृ० ४२७।

२. द्विजदेव : शृङ्गार लतिका, पृ० १, छं० १-३, द्वि० सं० १८९५ ई०।

३. डॉ० अम्बिकादत्त वाजपेयी : द्विजदेव और उनका काव्य, पृ० २३३, सं० २०२४ वि०।

'बन्दनवार बँधे सबके सब फूल की मालन छाजि रहे हैं।
मैनका गाइ रहीं सबके स्वर संकुल ह्वै सब राजि रहे हैं।
फूल सबै वर्षें द्विजदेव सबै सुखसाज को साजि रहे हैं।
यों ऋतुराज के आगम में अमरावति को तरु लाजि रहे हैं।'[१]

यहाँ पर कवि ने प्रकृति के आलम्बन रूप को ग्रहण कर उसका मानवीकरण किया है। वसन्त के वैभव में अपने स्वयं के वैभव का अवलोकन करना कवि की स्वच्छन्द दृष्टि का परिचायक है। "उनका प्रकृति-प्रेम स्वच्छन्द है। उन्होंने प्रकृति का आलम्बन रूप में भी वर्णन किया है। उनके एकमात्र संग्रह ग्रंथ 'शृङ्गारलतिका सौरभ' में वसन्त पर लिखे तैंतीस पद्य हैं, (जो) वसन्त राजकुमार की भाँति सबका सेव्य और प्रिय है।"[२]

वसंत-आगमन में वन की अपार शोभा का वर्णन द्रष्टव्य है। "कीरों का शब्द राजगृह के बाहर इसलिए नहीं सुनाई देता क्योंकि स्वर-भार के कारण हवा के साथ आगे नहीं बढ़ सकता। बढ़े भी कैसे, जब पवन स्वयं गंध-भार से मन्द-मन्द चल रहा है। अपार मधु-भार से पुष्पावलि झुक-सी गयी है। आकाश में प्रातः-कालीन क्षीण कला-युक्त चन्द्र, चाँदनी के भार से झुका-सा प्रतीत होता है। वसंता-गमन का प्रभाव जड़-चेतन सभी पर समान रूप से पड़ा है।"[१]

वसन्त का वर्णन यों तो अनेक कवियों ने किया है, पर जैसा सरस स्वच्छन्द वसन्त वर्णन 'द्विजदेव' ने किया है, वैसा हिन्दी का कोई और कवि नहीं कर सका है क्योंकि उनके वसन्त वर्णन में उनका हृदय लिपटा हुआ है।

अभिव्यंजना-कौशल :

'द्विजदेव' के अभिव्यंजना-कौशल का आधार अन्य रीति-स्वच्छन्द कवियों से कुछ भिन्न है। रीतिमुक्त अन्य स्वच्छन्द कवियों की प्रेरणा-स्रोत उनकी प्रेमिकाएँ थीं जबकि 'द्विजदेव' के अन्तःकरण को उद्वेलित करने वाली प्रकृति-शोभा की सूक्ष्म तरंगें। इसी कारण प्रकृति का जितना सूक्ष्म अंकन 'द्विजदेव' ने किया उतना कोई रीतिमुक्त कवि नहीं कर सका। यद्यपि 'द्विजदेव' पर रीति का भी गहरा रङ्ग है तथापि प्रकृति-निरूपण में स्वच्छन्द आलंबन शैली को ग्रहण कर उन्होंने अपने स्वच्छन्द दृष्टिकोण का परिचय भी दिया है।

उनका कला-पक्ष अत्यन्त पुष्ट है। उन्होंने भाषा के सौन्दर्य-वर्द्धन के लिए नाद-सौन्दर्य, प्रयोग-सौन्दर्य, मुहावरे, लोकोक्ति, चित्रात्मकता, अलङ्कार आदि का

---

१. द्विजदेव : शृङ्गार लतिका, छं० ११।
२. डॉ० महेन्द्रकुमार : हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० डॉ० नगेन्द्र, पृ० ३७७, संस्करण १९७६ ई०।
३. शृंगार लतिका, छं० ४।

विधान किया है। लेकिन उनके काव्य में आये हुए कला-पक्ष के ये प्रसाधन सप्रयास जुटाये नहीं प्रतीत होते, इसलिए वे स्थान-स्थान पर रसोत्कर्ष में सहायक हैं। अंशतः परम्परा का प्रभाव होने के कारण उनकी रचना में कहीं-कहीं कोरा चमत्कार भी दृष्टिगत होता है—'हारसिंगार की बीथिन में सुतौ हारसिंगार के फूल-सी फूली।'[१]

'द्विजदेव' ने कुछ सादृश्यमूलक अलङ्कारों का प्रयोग अपनी सूक्ष्म कल्पना-शक्ति के सहारे लीक से हट कर भी किया है। जैसे—'लहि बीर अबीर की चाँदनी नैनहूँ अरबिन्द की रीति लई।'[२] में प्रयुक्त सभी उपमाएँ सूक्ष्म और अशरीरी हैं। 'द्विजदेव' के काव्य में ऐसे अनेक स्थल आये हैं जो कवि की सूक्ष्म एवं स्वच्छन्द अन्तर्दृष्टि के परिचायक हैं। वर्ण या शब्द-योजना के सहारे उनके काव्य में रूपायित ध्वनि-चित्र अत्यन्त सरस एवं कर्णप्रिय हैं।[३] उन्होंने एक सफल चित्रकार की भाँति प्रकृति का सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करने में भी सफलता दिखलाई है।[४]

कवि श्रृंगारलतिका के प्रथम सुमन में अतिशयोक्ति, समासोक्ति एवं अभिधा-मूलक व्यंग्य का सहारा लेकर वसन्त के लोकोत्तर सौन्दर्य को अभिव्यंजित करने में पूर्णतः सफल हुआ है।[५] द्वितीय सुमन में राधा एवं कृष्ण के सौन्दर्य-रूपी मकरन्द को उसने रूपक एवं व्यतिरेक से संबलित देखा है।[६] ऐसे स्थलों पर लाक्षणिकता का भी अत्यन्त मनोरम सन्निवेश हुआ है। उनके काव्य में आये हुए मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ इस कथ्य की प्रामाणिकता को सिद्ध करते हैं।[७] प्रयोग-सौन्दर्य का जैसा मार्मिक उद्‌घाटन 'द्विजदेव' ने किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है—'तू जो कहै सखि लौनों सरूप, सो मों अँखियानि में लौनी गई लगि', 'भरि अंचल लियाई लाज', 'जुन्हाई की धार सी धाई' आदि।[८]

---

१. द्विजदेव : श्रृंगार लतिका, छं० १५०।
२. सम्पा० हरदयालु सिंह : मान मयंक, छं० ११४, सं० १९९७ वि०।
३. श्रृंगार बत्तीसी, छं० २०, २१।
४. श्रृंगार लतिका, छं० २८।
५. द्विजदेव : श्रृंगार लतिका, छं० २५, २६, २७।
६. वही : छं० ५०, ५१।
७. वही : छं० ३१।
८. (क) 'ह्वै कैं सुधा-धाम काम-विष कौं बगारै मूढ़
ह्वै कै द्विजराज काज करत कसाई कों।'
— श्रृंगार लतिका, छं० ७६।
(ख) 'द्विन द्वैक मैं पैहैं सकेलि सबै, फलि बेलि बई जो अँगारन की।'
—श्रृंगार लतिका, छं० ६७।

छन्द :

'द्विजदेव' ने अपने काव्य में सवैया, घनाक्षरी, नराच, मौक्तिकदाम, छप्पय, भुजंगप्रयात, सोरठा, दोहा, रोला आदि छन्दों का प्रयोग किया है। यद्यपि 'द्विजदेव' के छन्दों पर परम्परा का प्रभाव लक्षित होता है लेकिन उन्होंने परम्परा-निर्वाह के लिए कोई छन्द-विधान नहीं किया है। उनके कुछ छन्द तो इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि वे अपनी समता नहीं रखते। उनके छन्दों की गति मोहक, सुन्दर तथा सुपाठ्य है। 'द्विजदेव' के छन्दों में वर्ण-मैत्री का ऐसा मणिकांचन योग है कि उसे पढ़ने पर भावानुकूल श्रुतिमधुरता तथा संगीत का-सा आनन्द प्राप्त होता है। उनके छन्द का प्रत्येक चरण सरस तथा मधुर है। "द्विजदेव के छन्दों की वर्ण-मैत्री से उत्पन्न संगीत की मधुरिमा उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसी के आधार पर उनके छन्दों को अन्य कवियों से पृथक् किया जा सकता है। यही कवि की मौलिकता है। उनके छन्दों की लय में एक विशेष प्रकार का आकर्षण पाया जाता है जो भावोन्मेष में सहायता करता है और जो कवि के वृत्ति-विधान तथा मनोरम कल्पनाओं से मुक्त है।"[१]

'द्विजदेव' ने कल्पना एवं भावानुभूतियों की अवतारणा कवित्वमयी भाषा में ही की है। कवि ने परम्परागत उपमानों को जुटाकर उनको निरर्थक सिद्ध कर दिया है और अन्त में अपने विवेक के बल पर स्वयं नवीन उद्‌भावनाएँ की हैं, जिसे पढ़कर कौन ऐसा व्यक्ति होगा जिसकी आँखें राधा के चरणों में न टिक जायँ।[२] 'द्विजदेव' के काव्य में प्रत्येक छन्द बिम्ब प्रधान है। मुहावरे एवं लोकोक्तियों से युक्त छन्द अनूठे बन पड़े हैं। मुहावरों के प्रयोग से उनकी भाषा प्रवाहमयी हो गयी है तथा भाव अतिशीघ्र ग्राह्य हो जाते हैं। उदाहरण के लिए कवि को 'बीस-बिसै' बीस-बिसवा मुहावरा अधिक पसन्द था जिसे उसने स्थान-स्थान पर प्रयुक्त किया है। इसके अतिरिक्त कवि ने अन्य अनेक प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग किया है।

भाषा :

'द्विजदेव' की भाषा परम्परागत कवियों से सर्वथा अनूठी एवं मौलिक है। कवि ने प्रायः यह चेष्टा की है कि भाषागत लाक्षणिक प्रयोगों के द्वारा मानस में उठने वाले भाव-व्यापारों को अधिकाधिक मूर्तिमान एवं सहृदय संवेद्य बनाया जाय। वस्तुतः जो कवि या कलाकार अपने भावों को सहृदय श्रोता तक सफलतापूर्वक सम्प्रेषणीय नहीं बना पाता, वह अपनी शैल्पिक चेष्टा में असफल माना जाता है। इस दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो 'द्विजदेव' की भाषा के कुछ अपने विशिष्ट

१. डॉ० अम्बिकादत्त वाजपेयी : द्विजदेव और उनका काव्य, पृ० २११, २१२।
२. श्रृंगार लतिका, छं० २२८।

गुण थे, जिनके कारण स्वच्छन्दतावादी कवियों में उनका स्थान बहुत ही उच्चकोटि का है। डॉ० महेन्द्रकुमार ने भी इनकी काव्य-भाषा पर प्रकाश डालते हुए कहा है—"द्विजदेव की भाषा एक ओर रीति-युग के समस्त काव्य-सौन्दर्य को आत्मसात् किये हुए है तो दूसरी ओर लक्षणाओं, लोकोक्तियों और मुहावरों से उनकी अभिव्यंजना शक्ति द्विगुणित हो गयी है।"[1]

वस्तुत: उनकी भाषा में पद्माकर आदि कवियों की भाँति अनावश्यक नाद-सौन्दर्य और अनुप्रास का बाहुल्य प्राय: नहीं है, अपितु स्थल-स्थल पर उन्होंने ऐसे शब्दों का विन्यास किया है जिसमें उनकी अर्थवत्ता भावात्मक चित्रों के सृजन में पूर्णतया सहायक है। भावों की ऐसी चित्रमयता रीतिबद्ध कवियों के लिए एक चुनौती थी। उनकी भाषा में भावों का मादक तथा सरस स्पन्दन, पूर्ण आवेग के साथ छन्दों को झंकृत कर देता है। कवि ने लक्षणा शब्द-शक्ति का विनियोग करते समय कहीं भी भाव-रहित चमत्कार की सृष्टि नहीं की। यही कारण है कि उनकी भाषा में कहीं भी अतिरंजनापूर्ण अलंकृत वर्णन नहीं मिलता। उनकी भाषा को देखकर ऐसा लगता है कि कवि अपनी अनुभूति और भावों को शब्द में ढाल देना चाहता है। अत: 'द्विजदेव' के एक-एक शब्द उनकी मार्मिक भाव-व्यंजना के बोधक हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है—"इनमें बड़ा भारी गुण है भाषा की स्वच्छता। अनुप्रास आदि चमत्कारों के लिए उन्होंने भाषा भद्दी कहीं नहीं होने दिया।"[2]

प्रकृति परिवेश में कवि ने ऋतुराज के दर्शनार्थ उत्सुकतापूर्वक गमन का जो चित्र अंकित किया है, उसमें कवि की कल्पना और उसकी बिम्ब-योजना के साथ-साथ सधी हुई भाषा के सहज एवं उन्मुक्त प्रवाह की उपेक्षा नहीं की जा सकती।[3]

———

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सम्पा० डॉ० नगेन्द्र, पृ० ३७७।
२. आ० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २७३, सं० २०३८ वि०।
३. शृंगार लतिका, छं० ६।

अध्याय ३

प्रेरणा-स्रोत

"कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।"[1] काव्य-सृजन का वह परिपूर्ण क्षण जीवन के स्थूल व्यापारों की अपेक्षा उसकी मूल सत्ता में व्याप्त सूक्ष्म-चेतना से अधिक प्रभावित होता है। कवि, जो समाज का सर्वाधिक संवेदनशील अंग होता है, अतीत से प्रेरणा ग्रहण करता है, वर्तमान से प्रभावित होता है और भविष्य के सपने सजाता है। इस प्रकार वह एक त्रिकालदर्शी की भाँति उन तत्त्वों को अपने समग्र व्यक्तित्व का अंग बनाता है जो उसे अतीत तथा वर्तमान से ग्राह्य होते हैं और भविष्य के प्रति ललक उत्पन्न करते हैं। उसकी सर्जनात्मक शक्ति विविध व्यापारों, प्रभावों एवं आकांक्षाओं को एक इकाई के रूप में ग्रहण कर उन्हें कलात्मक सौष्ठव की भूमि पर प्रतिष्ठित कर देती है।

काव्य सृजन में कवि के व्यक्तित्व, उसकी आस्था, अनुभूति एवं युग-चेतना का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। कवि के अन्तःकरण से निःसृत काव्य भी सामयिक भावों, विचारों एवं संवेदनाओं से सर्वदा अविच्छिन्न होता है, क्योंकि आत्मानुभूति भी सर्वथा युग-चेतना निरपेक्ष नहीं होती। युग की सांस्कृतिक चेतना कवि को नवीन मूल्यों के सृजन के लिए प्रेरित करती रहती है। काव्यानुशीलन के समय तद्युगीन परिवेश और उसके प्रेरणापरक प्रभावों की छानबीन अनिवार्य है। यह सर्वस्वीकृत तथ्य है कि कोई भी जीवित साहित्य अतीतकालीन अथवा समसामयिक अन्य जीवन्त साहित्यों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। हिन्दी स्वच्छन्द काव्यधारा ने भी हिन्दी, अंग्रेजी, बँगला तथा संस्कृत साहित्य से प्रेरणा प्राप्त की। शैक्षिक, तकनीकी एवं संस्थागत प्रोत्साहन के प्रभाव को भी नकारा नहीं जा सकता। काव्य की संवेद्यता एवं सम्प्रेषणीयता को बनाये रखने के लिए लोक-मानस की स्वीकृति भी आवश्यक है क्योंकि कोई भी साहित्य लोक-रुचि की अवहेलना कर चिरकाल तक जीवित नहीं रह सकता। अतः आधुनिक हिन्दी स्वच्छन्द काव्यधारा ने जिन स्रोतों से प्रेरणा प्राप्त कर या प्रभाव ग्रहण कर अपना स्वरूप निर्मित किया, उनका विवेचन वांछनीय है।

राजनीतिक :

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना से परस्पर दो विरोधी समाजों का सम्पर्क हुआ। अंग्रेजी सभ्यता और तत्कालीन भारतीय संस्कृति में कोई सामंजस्य नहीं था। अंग्रेजी सभ्यता औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न व्यक्तिवादी सभ्यता थी और

---

१. 'पंत' : पल्लव (प्रवेश), पृ० ३३, संस्करण १९७७ ई०।

भारतीय सभ्यता मध्ययुगीन सामन्तवादी। एक का आदर्श आधुनिक विज्ञान था तो दूसरे का पुरातन धर्म, एक में तर्क एवं बुद्धिवाद का प्राधान्य था तो दूसरे में रूढ़िवादिता का। ऐसे दो विरोधी समाज एक-दूसरे के सम्पर्क में आये। इस सम्पर्क की प्रथम प्रतिक्रिया यह हुई कि भारतवासियों की दृष्टि में अंग्रेजी सभ्यता कुत्सित एवं ग्रहण करने योग्य नहीं प्रतीत हुई जब कि अंग्रेज शासकों की दृष्टि में भारतवासी शोषण के उपयुक्त सिद्ध हुए।

शासन की निरंकुशता तथा भारतीयों के हृदय में जागृत घृणा के प्रतिक्रिया-स्वरूप सन् १८५७ ई० में इतिहासप्रसिद्ध क्रान्ति हुई जिससे सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीय-जागृति की लहर पैदा हो गयी। उस समय की राष्ट्रीय स्थिति के सम्बन्ध में श्री पट्टाभि सीता रामय्या ने लिखा है—

"सरकार की उत्तरोत्तर उग्र और नग्न रूप धारण करने वाली दमन नीति से नवचेतना व्यापक एवं विस्तृत होती गयी। देश के एक कोने में जो घटना होती थी, वह सारे देश में फैल जाती थी।"[१]

सन् १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। इसके जन्मदाता ह्यूम थे, जो भारतीयों को राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर विचार करने के लिए एक अखिल भारतीय संस्था की स्थापना करना चाहते थे। इस संस्था के प्रयास से भारतीयों में जो जागरूकता आयी उससे उनके हृदय में परतंत्रता से मुक्ति पाने की कामना बलवती होने लगी। लाल, पाल, बाल जैसे नेताओं की प्रेरणा से देश में अभूतपूर्व राष्ट्रीय-चेतना की लहर व्याप्त हो गयी। "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" तथा "वन्दे मातरम्" का स्वर भारतीयों का कण्ठहार बन गया।

राष्ट्रीय-भावना जितनी ही प्रबल होती गयी, अंग्रेजों की फूट और दमन की नीति उतनी ही उग्र होती गयी। फूट की नीति से भारतीय कांग्रेस में दो दल बन गये— उदार तथा अनुदार। अब भारतीय राजनीति में उदार तथा अनुदार दलों के बीच रस्साकसी तथा मुस्लिम लीग की उछल-कूद प्रारम्भ हो गयी। इस तनाव तथा १६०६ ई० के 'मार्लो-मिण्टो ऐक्ट' के प्रभाव से राष्ट्रीयता का ज्वार कुछ समय के लिए मन्द पड़ गया। लेकिन १६१४ ई० में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया जिससे भारतीयों की सुप्त राष्ट्रीय चेतना पुनः जागृत हो उठी। इस प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीयों ने अंग्रेजों की तन, मन, धन से सहायता की, लेकिन विजयोपरान्त अंग्रेजों ने इस त्याग का उपहार 'जलियान वाला बाग' के नृशंस हत्याकाण्ड के रूप में दिया। इससे जहाँ देश में करुणा एवं वेदना की लहर फैल गयी, वहीं अंग्रेजों के मन्शा का पर्दाफास होने से निराशा तथा अवसाद की भावना का उदय हुआ। जन-मानस घुटन

---

१. श्री पट्टाभि सीता रामय्या : कांग्रेस का इतिहास, भाग—एक, पृ० ६४।

एवं कुण्ठा की भावना से भर उठा, जिसकी स्पष्ट झलक तत्कालीन स्वच्छन्दतावादी काव्य में मिलती है।

सन् १९२० के आस-पास भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी के प्रवेश करते ही स्वतंत्रता आन्दोलन में एक नवीन चेतना आयी। जनता में आशा का पुनः संचार हुआ। अब हिंसा और क्रान्ति का स्थान अहिंसा एवं 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' ने ले लिया। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन एक व्यापक जन आन्दोलन में बदल गया। एक ओर जहाँ राजनीतिक रंगमंच पर इतनी तेजी से परिवर्तन हो रहे थे, वहीं योरोपीय साहित्यिक कृतियों ने भारतीयों में मानवतावादी एवं क्रान्तिकारी विचारधाराओं का प्रसार किया। 'शेक्सपीयर', 'मिल्टन', 'शेली', 'बायरन', 'मिल', 'लाक', 'वाल्टेयर', 'रूसो' और 'कार्ल मार्क्स' के ग्रंथों के माध्यम से अँग्रेजी प्रजातंत्र, लोक-जागृति एवं जन-संघर्ष की प्रेरणा भारत में आ पहुँची।[1]

राष्ट्रीय जागरण, राजनीतिक क्रान्ति एवं स्वतंत्रता-प्राप्ति की पुनीत भावना ने हिन्दी साहित्य को बहुविधि प्रभावित किया। कवि, जो समाज का द्रष्टा और स्रष्टा होता है, इन जागृतियों तथा विदेशी साहित्य से सर्वाधिक प्रभावित हुआ। उसने जन-भावना के साथ स्वर-में-स्वर मिलाकर ओजस्विनी वाणी में अतीतकालीन गौरव गाथाओं को नया रंग देकर अपने काव्य में प्रक्षेपित किया तथा स्वाभिमान की भावना को उद्दीप्त करने वाली रचनाओं को प्रस्तुत किया और आर्थिक शोषण से त्रस्त एवं अत्याचारों से दुःखी भारतीयों की दयनीय दशा का चित्र खींचकर क्रान्ति का आह्वान किया। युग की यही माँग थी और कवियों ने अपने काव्य को युगानुकूल मोड़ दिया। भारतेन्दु-युग के कवियों ने भारत की दयनीय दशा का हृदयस्पर्शी चित्र तो खींचा था लेकिन वे इतना साहस नहीं जुटा सके थे कि क्रान्ति का संदेश देते। यह कार्य द्विवेदी-युग में आकर सम्पन्न हुआ। द्विवेदीयुगीन स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में एक ओर जहाँ राष्ट्रीयता एवं देश-प्रेम की भावना की गूँज है वहीं दूसरी ओर वेदना एवं करुणा का स्वर भी मुखर है।

सामाजिक :

जाति-प्रथा तथा दूषित सामाजिक परम्पराओं जैसे—वैधव्य-पीड़ा, बहु-विवाह, बाल विवाह, अनमेल विवाह, नारी-तिरस्कार, पर्दा-प्रथा, छुआछूत आदि ने भारतीय सामाजिक परिवेश को जर्जर कर दिया था। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के सामाजिक परिवेश पर प्रकाश डालते हुए डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है—

"एक ओर तो सामाजिक जीवन सुव्यवस्थित एवं सुदृढ़ था, शिक्षा-पद्धति के

---

१. डॉ० मोहन अवस्थी : हिन्दी कविता पर फारसी और अंग्रेजी का प्रभाव, पृ० ३६, सं० २०२६ वि०।

अभाव में अनेक मध्ययुगीन कट्टर, गतिहीन, रूढ़िबद्ध, असामाजिक, अनुदार अन्ध-विश्वासों, कुरीतियों एवं कुप्रथाओं से भरा हुआ था, समाज में कूपमण्डूकता का प्रसार था, उसकी सर्जनात्मक शक्ति का ह्रास हो गया था। दूसरी ओर परम्परा, रूढ़िप्रियता एवं पौराणिकता का मोह छोड़कर समाज नवीनता की ओर बड़ी तीव्रता से बढ़ रहा था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय जीवन यद्यपि दुर्दिन देख रहा था तथापि नितान्त निष्प्राण नहीं था।''[१]

अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव से भारतीय समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था 'विवाह का बन्धन' चरमराने लगा। नयी सभ्यता ने भारतीय युवकों का वैवाहिक जीवन दोराहे पर लाकर खड़ा कर दिया। युवकों के हृदय में जहाँ पश्चिमी सभ्यता से प्रसूत 'प्रेम-विवाह' का विदेशी स्वप्न जगने लगा था वहीं मध्यकालीन विवाह के कठोर बन्धन उनके सामने अभेद्य अवरोध बनकर खड़े थे।

''फल यह होता था कि उनके प्रेम-विवाह के विदेशी स्वप्न स्वदेशी समाज की रूढ़ियों से टकराकर चकनाचूर हो जाते थे। चाहे 'प्रेम-पथिक' का नायक हो या 'ग्रंथि', 'उच्छ्वास', 'आँसू' आदि का असफल प्रेमी, उनके स्वर में हमें इसी निराशा की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। हो सकता है यह निराशा, व्यथा या वेदना कवियों के वैयक्तिक जीवन से पूर्णतः सम्बद्ध न हो, किन्तु उसमें उस युग के सामान्य सुशिक्षित वर्ग के हृदय की विवश-वेदना का विस्फोट अवश्य है।''[२]

तत्कालीन समाज में मानवतावाद के प्रसार से संकीर्ण रूढ़ियों के पाश से मुक्त होने की छटपटाहट जन-मानस को उद्वेलित कर रही थी, जिसकी गूँज स्वच्छन्द कवियों के काव्य में भी सुनाई पड़ी। सामाजिक विषमताओं की गंभीरता ने स्वच्छन्द कवियों के हृदय को झकझोर दिया, जिसके कारण उनका भाव-लोक उद्वेलित हो उठा। फलतः उनके काव्य में वैयक्तिक स्वतंत्रता, समानता, नारी-स्वातंत्र्य आदि से सम्पुष्ट मानवतावादी स्वर मुखर हो उठा। 'निराला' जी के काव्य में विधवा-जीवन के कारुणिक तथा श्रद्धापरक चित्र इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि समाज-सुधारकों की भाँति ही कविगण भी सामाजिक रूढ़ियों पर समान रूप से सशक्त प्रहार कर रहे थे।

आर्थिक :

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शोषण, परम्परागत भारतीय कुटीर उद्योग के क्रमिक ह्रास तथा प्रकृति-प्रकोप से किसानों की दशा शोचनीय हो गयी। उनके उत्पीड़न से देश का आर्थिक ढाँचा लड़खड़ा उठा।

---

१. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : उन्नीसवीं शताब्दी, पृ० ४।

२. डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त : हिन्दी साहित्य : प्रमुख वाद एवं प्रवृत्तियाँ, संस्करण १९७१ ई०, पृ० २०-२१।

"सम्पन्नता के स्थान पर निर्धनता का करुण व्यंग्य—उसी के बच्चे दाने के लिए तरसें, सभ्यता और संस्कृति के स्थान पर अनैतिकता और अज्ञानता का आधिपत्य-उसी के सपूत, कपूत कहलाये जाकर पग-पग पर ठोकरें खाएँ, सभी प्रकार से स्वतंत्र हो अपने दुर्भाग्य के लिए आठ-आठ आँसू रोवें और विश्व में अपमानित हों—ये परिस्थितियाँ देश के लिए महान् व्यथापूर्ण और निराशाजनक थीं।"[१]

भारतीयों को इस दयनीय स्थिति को देखकर स्वच्छन्द कवियों की संवेदना झंकृत हो उठी। फलतः उनकी कविता में अनेक कारुणिक चित्र गहरे रंगों में रँगकर रूपायित होने लगे। उद्‌बोधन गीतों द्वारा इन कवियों ने भारतीयों को जगाने के लिए प्रेरणाप्रद शंखनाद किया।

धार्मिक :

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना से हिन्दू-धर्म शिथिल हो गया था। इस सुअवसर का लाभ उठाकर ईसाइयों ने धर्म-प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। समाज के लोभी वर्ग ने उनके इस कार्य को प्रोत्साहित किया। परिणामस्वरूप पादरियों ने धर्म-प्रचार के लिए जन-साधारण की भाषा में शिक्षा देने का कार्यक्रम प्रारम्भ किया। १८०९ ई० से १८६० ई० के बीच पश्चिमी हिन्दी, ब्रजभाषा, अवधी, मगधी, उज्जैनी, बघेली में धर्म-ग्रंथ प्रकाशित हुए तथा १८५० में 'बाइबिल' का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत हो गया।

ईसाइयों द्वारा स्थापित स्कूलों में हिन्दू-धर्म की निन्दा की जाती थी और ईसाई धर्म को ही सच्चा धर्म बताया जाता था। १९वीं शताब्दी का भारतीय जन-मानस अपने धर्म-प्रवर्तकों के मूल सिद्धान्तों को भुलाकर अन्धविश्वासों, रूढ़ियों एवं विगलित प्रथा-परम्पराओं के भँवर-जाल में उलझ गया। ईसाइयों के सम्पर्क से भारत के नव-शिक्षित हिन्दुओं को इस विषम स्थिति का बोध हुआ। परिणामस्वरूप भारतीय जन-मानस में परिवर्तन लाने की आवश्यकता समझी गयी। १९वीं शताब्दी के ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज, ब्रह्मविद्या-समाज आदि आन्दोलन उसी के प्रतिक्रिया-स्वरूप हुए हैं। इन आन्दोलनों के दार्शनिक पक्ष का प्रभाव आलोच्य काल के कवियों पर भी पड़ा।

सांस्कृतिक पुनर्जागरण :

ब्रह्म समाज आन्दोलन भारतीय संस्कृति के महान् आन्दोलनों में से एक है, क्योंकि यूरोप से आने वाले अनेक विचारों ने प्रारम्भ में ब्रह्म समाज के भीतर से ही

१. डॉ० रामचन्द्र मिश्र : श्रीधर पाठक एवं हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० २, संस्करण १९५९ ई०।

हिन्दू समाज में प्रवेश किया।[१] ब्रह्मसमाजी राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर तथा केशवचन्द्र सेन के महान् प्रयासों से हिन्दू समाज में विश्वबन्धुत्व, सर्वधर्म समन्वय की नवीन धार्मिक-राष्ट्रीय-चेतना एवं बुद्धिवाद का उदय हुआ। प्रार्थना-समाज ने दो मान्यताओं का प्रतिपादन किया—प्रथम व्यक्तित्व का सर्वतोन्मुखी विकास और द्वितीय अतीत-प्रेम, जिसमें प्राचीन आदर्शों का नवीन मानव-मूल्यों के आलोक में विश्लेषण कर उसके ग्रहण का प्राविधान था। आर्यसमाज ने हिन्दू धर्म में व्याप्त आडम्बरों, पाखण्डों, कुरीतियों, रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों पर कुठाराघात किया। थियोसोफिकल सोसायटी (ब्रह्मविद्या समाज) ने भारतीयों को विश्व-बन्धुत्व, सर्वधर्म समन्वय, हिन्दू की श्रेष्ठता भारत की प्राचीन संस्कृति को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता एवं अध्यात्म का पाठ पढ़ाया। रामकृष्ण परमहंस ने धर्म को अनुभूति एवं साधना का विषय बताकर उसे रूढ़िगत शिकंजे से मुक्त करने का आध्यात्मिक सन्देश दिया। विवेकानन्द ने धार्मिक रूढ़ियों, आडम्बरों तथा धार्मिक शोषण करने वाले समस्त मत-मतान्तरों का प्रचण्ड विरोध किया। रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द की सम्मिलित मानवतावादी एवं सांस्कृतिक विचारधारा ने भारतीय सांस्कृतिक चेतना के दोनों पक्षों-अनुभूति और अभिव्यक्ति को प्रभावित किया।

महायोगी अरविन्द ने अपनी साधना में सम्पूर्ण मानव-जाति तथा सम्पूर्ण मानवता को समेट कर 'अतिमानव' और 'अतिमानस' की कल्पना द्वारा मानव-जीवन में दिव्य प्रकाश-पुंज की प्रतिष्ठा का सन्देश दिया। ये सभी मनीषी भारतीय नवजागरण के सांस्कृतिक नेता थे।

"लगभग सौ वर्षों तक इस आध्यात्मिक देश ने जो आत्ममंथन किया, पराधीनता की ग्लानि को धोने के लिए अपनी श्रेष्ठ शक्तियों का जो चिन्तन और ध्यान किया, गांधी जी उस तपस्या के वरदान बनकर प्रकट हुए।"[२] महात्मा गांधी सांस्कृतिक नवोत्थान के राजनीतिक गुरु थे। सांस्कृतिक मनीषियों ने जिन दर्शनों की प्रतिष्ठा की, गांधी जी ने उन्हें सचेतन व्यक्तित्व दिया। उन्होंने धर्म को जीवन-व्यापक बनाया, राजनीति को धर्म से जोड़ा, मानव की समस्त क्रियाओं के आध्यात्मीकरण का सन्देश दिया तथा विश्व-मानवतावाद का प्रचार एवं प्रसार किया।

गांधी जी के विचारों ने भारतीय जन-मानस को सबसे अधिक प्रभावित किया। गांधी जी के समान ही 'रवीन्द्रनाथ टैगोर' ने भी अपनी सांस्कृतिक अन्तर्दृष्टि द्वारा प्रभावित किया। गांधी जी ने जहाँ एक नेता के रूप में युग-जीवन की

---

१. रामधारी सिंह 'दिनकर' : संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ५५०, संस्करण १९५६ ई०, उदयाचल प्रकाशन, पटना।

२. वही : पृ० ६३०, संस्करण १९५६ ई०।

राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं के समाधान द्वारा लोक-कल्याण की साधना की, वहीं रवि बाबू ने एक संवेदनशील साहित्यकार के रूप में मानवतावादी चिन्तन का सन्देश दिया।

इन सांस्कृतिक नेताओं ने भारतीय दर्शन की वेदान्त-सम्मत व्याख्या की तथा भारतीय संस्कृति को शाश्वत, सार्वभौम, 'समन्वयकारी, अन्तर्राष्ट्रीय-भावना से अभिसिञ्चित किया। प्रभावस्वरूप स्वच्छन्दतावादी काव्य में विश्व-बन्धुत्व, समष्टि-गत-समन्वय तथा आध्यात्मिक भावना का अभ्युदय हुआ। अतीत की गौरवपूर्ण सांस्कृतिक धरोहरों का निरीक्षण कर उसकी नवीन सन्दर्भों में व्याख्या की गयी जिससे प्रभावित होकर स्वच्छन्दतावादी कवियों में अतीत के प्रति प्रेम एवं ललक के भाव जागृत हुए।

उत्तर-मध्यकालीन काव्य, नायिकाओं के मांसल सौन्दर्य-चित्रण एवं भाव-भंगिमाओं से परिपूर्ण था। सांस्कृतिक नवोत्थान ने हिन्दी-काव्य को युगानुकूल मोड़ दिया, जिससे काव्य में जन-सामान्य की आशा-आकांक्षा एवं हर्ष-विषाद का भाव जागृत हुआ। अब नारी शक्ति और आनन्द की साक्षात् मूर्ति समझी जाने लगी।

डॉ० कृष्णकुमारी मिश्र ने सांस्कृतिक नवजागरण के समग्र प्रभाव का विश्लेषण करते हुए लिखा है—"भारतीय सांस्कृतिक नवजागरण से प्रेरणा प्राप्त कर हिन्दी साहित्य में जिस रोमाण्टिक चेतना का जन्म हुआ उसने हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल के तीन चरणों को प्रभावित किया। भारतेन्दु-युग में इस प्रवृत्ति का उदय हुआ, द्विवेदी-युग में यह प्रवृत्ति क्रमशः विकसित हुई और छायावादी काव्य में आकर यह प्रवृत्ति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची।"[1] आत्म-प्रसार एवं वैयक्तिक अभि-व्यक्ति की भावना जो स्वच्छन्दतावादी काव्य की मूल प्रवृत्ति है, के मूल में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का उल्लेखनीय योगदान है।

(१) **अंग्रेजी-साहित्य**—हिन्दी स्वच्छन्द काव्यधारा का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत अंग्रेजी-साहित्य है। अंग्रेजी-साहित्य का प्रभाव हिन्दी स्वच्छन्द काव्यधारा के वर्ण्य-विषय तथा काव्य-शिल्प दोनों पर पड़ा है। अंग्रेजों ने भारत में ईसाई धर्म-प्रचार के लिए अनेक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। इन शिक्षा संस्थाओं में निर्धारित पाठ्यक्रमों के अनुसार शिक्षकों की नियुक्ति की गयी। हिन्दी कवियों का अंग्रेजी काव्य से प्रथम सम्पर्क इन्हीं नवीन शिक्षा संस्थाओं के माध्यम से हुआ।

इन शिक्षा संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में कुछ प्रमुख कवि रखे गये थे जिनका प्रभाव आधुनिक हिन्दी साहित्य पर पड़ा—'जान ड्राइडन' (सन् १६१०-

---

१. डॉ० कृष्णमुरारी मिश्र : स्वच्छन्दतावाद का मूल स्वरूप, विश्लेषण, पृ० १४६; संस्करण १६७६ ई०।

१७०० ई०), 'निकलस ब्वालो' (सन् १६३६-१७११ ई०), 'एलेग्जेण्डर पोप' (सन् १६८८-१७४४ ई०), 'सेमुअल जॉनसन' (सन् १७०६-१७८४ ई०), 'योहान्न वोल्फ़गांग गेटे' (सन् १७४६-१८३२ ई०), 'फ्रीडरिख शिलर' (सन् १७५६-१८०५ ई०), 'विलियम वर्ड्सवर्थ' (सन् १७७०-१८५० ई०), 'सेमुअल टेलर कोलरिज' (सन् १७७२-१८३४ ई०), 'पर्सी बुशे शेली' (सन् १७९२-१८२२ ई०), 'जॉन कीट्स' (सन् १७९५-१८२१), 'जार्ज गार्डन बायरन' (१७८७-१८२४), 'चार्ल्स आगस्टिन सैन्त-ब्यव'[1] (सन् १८०४-१८६९), 'मैथ्यू आर्नल्ड' (सन् १८२२-१८८८ ई०), 'लियो टॉल्सटॉय' (सन् १८२८-१९१० ई०), 'वाल्टर पेटर' (सन् १८३९-१८९४ ई०), 'ए० सी० बैडली' (सन् १८५१-१९३५ ई०), 'आलिबर गोल्डस्मिथ' (सन् १७३१-१८०० ई०), 'विलियम काउपर' (सन् १७३१-१८०० ई०), 'टामसन ग्रे' (सन् १७१६-१७७१ ई०), 'जेम्स टामसन' (सन् १७००-१७४८ ई०), 'जॉन' 'मिल्टन' (सन् १६०८-१६७४ ई०), 'वाल्टर स्कॉट' (सन् १७७१-१८३२ ई०) आदि।[2]

इन समस्त कवियों एवं उनकी कृतियों का विकास तीन विशिष्ट युगों में हुआ। प्रथम स्वच्छन्दतावाद के पूर्व का युग, जिसमें 'चॉसर', 'स्पेन्सर', 'शेक्सपीयर' का काव्य आता है। द्वितीय स्वच्छन्दतावाद का प्रथम चरण जिसमें 'जॉन मिल्टन,' 'सेमुअल जॉनसन', 'गोल्डस्मिथ', 'जेम्स टामसन', 'विलियम काऊपर' तथा 'टामसन ग्रे' का नाम आता है। इन कवियों की रचनाओं में वास्तविक काव्यात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति के स्थान पर तर्कशीलता को अधिक महत्त्व दिया गया है। इसके बाद आने वाले युग को स्वच्छन्दतावाद का युग कहा जाता है। स्वच्छन्दतावादी कवि 'वर्ड्सवर्थ', 'शेली', 'कीट्स', स्कॉट', 'बायरन' ने अपनी रचनाओं में तर्कशीलता के स्थान पर आन्तरिक अनुभूतियों को अधिक महत्त्व दिया है।[3]

रोमाण्टिक कवि 'वर्ड्सवर्थ', 'शेली', 'कीट्स' ने अपनी कृतियों में आन्तरिक अनुभूतियों को प्रमुख स्थान दिया तथा प्रकृति को जीवन पर एक विशिष्ट प्रभाव के रूप में ग्रहण कर उसके प्रति अनुरागपूर्ण परिचय दिया। 'वर्ड्सवर्थ' ने जनसामान्य तथा साधारण विषयों को लेकर अपने स्वच्छन्तावादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। 'स्कॉट' ने आख्यानक काव्यों में साहसिकता तथा स्वच्छन्दता के परम्परागत रूप को लेकर उसको पूर्ण रंगीनियों के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। 'बायरन'

१. डॉ० नगेन्द्र एवं डॉ० सावित्री सिन्हा, पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा, संस्करण १९७२ ई०, पृ० ७२-३०६।
२. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : पश्चिमी आलोचना शास्त्र, प्र० सं० १९६५ ई०, पृ० ९।
३. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव पृ० २०६, संस्करण १९६३ ई०।

ने अपनी कृति 'चाइल्ड हेराल्ड्स पिलग्रिमेज' में अपनी यात्रा के विवरण को आख्यानक रूप में स्वच्छन्दतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। 'शेली' ने अपनी कविता द्वारा यह संदेश दिया है कि यदि मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण समाप्त कर दिया जाय तो जीवन सुन्दर और संसार रहने योग्य हो जायेगा। वह मानवतावाद का प्रबल पोषक था। 'कीट्स' ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सौन्दर्य के प्रति अनुराग की भावना उत्पन्न करने पर बल दिया है। इसके अतिरिक्त प्रायः सभी रोमाण्टिक कवियों एवं कलाकारों में गंभीर पीड़ा की अभिव्यक्ति भी मिलती है।[1]

भारतेन्दु-युग तक हिन्दी का कवि जहाँ एक ओर रोमाण्टिक कवियों की इन प्रवृत्तियों से परिचित नहीं था, वहीं दूसरी ओर परम्परा के भार से वह इतना बोझिल हो चुका था कि नवीन प्रयोगों की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता था। आधुनिक स्वच्छन्दतावाद के उन्नायक श्रीधर पाठक ने सर्वप्रथम अपना ध्यान अंग्रेजी काव्य की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने 'गोल्डस्मिथ' की रचना 'दि हर्मिट' (एकान्तवासी योगी, १८८६ ई०) 'दि डिजर्टेड विलेज' (ऊजड़ ग्राम, १८८६) 'दि ट्रेवलर' (श्रान्त पथिक, १९०२) का व्यवस्थित अनुवाद प्रस्तुत किया। इन तीनों कथा-काव्यों की वस्तु उत्पाद्य है। हिन्दी में प्रख्यात वस्तुओं पर ही कथा-काव्य लिखने की परम्परा थी। 'पाठक' जी ने अंग्रेजी की इन क्लासिकल कृतियों का हिन्दी में अनुवाद कर उसे स्वच्छन्दतावाद का रूप प्रदान किया। आगे चलकर इसी पद्धति पर पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'मिलन', 'पथिक' तथा 'स्वप्न' नामक खण्ड काव्य में उत्पाद्य कथावस्तु रखी।

श्रीधर पाठक की सफलता से प्रोत्साहित होकर अंग्रेजी की कुछ अन्य रचनाओं का हिन्दी-अनुवाद 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुआ। यथा : 'शेक्सपीयर' के 'फ्रिण्डशिप' का 'मित्रता', 'ग्रे' के 'दि नाइटेंगिल एण्ड ग्लोवर्म' का 'बुलबुल और जुगनू', सर वाल्टर स्कॉट की गीत 'लव आफ दि फादरलैण्ड' का 'स्वदेश प्रीति' आदि। श्रीधर पाठक ने 'गोल्डस्मिथ' की रचनाओं का इतना अच्छा अनुवाद किया है कि उससे प्रभावित होकर अंग्रेजों ने समाचार-पत्र में निम्नलिखित टिप्पणी प्रकाशित की—

'ऊजड़ ग्राम' केवल हिन्दी जानने वाले को यह दिखलायेगा कि यूरोपीय कवियों का क्या गुण है? शब्दाडम्बर की बहुलता और कृत्रिमता कितनी स्वल्प इनकी रचनाओं में होती है। मातृभूमि का प्रेम, पदार्थों का, मनुष्यों का, समाज का यथार्थ वर्णन, मनुष्यों के प्रति दया इनकी रचनाओं में कितनी झलकती है। ऐसी कविताएँ हम लोगों के चित्त को उन्नत करती हैं, मनुष्यों में प्रीति बढ़ाती हैं और समाज का उपचार-साधन करती हैं।[2]

---

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव, पृ० २०७।
२. श्रीधर पाठक : मनोविनोद : (तृतीय खण्ड) ओपीनियन्स एण्ड रिव्यूज, पृ०४२।

भारतीय विद्वानों ने अंग्रेजी के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा दार्शनिक ग्रंथों का अनुवाद किया तथा तुलनात्मक दृष्टि से भारतीय संस्कृति, दर्शन एवं धर्म की महत्ता को प्रतिपादित किया जिससे प्रभावित होकर भारतवासियों का ध्यान अपने गौरवपूर्ण अतीत की ओर गया। पी० डी० मुकर्जी ने लिखा है—"भारत की समस्त आधुनिक भाषाओं के साहित्य में युगान्तर अंग्रेजी रोमाण्टिक लेखकों के गद्य-पद्य में अनुवादों से प्रारम्भ हुआ।"[1]

तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल होने के कारण हिन्दी कवियों को अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों ने सर्वाधिक प्रभावित किया। इन कवियों ने 'वर्ड्सवर्थ' की कविता से प्रकृति-प्रेम, 'कारलाइल' की कविता से अलौकिक-तत्त्व, 'शेली' की कविता से लौकिक प्रेम, 'कीट्स' की कविता से सौन्दर्य-बोध, 'बायरन' की कविता से प्रेम और देश-भक्ति तथा 'कालरिज' की कविता से कल्पना तत्त्व के विषय ग्रहण किये।

अंग्रेजी काव्य के प्रभाव से हिन्दी काव्य में आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति एवं आत्म-प्रकाशन को प्रोत्साहन मिला। काव्य, स्वप्न-लोक से यथार्थ मानवीय भावभूमि पर उतर आया एवं प्रकृति-निरीक्षण की अभिरुचि जगी, जिससे प्रकृति को एक विषय के रूप में मान्यता मिली।

अंग्रेजी साहित्य ने हिन्दी कवियों की अभिरुचि विशिष्ट से जन-सामान्य की ओर तथा अभिजात से ग्रामीण समाज की ओर बढ़ाया। भारत की ग्रामीण बोलियों में लोकगीतों की एक समृद्ध परम्परा चली आ रही थी। लोकगीतों के छन्द तथा संगीत तत्त्व ने हिन्दी स्वछन्द कवियों को प्रभावित किया। स्वछन्द कवियों ने लोक-धुनों पर आधारित विविध छन्दों-यथा : लावनी, कजली, आल्हा आदि को अपनी इच्छानुसार विविध रूपों में ढालकर ग्रहण किया। अंग्रेजी प्रभाव से ही स्वच्छन्द काव्य लोक-जीवन के समीप आ सका तथा जन-मानस ने आत्मीयता का अनुभव कर उसे पसन्द किया।

हिन्दी में प्रयुक्त 'मुक्त छंद' प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अंग्रेजी साहित्य से ही गृहीत हैं। कुछ काव्य-विधाएँ जैसे गीतितत्त्व (लिरिक), संबोधन गीत (ओड), चतुर्दशपदी (सानेट), अमित्राक्षर छंद (ब्लैंङ्क वर्स), शोकगीत (एलेजी), समाधि लेख (एफिटेप) आदि अंग्रेजी प्रभाव से ही हिन्दी में आयीं। डॉ० रवीन्द्र सहाय वर्मा का मत है-"आज अंग्रेजी रोमांटिक साहित्य के विविध तत्त्व हमारे साहित्य में अपनी

---

१. डॉ० पी० डी० मुकर्जी : माडर्न इण्डिया लिटरेचर : द्वितीय संस्करण १९४८ ई०, पृ० ११८।

जड़ जमा चुके हैं। अतएव भारतीय साहित्य में युगान्तर उपस्थित करने का श्रेय अंग्रेजी प्रभाव को है।"[१]

प्रायः सभी विद्वानों ने हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के विकास में अंग्रेजी के गहन प्रभाव को एक स्वर से स्वीकार किया है। लेकिन हिन्दी स्वच्छन्दतावाद में कुछ ऐसी विशिष्टताएँ हैं जिन्हें देख कर उसे अंग्रेजी के रोमाण्टिसिज्म का अनुकरण मात्र कदापि नहीं माना जा सकता। "कविता तो वस्तुतः कवि की भावना एवं कल्पना की भाषा है। इसलिए अंग्रेजी कवियों का हिन्दी कविता पर यह प्रभाव अनुकरण मात्र न होकर अन्तर्ग्रहण के रूप में है जो आत्मसात् होकर आया है।"[२]

बँगला-साहित्य :

सन् १९१३ ई० में रवीन्द्रनाथ ठाकुर को 'गीतांजलि' पर 'नोबुल' पुरस्कार मिला। रवि बाबू पहले भारतीय थे जिन्हें विश्व का यह सर्वोच्च पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'नोबुल' पुरस्कार पाते ही रवि बाबू विश्व-कवि हो गये और भारतीयों ने उनकी ओर चौंधियाई दृष्टि से देखा। "गीतांजलि" के अनेक अनुवाद हिन्दी में हुए। 'गीतांजलि' के अंग्रेजी अनुवाद पर पुरस्कार मिला था जो गद्यकाव्य में है। 'गीतांजलि' की देखादेखी ही हिन्दी में गद्यकाव्य लिखने की प्रवृत्ति जागृत हुई।

रवीन्द्रनाथ एक मनीषी एवं युग-द्रष्टा साहित्यकार थे। उनकी अन्तश्चेतना आध्यात्मिकता से मंडित थी। वे व्यक्ति-स्वातंत्र्य, प्रेम, दया, करुणा, विश्व-कल्याण एवं विश्व-मानवतावाद के प्रबल समर्थक थे। उनकी विचारधारा ने भारत की सांस्कृतिक चेतना को तो प्रभावित किया ही, उनके व्यक्तित्व और कृतित्व ने भारतीय साहित्य को नवीन अन्तर्दृष्टि प्रदान की। वस्तुतः १९१३ से १९२० तक भारतीय साहित्य पर रवि बाबू का सर्वाधिक प्रभाव रहा जो आगे भी चलता रहा। सांस्कृतिक धरातल पर रवीन्द्र ने मानवता के अखण्ड रूप की प्रतिष्ठा कर देश-काल, जाति-वर्ण द्वारा अभिव्यक्त एवं अविकृत मानव-गरिमा का यशोगान किया, राजनीतिक और सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त मनुष्य में प्रच्छन्न देवता का उद्घाटन किया। भारत के वे कवि भी, जो रहस्यद्रष्टा नहीं थे अथवा रहस्य-दर्शन में जिनकी आस्था नहीं थी, जो प्रत्यक्ष और मूर्त जीवन-जगत् के प्रति आस्थावान् थे, रवीन्द्रनाथ के इस रूप की ओर आकृष्ट हुए।..."खण्डित राष्ट्रीयता से अबद्ध, अखण्ड, मानव-संस्कृति की कल्पना जिसका निर्माण कवि की सार्वभौम प्रतिभा ने उपनिषद् की अद्वैत कल्पना और उससे प्रभावित मध्ययुग के सन्तकाव्य, इष्ट की मधुर कल्पना

---

१. रवीन्द्र सहाय वर्मा : हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, सं २०११ वि०, पृ० ४६।
२. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव, पृ० २५८, संस्करण १९६३ ई०।

में सांसारिक विभेद को निमज्जित करने वाली वैष्णव-भावना, बुद्ध की विश्व-करुणा और पश्चिम की मानवतावादी विचारधारा के रासायनिक तत्त्वों द्वारा किया था, हमारे कवि-कलाकारों के लिए अक्षुण्ण प्रेरणा-स्रोत बन गयी।"[१]

कवीन्द्र रवीन्द्र का सम्पूर्ण काव्य सूक्ष्म सौन्दर्य-चेतना से मंडित है। उनका प्रकृति-चित्रण जीवन्त, विस्मय एवं जिज्ञासा की रोमाण्टिक भावना से संपृक्त तथा रागमय आत्मीयता से परिपूर्ण है। अंग्रेजी रोमाण्टिक कवियों के समान आत्म-प्रसार एवं आत्माभिव्यक्ति की उत्कट आकांक्षा उनके काव्य में परिलक्षित होती है। उनका "अहं" व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर होता हुआ अन्ततोगत्वा अनन्त में विलीन हो जाता है। उनके काव्य में व्यक्त प्रेम एवं करुणा की भावनाएँ आध्यात्मिक संस्पर्श से युक्त है। नारी संबंधी उनकी भावना भी अत्यन्त उदात्त है। उनके काव्य में व्यंजित नारी-चरित्र में शक्ति, अनुरक्ति और भक्ति का अनूठा समन्वय हुआ है। इस महामनीषी ने अनेकता में एकता की जिस भावना को स्वानुभूत किया था, वह राजनीति के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, दर्शन के क्षेत्र में सर्वात्मवाद, दर्शन एवं सांस्कृतिक धरातल पर विश्व-बन्धुत्व का रूप ग्रहण कर काव्य में प्रकट हुई है। इस रोमाण्टिक अन्तर्दृष्टि के प्रभाव से हिन्दी स्वच्छन्द काव्य-धारा बहुविधि अनुप्राणित हुई, इसमें कोई सन्देह नहीं।

कवीन्द्र रवीन्द्र की सौन्दर्यान्वेषिणी अन्तर्दृष्टि प्रकृति-अनुराग, आध्यात्मिक चेतना, राष्ट्रीय भावना, विश्व-बन्धुत्व, मानवीय प्रेम एवं अभिव्यंजना की सूक्ष्म प्रगीतात्मक काव्य-शैली ने आधुनिक हिन्दी के स्वच्छन्द कवियों को नूतन दिशा-बोध कराने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। रवीन्द्र बाबू 'ब्लैक' की 'आध्यात्मिक चेतना', 'वर्ड्सवर्थ' के 'प्रकृति-प्रेम', 'कीट्स' के 'सौन्दर्य-बोध' एवं 'शेली' के 'विश्व-मानवतावाद' से प्रभावित थे। हिन्दी के स्वच्छन्द कवियों ने प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी कवियों तथा परोक्ष रूप से रवि बाबू के माध्यम से प्रेरणा ग्रहण की।

वस्तुतः हिन्दी काव्य में जिस रोमाण्टिक चेतना का समावेश हुआ उसका प्रमुख श्रेय निःसंकोच रूप से कवीन्द्र रवीन्द्र को दिया जा सकता है। 'प्रसाद', 'पंत', 'निराला' की स्वच्छन्द काव्य-कृतियों की भावभूमि एवं अभिव्यंजना-कौशल पर रवि बाबू का गहन प्रभाव परिलक्षित होता है। 'प्रसाद' के विश्वबन्धुत्व में, 'पंत' के सौन्दर्य-बोध, प्रकृति में परोक्ष सत्ता की कल्पना एवं विश्व-मानवतावाद में, 'निराला' की उदात्त नारी-भावना एवं विराट् की कल्पना में 'गीतांजलि' का सम्बन्ध-सूत्र ढूंढ़ा जा सकता है।

---

१. डॉ० नगेन्द्र : आस्था के चरण, पृ० ५१०, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण १९६८ ई०।

विवेकानन्द पर 'स्पेन्सर', 'शेली', 'वर्ड्सवर्थ' एवं 'हीगेल' के विचारों का प्रभाव पड़ा था। 'राम की शक्तिपूजा' की दार्शनिक भावभूमि पर विवेकानन्द के 'शक्ति-सिद्धान्त' का प्रभाव लक्षित होता है। 'निराला' की 'नाचे उस पर श्यामा', 'सखा के प्रति' आदि कविताएँ विवेकानन्द के प्रभाव को इंगित करती हैं। 'पंत' ने तो स्वयं ही स्वीकार किया है—"वीणा-पल्लव काल में मुझ पर...स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा।"[1] 'पंत' जी के आध्यात्मिक रुझान पर अरविन्द दर्शन का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। रीतिकालीन कुण्ठित सौन्दर्य-दृष्टि एवं द्विवेदीयुगीन नारी-वर्जना की भावना के परिष्कार में सहायक 'रामकृष्ण मिशन' के विचारों को प्रसाद-कालीन स्वच्छन्द कवियों ने ग्रहण किया है। इस प्रकार बँगला साहित्य ने स्वच्छन्द कवियों के वर्ण्य-विषय की भावभूमि को नवीन विचारों से अभिसिञ्चित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

वर्ण्य-विषय के समान ही बँगला साहित्य ने हिन्दी स्वच्छन्द धारा के छंद-विधान को भी प्रभावित किया है। 'माइकेल मधुसूदन दत्त' ने 'मेघनाद वध' महाकाव्य को अतुकांत छन्दों में लिखा है। यह प्रयोग उन्होंने 'पैराडाइज लास्ट' (स्वर्ग खो गया) नामक 'मिल्टन' के महाकाव्य के आधार पर किया। जो 'ब्लैङ्क वर्स' में लिखा गया है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'मेघनाद वध' का अनुवाद अमित्राक्षर छन्दों में ही किया है। 'प्रसाद' ने हिन्दी में मात्रिक छन्दों का 'करुणालय', 'महाराणा का महत्त्व' और 'प्रेम-पथिक' में जो उपयोग किया है, उसका मूल आधार अंग्रेजी का ब्लैङ्क वर्स तो है ही इस पर बँगला के अमित्राक्षर छन्दों का भी प्रभाव माना जा सकता है। 'गीतांजलि' के प्रभाव से हिन्दी में गद्य काव्य लिखने की परम्परा आयी जिससे हिन्दी छन्दों का बन्ध खुल गया। 'जुही की कली' में 'निराला' ने सर्वप्रथम मुक्त छन्द का प्रयोग किया जो स्वच्छन्द काव्य-धारा के विकास में मील का पत्थर सिद्ध हुआ।

भारतेन्दुयुगीन हिन्दी साहित्य :

१९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परि-स्थितियों को जब भारतेन्दु एवं उनके मंडल के कवियों ने देखा तो उन्हें लगा कि नव-जागृति के अनुरूप काव्य में पुनरुत्थान के नये आयाम का ग्रहण अधिक उपादेय तथा सामयिक होगा। अतः भारतेन्दु की रचनाओं में जहाँ एक ओर 'कहाँ करुणानिधि केशव सोये'[2] की निराशामूलक ध्वनि है, वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति आक्रोश और विद्रोह के स्फुलिंग भी लक्षित होते हैं। वस्तुतः भारतेन्दु-युग, प्राचीनता और नवीनता का संधिकाल था जिसमें एक ओर शृंगारिक रूढ़ियाँ चली

१. सुमित्रानन्दन पंत, उत्तरा (प्रस्तावना), पृ० १९।
२. शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' : भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० १२०, सं० २०२७ वि०।

आ रही थीं तो दूसरी ओर नवजागरण के स्वर मुखरित हो रहे थे। ऐसी स्थिति में भारतेन्दु जी ने युगानुसार जन-जागृति और राष्ट्रीय चेतना को ऊर्जस्वित रूप में वहन करने वाले शब्दों की खोज की। खड़ीबोली में काव्य-रचना का आरम्भ उनकी इसी प्रेरणा का परिणाम है। वे युग-जागृति के गायक थे, तत्कालीन सामाजिक तथा राजनैतिक दशा के यथार्थ चित्रकार थे। अतः उन्होंने कभी उर्दू छन्दों में तो कभी हिन्दी छन्दों में नवीन भाव-भंगिमा और परम्परामुक्त भाव-व्यंजन की शैली को ग्रहण किया। भारतेन्दु-युग में परम्परा-परित्याग अथवा नवीनता का दर्शन हमें काव्य के तीन क्षेत्रों—वर्ण्य-विषय, भाषा और छन्द-विधान में मिलता है।

वर्ण्य-विषय :

समस्त भारतेन्दु मंडल ने काव्य की नूतन भंगिमा और परम्परारहित काव्य के रूप को सहर्ष ग्रहण किया। अब भारतेन्दु एवं उनके सहयोगी कवि यह अनुभव करने लगे थे कि मात्र नायक-नायिका भेद और शृंगारिक प्रसंगों से सम्बद्ध निर्जीव एवं निस्पन्द आवृत्तियाँ युग-निर्माण के लिए बहुत उपादेय सिद्ध न होंगी। यही कारण है कि तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक समस्याओं को काव्य-रचना का वर्ण्य-विषय बनाया गया, साथ ही, धार्मिक संकीर्णताओं, पाखण्डों एवं विकृतियों की खुलकर आलोचनाएँ की गयीं। आर्थिक और सामाजिक विषमताओं पर भी कठोर प्रहार किये गये। सामाजिक असमानता के अन्तर्गत अस्पृश्यता, दहेज-प्रथा, विधवाओं की दयनीय स्थिति का सच्चा एवं यथार्थ मूल्यांकन किया गया। राजनैतिक दृष्टि से ब्रिटिश तानाशाही, अन्याय, शोषण, भारतीय सम्पदा का दोहन आदि की बहुत जमकर और निर्भीकतापूर्वक निन्दा की गयी। यथा—

"अंग्रेज राज सुख-साज सजै सब भारी,
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।"[१]

भारतेन्दु-युगीन परिस्थितियों पर गहराई से विचार करने पर स्पष्ट पता चलता है कि उस युग के कवि-कलाकार विधवाओं की उपेक्षा नहीं कर सकते थे, अस्पृश्यता की समस्या से आँखें नहीं बन्द कर सकते थे; किसान, मजदूर और पूँजीपतियों के सम्बन्ध में उदासीन नहीं रह सकते थे। वास्तव में जहाँ एक ओर शोषण वृत्ति पोषित हो रही हो, वहीं शृंगारिक राग अलापना न समयोचित था और न युग-चेतना के अनुरूप। फलतः शृंगार-मंजूषा के सभी रत्न उन्हें फीके, कान्तिहीन और आकर्षणहीन प्रतीत हुए। रीतिकाल के कवियों का सम्पर्क-सूत्र जनता से टूट गया था। भारतेन्दु एवं उनके मण्डल के सहयोगियों के प्रभाव से

१. शिवप्रसाद मिश्र' 'रुद्र' : भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, पृ० १३४, सं० २०२७ वि०।

कविता जनता की वाणी बनी। रीतिकाल में जीवन और साहित्य का सम्बन्ध भी विच्छिन्न हो गया था, जो भारतेन्दु-युग में पुनः जुड़ गया, जिसका आगामी साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इस युग में मानवतावाद को सशक्त वाणी मिली, काव्य लोक-भूमि पर उतर कर प्रवाहित होने लगा तथा उसमें अभिजात के स्थान पर सामान्य को महत्त्व मिला। परिणामस्वरूप आगामी स्वच्छन्द साहित्य के विकास के लिए आवश्यक भाव-भूमि भारतेन्दु-युग में ही तैयार हो गयी।

रीतिकाल में इतने लक्षण ग्रन्थों की रचना की गयी कि उसके कारण भाव-व्यंजना में ताजगी या नवीनता नहीं रह गयी थी, क्योंकि प्रायः एक ही विषय वहाँ प्रकारान्तर से अभिव्यक्त होते रहे। काव्य की उक्तियों और कल्पना के प्रयोग में भी पूर्व कवियों से पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है। अब युग की कटुता, पीड़ा, शोषण, उत्पीड़न आदि को दृष्टि में रखकर, रीतिकालीन कल्पना की मादक सरसता को इस युग के कवियों ने स्वीकार नहीं किया और विधवाओं के करुण-क्रन्दन, व्यथा, आँसू और हृदय की प्रसुप्त पीड़ा को ही अपने काव्य का विषय बनाया और उसी के चित्रण में उनकी कल्पना स्वप्न-लोक से यथार्थ भाव-भूमि पर आकर जम गयी।

छन्द :

कवित्त, सवैया और दोहों से ऐसी एकरसता आ गयी कि फिर से उन्हीं छन्दों को दोहराना और इसी प्राचीन वीणा पर हृत्तंत्री के राग को झंकृत करना जागरण युग के इन कवियों ने जन-जीवन और सामाजिक पुनरुत्थान के लिए श्रेयस्कर नहीं समझा। अतः अनेक नवीन छन्दों की खोज की गयी। कुछ ऐसे छन्दों को अपनाया गया जिससे हमारा कोई पूर्व परिचय नहीं था। उर्दू के 'बहर' आदि छन्द इसी प्रकार के हैं। यही नहीं, इन कवियों ने पुराने छन्दों से ऐसा नाता तोड़ा कि फिर से जुड़ने की न उनमें ललक थी, न कोई आग्रह। फलतः साहित्य में प्रयुक्त छन्दों की बीथियों से निकल कर लोक-मानस की नव्य भाव-भूमि पर ही रचना करने की चेष्टा की गयी। इन कवियों ने परम्परा से आगे बढ़कर 'लावनी' आदि लोक-प्रचलित छन्दों में नवीन विषयों की सुन्दर रचना की।

पं० प्रतापनारायण मिश्र एक अच्छे लावनीबाज थे। उनकी बहुत-सी रचनाएँ लावनी छन्दों में हैं। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारतेन्दु से भी आगे बढ़कर लोक-धुन पर आधारित कबीर और कजली आदि छन्दों को अपने काव्य में ग्रहण किया। भारतेन्दु ने बँगला के 'पियार' छन्द को भी आजमाने का प्रयास किया।

इस प्रकार भारतेन्दुयुगीन कवियों ने विषय, उक्ति, छन्द और भाषा के क्षेत्र में विविध प्रयोग किये। विषय और शिल्प के क्षेत्र में किये गये ये नवीन प्रयोग आगामी स्वच्छन्द साहित्य के विकास के लिए निश्चय ही प्रेरणा-स्रोत बने।

भाषा :

भारतेन्दु जी ने ब्रजभाषा के कवित्त, सवैयों का अत्यधिक सम्मान किया लेकिन उसके साथ ही, काव्य-भाषा को खड़ीबोली के अनुरूप ढालने में भी कम योगदान नहीं किया, यद्यपि उन्हें इसमें पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हो सकी।[1] भारतेन्दु से पूर्व ब्रजभाषा में बहुत-से ऐसे शब्द प्रयुक्त होते चले आ रहे थे जो अप्रचलित थे। यथा मरूर्क, दीठि, अनीठि आदि। इन अप्रचलित शब्दों के प्रयोग के कारण भाषा थोड़ी कठिन हो गयी थी और सहज ही ग्राह्य न होने के कारण काव्योचित नहीं रह गयी थी। भारतेन्दु ने ऐसे अप्रचलित शब्दों को काव्य भाषा से निकालकर उसे एक सहज, सरल, तरल रूप प्रदान किया।[2]

प्राचीन काव्य-भाषा में मुहावरों का प्रयोग बहुत कम हुआ है। भारतेन्दु जी ने काव्य-भाषा के लिए मुहावरों की महत्ता और उपादेयता को स्वीकार किया। खड़ीबोली में काव्य-रचना करने के लिए उन्होंने उर्दू के छन्द-विधान को अपनाया, जो उस समय के लिए सर्वथा नवीन प्रयोग था। यथा :

'कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे
बुढ़ापे में मुझे तजकर सिधारे।'[3]

कृतित्व :

हिन्दी काव्यधारा में पुनर्जागरण की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से भारतेन्दु-युग में ही प्रारम्भ हो गयी थी। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', ठा० जगमोहन सिंह और पं० अम्बिकादत्त व्यास की रचनाओं में स्वच्छन्दतावादी तत्त्व उभरने लगे थे। इस प्रकार स्वच्छन्द काव्य-चिन्तन की नींव भारतेन्दु-युग में ही पड़ गयी थी। ठा० जगमोहन सिंह ने प्रकृति को जिस अनुरागमयी दृष्टि से देखा और हिन्दी-काव्य में संस्कार का जो नया संकेत

---

१. 'नव उज्ज्वल जल धार हार हीरक-सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति॥'
—भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ६८०।

२. 'यह संग लागियै डोलें सदा बिन देखे न धीरज आनती हैं।
छिनहूँ जो वियोग परै 'हरिश्चन्द्र' तो चाल प्रलै की सुठानती हैं।
बरुनी में घिरैं न झपैं उझपैं पल में न समाइबो जानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखियाँ नहीं मानती हैं।'
—भारतेन्दु ग्रन्थावली (प्रेम माधुरी), पृ० १४६।

३. हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु : हिन्दी प्रवेशिका (दशरथ विलाप), सम्पा० बाबू श्यामसुन्दरदास।

किया, वही आगे चलकर आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधारा का स्वाभाविक पथ-चिह्न बना। लोकानुभूति एवं लोक-प्रचलित छंदों को ग्रहण कर 'भारतेन्दु' तथा 'प्रेमघन' ने अभिजात काव्य-दर्शन के प्रति कवियों के व्यामोह को चरमरा दिया।

भारतेन्दु-युग के उत्तरार्द्ध में पं० श्रीधर पाठक के हिन्दी काव्यधारा में प्रवेश के साथ ही स्वच्छन्दतावाद का श्रीगणेश हुआ। द्विवेदी-युग में स्वच्छन्द काव्यधारा क्रमशः विकसित होती हुई प्रसाद-काल में आकर अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी। द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक अवरोध के होते हुए भी बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक पच्चीस वर्षों में हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का पूर्ण विकास हुआ। वस्तुतः यदि श्रीधर पाठक को हिन्दी स्वच्छन्द काव्यधारा का प्रवर्तक, पं० रामनरेश त्रिपाठी को उन्नायक तथा 'निराला' को चरमस्पर्शी कहा जाय तो अनुचित न होगा।

पूर्णरूप से स्वच्छन्दतावाद का समर्थक न होते हुए भी आलोच्य कालखण्ड में स्वच्छन्दतावाद के उन्नयन में अनेक परम्परावादी कवियों ने भी अपना प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से योगदान दिया। इनमें बाबू मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', पं० रूपनारायण पाण्डेय तथा सियाराम शरण गुप्त आदि प्रमुख हैं। स्वच्छन्दतावाद के समर्थकों तथा उन्नायकों में पं० श्रीधर पाठक, पं० रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय, ठा० गोपालशरण सिंह, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तथा गुरुभक्त सिंह 'भक्त' का नाम अग्रगण्य है।

अतः अभिप्रेत की सिद्धि, विषय की सीमा तथा शोध प्रबन्ध के विस्तार को ध्यान में रखते हुए यहाँ इन कवियों की आलोच्य काल-खंड (१९००-१९२५) में प्रकाशित रचनाओं को आधार बनाकर काव्यानुशीलन किया जा रहा है। जिन कवियों की स्वच्छन्द कृतियों को अध्ययन का विषय बनाया गया है, वे समस्त प्रवृत्तियों का उद्घाटन करने में पूर्णतया समर्थ हैं और यही हमारा अभिप्रेत है।

———

श्रीधर पाठक

प्रेम-निरूपण :

अन्य स्वच्छन्द कवियों की भाँति 'पाठक' जी ने प्रेम-निरूपण के लिए किसी मौलिक प्रेम-काव्य की सर्जना नहीं की लेकिन 'गोल्डस्मिथ' की कृति 'दी हरमिट' का हिन्दी में अनुवाद कर परोक्ष रूप से अपने प्रेम-विषयक दृष्टिकोण का परिचय दे दिया है। 'अंजलैना' तथा 'एडविन' के रूप में कवि अपनी प्रेम-कहानी कहता हुआ प्रतीत होता है। कवि ने इस कृति का अक्षरश: अनुवाद न करके उसके साथ अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को भी पिरोया है,[1] जिससे अंग्रेजी की यह ४० छन्दों की क्लासिकल कृति हिन्दी में आकर ५६ छन्दों की स्वच्छन्दतावादी कृति बन गयी है। हिन्दी के रीतिभोगी कवि राधा-कृष्ण की ओट लेकर अपनी ही सुप्त वासनाओं की तृप्ति किया करते थे जिसके कारण प्रेम का मूल स्वरूप अन्तर्धान हो गया था। 'पाठक' जी ने प्रेम के इस संकीर्ण स्वरूप का परिष्कार करने के लिए 'एकान्तवासी योगी' का अनुवाद किया तथा प्रांजल प्रेम का स्वरूप खड़ीबोली में सर्वप्रथम प्रस्तुत किया जो युग की आवश्यकता को देखते हुए हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के क्षेत्र में उनकी मौलिकता ही कही जायेगी। इसी प्रवृत्ति को देखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपना यह विचार व्यक्त किया था "सीधी-सादी खड़ीबोली के अनुवाद के लिए ऐसी प्रेम-कहानी चुनना जिसकी मार्मिकता अपढ़ स्त्रियों तक के गीतों की मार्मिकता के मेल में हो, पण्डितों की बँधी हुई रूढ़ि के बाहर निकल कर अनुभूति के स्वतन्त्र क्षेत्र में आने की प्रवृत्ति का द्योतक है।"[2]

'पाठक' जी की मौलिक कृतियों में व्यंजित प्रेम की प्रवृत्ति बहुत कुछ-देश-प्रेम तथा प्रकृति-प्रेम में ही अन्तर्मुख हो गयी है। कवि वैयक्तिक प्रेम को महत्त्व न प्रदान करके उसे मानव-प्रेम तथा विश्व-प्रेम में परिव्याप्त देखना चाहता है—

'प्रेममय है सारा संसार
प्रेमहि का सारा प्रसार है, मत कह उसे असार।'[3]

प्रकृति-चित्रण :

'पाठक' जी जहाँ एक ओर संस्कृत-काव्य से जुड़े थे वहीं अंग्रेजी साहित्य से

१. एकान्तवासी योगी, पृ० ६।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४०८, सं० २०३५ वि०।
३. 'पाठक' भारत-गीत (प्रेममय संसार), पृ० ६०, सं० १९८० वि०।

भी उनका प्रगाढ़ परिचय था। उन्होंने अंग्रेजी कवि 'गोल्डस्मिथ' की महान् काव्य-कृतियों में जहाँ अपनी अन्तश्चेतना का विनियोग किया वहीं वे संस्कृत के महान् कवि कालिदास के 'ऋतुसंहार' में चित्रित सजीव प्रकृति-चित्रण से भी अनुप्राणित हुए। हिन्दी में सर्वप्रथम प्रकृति की विभूतियों एवं नैसर्गिक चित्रों को जिस चित्रपटी पर कवि ने अंकित किया वह मानवीय संवेदनाओं की सरसता से सम्पृक्त था। उन्होंने भावानुभूतियों को वरीयता देते हुए स्वच्छन्दता के अनेक आयामों का उद्घाटन अपनी मर्मभरी वाणी द्वारा किया। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने प्रकृति-निरूपण में परम्परामुक्त चित्रों को उसी रूप में विन्यस्त नहीं किया, जिस रूप में संस्कृत के कवि करते थे।

'पाठक' जी के काव्य में प्रकृति का आलंबन रूप प्रधान है लेकिन परम्परा के प्रभाव से वे अछूते नहीं हैं। उनके द्वारा वसन्त का उद्दीपन रूप में किया गया रूप-चित्रण परम्परा के प्रभाव को, अत्यल्प ही सही, परिलक्षित अवश्य करता है।[१] आलंबन रूप में प्रकृति उनके काव्य में प्रायः तीन रूपों में आयी है—यथातथ्य का स्पर्श करती हुई, सचेतन रूप में मानवीय भावनाओं का उद्घाटन करती हुई तथा रहस्य का संकेत देती हुई। स्वतंत्र निरीक्षण कर प्रकृति का इन तीनों रूपों में जैसा विशुद्ध चित्रण 'पाठक' जी ने किया, वैसा उस समय का कोई कवि नहीं कर सका।

'पाठक' जी के काव्य में यथातथ्य प्रकृति-चित्रण की प्रचुरता है। काव्य-शास्त्र की परिगणना-प्रणाली पर प्रकृति के रमणीय उपादानों को काव्य में प्रस्तुत कर,[२] पशु-पक्षियों पर स्वतंत्र कविताएँ रचकर,[३] तथा परिवेश-निर्माण हेतु प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित कर[४] कवि ने अपने स्वच्छन्द दृष्टिकोण का परिचय दिया है। यद्यपि कवि के प्रकृति-चित्रण में यथार्थ का स्पर्श अधिक है तथापि यह कहना कि कवि ने जिस रूप में प्रकृति को देखा उसको यथातथ्य उसी रूप में कविता में उतार दिया, न्यायसंगत नहीं। प्रकृति उनके काव्य में यत्र-तत्र संवेदनशील और सचेतन भी है, कवि का हृदय भी प्रकृति के साथ लिपटा हुआ है। प्रकृति अपने रूप-सौन्दर्य और माधुर्य-लीला से कवि-मानस का अनुरंजन करती है। इस अनुरंजन से कवि इतना आत्मविभोर हो उठता है कि प्रकृति-निरीक्षण से उत्पन्न आनन्द का रसोद्रेक अनायास ही काव्य में फूट पड़ता है। श्रीधर पाठक की 'कश्मीर सुषमा' इसी सहज आनन्दोद्रेक का प्रतिफल है। इस कृति में प्रकृति को स्वतंत्र विषय के रूप में

१. मनोविनोद (वसन्त), पृ० ८२।

२. कश्मीर-सुषमा, पृ० १, २; द्वि० सं०।

३. मनोविनोद, (तोता, बिल्ली, मैना, चकोर, कोयल, मोर, कुक्कुट पर रचित कविताएँ) पृ० १७-२३।

४. भारत-गीत (सांध्य-अटन) पृ० १०३, सं० १९८० वि०।

प्रस्तुत कर कवि ने हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद का आधार-स्तम्भ खड़ा कर दिया। इसमें कश्मीर के अप्रतिम सौन्दर्य का सरस, मार्मिक उद्घाटन किया गया है। यह एक ऐसा चित्र-कक्ष है जिसमें प्रकृति सुन्दरी के अनेकशः चित्र विविध रूप-व्यापारों में चित्रित कर सजाये गये हैं। कवि की स्वच्छन्द वृत्ति और नवोन्मेषशालिनी कल्पना ने प्रकृति को रीति की दासता से मुक्त कर चेतन व प्राणमयी सत्ता के रूप में देखा और दिखाया है।[1]

कवि कश्मीर के पल-पल परिवर्तित प्रकृति के वेश को देखकर आनन्द-विभोर है। उसे विश्व-सुन्दरी प्रकृति सचेतन नारी की भाँति अपने रूप को सँवारती, प्रतिपल नये-नये वेश धारण करती, अपने सौन्दर्य को निर्मल जल में निहारती तथा स्वयं अपने रूप पर ही मोहित होती हुई प्रतीत होती है। इतना ही नहीं, कवि ने चिरयौवना प्रकृति में यौवन का विकास भी देखा है।[2] यहाँ पर कवि ने प्रकृति का चेतनीकरण तथा मानवीकरण दोनों साथ-साथ किया है। इस प्रकार 'प्रकृति के उपासक श्रीधर पाठक ने 'कश्मीर सुषमा' काव्य में प्रकृति को चिन्मय सत्ता भी दी हैं।'[3] उन्होंने प्रकृति को मानवीय भावों एवं व्यापारों से पूर्ण देखा और उसके प्रति स्पन्दन प्राप्त किया। इस क्षेत्र में वे अपने समकालीन कवियों से बहुत आगे निकल गये हैं।

छायावादी-युग में जिन प्राकृतिक उपादानों को चेतन व्यक्तित्व प्रदान कर मानवी-भावों से सम्पृक्त किया गया, उसका श्रीगणेश 'पाठक' जी बहुत पहले ही कर चुके थे। कवि का यह प्रयास भले ही लघु रहा हो तथा सूक्ष्मता की छायावादी गहराई को स्पर्श न कर सका हो लेकिन द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता को देखते हुए उसके असाधारण महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता।

'पाठक' जी के काव्य में प्रकृति का कहीं-कहीं रहस्यात्मक स्वरूप भी मिलता है। इनकी रोमाण्टिक स्पिरिट इतनी सजग और गतिशील हो गयी है कि प्रकृति में भी उसे परोक्ष सत्ता का आभास मिलता है। 'व्योम-वीणा' शीर्षक कविता में उनकी प्रकृति विषयक रहस्यानुभूति का हमें सहज संकेत प्राप्त होता है।[4]

---

१. कश्मीर-सुषमा, पृ० ५।

२. वही, पृ० ६।

३. प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० २६६, संस्करण १६५० ई०।

४. "कहीं पर कोई स्वर्गीय बाला, सुमंजु वीणा बजा रही है।
सुरों के संगीत की-सी कैसी, सुरीली गुंजार गा रही है।
हरेक स्वर में नवीनता है, हरेक पद में प्रवीनता है।
निराली लय है औ लीनता है, अलाप अद्भुत मिला रही है।"
—मनोविनोद (व्योम वीणा), पृ० १६४।

देश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता :

द्विवेदी-युग में सांस्कृतिक एवं राजनीतिक राष्ट्रवाद का निरन्तर विकास हुआ। कोई भी कवि युग-चेतना से अप्रभावित नहीं रह सकता। फलतः उस युग में जिस राष्ट्रीय चेतना का स्फुरण हुआ उसे श्रीधर पाठक ने भी अपने काव्य का प्रिय विषय बनाया। तत्कालीन कविगण प्रायः अतीत का गौरव-गान कर तथा वर्तमान के प्रति क्षोभ एवं आक्रोश व्यक्त कर अपनी राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त किया करते थे। लेकिन 'पाठक' जी का राष्ट्रीय स्वर उससे भिन्न था। सम्पूर्ण भारत की धरती के प्रति उनका सहज स्नेह काव्य के धरातल पर शत-शतमुखी होकर प्रवाहित हुआ। उनके राष्ट्रीय चिन्तन में बौद्धिक चिन्तन का संगम नहीं है वरन् भारत की मिट्टी, गुल्म-लता, पुष्प और उसकी सुरभि तथा सम्पूर्ण भारत में बिखरी नैसर्गिक विभूतियाँ उनकी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति के मूल उपादान हैं। "पाठक" जी की राष्ट्रीयता में ग्राम्य जीवन की अनेकरूपता घुल-मिल-सी गयी है। ऐसा लगता है कि कवि निस्पन्द ग्राम्य-जीवन को अपनी राष्ट्रीय चेतना की सत्ता द्वारा सप्राण बनाना चाहता है। निःसन्देह कवि की राष्ट्रीय चेतना भारतीय कृषक-जीवन से लेकर बिखरी हुई प्राकृतिक विभूतियों तक व्याप्त है।

पाठक जी का 'भारत-गीत' भारतीय गौरव-गरिमा का उदात्त चल-चित्र है। भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं भारत के नैसर्गिक सौन्दर्य के प्रति कवि की आस्था अजस्र रूप में मुखरित हुई है। निराश, निस्पन्द भारतीयों की चेतना को स्पन्दित करते हुए कवि कहता है—"भारत चेतहु नींद निवारो।"[१] और पुनः "सोय खोय जागत पावत"[२] के मन्त्र द्वारा उनके हृदय में आशा का संचार करता है। यही नहीं, परतन्त्र देशवासियों के स्वाभिमान को जगाते हुए वह देश-भक्ति का संदेश देता है।[३] भारतवासियों के स्वाभिमान को स्पन्दित करने के लिए कवि उन नैसर्गिक विभूतियों की ओर इंगित करता है जो भारत-भूमि की शृङ्गार हैं।[४] भारत-गीत में संगृहीत गीत भारत-भूमि की प्रशंसा से भरे पड़े हैं। कवि की इस साधना का एकमात्र साध्य भारतीयों में देश-प्रेम एवं स्वाभिमान की भावना को जगाना है। कवि के काव्य में बिदेशी प्रभुता के प्रति आक्रोश एवं अतीत-प्रेम का स्वर मन्द है लेकिन स्वदेश-प्रेम एवं स्वर्णिम भविष्य की आशा का भाव प्रबल है। कवि "स्वराज्य" (स्वतन्त्र-भारत) की कल्पना से इतना भाव-विह्वल हो उठता है

१. श्रीधर पाठक : भारत-गीत (भारतोत्थान), पृ० ४४।

२. वही : पृ० ४५।

३. "वन्दनीय वह देश जहाँ के देशी निज अभिमानी हों"।

—मनोविनोद (भारत-गीत), पृ० २५।

४. भारत-गीत (देशगीत), पृ० २०।

कि उसके नेत्र प्रसन्नता के अतिरेक से गीले हो जाते हैं और प्राण पलक पाँवड़े बिछा-कर स्वागत करने तथा प्रेमाश्रु से पग धोने को आतुर हो उठते हैं ।[1]

पाठक जी की वाणी ने राष्ट्रीय चेतना को सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि पर स्पन्दित किया, मजदूर से लेकर बुद्धिजीवियों तक के हृदय को देश-प्रेम की भावना से अभिसिंचित किया, लेकिन इतना साहस वे नहीं जुटा सके कि परतन्त्रता की वेंणी को तोड़ फेंकने का शंखनाद करते । फिर भी अपनी रचना द्वारा देश-प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना की जो सृष्टि उन्होंने की, वह मील का पत्थर सिद्ध हुई, जिस पर आगे चलकर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने राष्ट्रीय-चिन्तन को "भारत-भारती" के रूप में प्रतिष्ठित किया ।

काव्य-शिल्प :

"पाठक" जी का काव्य-शिल्प उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के अनुरूप ही लक्षित होता है । 'कश्मीर सुषमा' में कवि ने यद्यपि आलंकारिक शैली का प्रयोग अधिक किया है, परन्तु उसके अन्तर्गत 'पाठक' जी के हृदय की तरलता और उन्मुक्तता प्रायः प्रच्छन्न नहीं रह पाती, वह स्वच्छन्दता का मार्ग ढूँढ़ ही लेती है । 'पाठक' जी ने चमत्कार और शिल्पगत प्रौढ़ता पर उतना अधिक ध्यान नहीं दिया जितना भावों को सुग्राह्य एवं सहृदय-संवेद्य बनाने पर । उनकी कविताओं में सहज लय, गीत और नाद-सौन्दर्य है । "कवि ने नये ढंग की नयी रंगत लिये रचनाएँ स्वच्छन्दतावाद के अन्तर्गत लिखीं । इन स्वच्छन्दतावादमूलक रचनाओं में कवि का असाधारण गण संगीत और उसकी मौलिक व्यंजना के संकेत मिलते हैं ।"[2]

छन्द :

"पाठक" जी की छन्द-योजना लोकगीतों से प्रभावित है । उनके छन्दों में लोकगीतों जैसा सहज प्रस्फुटन और प्रवाह है । कहीं पर वे रोला छन्द और सवैयों का प्रयोग करते हैं तो कहीं पर उनका कंठ लावनी की सहज मादकता और आकर्षण में उलझ जाता है । लय की मधुरिमा के कारण "पाठक" जी अपने छन्दों में संगीत की कोमल ध्वनियों का सहज निर्माण कर देते हैं । अंग्रेजी भाषा में जिस "मेलोडी" की चर्चा की जाती है, वही 'मेलोडी' पाठक जी के छन्दों में यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरी हुई दिखाई देती है ।

---

१. "प्रेम-दृगन सो पोंछि पलक पाँवड़े बिछाऊँ
आनँद-अँसुवन अंक लाय पंग-पंक छुड़ाऊँ ।"
—भारत-गीत (स्वराज-स्वागत), पृ० ५१ ।

२. डॉ० राम अवध द्विवेदी : हिन्दी लिटरेचर, पृ० १८२ ।

"पाठक" जी रचना के नये-नये मार्ग ढूँढ़ने में कुशल थे। छन्द, पद-विन्यास, वाक्य-विन्यास आदि के सम्बन्ध में नयी-नयी बंदिशें उन्हें खूब सूझा करती थीं। अपनी रुचि के अनुसार कई नये ढाँचे के छन्द उन्होंने निकाले, जो पढ़ने में बहुत मधुर तथा लय पर चलते हैं। उनकी 'भारत-गीत' रचना में लय पर चलने वाले विविध प्रकार के छन्द प्रयुक्त हैं। पदगीत शैली में उन्होंने 'अपनी ओर निहार,' 'प्रेम-कोर', 'दीन-दया' आदि गीतों को लिखा है। "गजल शैली" से प्रभावित होकर उन्होंने कई गीत लिखे हैं। उनका 'बलि-बलि जाऊँ' गीत गजल शैली पर लिखा गया है।[1] कवि का 'जय-जय भारत देश' लोकगीत शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है।[2] उन्होंने 'जगत सचाई सार' में साइयों की सधुक्कड़ी शैली पर बिल्कुल नया छन्द प्रयुक्त किया है।[3] तुकान्त युग में भी अँग्रेजी के ढंग पर अतुकान्त छन्दों में कविताएँ लिखकर कवि ने अपनी स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति का परिचय दिया है।[4] यही अतुकान्त छन्द आगे चलकर स्वच्छन्द कवियों के कण्ठहार बने।

भाषा :

'पाठक' जी की मातृ-भाषा ब्रजभाषा थी। खड़ीबोली के प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा एवं अटूट आस्था थी। अतः उन्होंने ब्रजभाषा के साथ ही खड़ीबोली में भी काव्य-सर्जना की। "हिन्दी साहित्य-संसार में खडीबोली के पद्य को सबसे पहले सफलतापूर्वक लिखने का श्रेय पं० श्रीधर पाठक को है।"[5] उन्होंने ही सर्व-प्रथम खड़ीबोली में "एकान्तवासी योगी" को अनूदित कर प्रकाशित कराया। इस कृति को देख कर सुसंस्कृत हिन्दी समाज में उथल-पुथल मच गयी। यद्यपि इस कृति में खड़ीबोली का परिष्कृत स्वरूप नहीं प्रस्तुत हो सका, फिर भी ब्रजभाषा के प्रतिक्रिया-स्वरूप किया गया यह प्रयास निश्चय ही प्रशंसनीय है।

यद्यपि आज के युग में 'एकान्तवासी-योगी' में प्रयुक्त 'कहाँ जलै है वह आगी' जैसी पंक्तियाँ खड़ीबोली में स्वीकृत नहीं हैं लेकिन उस समय इस महान् कवि ने इस अनूदित कृति को प्रस्तुत कर खड़ीबोली में कविता करने का आधार-स्तम्भ खड़ा कर दिया। 'वनाष्टक' में चार छन्द खड़ीबोली में तथा चार छन्द ब्रजभाषा में रचकर कवि ने दोनों भाषाओं के प्रति अपने आन्तरिक प्रेम को प्रदर्शित किया है।

---

१. भारत गीत (बलि-बलि जाऊँ), पृ० ८६।

२. भारत गीत (जय-जय प्यारा देश), पृ० १६।

३. जगत सचाइ सार, पृ० १. द्वि० सं०, सं० २००० वि०।

४. भारन गीत (अटवि अटन), पृ० १०६।

५. श्रीनारायण चतुर्वेदी : आधुनिक हिन्दी का आदिकाल, पृ० १८, प्र० सं० १६७३ ई०, पृ० १८४।

'पाठक' जी को कई भाषाओं का ज्ञान था। ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली के अतिरिक्त उन्होंने 'देहरादून' को पूर्वी भाषा में लिखा जो उनकी स्वच्छन्द मनोवृत्ति का परिचायक है। इस कृति में प्रयुक्त महिनवाँ, दिनवाँ, दुपहरिया, असवरिया, अस-बबवा, रेयलिया[1] आदि शब्द काव्य को सरस तथा मधुर बनाने में सहायक हुए हैं।

युग-बोध के अनुसार जिन आनुभूतिक चित्रों की उद्भावना उन्होंने अपने काव्य में की है, उसमें प्रसाद-गुण स्वतः ही आ गया है। उनकी कल्पना भावभूमियों की गहराई को इस रूप में स्पर्श करती है कि वह सहृदय पाठकों को सहज ही रुचिकर और हृदयग्राही लगे। वस्तुतः कवि की कल्पना लोक-जीवन-सम्पृक्त है।

---

१. देहरादून, पृ० १।

पं० रामनरेश त्रिपाठी

उत्पाद्य कथावस्तु के प्रवीण प्रणेता :

'त्रिपाठी' जी ने कवि-कर्म के लिये सर्वथा नवीन कथानकों का सृजन किया है। लगता है परम्परागत कथानकों में अपने हृद्गत भावों का समाहार न पा सकने के कारण ही कवि को अभिनव कथानकों का सहारा लेना पड़ा। तत्कालीन कवि जहाँ पूर्ववर्ती कथानकों से विषय उधार लेकर काव्य-सृजन में प्रयत्नशील थे वहीं त्रिपाठी जी ने सबसे पृथक् अपनी काल्पनिक कथावस्तु में युग की पुकार को वाणी दी। कल्पना-प्रसूत कथानक के चुनाव से कवि की आन्तरिक भावनाओं के सहज उद्घाटन में स्वच्छन्द पथ मिला। उनके तीनों खण्ड-काव्य ऐतिहासिकता से जितने दूर हैं लौकिकता से उतने ही समीप। उनमें वर्णित कृत्रिम कथा भी यथार्थ-सी प्रतीत होती है।

'त्रिपाठी' जी के खण्ड-काव्य 'पथिक', 'मिलन' और 'स्वप्न' का मूल स्वर एक ही है। प्रारम्भ किशोर-वय प्रेमियों के प्रणय-व्यापार से होता है, मध्य में रूपाकर्षण और कर्तव्य-पथ के बीच अन्तर्द्वन्द्व होता है लेकिन शीघ्र ही कर्तव्य-ज्ञान के व्याज से उन्मुक्त वासना का परिष्कार हो जाता है और अन्त में नायक मातृभूमि की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है। इन कथानकों में सामयिक समस्यापूर्ति के उत्कट प्रयास निहित हैं। प्रेम की पीठिका पर राष्ट्रीय चेतना को उभार कर नवयुवकों को मातृभूमि की रक्षा के लिए प्रेरित करना ही इन खण्ड-काव्यों का उद्देश्य था और इस उद्देश्य की पूर्ति में कवि पूर्णतया सफल हुआ है। किशोर-वय में नायक-नायिका का प्रेम-पथ पर अग्रसर होना मनोवैज्ञानिक सत्य है। उद्बोधन द्वारा नायक में राष्ट्रीय चेतना का संचार, फलस्वरूप सर्वोत्सर्ग की भावना का विकास और अन्त में लक्ष्य की प्राप्ति सहज ढङ्ग से हुई है। सामाजिक समस्या-पूर्ति के उद्देश्य से सर्वथा नवीन कथावस्तु का चयन और उसका मर्मस्पर्शी प्रस्तुतीकरण वस्तुतः अनूठा है जो कवि की स्वच्छन्द वृत्ति का परिचायक है। वास्तव में "काव्य के क्षेत्र में जिस स्वच्छन्दता (रोमाण्टिसिज्म) का आभास पं० श्रीधर पाठक ने दिया था उसके पथ पर चलने वाले द्वितीय उत्थान में त्रिपाठी जी ही दिखाई पड़े।"[1]

प्रेम-निरूपण :

पं० रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में प्रेम राष्ट्रीय चेतना की पीठिका के रूप में उद्घाटित है। 'पथिक' का नायक पथिक और 'मिलन' का नायक आनन्द कुमार

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४२६।

दोनों ही अपनी पत्नी से अत्यधिक प्यार करते हैं। उनके प्रेम का प्रारम्भ रूपाकर्षण से होता है, लेकिन कर्त्तव्य-ज्ञान होते ही उनका रूपाकर्षणजन्य मोह भङ्ग हो जाता है। फलस्वरूप शारीरिक सुख का परित्याग कर वे मातृ-भूमि की सेवा में अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर देते हैं।

'त्रिपाठी' जी के काव्य में प्रेम का स्वरूप विकासमय है। उनका प्रेम-चिन्तन नारी-सीमा में आबद्ध न होकर समस्त नर-नरेतर जगत् में परिव्याप्त है। वहाँ प्रणय है लेकिन ससीम, जबकि कवि का ऊर्ध्वमुखी प्रेम असीम है। निःसन्देह असीम होकर भी वह संतुलित है, कर्मयोग से सम्बद्ध है। पथिक, विश्व-रङ्गमंच पर प्रकृति-नटी की विश्वविमोहनकारी लीला को देख मुग्ध है, उसके प्रेम-व्यापारों से चमत्कृत है।[१] उसे समस्त प्रकृति में प्रेम का सागर उमड़ता हुआ दिखाई देता है। इस प्रेम-सागर में कूदकर वह प्रेमानन्द का रसास्वादन करना चाहता है।[२] फलस्वरूप वह प्रकृति-प्रणय में इतना आसक्त हो जाता है कि उसे ही सर्वस्व मान बैठता है, लेकिन शीघ्र ही साधु के उपदेश से उसकी तन्द्रा भङ्ग होती है और वह मानव-जगत् में लौट आता है। इस बीच प्रकृति से उसे जो आदर्श प्रेम की दीक्षा और अथाह प्रेम की सम्पत्ति मिलती है वह उसकी चिरस्थायी निधि बन जाती है। अतः वह पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ देश-प्रेम के कंटकाकीर्ण पथ पर आगे बढ़ता है और मानवीय प्रेम का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार कवि का वैयक्तिक प्रेम क्रमशः नारी, प्रकृति और राष्ट्र-प्रेम में विकसित होता हुआ अन्ततः विश्वव्यापी मानवी प्रेम में विलीन हो गया है।

'त्रिपाठी' जी के काव्य में प्रेम अपना मौलिक स्वरूप तथा गुण अक्षुण्ण बनाये हुए है। कवि की दृष्टि में प्रेम ही स्वर्ग है, हृदय को दिव्य-प्रभा से आलोकित करने वाला ईश्वर का प्रतिबिम्ब है।[३] कवि प्रेम की महानता का उद्घोष करते हुए कहता है कि प्रेम ही से मानव-जीवन सुरभित है और उससे वंचित मनुष्य का जीवन गन्धविहीन पुष्प के समान नीरस तथा महत्त्वहीन है।[४] स्पष्ट है कि कवि ने प्रेम को जीवन में जहाँ वैयक्तिक महत्ता प्रदान की है वहीं सार्वभौमिक सत्ता भी दी है।

गार्हस्थिक प्रेम में मर्यादा की रक्षा सर्वस्वीकृत है। भारतीय नारी, पति को

---

१. 'अहा : प्रेम का राज्य परम सुन्दर, अतिशय सुन्दर है।'

—पथिक, पृ० २१।

२. 'यह सामने अथाह प्रेम का सागर लहराता है।
कूद पड़ूँ, तैरूँ इसमें, ऐसा जी में आता है।' —पथिक, पृ० २१।

३. मिलन, सर्ग २, पद १२।

४. वही, सर्ग १, पद ६५।

जहाँ अपने मन-मन्दिर का देवता समझती है,[१] वहीं पुरुष नारी-प्रेम की डोर में बँध कर जग-विस्मृत नहीं हो पाता।[२] कवि 'मिलन' के नायक और नायिका के माध्यम से गार्हस्थिक जीवन में प्रेम के इसी आदर्श का प्रतिपादन करता है।

आदर्श प्रेम के समान ही कवि ने आदर्श प्रेमी को भी शब्दों में बाँधा है। कवि की दृष्टि में ऐसे प्रेमी को नर-नरेतर जगत् के प्रत्येक क्रिया-व्यापार में प्रेम का ही प्रसार दिखाई देता है।[३] प्रत्येक मानव उसे प्रियतम के प्रभाव से दीप्त प्रतीत होता है। फलस्वरूप प्रेमी को लोक-सेवा में मानसिक शान्ति की अनुभूति होती है।[४] यही नहीं एक उपदेशक की भाँति कवि साधु के माध्यम से भेदभाव रहित मानवीय प्रेम का स्पष्ट सन्देश भी देता है।[५]

कवि इस सत्य से परिचित है कि प्रेम का पंथ कठिन होता है, इसके मार्ग में काँटे बिछे होते हैं और दुःख ही इसका सम्बल होता है।[६] फिर भी वह प्रेम को महान् तथा प्रेम-पीड़ित व्यक्ति को सर्वाधिक सुखी प्राणी समझता है।[७] क्योंकि विरह ही वस्तुतः जीवन है, प्रेम की जागृत अवस्था है। इसी से वह मिलन का आकांक्षी नहीं क्योंकि उसमें प्रेम-पतन के बीज निहित रहते हैं।[८] कवि शुद्ध प्रेम का पक्षधर है और उसे ही मानव-हृदय का सार तथा सबसे महत्त्वपूर्ण अलंकरण समझता है।[९]

सौन्दर्य-बोध :

त्रिपाठी जी के सौन्दर्य-बोध में पर्याप्त सौम्यता है। उसमें आवेग के स्थान पर सागर-सदृश गांभीर्य है। परम्परागत सौन्दर्य-चित्रण में भी अश्लीलता की प्रायः वर्जना की गयी है। कवि ने नारी-सौन्दर्य को तृषापूर्ण ललचाई दृष्टि से कभी नहीं देखा। नारी के बाह्य सौन्दर्याङ्कन में कवि ने परम्परागत उपमानों को बड़े जतन से एक स्थान पर जुटाया है और नारी-रूप को अखण्डता प्रदान की है। ऐसे स्थल पर सौन्दर्य-बोध

१. मिलन, प्रथम सर्ग, पद १३।
२. वही, प्रथम सर्ग, पद १२।
३. वही, दूसरा सर्ग, पद १७।
४. वही : पद १६।
५. पथिक, पृ० ३५।
६. वही : पृ० ३७।
७. मिलन, द्वितीय सर्ग, पृ० १४।
८. पथिक, पृ० १६।
९. मानसी (प्रेम), पृ० ३६।

स्थूल होकर भी रतिपरक नहीं है।[1] कहीं-कहीं कवि ने बाह्य रूप-सौन्दर्य के साथ ही आन्तरिक सौन्दर्य को भी उभारने का प्रयास किया है। ऐसे स्थल पर कवि ने परम्परागत उपमानों को नवीन भाव-बोध के साथ तो प्रस्तुत किया ही है साथ ही, सर्वथा नवीन उपमानों की भी सर्जना की है। परम्परागत कवियों ने मुख की उपमा चन्द्रमा, कमल से दी है लेकिन त्रिपाठी जी ने मुख की रचना के लिए एक प्रवीण शिल्पी की भाँति वसुधा के मुख और सुधा के स्वाद को चुना है।[2]

कहीं-कहीं तो कवि ने प्रेम के आलम्बन सौन्दर्य का मानदण्ड ही बदल दिया है। ऐसे स्थल पर वह छायावादी सौन्दर्य-बोध को स्पर्श करने लगा है। ऐसे ही एक स्थल पर प्रथम दृष्ट्या सौन्दर्यावलोकन से वह कल्पना के उस लोक में पहुँच जाता है जहाँ उसे स्वर्गीय किरण, कवि स्वप्न, विश्व-विस्मय तथा लयासन्न सरिता की तरंगों में नारी की अनुकृति दिखाई देती है।[3] ऐसी कल्पना-प्रसूत नारी के समक्ष पार्थिव नारी का सौन्दर्य श्रीहीन है। कवि की दृष्टि जैसे-जैसे स्थूल आवरण के भीतर प्रवेश करने में समर्थ होती गयी है उसकी सौन्दर्य-चेतना स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती गयी है। इस प्रकार त्रिपाठी जी के काव्य में स्थूल तथा सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध का अनूठा संगम है।

देश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता :

'त्रिपाठी' जी ने प्रेम की पीठिका पर राष्ट्रीय चेतना की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत कवि विनाश के पथ पर अपने देश को अग्रसर देख चीत्कार कर उठता है। वह पथिक के रूप में तत्कालीन भारत का भ्रमण करता है, जन-मानस का निकट से अध्ययन करता है और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि देश में जीवन के लिए अनिवार्य दशाओं का सर्वत्र अभाव है, लोग भूख और स्वार्थ की अग्नि में झुलस रहे हैं।[4] वह अधोगति के मूल कारण का पता लगाता है।[5] एक पथप्रदर्शक की भाँति अंधकारपूर्ण वर्तमान और धुँधले भविष्य की सीमा-रेखा पर खड़ा होकर जनता को स्पष्ट सन्देश देता है।[6] 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' की भावना मन में लिये हुए वह जनता का इस प्रकार उद्बोधन करता है—'एक घड़ी

---

१. मानसी (नारी), पृ० २१।
२. पथिक, पृ० २१।
३. वही, पृ० २।
४. वही, तीसरा सर्ग, छं० ४०, पृ० ४४।
५. वही, पृ० ४६।
६. वही, पृ० ५०।

की परवशता भी कोटि नरक के सम है। पल भर की स्वतंत्रता सौ स्वर्गों से भी उत्तम है।'[१]

'मिलन' में युवक (आनन्द कुमार) और युवती (विजया) दोनों में राष्ट्रीय चेतना प्रबल है। वे राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर प्रेम-पथ का त्याग करते हैं और जन-सेवा का व्रत लेते हैं—'तन मन से इस दीन देश का कष्ट करूँगी दूर।'[२] यहाँ गांधीवाद का प्रभाव स्पष्ट है।

कवि की राष्ट्रीय चेतना की दूसरी प्रवृत्ति संघर्षरत दुःखदायी संस्थाओं का उन्मूलन कर स्वतंत्रता प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करना है। कवि उद्‌बोधन गीतों द्वारा आनन्द और पथिक को देश-रक्षा की शिक्षा देता है। सुमना अपने पति 'वसन्त' को कर्तव्य-पथ पर अग्रसर करती है। विजया और भैरवी सुप्त ग्रामीणों में जागरण, त्याग और संघर्ष की भावना का संचार करती हैं।[३]

'त्रिपाठी' जी ने अतीत की गौरवशाली विभूतियों को काव्य में प्रस्तुत कर जन-मानस में आत्मगौरव एवं स्वाभिमान की भावना भरने का सफल प्रयास किया है। 'मानसी' में संकलित 'वह देश कौन-सा है।'[४] कविता इसी अभिप्रेत की पूर्ति करती है।

त्रिपाठी जी को कर्मक्षेत्र में पूर्ण विश्वास है। वे देश के दिग्भ्रान्त व्यक्तियों को कर्तव्य-ज्ञान कराकर संघर्ष हेतु मोड़ देते हैं, लेकिन उनका संघर्ष-पथ गांधी जी के सत्याग्रह एवं अहिंसावाद से प्रभावित है। पथिक की वाणी में हमें गांधीवादी विचारधारा की स्पष्ट झलक मिलती है।[५] 'त्रिपाठी' जी अपने मन में स्वतंत्र भारत का स्वप्न सँजोये थे जिसके लिए सच्चे देश-भक्तों की आवश्यकता थी। पर उस समय अधिकांश देशभक्त स्वार्थ-सिद्धि में लिप्त थे। खीझकर ऐसे पाखण्डी देशभक्तों पर कवि ने तीखा कटाक्ष किया है।[६]

'मिलन' आधुनिक गीता है जिसके द्वारा कवि कर्मयोग की शिक्षा देता है, देशवासियों में राष्ट्रीय-चेतना को जगाकर संघर्ष और बलिदान की भावना भरता

---

१. राम नरेश त्रिपाठी : पथिक, पृ० ५०।
२. मानसी, पृ० ८३।
३. वही : (वह देश कौन-सा है), पृ० ४४, ४६, सं० १६८४ वि०।
४. पथिक, पृ० ३७।
५. वही, सर्ग चार, पृ० ६१।
६. मानसी, पृ० २६।

है।[१] 'स्वप्न' में कवि की भावनाएँ बदलती हुई दिखाई देती हैं और उसे आभास हो जाता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए शक्ति अनिवार्य है। इस प्रकार 'त्रिपाठी' जी की राष्ट्रीय चेतना गत्यात्मक है। उनका मन प्रकृति के सौन्दर्य पर रीझकर उसी में विलीन नहीं हुआ, न देश की दुर्दशा देखकर उन्होंने मात्र आँसू बहाया और न संकीर्ण राष्ट्रीयता के दलदल में वे फँसे। एक धीरोदात्त नायक के समान वे अपने कर्म-पथ पर अन्त तक अटल रहे। साहित्य के माध्यम से उन्होंने 'लौकिक प्रेम और व्यावहारिक राष्ट्रीयता का स्वरूप हमारे सामने रखने का प्रयास किया है।'[२] उनकी कविताओं में स्वाधीन भारत के प्रति तीव्र ललक की छाप है।

प्रकृति-चित्रण :

'त्रिपाठी' जी प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों से दीक्षित होकर ही देश-प्रेम की ओर लौटे थे। अतः उनका समग्र प्रकृति के साथ शिष्यवत् स्थायी लगाव हो गया था। इसी कारण प्रकृति के समग्र चित्रण में उनका मन अधिक रमा है। उनके तीनों खण्डकाव्य का बीज-वपन, प्रकृति-परिवेश में ही हुआ है। रामेश्वरम् की प्रकृत-पावन शोभा को देख कवि के हृद्गत भाव जल-प्रपात की भाँति अनायास ही फूट पड़े हैं।[३] प्रकृति-प्रसूत आनन्दोद्रेक से उसका मन-मयूर नाच उठा है।[४] फलस्वरूप प्रकृति की चिरस्थायी विभूतियाँ कवि की स्थायी सम्पत्ति बन गयी हैं और उसका मन शाश्वत प्राकृतिक सुषमा का अनन्य चितेरा। कवि का प्रकृति-प्रेम अद्भुत है। उसका पथिक सम्पूर्ण देश में बिखरे प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन कर प्रकृति-प्रेम में इतना अनुरक्त हो जाता है कि अपनी प्रियतमा से प्रकृति-प्रणय से वंचित न करने के लिए याचना तक करने लगता है।[५]

प्रकृति-प्रेम में अनुरक्त हो कवि ने प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों का अनेकशः बिम्ब-चित्र उतार डाला है। वह बिम्ब-ग्रहण की कला में प्रवीण है। प्रकृति का तटस्थ निरीक्षण करके वह कहीं भी अपने बिम्ब-विधान को खण्डित नहीं होने देता। उसे प्रभात विशेष प्रिय था। अतः अनेक स्थलों पर प्रभात उसके काव्य में प्रतिबिम्बित है। उदाहरण के लिए एक प्रभात को लें—"नील गगन में तेज-पुंज रवि के किरणाघात से आहत हो, अंधकार का लतिकाओं की ओट से लुका-छिपी करना

१. स्वप्न, सर्ग ५, पद २६।
२. रामचन्द्र मिश्र : श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० ३७०।
३. पथिक, प्रथम सर्ग, पद १।
४. वही : पद १५।
५. वही, पद ४६।

कवि के मन को लुभा देता है और वह तत्काल अपने काल्पनिक कैमरे से इस केलि-क्रीड़ा का मनोरम बिम्ब-चित्र ले लेता है।''[१]

'त्रिपाठी' जी के काव्य में प्रकृति कई रूपों में आयी है। मानवीय कार्यों की पीठिका और आलंकारिक रूप में तो वह प्रस्तुत है ही, स्वच्छन्द रूप से मानवीय भावनाओं के उद्घाटन में प्रवृत्त तथा संवेदनाओं से सिक्त भी वह दिखाई देती है। कहीं-कहीं उसका स्वरूप रहस्यमय भी है। प्रकृति को उद्दीपन रूप में चित्रित करने की उसकी प्रवृत्ति प्रायः नहीं रही है। उन्होंने एक पर्यटक की भाँति स्वयं अपनी आँखों से प्राकृतिक सौन्दर्य का निरपेक्ष भाव से निरीक्षण किया है तथा उसका यथातथ्य चित्र प्रचुरता के साथ अपने काव्य में प्रस्तुत किया है।

'त्रिपाठी' जी ने कई स्थलों पर प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रणयी और प्रणयिनी के लिए शान्त-निकेत और नीरव-निशा का विशेष महत्त्व है। कवि पृष्ठभूमि के रूप में उस प्रकृति-परिवेश का मनोरम चित्र खींचता है जहाँ आनन्द कुमार और विजया के बीच एक एकान्त कुटिया में 'काम' और 'कर्म' को लेकर तर्क-वितर्क चल रहा था।[२]

'त्रिपाठी' जी के काव्य में अनेक स्थलों पर प्रकृति का आलंकारिक रूप भी दिखाई देता है। कवि ने प्राकृतिक उपकरणों के सहारे रूपकत्व की सृष्टि की है। नायिका की गलबँहियाँ उसे पंकजमाला के समान और अपलक नयन चकोर-दृग के समान प्रतीत होते हैं।[३] इस प्रकार प्रकृति-प्रांगण से चुने गये परम्परागत उपमानों के सहारे कवि ने नायक नायिका की मधुचर्या एवं स्थूल सौन्दर्य को उभारा है। कवि के काव्य में प्राकृतिक उपकरण आन्तरिक सौन्दर्य को भी प्रक्षेपित करने में सहायक हुए हैं।[४]

कवि ने प्रकृति को चेतन सत्ता भी दी है।[५] कई स्थलों पर प्रकृति का चेतनीकरण व मानवीकरण साथ-साथ किया है। कवि ने कल-कल ध्वनि करती प्रवाहशीला तरंगिणी के सौन्दर्य में उस नारी के सौन्दर्य का अवलोकन किया है जिसकी सुन्दरता भीतर न समा सकने के कारण चढ़ती तरंग के समान छलकी-सी पड़ती है।[६]

---

१. मिलन, दूसरा सर्ग, पद १, पृ० १८।
२. वही, प्रथम सर्ग, पद १।
३. वही, पद १३।
४. स्वप्न, सर्ग ४, पद २७।
५. बीती निशा उषा उठ आई, पहन सुनहला चीर।—मिलन, सर्ग ४, पद ३१।
६. रूप-गर्विता तरंगिणी का, था सब सुन्दर अंग।
छवि छलकी पड़ती थी मानो तट पर चढ़ी तरंग॥—वही, सर्ग २, पद २३।

कवि प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों के प्रति जिज्ञासु है, रहस्यान्वेषी है । उसकी दृष्टि में प्रकृति के समस्त क्रिया-व्यापारों का संचालन एक अव्यक्त विराट् सत्ता है— 'एक अनन्त शक्ति वसुधा का संचालन करती है ।'[1] कवि के अनुसार संसार एक रंगमंच है, जहाँ नित्य अभिनय होते रहते हैं, एक नृत्य होता रहता है । संसार के इस रंगमंच पर प्रकृति-नटी के निर्देशन में ही ये सब नृत्य होते हैं । एक अनन्त शक्ति की इच्छा और प्रभाव से ही प्रकृति के समस्त उपादान नृत्य किया करते हैं और वह परोक्ष सत्ता इस नृत्य का मूक रसास्वादन किया करती है । लेकिन वह रसिक कौन है ? कहाँ है ? इसे जानने के लिए कवि जिज्ञासु है ।[2] 'रहस्य' शीर्षक कविता में कवि उस परोक्ष सत्ता के रहस्य को जानने हेतु प्रयत्नशील है ।[3] उसे इस तथ्य का आभास है कि उस अखंड ब्रह्मांड का प्रत्येक अणु-परमाणु उसी अव्यक्त सत्ता की गति से गतिमान् है, लय से लयमान् है और शक्ति से शक्तिमान् है ।[4]

प्रत्येक कृति में कर्ता का प्रतिबिम्ब रहता है । प्रकृति-प्रणेता को उसकी रचना के रूप में हम दिन-रात देखते हैं । प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों में परोक्ष सत्ता की अनुकृति, अनुछवि देख कवि उसके रहस्य को अन्ततः जान ही लेता है ।[5] कवि की आसक्ति प्रकृति के प्रति शनैः-शनै बढ़ती ही जाती है और अन्ततः उसका प्रकृति-प्रेम विराट् सत्ता के प्रेम में विलीन हो जाता है । अब प्रकृति में सर्वत्र विरही को अपने प्रियतम की ही छवि दिखाई देती है ।[6]

काव्य-शिल्प :

अलंकार—सप्रयास अलंकार-संयोजन में उनकी अभिरुचि नहीं थी । अलंकार उनके लिए साधन थे, साध्य नहीं । अभिव्यंजना-कौशल में वृद्धि लाने के लिए कवि ने अलंकारों का कहीं-कहीं उपयोग किया है । मूर्त-अमूर्त उपमानों के सहारे अभि-व्यंजना-कौशल से पूर्ण एक चित्र दर्शनीय है—'सुन्दर सर है लहर मनोरथ की उठ

१. पथिक, दूसरा सर्ग, पद ४५, पृ० ३५ ।
२. मानसी (नृत्य), पृ० १८ ।
३. 'कौन-सा सन्देशा पवन कहता प्रसून से है,
खिल उठता है मुख जिसमें सुमन का ।
कौन-से रसिक को रिझाती है सुना के गान,
कौन जानता है भेद कोयल के गान का ।
—वही (रहस्य), पृ० ११ ।
४. वही (अन्वेषण), पृ० २ ।
५. (क) पथिक, पृ० ४३ । (ख) वही : पृ० ४३ ।
६. मिलन, पृ० २४ ।

कर मिट जाती है।'[१] अलंकार के क्षेत्र में कवि की प्रमुख प्रवृत्ति 'मानवीकरण' की रही है। कवि ज्योत्स्ना का नारी-रूप में हृदयस्पर्शी चित्रण इस प्रकार करता है :

'कुमुद-बन्धु की मुदित कौमुदी भूपर उतर गगन से।
सोई थी सिकता-समूह पर परम अचिन्तित मन से।।'[२]

छन्द-विधान :

'त्रिपाठी' जी छन्दों के काव्यगत महत्त्व से परिचित थे। उन्होंने अपने काव्य में मात्रिक छन्दों को अपनाकर 'लय' की सृष्टि की है। खड़ीबोली के कवियों ने एक प्रकार से घनाक्षरी छन्द को त्याग ही दिया था जिसे त्रिपाठी जी ने अपने काव्य में पुनर्जीवित कर दिया और उसमें ऐसा भाव भरा कि पढ़कर रसिक पाठक का मन मुग्ध हो जाता है। परम्परा से अलग हटकर कवि ने उर्दू के बहरों को भी अपनाया है। 'अन्वेषण' शीर्षक कविता उर्दू छन्द में विरचित है।[३]

भाषा :

पं० रामनरेश त्रिपाठी द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में काव्य-सर्जना में प्रवृत्त हुए थे। उस समय खड़ीबोली किशोरावस्था में थी। भाषा परिमार्जन का कार्य द्विवेदी जी के कुशल नेतृत्व में हो रहा था। कवियों के सामने भाषा, विषय और शैली सभी कुछ नये थे। तत्सम प्रधान भाषा और जन-भाषा के बीच कवियों को अपना पथ स्वयं चुनना था। त्रिपाठी जी ने काव्य-सर्जना के लिए बीच का मार्ग चुना। उन्होंने लोक-प्रचलित भाषा को अपनाने का प्रयास तो किया लेकिन संस्कृत-बहुल भाषा के प्रयोग का लोभ वे संवरण नहीं कर सके। काव्य में सुकुमारता, सरसता एवं प्रभावोत्पादकता लाने के उद्देश्य से उन्होंने वर्ण मैत्री का भी सहारा लिया—

'राग-रथी, रवि-राग-पथी अविराग-विनोद बसेरा।'

× × × ×

'एक दिवस अति मुदित उदधि के बीचि-विचुम्बित तीरे।'[४]

बीचि-विचुम्बित, राग-रथी, रवि-राग-पथी में वर्ण-मैत्री की सहायता ली गयी है। 'राग-रथी—बसेरा में' संगीतात्मकता दर्शनीय है। 'त्रिपाठी' जी भाषाधिकार के सहारे नाद-सौन्दर्य उत्पन्न करने में भी कुशल हैं। पति-वियोग के कारण

---

१. पथिक, सर्ग ३, पद १८, पृ० ४१।
२. वही : सर्ग ३, पद १, पृ० ३८।
३. मानसी (अन्वेषण), पृ० १।
४. पथिक, १ सर्ग, पद १, पृ० १७।

विरहाग्नि से तपती विजया का चित्रण करने में कवि ने ऐसे शब्दों का चयन किया है जिसमें विरह-नाद गुंजरित होता है—

'विजया हुई विरह से व्याकुल, श्रान्त, क्लांत उद्भ्रांत ।'[१]

'त्रिपाठी' जी की शब्दावली भावानुकूल है। उदाहरण के लिए 'मांस नहीं है निरी साँस है, शेष अस्थि पंजर में' में प्रयुक्त शब्दावली दीनता का दृश्य स्वयं उपस्थित कर देती है। शब्द-जाल के चक्कर में वे नहीं पड़े। उन्होंने सरलता के साथ ही भाषा सौष्ठव का भी सदैव ध्यान रखा। तत्सम शब्दों के साथ ही उर्दू तथा आंचलिक शब्दों को भी निःसंकोच भाव से ग्रहण किया।

———

१. मिलन, दूसरा सर्ग, पद १०।
२. पथिक, सर्ग तीन, पद ४०, पृ० ४४।

मुकुटधर पाण्डेय

प्रेम-भावना :

पाण्डेय जी की प्रेम विषयक दृष्टि वासना-रहित है। उन्होने संसार के सभी चर-अचर प्राणियों में प्रेम का दिग्दर्शन किया है। 'प्रेम-बन्धन' शीर्षक कविता में प्रेम की अमरता पर प्रकाश डालते हुए वे कहते हैं कि उसी ब्रह्म का प्रकीर्णक प्रकाश सारी सृष्टि में फैला हुआ है और सृष्टि के प्रत्येक अणु-परमाणु में उसी के प्रेम की धारा प्रवाहित हो रही है।[१] झरने, नदियों से, नदियाँ, समुद्र से और आकाशगामी पवन प्रत्येक परमाणु और पदार्थ से मिलकर प्रेम की तरंग तरंगायित करते रहते हैं।[२] आगे वे प्रेम को ही सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे प्रेम ! यदि तुम्हारा साथ एक क्षण भी न होता तो इतनी कड़ी यातना हम लोग किस प्रकार सहन करते ? इस संसार में तुम दुर्लभ हो, इसीलिए तुम श्रेष्ठ हो।[३]

इस प्रकार पाण्डेय जी को सृष्टि के प्रत्येक क्रिया-कलाप में प्रेम ही ध्वनित होता हुआ दिखाई देता है।[४] प्रेम की ऐसी विराट् कल्पना कवि की व्यापक सूझ-बूझ का परिचायक है।

वेदनानुभूति :

२०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पाण्डेय जी साहित्य के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। उस समय सम्पूर्ण देश में अंग्रेजी सत्ता का आतंक छाया हुआ था। भारतीय जनता काल-चक्र में पिस रही थी। देश की इस स्थिति ने प्राय: सभी कवियों को प्रभावित किया। इन कवियों ने इस स्थिति से भारतीयों को मुक्त कराने के लिए प्रत्येक विषय के अन्तस्तल में प्रविष्ट होकर काल की करालता से भारतीयों को अवगत कराया।

---

१. पूजा-फूल (प्रेम बन्धन), पृ० ९७।

२. वही : पृ० ९६।

३. वही : पृ० ९५।

४. वही : पृ० ९६।

विश्व की असारता की अनुभूति मनुष्य प्रति पल करता रहता है। काल-चक्र के समक्ष मानवीय शक्ति टिक नहीं पाती। काल की यही कुटिलता मानवीय भावनाओं को छिन्न-भिन्न कर देती है। काल की इसी करालता को कवि ने 'आँसू', 'हृदय' तथा 'काल की कुटिलता'[1] में अभिव्यक्त किया है। वह प्रिय को देख कर वेदना से कराह उठता है। उसके हृदय में वेदना की असंख्य लहरियाँ उठने लगती हैं और वह शोकाकुल होकर अश्रुधारा के वेग से वेदना को बहा देता है।[2] वास्तव में पाण्डेय जी की हृदयविदारक मार्मिक तथा चुभती हुई उक्तियाँ हृदय को छू लेने वाली हैं। यथा—

'यह स्निग्ध सुखद सुरभित समीर,
कर रही आज मुझको अधीर,
किस नील उदधि के कूलों से,
अज्ञात वन्य किन फूलों से,
इस नव प्रभात में लाती है,
जाने यह क्या वार्ता-गम्भीर ॥'[3]

राष्ट्रीय-भावना :

पाण्डेय जी के काव्य में चित्रित राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत कविताएँ बड़ी अनूठी बन पड़ी हैं। भारत की दयनीय दशा को देखकर कवि का हृदय चीत्कार कर उठा है। 'हृदय' शीर्षक कविता में कवि ने भारत की दीन-हीन दशा का बड़ा ही यथार्थ चित्र खींचा है।[4] प्रायः यह देखा जाता है कि जब मनुष्य को दुःखानुभूति होती है तो वह ईश्वरोन्मुख हो जाता है। ठीक यही स्थिति पाण्डेय जी की भी हुई है। वे भी भारत माता के समक्ष, उसके ही वरद् पुत्रों की दीन-हीन दशा का निवेदन करते हुए दिखाई देते हैं।[5] 'उठो चेतो', शीर्षक कविता में चिरनिद्रा में सोये हुए आर्य सन्तानों को सबेरा होने का वे सन्देश देते हैं तथा उद्बोधन गीत द्वारा उन्हें कर्त्तव्य-पथ का इस प्रकार ज्ञात कराते हैं—

'उठो हे आर्य सन्तानों, सबेरा हो चुका प्यारे।
समय यह है न सोने का, तजो आलस्य को भाई ॥
लगो कर्त्तव्य में अपने भगे दारिद्र्य दुखदाई।
उषा भी शान्ति से पहले अहा हँसती हुई आई ॥'[6]

१. पूजा-फूल (काल की कुटिलता), पृ० १००।
२. आँसू, सरस्वती, दिसम्बर, १९१६ ई०।
३. कविता-कौमुदी (अधीर), पृ० ५५८, सम्पा० रामनरेश त्रिपाठी।
४. हृदय, सरस्वती, मार्च, १९१७ ई०।
५. पूजा-फूल, पृ० २०५।
६. वही : (उठो चेतो), पृ० २०१।

उक्त छन्द में भारत की वर्तमान अवनति का मार्मिक चित्र अंकित है। कवि अपनी प्यारी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करने को तैयार है।[1] इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी कवियों ने वर्षों से गुलामी की जंजीरों में जकड़े हुए भारतीयों को जगाने तथा उनमें अपने देश के प्रति प्रेम एवं सहानुभूति का भाव भरने का यथासंभव प्रयास किया है।

प्रकृति-प्रेम :

पाण्डेय जी का प्रकृति एवं ग्राम्य जीवन से बड़ा लगाव था। हरे-हरे खेतों, मैदानों और नदी के किनारे चट्टानों पर अकेले घूमने में तथा किसानों से बातें करने में उन्हें मानसिक सुख का अनुभव होता था। उन्होंने प्रकृति और ग्राम्य सौन्दर्य को समीप से देखा तथा उससे स्पन्दन ग्रहण किया। जैसे-जैसे उनकी दृष्टि स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ती गयी कुतूहल और विस्मय के भाव उनके अन्तर्मन को उद्वेलित करने लगे। प्रकृति एवं ग्राम्य-सौन्दर्य विषयक इसी व्यापक दृष्टिकोण के कारण उन्होंने प्रकृति के क्रिया-व्यापारों में रहस्यमयी अव्यक्त सत्ता का आभास किया तथा प्रकृति का मानवीकरण करके अपने स्वच्छन्द काव्य को नैसर्गिक स्वरूप प्रदान किया। शुक्ल जी के शब्दों में "मुकुटधर जी की रचनाएँ नर-नरेतर प्राणियों की गतिविधि का राग-रहस्यपूर्ण परिचय देती हुई स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद की ओर झुकती मिलेंगी। प्रकृति-प्रांगण के चर-अचर प्राणियों का रागपूर्ण परिचय, उनकी गतिविधि की आत्मीयता व्यंजक दृष्टिपात, सुख-दुःख में उनके साहचर्य की भावना, ये सब शर्तें स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद के पदचिह्न हैं।"[2]

पाण्डेय जी ने प्रकृति और ग्राम्य-सौन्दर्य को आत्मीयता भरी दृष्टि से देखा तथा चित्रांकित किया। हृदय की लपेट ने इन चित्रों को इतना जीवन्त बना दिया है कि पाठक इन्हें देख कर आत्मविभोर हुए बिना नहीं रहता। उनकी प्रारम्भिक कृति "पूजा-फूल" में प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों के अनेकशः चित्र अंकित हैं जिसमें कवि की स्वतंत्र दृष्टि प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य को तन्मय होकर प्रतिबिम्बित करती हुई दिखाई देती है। "वर्षा और वसन्त" कवियों को सदैव से उद्वेलित करते रहे हैं। पाण्डेय जी भी उससे स्पन्दित हुए हैं लेकिन प्रणयोद्दीपन रूप में नहीं। प्राकृतिक अनुभूतियों में कवि को मात्र आत्मिक सुखानुभूति हुई है। "वसन्त ऋतु" में खिले हुए पलास और सरसों के फूल जहाँ रीतिकवियों को प्रणयोद्दीप्त करते रहे हैं वहीं स्वच्छन्द कवि पाण्डेय जी की प्रकृति का यह क्रिया-व्यापार हर्षोल्लास के संचार तक ही क्रियाशील रहा।[3] वर्षा ऋतु में आकाश में काली घटाओं का छा जाना,

१. पूजा-फूल : (प्यारा स्वदेश), पृ० २०४।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५५८, सं० २००३ वि०।
३. पूजा-फूल (वसन्त), पृ० ४६।

फुहार का पड़ना, बिजली का चमकना, बादल का गरजना और परिणामस्वरूप झरना का प्रवाहित हो उठना कवि को आत्मीय सुख प्रदान करता है।[१] इतना ही नहीं कवि को इन प्राकृतिक सुखों के समक्ष समस्त भौतिक सुख-वैभव तुच्छ दिखाई देते हैं "उनके आगे तुच्छ परम वे मुझे सभी हैं।"[२]

प्रकृति की भाँति ही ग्राम्य-जीवन ने भी कवि को पर्याप्त लुभाया है। वर्षा-ऋतु में धूल-माटी से सने हुए पंक्तिबद्ध हल जोतते किसान तथा उनके लोकगीत कवि को अत्यन्त मनोहर प्रतीत होते हैं।[३] समाज के इस उपेक्षित वर्ग को काव्य का विषय बनाकर कवि ने अपने अदम्य साहस तथा उदार दृष्टिकोण का परिचय दिया है। वस्तुतः साधारण को असाधारणता प्रदान करने तथा सामान्य में भी सौन्दर्य-तत्त्व की खोज निकालने की पाण्डेय जी में अद्भुत क्षमता दिखाई देती है।

१६१५ ई० तक पाण्डेय जी की दृष्टि प्रकृति के स्थूल बाह्य चित्रणों में ही उलझी रही लेकिन उसके बाद की रचनाओं में उनकी प्रकृति विषयक दृष्टि व्यापक हो गयी है। अब उनके काव्य में परम्परागत विषय 'वर्षा' कल्पनाओं का सम्बल ग्रहण कर नवीन कलेवर धारण कर लेता है। नीचे आकाश में गिरती हुई वर्षा की बूँदों को देखकर कवि सुखानुभूति से मात्र विह्वल ही नहीं होता वरन् उसे इन बूँदों के संश्लिष्ट प्रवाह में श्वेत गंगा की धारा का भी दर्शन होने लगता है।

"पूजा-फूल" में संकलित 'गुलाब', 'कुमुदनी', 'पूर्णचन्द्र', 'शरदसर्वरी', 'महानदी', 'ग्रीष्म', 'एक लहर' आदि कविताओं में कवि का प्रकृति विषयक दृष्टि-कोण खुलकर मुखरित हुआ है। इन कविताओं में जहाँ एक ओर कवि ने प्राकृतिक सुषमा का निरीक्षण किया है वहीं दूसरी ओर वह प्रकृति-सौन्दर्य से उत्पन्न रसोद्रेक का आनन्द लेता हुआ भी दिखाई देता है। पाण्डेय जी की प्रभात शीर्षक कविता में मानवीयकरण का सुन्दर परिपाक हुआ है। कवि पक्षियों के कल-कूजन में मंत्रो-च्चारण की कल्पना करता है। ऐसे अवसर पर विटपों का पुष्प-पात कर अपने प्रेम को प्रदर्शित करना कवि को आत्मविभोर कर देता है। कवि ने ओस से भींगी हुई पत्तियों से झर रहे ओस-कणों को प्रेमनीर की उत्तम उपमा देकर अपनी मौलिकता तथा स्वच्छन्द दृष्टिकोण का परिचय दिया है।[४] पाण्डेय जी में प्रकृति चित्रों में बिम्ब ग्रहण की भी अद्भुत क्षमता दिखाई देती है। लताओं और विटपों का फलना-फूलना तथा मन्द हवा के झोंकों से हिलना-डुलना प्रकृति का साधारण-सा क्रिया-

१. पूजा-फूल, पृ० ६१।
२. वही : पृ० ३५।
३. वही : पृ० ६१।
४. वही : पृ० ४०, ४२।

व्यापार है। लेकिन कवि को प्रेम में झूमते इन वृक्षों तथा लताओं में मदमस्त हाथी का प्रतिबिम्ब उभरता दृष्टिगोचर होता है।[१]

रहस्यानुभूति :

पाण्डेय जी के काव्य में रहस्यानुभूति के व्यापक दर्शन होते हैं। कवि ने रहस्यानुभूति के परिवेश में मानवीय अनुभूतियों को अभिव्यंजित किया है। कवि को रहस्य की अनुभूति जड़-चेतन सभी वस्तुओं में होती है।[२] 'कुररी के प्रति' शीर्षक कविता में दिन भर सुदूर खेतों में चुगने के पश्चात् रात्रि में आते हुए कुररियों को देखकर कवि प्रश्न करता है कि तू अपने मन की बात बता दे कि तू कहाँ भूल गयी थी और अब कहाँ जा रही है।[३] कवि कुररियों से पुनः प्रश्न करता है कि तुम कितनी दूर कहाँ और किस दिशा में निवास करती है? वहाँ कौन-सा तारा आलोक प्रदान करता है? पृथ्वी का वह किनारा तुम्हें कौन-सा गान सुनाती है? तथा वहाँ कैसा सुगन्धियुक्त पवन चलता है कि तूने यहाँ आने का आयास किया।[४] आगे चलकर कवि और अधिक दार्शनिक हो जाता है और उस असीम सत्ता में मानवीय भावनाओं का आरोपण कर उसे देखने को व्यग्र हो उठता है। उसी असीम सत्ता में अज्ञात सत्ता का आभास करता हुआ कवि कहता है—

"बिछा हृदय के आसन मेरे आज
सजे तुम्हारे स्वागत के हैं साज
गूँथ प्रेम के फूलों के नव माल
राखा मैंने पलक पाँवड़े डाल।"[५]

पं० मुकुटधर पाण्डेय अपने 'एक उद्‌गार' प्रगीत में परोक्ष प्रियतम को लक्ष्य करके रहस्यात्मक उद्‌भावना की है।[६] उनके 'रूप का जादू' शीर्षक गीत में परोक्ष प्रियतम के प्रति आकर्षण की अनुभूति भी है[७] और प्रेम की वेदना भी।[८]

---

१. पूजा-फूल, पृ० ८६।
२. कविता-कौमुदी, पृ० ५६२।
३. वही : (कुररी के प्रति), पृ० ५६१।
४. वही : पृ० ५५६।
५. मुकुटधर पाण्डेय : मर्दितमान, सरस्वती प्रकाशन, १९१८ ई०।
६. मुकुटधर पाण्डेय : एक उद्‌गार, सरस्वती प्रकाशन, १९१७ ई०।
७. कविता-कौमुदी, पृ० ५६०।
८. वही : पृ० ५६१।

शिल्प :

रीतिकालीन चमत्कारिक शिल्प के प्रतिक्रियास्वरूप स्वच्छन्द कवियों ने व्यक्तिगत अनुभूतियों के रंग में रँगकर नवीन काव्य-शिल्प की उद्घोषणा की। उन्होंने अलंकारों के माध्यम से किसी वस्तु की व्यंजना करना कला नहीं समझा। पाण्डेय जी ने अपने काव्य में दो प्रकार के शिल्प का विधान किया है—मुक्तक और गीतिशैली। प्रारम्भिक अवस्था में स्वच्छन्द कवियों का मार्ग निर्धारित न होने के कारण उन्होंने सीधी-सादी सरल भाषा में मुक्तकों की रचना की। उनकी 'एक उद्गार' शीर्षक रचना शिल्प-विधान की दृष्टि से पूर्ण प्रगीत है जिसमें मुक्त अभि-व्यंजना का प्राधान्य है।

स्वच्छन्द कवियों ने रीति-शैली को भी अपने काव्य में अपनाया है। पाण्डेय जी ने प्रचलित छन्दों के स्थान पर 'लावनी', 'कजली' आदि को अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से प्रयुक्त किया है जो उनके काव्य में अत्यन्त सुष्ठु बन पड़े हैं। यथा—

> "किसी से कभी न हारेंगे ॥ टेक ॥
> सर, साहब, मिस्टर कहलाकर मिलता जो आनन्द।"[१]

इस छन्द में सर, साहब, मिस्टर पदवी आदि विदेशी शब्द अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से प्रयुक्त हैं। उनके काव्य में नाद-व्यंजन के भी कतिपय प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं जो कर्णप्रिय तथा मधुर हैं।[२]

छन्द :

छन्द के क्षेत्र में पाण्डेय जी ने रूढ़ियों का पूर्ण रूप से परित्याग किया है। उन्होंने अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्ति के रंग में रँगकर मन की मौज के अनुसार छन्दों को प्रयुक्त किया। उन्होंने मराठी, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के छन्दों को भी अपने काव्य में अपनाया। इन छन्दों के नये-नये प्रयोग पाण्डेय जी की निजी विशेषता है।

---

१. मुकुटधर पाण्डेय : पूजा-फूल, पृ० १५६।
२. "कर्ण-प्रिय कल-कल सुखदाई,
गीत मनोहर गाती।
अपने तट के ग्राम्य जनों का
मानो चित्त चुराती है।" वही : पूजा-फूल, पृ० ८०।

यथा—

"निशिकर ने आ शरद्-निशा में,
बरसाया मधु दशों दिशा में,
विचरण करके नभो-देश में,
गमन किया निज धाम ।
पर चकोर ने कहा भ्रान्त हो,
प्रिय वियोग दुख से अशान्त हो
गया, छोड़ करके जीवन धन,
मुझे कहाँ ? हा राम ।"[1]

ऊपर जिस छन्द के दो बन्द उद्धृत किये गये हैं वे मात्रिक हैं और चौथे चरण में केवल ११ मात्राएँ हैं। तुक-प्रणाली भी ध्यान देने योग्य है। प्रथम दो चरणों का तुक किसी से नहीं मिलता। प्रत्येक बन्द के चौथे चरण के तुक एक ही हैं। यह छन्द तो नया है ही, तुक-प्रणाली भी नयी है। इन नये छन्दों के साथ ही इनके काव्य में कुण्डलिया आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है लेकिन ऐसे छन्दों का प्रयोग उन्होंने किसी उद्देश्य से नहीं किया है। उनके काव्य में उर्दू के छन्द तथा ग़ज़ल को विशेष सफलता प्राप्त हुई है।

भाषा :

पाण्डेय जी की भाषा साधारण बोलचाल की खड़ीबोली है। उनकी भाषा में अलंकार के प्रति आग्रह नहीं है। जो अलंकार आये भी हैं वे सहज, उद्दाम भावोच्छ्वासों में बह कर। उनकी भाषा में विविधता है। उन्होंने अपनी भाषा में सहजता, सरलता, लोच लाकर काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि की। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

"तुम्हें अपनी सुनाते भी, जबाँ मेरी लजाती है।
दुखों में भी अजी मोहन ! तुम्हारी याद आती है ।।"[2]
× × ×
"मजे से हँस रहा कोई किसी की जान जाती है।"[3]
× × ×
"शरम की बात है कैसी हमें जो नींद आती है।"[4]

---

१. सम्पादक रामनरेश त्रिपाठी : मुकुटधर पाण्डेय, कविता-कौमुदी दूसरा भाग—(रूप का जादू), पृ० ५६०, तृतीय संस्करण, १९८३ ई०।
२. मुकुटधर पाण्डेय : पूजा-फूल, पृ० १७७।
३. वही : पृ० १७७।
४. वही : पृ० २०५।

"आम्र पल्लव युक्त गृह-गृह कलश से शुभ सोहते ।
ध्यान मंजुल अंकुरित थे पुरट घट मन मोहते ।"[1]

× × ×

"सर साहब मिस्टर कहलाकर मिलता जो आनन्द ।
लेडी सहित हवा खाने को चले डॉग के साथ ।।
बूट सूट बढ़िया पहनेंगे नेकटाई की माल ।
रक्खेंगे एसेन्स लगाकर पाकेट में रूमाल ।।"[2]

उक्त छन्दों में मजे, जान, जबाँ आदि उर्दू-फारसी के, सर, साहब, लेडी, एसेन्स, डॉग, नेकटाई, पाकेट आदि शब्द अंग्रेजी के हैं । इसके साथ ही, इनकी भाषा में ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग मिलता है । यथा—'मीज' यह शब्द छत्तीसगढ़ी का है जिसका अर्थ होता है पौधों से बालों को अलग करना । इस प्रकार स्पष्ट है कि इनकी भाषा विषयानुकूल तथा प्रभावोत्पादक है ।

———

१. मुकुटधर पाण्डेय : पूजा-फूल, पृ० १७७ ।
२. वही : १५६, १६० ।

ठा० गोपालशरण सिंह

ठाकुर गोपालशरण सिंह खड़ीबोली के यथार्थवादी कवि हैं लेकिन उनकी प्रारम्भिक कविताओं में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के भी दर्शन होते हैं। कवि के जीवन-दर्शन तथा काव्य पर स्नेहिल पिता और ममतामयी माता के भक्तिपूर्ण पावन विचारों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वे मूलतः प्रेम और उल्लास के कवि हैं, उनकी रचनाओं में जीवन की विभिन्न दशाओं के चित्र उपलब्ध होते हैं। कल्पना-लोक में विचरण करने की अपेक्षा भूलोक में विचरण करने की उनकी चिर कामना रही है—'पृथ्वी पर ही मेरे पद हों दूर सदा आकाश रहे।' कवि की अधिकांश काव्य-कृतियाँ मुक्तकों के रूप में संगृहीत हैं। 'संचिता', 'माधवी', 'सुमना' 'मानवी' तथा 'कादम्बिनी' में कवि की स्वच्छन्द भावनाओं के दर्शन होते हैं।

प्रेम-निरूपण :

ठाकुर साहब के जीवन में प्रेम और उल्लास का प्राधान्य था जिसका उनके काव्य में प्रस्फुटन हुआ है। 'माधवी' में प्रेम के विभिन्न स्वरूपों के साथ ही विभिन्न स्थितियों का भी चित्रण उपलब्ध होता है। उनकी कविताओं में प्रेम के अलौकिक पक्ष के साथ ही लौकिक पक्ष भी ध्वनित हुआ है। दोनों ही दशाओं में प्रेम का उदात्तीकरण हुआ है। डॉ० रसाल के शब्दों में "ठाकुर साहब प्रेम के उपासक, स्वाभाविक सौन्दर्यानिन्द प्रेमी और प्रकृति के भावुक भक्त हैं। उनकी रचनाओं में प्रेम की मर्मस्पर्शिनी व्यंजना तथा अनुभूति की सुन्दर झलक रहती है।"[1] कवि के हृदय में अपने प्रिय के रूप-रस-पान की निरन्तर अभिलाषा बनी रहती है। प्रिय की निष्ठुरता भी उसकी एक अभिलाषा को दबा नहीं पाती है।[2] कवि के प्रेम-चित्रणों में

---

१. डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७६०, प्र० सं० १९३१ ई०।

२. 'आशा से हुई थी अभिलाषा तुम्हें देखने की,
हुई अभिलाषा से पिपासा रूप-रस की।'

× × ×

'सारी निठुराई उनकी मैं सखी भूल गयी,
किन्तु भूलती कभी नहीं छवि मनभायी।'

—माधवी, पृ० ३८,३९।

अन्तर्दशाओं का बड़ा ही सूक्ष्म अंकन हुआ है। कवि को अपने प्रेम के प्रति जो दृढ़ आस्था है वही उसे वियोग में भी संयोग जैसा सुख प्रदान करती है। वह अपने प्रेम की रक्षा के लिए मिट जाना पसन्द करता है लेकिन प्रेम पर आँच आने देना नहीं चाहता।[1] उनके प्रेम में बलिदान की जो आकांक्षा है वह अटूट है।[2]

ठाकुर साहब को मानस की पीर से विशेष लगाव था। सूफियों की भाँति उनकी प्रेम-भावना में प्रेम की पीर तो दिखाई देती है पर उसमें भक्त कवियों की भाँति दीन निवेदन नहीं।[3] उनके अलौकिक प्रेम में कुतूहलपूर्ण रहस्य का दर्शन होता है। उन्हें विश्व की अखिल छवि में अनन्त सत्ता का आभास होता है।[4] उन्होंने प्रेम के क्षेत्र में दाम्पत्य-प्रेम को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। 'मानवी' में वर्णित प्रेम भिन्न प्रकार का है। उसमें न तो प्रेम का रोमानी भाव है, न ही संयोग-वियोग का चित्र। कौमार्य-वर्णन में भी पुरुषों के प्रति जुगुप्सा का भाव नहीं है। प्रेम के लौकिक पक्ष में कवि का दृष्टिकोण संकुचित नहीं है वरन् वह विश्व-प्रेम में विलीन हो गया है—'विश्व के बन्धन में मुझको मिला मुक्ति का द्वार।' ठाकुर साहब के प्रेम का विषय यद्यपि परम्परागत ही है लेकिन उसके प्रस्तुतीकरण में नवीनता है। वह रीतिकालीन शृंगारिकता से भिन्न है।

प्रकृति-चित्रण :

ठाकुर साहब ने जहाँ एक ओर प्रकृति का परम्परागत उद्दीपन रूप चित्रित किया है, वहीं उनकी स्वच्छन्द दृष्टि प्रकृति के स्वतन्त्र निरीक्षण की ओर भी गयी है। 'कादम्बिनी' और 'सुमना' में प्रकृति के संश्लेषणात्मक चित्र मिलते हैं। इन काव्य-कृतियों में प्रकृति का कहीं-कहीं सचेतन तथा संवेदनशील रूप दिखाई देता है। प्रकृति के क्रिया-व्यापारों में कवि को मानवीय क्रिया-व्यापारों की झलक मिलती है। अतीत से भारतीय समाज में किसी गण्यमान व्यक्ति के आगमन पर मंत्रोच्चारण अथवा अन्य प्रसन्नतासूचक शब्दों द्वारा स्वागत-सत्कार करने की परम्परा रही है। वसन्तागमन पर पक्षियों की उछल-कूद एवं कल-कूजन में कवि ने मानवीय क्रिया-व्यापार के इसी पक्ष का भावन किया है।[5]

ठाकुर साहब को प्रकृति के विविध क्रिया-व्यापारों में यत्र-तत्र परोक्ष सत्ता की अनुभूति होती है। प्रकृति का सचेतन तथा रहस्यमय स्वरूप कादम्बिनी में

१. माधवी, पृ० ५।
२. वही, पृ० ६।
३. वही, पृ० २५।
४. वही, पृ० ४२।
५. कादम्बिनी, पृ० ४२।

उपलब्ध होता है। इस कृति की 'चाँदनी' शीर्षक कविता में प्रकृति का सूक्ष्म सचेतन रूप, आध्यात्मिक संकेत देता-सा दिखाई देता है।[१] इसी प्रकार का आध्यात्मिक संकेत हमें निम्नांकित पंक्तियों में लोल लहरियों के संगीत में प्राप्त होता है—

'आती सागर-उर खोल-खोल गाती हैं लहरें लोल लोल।
पाकर उनसे संगीत-दान, पुलकित करते हैं विश्व-प्राण ॥
नभ में गुंजित ये अमर - गान।'[२]

'सुमना' में प्रकृति के स्वर में जीवन के गीत संगृहीत हैं। कवि ने प्रकृति के संस्पर्श से जीवन के कठोर सत्यों का आभास कराया है। 'अपराध बनी है निर-पराध, मेरे जीवन की मधुर साध'[३] में जहाँ जीवन का कठोर सत्य बिम्बित है, वहीं 'अटल है जग-जीवन मधुमास, चिरन्तन है ध्रुव विश्व-विकास'[४] में कवि अनन्त जीवन, अनन्त प्रेम एवं अनन्त उल्लास की कल्पना करता है।

ठाकुर साहब के काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप भी दृष्टिगोचर होता है। परम्परा से 'कोयल' और 'मोर' की बोल विरहोद्दीप्ति में सहायक रहे हैं। प्रिय के अभाव में प्रकृति के ये दोनों उपादान कवि की शृंगारिक भावनाओं को उभाड़ कर विरह-वेदना को और भी गहरा बना देते हैं, जिससे उसे प्रकृति के ये प्रिय दृश्य भी अप्रिय प्रतीत होते हैं।[५]

देश-प्रेम :

देश-प्रेम की भावना उस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। ठाकुर साहब के काव्य में इस भावना को यथोचित स्थान मिला। स्वहित चिन्तन और अपनी व्यक्तिगत प्रशंसा की आकांक्षा रखने वाले देशवासियों के मस्तिष्क पर से कूपमण्डूकता का पर्दा उठाते हुए वह कहता है कि हमारे इन मूर्ख पुत्रों की किस प्रकार रक्षा की जाय जो देश की चिन्ता न कर केवल अपने ही बड़ाई का ध्यान रखते हैं।[६]

परतन्त्र भारत की दयनीय दशा का कवि के मानस-पटल पर गहरा प्रभाव पड़ा है। वह भारतीयों के मनोबल को ऊँचा करने के लिए भारत के गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण कराता हुआ कहता है—

'गौतम, कणाद से जहाँ हुए थे ज्ञानी।
जिसमें दधीचि शिव सदृश हुए थे दानी ॥

१. कादम्बिनी, पृ० ५६।
२. वही, पृ० १७, संस्करण १६३७ ई०।
३. गोपालशरण सिंह, आधुनिक कवि, पृ० ६५, सं० २००३ वि०।
४. कादम्बिनी, पृ० ७४।
५. मानवी, पृ० १५, सन् १६३८ ई०।
६. माधवी, पृ० ७३।

जिसके अधीन थीं, ऋद्धि - सिद्धियाँ सारो।
वह भरत-भूमि क्या यही हमारी प्यारी॥'

'मानवी' काव्य-संग्रह में सामाजिक तथा ग्राम्य-जीवन का मर्मोद्घाटन किया गया है। द्विवेदीयुगीन समाज-सुधार आन्दोलन तथा गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव इस काव्य-संग्रह पर पड़ा है। सामाजिक बुराइयों का कच्चा चिट्ठा उनकी कविताओं में उपलब्ध होता है। "बलिदान' में 'अनमेल विवाह', 'अभागिनी' में बाल-विवाह, 'शकुन्तला' में विवेकशून्य प्रेम, 'व्रजबाला' में अनीप्सित विवाह, दहेज-प्रथा, अशिक्षा आदि के भयानक परिणामों का चित्र है। 'बाल-विधवा' के प्रति कवि की संवेदना उद्वेलित हो उठी है।[1]

'मानवी' में समाज द्वारा उपेक्षित नारी के करुणामय चित्र अंकित हैं। नारी के कष्टमय जीवन के प्रति कवि की आत्मा हाहाकार कर उठी है। इस रचना में कवि ने रीतिकालीन भोग्या नारी का चरित्रगत संस्कार कर उसे मानव शक्ति का आदि स्रोत तथा प्रेमराज्य की रानी बता कर मानव की विकृत भावना का परिष्कार किया है।[2]

काव्य-शिल्प :

ठाकुर साहब की शैली में उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप है। उपयोगितावादी दृष्टिकोण रखने के कारण उन्होंने सर्वत्र प्रभावोत्पादक एवं वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। भावों का यथार्थ चित्रण उनकी शैली की विशेषता है। उनकी अभिव्यंजना शैली में अपनापन है. उद्भावनाओं में मार्मिकता के प्रभाव से हृदय स्पर्श करने की क्षमता है। भाव, मुक्तकों में रसों का समुचित परिपाक हुआ है। भाषा एवं भावों की सौन्दर्य-वृद्धि के लिए उन्होंने अनुप्रास, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों का सहारा लिया है। उनकी शैली में कलात्मकता का प्राधान्य है। रूपात्मक तथा लाक्षणिक प्रयोग भी उनकी रचनाओं में यत्र-तत्र दिखाई देते हैं।

भाषा-छन्द :

ठाकुर साहब की भाषा साहित्यिक खड़ीबोली है। यद्यपि उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है लेकिन उससे उनकी व्यावहारिकता पर आँच नहीं आने पायी है। उन्होंने उर्दू, फारसी के शब्दों को काव्य में स्थान नहीं दिया है और

---

१. 'जग में रस धारा बहती है,
पर तू प्यासी रहती है।"—मानवी, पृ० ६०।

२. वही, पृ० २।

न तुकबन्दी के लिए शब्दों को विकृत किया। ठाकुर साहब खड़ीबोली के प्रथम कवि हैं जिन्होंने खड़ीबोली में कवित्त, सवैया का सफल प्रयोग किया है। उनकी 'माधवी' सरल कवित्त, सवैयों का संग्रह है। इन कवित्त, सवैयों की भाषा में वही प्रांजलता है जो ब्रजभाषा के कवित्त, सवैयों में प्राप्त है। इस प्रकार उन्होंने खड़ीबोली का संस्कार कर ब्रजभाषा के समान ही उसे सरस बनाने का सफल प्रयास किया। उन्होंने वर्णनात्मक स्थलों पर शुद्ध व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया तथा गम्भीर विचारों को व्यक्त करने के लिए संस्कृतगर्भित भाषा का।

रीतिकाल में कवित्त और सवैया ही प्रचलित छन्द थे। कवित्त, सवैया के प्रयोग ने भक्ति काल की 'पद' परम्परा से रीतिकाल को अलग कर उसकी स्वच्छन्द पहचान बन गया। भारतेन्दु-युग तक ब्रजभाषा काव्य की भाषा बनी रही। नये-नये छन्दों का आरम्भ अवश्य हुआ पर कवित्त, सवैया छन्द त्यक्त नहीं हुए। द्विवेदी-युग में काव्य की भाषा खड़ीबोली हो गयी और सभी पुराने छन्द छूट गये और अन्य पुराने छन्दों के साथ कवित्त और सवैया जैसे निषिद्ध मान लिये गये। ऐसा होने में कवियों की असमर्थता ही कारण है जो इन दोनों छन्दों को खड़ीबोली के अनुकूल नहीं बना सके। गोपालशरण सिंह ने द्विवेदी-युग में निषिद्ध घोषित कवित्त, सवैया छन्दों को खड़ीबोली में प्रयोग करके जहाँ एक ओर अपनी शक्तिमत्ता का प्रमाण दिया वहीं दूसरी ओर अपने स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण का भी संकेत किया।

जयशंकर प्रसाद

प्रेम-निरूपण :

'प्रसाद' का प्रेम उनके व्यक्तिगत जीवन की प्रेमानुभूतियों पर ही आधारित है। 'प्रेम-पथिक' में कवि का किशोर-वय हृदय आदर्श प्रेम की खोज में भटकता-सा दिखाई देता है। वह अपनी प्रेम-भावना को विश्व-प्रेम में परिव्याप्त कर देखना चाहता है। 'झरना' में कवि का युवा-हृदय प्रिय के क्रोड़ में सर्वस्व समर्पण को उद्यत है। वह प्रेम में व्यावसायिक भावना से घृणा करता है तथा निष्काम समर्पण में ही जीवन की सार्थकता समझता है। प्रिय की अवहेलना से 'आँसू' में आकर कवि भावुक हो उठता है लेकिन अधिकांश रीतिबद्ध कवियों की भाँति प्रेम की प्रांजलता पर कीचड़ नहीं उछालता। वह प्रेम-जन्य वेदना को जीवन का वरदान मान कर उसकी साधना करता है। इस प्रकार 'प्रेम-पथिक' से 'आँसू' तक 'प्रसाद' के काव्य में प्रेम का व्यापक और उदात्त स्वरूप ही चित्रित है। उनका प्रेम, भावनात्मक धरातल से नीचे उतर कर कभी भी वासना के संकीर्ण वीथियों में विचरण करने का प्रयास नहीं करता। रीतिबद्ध कवियों का प्रेम, संयोग और वियोग दोनों स्थितियों में काम से पीड़ित रहा। 'प्रसाद' ने इस परम्परा को तोड़कर प्रेम को युगानुकूल मोड़ दिया।

'प्रसाद' का प्रेम, वासना-प्रेरित न होकर सौन्दर्य-प्रेरित है और सौन्दर्य-प्रेरित होने के कारण उसमें 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' का समावेश है। वास्तव में सच्चा प्रेम प्रतिदान की आकांक्षा से विरत रहता है और उसमें आत्म-समर्पण की अटूट आस्था रहती है। स्वार्थ और कामना का हवन करके निर्विकार भाव से इस पथ पर चलने वाला व्यक्ति ही शाश्वत आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। कवि इस तथ्य से परिचित है। वह 'पथिक' के माध्यम से जिस पवित्र तथा अपरिमित प्रेम का दिग्दर्शन कराता है वह उसके प्रेम-विषयक व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है।[१] डॉ० खण्डेलवाल के शब्दों में —"प्रसाद का प्रेम अपने मूल रूप में स्वच्छन्द प्रेम (रोमाण्टिक लव) है।"[२]

'प्रसाद' ने 'प्रेम-पथिक' में प्रेम की सार्वभौमिक सत्ता का उद्घाटन किया है। अपने विकास-क्रम में प्रेमी-प्रेमिका का लौकिक प्रेम, विश्व-प्रेम में पर्यवसित हो जाता है और अन्ततः अखण्ड आनन्द की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। चमेली, पथिक से प्रेम-सौन्दर्य के उस शाश्वत क्षेत्र में चलकर रहने का आग्रह करती है जहाँ

१. प्रेम-पथिक, पृ० १६।

२. डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, प्रसाद साहित्य में प्रेम-सौन्दर्य, पृ० ८५।

अखण्ड शान्ति का प्रसार हो।[१] कवि वैयक्तिक प्रेम को सम्पूर्ण विश्व में बिखेर देना चाहता है।[२]

'आँसू' में प्रेयसी की उदासीनता और अवहेलना प्रेमी को व्यथित कर देती है। ऐसी स्थिति में प्रेमी के सामने रोने, सिसकने और अपनी करुण कहानी कहने के सिवा और कोई चारा नहीं रह जाता।[३] 'आँसू' में कवि का प्रेम, कुसुम-सा निष्कलुष एवं गंगा-सा पावन है। उसमें मौन-समर्पण का भाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। संभवतः 'आँसू' में कवि के प्रेम का स्वरूप समष्टिगत है अध्यात्मगत नहीं। 'छायानट छवि परदे में सम्मोहन वेणु बजाता' तथा 'कुछ शेष चिह्न हैं केवल मेरे उस महामिलन के' आदि पंक्तियों को देखकर समीक्षक 'प्रसाद' के प्रेम को अध्यात्मगत सम्बद्ध मानते हैं। वस्तुतः 'आँसू' की प्रिया लौकिक ही है केवल कवि का असीम तथा ऊर्ध्वमुखी प्रेम उसे उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित कर देता है। वास्तविकता यह है कि—"दर्शन की उदात्त भूमि पर उसकी वैयक्तिक वेदना अखण्ड चेतना में विलीन होकर अलौकिक आनन्द की वर्षा करने में समर्थ होती है।"[४]

'झरना' में कवि लौकिक संकेत करके अपनी अलौकिक प्रणय-चर्चा की व्यंजना करता है। 'रूप' में काया-सौन्दर्य के पान की लालसा, 'वसन्त की प्रतीक्षा'[५] में प्रणय की आकांक्षा, 'बालू की बेला' में आलिंगन की अभिलाषा[६] तथा 'निवेदन' में चुम्बन की पिपासा[७] मुखरित है। उसका प्रियतम लौकिक भी है और अलौकिक भी। लौकिक पक्ष में उसका प्रेम पवित्र है क्योंकि उसमें आदान की इच्छा कम और प्रदान की तीव्रता अधिक है। अलौकिक पक्ष में शाश्वत-सौन्दर्य ही कवि के प्रेम का आलम्बन है जिसकी पवित्र छाया में वह अपने प्रेम का प्रसार करना चाहता है।[८] इससे स्पष्ट है कि 'झरना' में कवि का प्रेम-हृदय, प्रिया-मिलन को उत्सुक है क्योंकि उसकी दृष्टि में प्रेम ही शक्ति है, पवित्र तीर्थ है, वैश्विक आनन्द की कुंजी है।[९] इतना ही नहीं, उनका प्रेम 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का साधन है। विनाशकारी

१. प्रेम-पथिक, पृ० २६।
२. वही : पृ० २४।
३. आँसू, पृ० १५।
४. डॉ० चक्रवर्ती : प्रसाद की दार्शनिक चेतना, पृ० ३१४।
५. झरना, पृ० १२।
६. वही : पृ० १८।
७. वही : पृ० ३२।
८. वही : पृ० २।
९. वही : पृ० ६।

परिवेश के स्थान पर रचनात्मक दृष्टि शान्त, शीतल तथा सुरभित परिवेश का सर्जक है। अतः प्रेम की लोकमंगल विधायिनी शक्ति का गुणगान करते हुए वह सर्वत्र प्रेम की पताका फहराना चाहता है—

'प्रबल प्रभंजन मलय-मरुत हो, फहरे प्रेम-पताका।'[१]

'आँसू' एक विरह-काव्य है, जिसमें कवि के व्यक्तिगत जीवन की मार्मिक अनुभूतियाँ मुखरित हुई हैं। इस विरह-काव्य में वियोग की प्रायः समस्त कामदशाएँ स्वतः ही अन्तर्निहित हो गयी हैं।[२] अतीत की स्मृतियाँ कवि को सतत उद्वेलित करती रहती हैं। वास्तव में यह पूर्वदीप्ति ही मिलन और टीस की स्मारक है।

प्रेम प्रसाद-साहित्य की आत्मा है। कवि की दृष्टि में प्रेम दो आत्माओं का इन्द्रियातीत मानस-मिलन है। उन्होंने प्रेम को एक जीवन तत्त्व के रूप में ग्रहण किया जिसका स्वरूप विकासमय है। उनका प्रेम अपने विकास-क्रम में स्थूल से सूक्ष्म की ओर, सान्त से अनन्त की ओर तथा लौकिक से वैश्विक की ओर बढ़ता गया है जिसका पर्यवसान अन्ततः अलौकिक प्रेम में हो जाता है। 'प्रसाद' ने प्रेम को मुक्त-विलास तथा बाह्य-बन्धन से मुक्त कर उसके शाश्वत मूल्य की पुनर्प्रतिष्ठा की है।

सौन्दर्य-बोध :

विद्वानों ने सौन्दर्य के चार भेद किये हैं शारीरिक, मानसिक, प्रकृत एवं कलात्मक सौन्दर्य। "प्रसाद"-काव्य में इन चारों का परिपाक हुआ है। शारीरिक-सौन्दर्य, प्रेम का स्थूल प्रेरक आधार अवश्य है, लेकिन मानसिक-सौन्दर्य के अभाव में उसका स्थायित्व एक प्रश्न-चिह्न बन जाता है। कवि ने अपनी प्रारंभिक कविताओं में सौन्दर्य का स्थूल चित्रण भी किया है लेकिन भावों के संगुम्फन से सौन्दर्य का आदर्श स्वरूप बिखरने नहीं पाया है। "झरना" की "रूप" नामक कविता में बाह्य रूप-सौन्दर्य का चित्रण दर्शनीय है, जिसमें कवि ने परम्परागत प्राकृतिक उपमानों के सहारे नारी-सौन्दर्य का उद्घाटन नये भाव-संस्कार के साथ किया है—

"ये बङ्किम भ्रू युगल कुटिल कुन्तल घने,
नील नलिन-से नेत्र-चपल मद से भरे,
अरुण राग रंजित कोमल हिम खण्ड से-
सुन्दर गोल कपोल, सुदर नासा बनी।"[३]

"आँसू" में नारी का जो बाह्य सौन्दर्य-चित्रण हुआ है उसमें रीतिकालीन बहिरंग वर्णन जैसी स्थूलता नहीं है। कवि ने बाह्य रूप-सौन्दर्य की निवृत्तियों में एक

१. प्रसाद : झरना (बिन्दु), पृ० ८१, संस्करण १९८१ वि०।

२. प्रसाद : आँसू, पृ० ७४, ३०, ७, १९, ३०, ४०, ४७, ११, १८, १२।

३. प्रसाद : झरना, पृ० ८।

अभिनव सूक्ष्मता का विधान किया है। अज्ञात प्रिय की केश-राशि, मुख, नेत्र, बरौनी, दाँत, नासिका, कान, भुजाओं तथा हँसी का कवि ने जो सौन्दर्य-चित्र खींचा है वह अनुभूति गाम्भीर्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य से अनुप्राणित है।[१] कवि की दृष्टि में प्रिय की पावन तन की शोभा आलोक-मधुर है और ऐसी जान पड़ती है जैसे चन्द्रिका पर्व में स्वयं बिजली स्नान करके आयी हो।[२]

इससे स्पष्ट है कि स्थूल अंग-वर्णन में भी कवि की दृष्टि अंगों की कान्ति, कोमलता, पुलकन, सिहरन आदि सूक्ष्म और सुकुमार पक्षों की ओर ही अधिक गयी है। निश्चय ही कवि के सौन्दर्य-बोध में यह पवित्रता उसके प्रेम-विषयक उदात्त दृष्टिकोण के कारण है।

'प्रसाद' को सौन्दर्य के प्रत्येक निर्देशन में अलौकिक सत्ता की दिव्य प्रभा का आभास होता है। इसी कारण उनके सौन्दर्य में ऐन्द्रियता से ऊपर उठने की चेष्टा है। वे अपने काव्य में नश्वर शारीरिक सौन्दर्य के स्थान पर शाश्वत सौन्दर्य-दर्शन की प्रेरणा देते हैं। उनके अनुसार ऐन्द्रिय सीमाओं से परे जाने पर ही शाश्वत सौन्दर्य का दर्शन होता है। कवि इसी शाश्वत सौन्दर्य की विश्व-व्यापकता का संकेत करते हुए क्षणभंगुर ऐन्द्रिय सौन्दर्य की वर्जना करता है।[३] कवि के अनुसार शाश्वत सौन्दर्यानुभूति के लिए प्रशान्त और गंभीर होना आवश्यक है क्योंकि उसके अभाव में वास्तविक सौन्दर्य का दर्शन संभव नहीं।[४]

विरह-वेदना :

'प्रसाद' के विरह-काव्य में 'रीतिकालीन स्वच्छन्द कवियों की तरह केवल प्रेमी-प्रेमिका की विरह-वेदना व्यंजित नहीं है वरन् उसमें सम्पूर्ण जीवन की करुण स्मृतियाँ ही निर्झर की भाँति प्रवाहित हुई हैं। उन्होंने अपने काव्य में परम्पराओं को तोड़ा तथा द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता से दूर हट कर अपने काव्य की सर्जना की। इनका 'आँसू' एक छोटा-सा काव्य अपने साकार की लघुता एवं घनीभूत पीड़ा की रसमयी अभिव्यक्ति के कारण भौतिक 'आँसू' का प्रतीक है।[५] आँसू के व्याज से मानव-मन की सम्पूर्ण ममता, करुणा, सहानुभूति तथा संवेदना अंकित

---

१. आँसू, पृ० २१-२४।

२. वही, पृ० २४।

३. 'क्षण भंगुर सौन्दर्य देखकर रीझो मत, देखो! देखो!!
उस सुन्दरता की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है।'

—प्रेम-पथिक, पृ० २४।

४. झरना (हृदय का सौन्दर्य), पृ० ५२।

५. जयशंकर प्रसाद : आँसू, प्रथमावृत्ति, सं० १९८२ वि०, पृ० ३२।

करने में कवि सफल है। व्यक्तिगत अनुभूतियों पर आधारित होने के कारण उनकी प्रारम्भिक कृतियों से स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ मुखरित हुई हैं। 'आँसू' में कवि अतीत की स्मृतियों के साथ सुखद भविष्य की भी कल्पना करता है।[1]

'प्रसाद' का विरह स्मृतिपरक होते हुए भी तीव्रता में कम नहीं है। 'वर्ड्सवर्थ' ने कविता को विगत भावों का सावकाश स्मरण कहा है। अभिलाषाएँ, स्मृतियों को जागृत कर तीव्रता प्रदान करती हैं। प्रिय के विरह में व्यथित विरही (प्रेमी) के शोक संतप्त हृदय में, पता नहीं क्यों आज प्रिय का स्मरण होते ही गहन पीड़ा से भरी बेचैन बना देने वाली ध्वनि हो रही है। विरह-जन्य पीड़ा तीव्र वेग के साथ उमड़ती हुई, हाहाकार की ध्वनि के साथ उसी प्रकार गर्जना कर रही है जिस तीव्र गति से गतिमान बादल गर्जन करते हैं। यहाँ पर 'करुणा कलित हृदय' से कवि का तात्पर्य एक ऐसे शोक-संतप्त प्रेमी-हृदय से है जिसमें प्रिय के चिर-वियोग के कारण मोह, स्मृति, दैन्य, चिन्ता, विषाद की लहरें हमेशा उठा करती हैं।[2]

'आँसू' में कवि ने वैयक्तिक विरह-वेदना को विश्व-वेदना में परिव्याप्त देखा है। कवि का आराध्य उसके अन्तराकाश में बिजली के समान क्षणिक झलक दिखाकर अदृश्य हो जाता है। ऐसी दशा में मात्र इन्द्रधनुषी स्मृति-रेखा मेघमाला-सी अवशेष रह जाती है। कवि के नेत्रों में शून्य नीरवता है, हृदय में पदचिह्नों से शून्य सूना पथ है। वह अनायास पूछ उठता है—

> 'नाविक ! इस सूने तट पर, किन लहरों में खो लाया
> इस बीहड़ बेला में क्या, अब तक था कोई आया।'[3]

'आँसू' में विरह की वह शीतल ज्वाला है जिसका धुआँ अन्दर-ही-अन्दर गूँजता रहता है। उसमें रुदन है, सिसक है, टीस है और है करुणा का सागर, जो अश्रुकणों में बिखर कर फूट पड़ा है। 'प्रसाद' ने प्रेम-जन्य वेदना को चिर-जीवन संगिनी तथा नव-जीवनदायिनी कहा है। 'प्रसाद' की वेदना का आधार लौकिक प्रेम है जिसे उन्होंने शाश्वत और चिरन्तन सत्य के रूप में प्रस्तुत किया है। इस कारण उनकी वेदना का वैयक्तिक स्वरूप समष्टिगत हो गया है। कुछ समीक्षकों ने 'प्रसाद' के विरह-काव्य में रहस्य का संकेत देकर लौकिक प्रेम पर आवरण डालने का आरोप लगाया है जो उचित नहीं प्रतीत होता। वास्तव में प्रेम की उदात्त भावना ही उनकी विरहानुभूति को असाधारण तथा अलौकिक बना देती है।

---

१. आँसू, पृ० ५६, सं० २०२५ वि०।
२. वही, पृ० ७।
३. वही, पृ० ४०।

प्रकृति-चित्रण :

प्रसाद-काव्य में प्रकृति, प्रेम की पीठिका के रूप में आयी है। प्रेम ही कवि को प्रकृति की ओर उन्मुख करता है। "प्रकृति के द्वारा प्रेम और प्रेम के द्वारा प्रकृति पर उनकी अधिकाधिक दृष्टि पड़ती गयी।.........साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन्होंने ही सर्वप्रथम उदय होते हुए तारों और खिलती हुई कलियों के सौन्दर्य को देखा और पहचाना।"[१] 'कानन-कुसुम' से प्रसाद का प्रकृति-अनुराग एक जिज्ञासु चितेरे के रूप में उदय होता है। 'प्रेम-पथिक' में वे मानवीय स्तर पर उतर आये हैं लेकिन उनका प्रकृति-प्रेम अभी बाह्य रूप पर ही केन्द्रित है। 'झरना' में आकर कवि अन्तर्मुखी हो उठा है और प्रकृति उसके लिए सचेतन बन गयी है। 'झरना' में हमें शुद्ध प्रकृति का रूप 'दो बूंदें', 'पावस प्रभात', 'वसन्त' तथा 'किरण' में प्राप्त होता है। 'झरना' के माध्यम से हिन्दी काव्य-साहित्य में प्रकृति के वैभव पर सर्वप्रथम ध्यान 'प्रसाद' का ही आकृष्ट हुआ।[२] 'आँसू' तक आते-आते कवि प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

'प्रसाद' के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रकृति विविध रूपों में आयी है। कहीं मानवीय कार्यों की पृष्ठभूमि के रूप में तो कहीं आलम्बन रूप में, कहीं मानवीय भावनाओं का उद्‌घाटन करती हुई सहायक उपकरण के रूप में तो कहीं अप्रस्तुत तथा प्रतीक के रूप में वह काव्य से सम्बद्ध है।

'प्रेम-पथिक' में प्रकृति प्रायः मानवीय कार्यों के पृष्ठभूमि के रूप में तथा प्रेम के उद्दीपक रूप में चित्रित है।[३] प्रकृति-चित्रण का दूसरा रूप जो 'प्रसाद'-काव्य में दिखाई देता है उसके पीछे प्रकृति के स्वतन्त्र निरीक्षण से उत्पन्न आनन्द का रसोद्रेक है। अंग्रेजी कवि 'वर्ड्‌सवर्थ' जिस प्रकार इन्द्रधनुष को देख कर हर्षोद्रेक से विह्वल हो उठता था, उसी प्रकार हिन्दी के आधुनिक स्वच्छन्द कवि भी प्राकृतिक-सौन्दर्य को देखकर आनन्द-विभोर हो उठे हैं। स्वच्छन्द शारदीय आकाश सरिता के मनोहर दृश्य के बीच शशि का सुधारस छलकाना कवि के मन को मोहित कर लेता है और उसका हर्षोद्रेक काव्य में फूट पड़ता है।[४]

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, आँसू भाष्य, पृ० १५।

२. झरना (असन्तोष), पृ० २८।

३. प्रेम-पथिक, पृ० १३।

४. झरना (दो बूंदें), पृ० ६।

प्रारम्भ में कवि की दृष्टि प्रकृति के बाह्य क्रिया-व्यापारों तक ही सीमित रही, परन्तु बाद में उसकी अन्तर्दृष्टि प्रकृति के अन्तःकरण में भी प्रवेश करने में समर्थ हो गयी। अब प्रकृति उसके काव्य में एक माध्यम के रूप में जाने लगी। "आँसू में प्रकृति प्रायः मानवीय भावनाओं के उद्घाटन में एक उपकरण के रूप में प्रस्तुत की गयी है। वियोगावस्था में विरही के हृदय में वेदनाओं का ज्वार उठा करता है। ऐसी दशा में प्रकृति के कठोर उपादान उसे सहधर्मी प्रतीत होते हैं और वियोगी कवि की विरहानुभूतियाँ प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से गीतों में फूट पड़ती हैं।"[1]

स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रतीकों तथा अप्रस्तुतों के माध्यम से प्रकृति-चित्रण की शैली बहुत लोकप्रिय रही है। 'आँसू' प्रकृति-प्रतीकों का अक्षय भाण्डार है। 'प्रसाद' ने अधिकांश प्रतीक विश्व-सुन्दरी प्रकृति के मनोरम अंग-प्रत्यंगों से चुने हैं जो भावाभिव्यक्ति में सजीवता, चेतनता, नूतनता तथा सौन्दर्य का संचार करते हैं। 'आँसू' में परम्परागत प्रतीकों के साथ ही नवीन प्रतीकों की भी विशद सर्जना की गयी है। उदाहरण के लिए एक स्थल पर लाल होंठ, दाँत और नासिका के लिए क्रमशः 'विद्रुम सीपी', 'मोती' और 'शुक' का विधान करके कवि ने परम्परागत प्रकृति-प्रतीकों के प्रति अपने प्रेम को प्रदर्शित किया है।[2] इसी प्रकार सर्वथा नवीन प्रकृति-प्रतीकों की योजना से कवि ने अपने काव्य को सजाया है। उदाहरण के लिए हृदय, भावावेग और व्यथा की तीव्रता के लिए क्रमशः 'भँवर पात्र', 'लोल लहर' और 'वाड़व-ज्वाला' की सर्जना कवि की सूक्ष्म कल्पना-विधायिनी शक्ति का परिचायक है।[3] प्रतीकों के समान ही अप्रस्तुत योजना भी 'आँसू' में स्थल-स्थल पर की गयी है। ऐसे ही एक स्थल पर कवि ने व्यथा की तीव्रता, पीड़ा, निराशा आदि अमूर्त भावों के लिए 'झंझा झकोर गर्जन' बिजली नीरदमाला, आदि मूर्त उपमानों का प्रयोग करके अमूर्त भावों में मूर्त उपादानों का आरोप किया है।[4] इस प्रकार प्रसाद-साहित्य में प्रकृति-प्रतीकों तथा अप्रस्तुतों का प्रयोग मानवीय भावनाओं के उद्घाटन में सफलतापूर्वक किया गया है। अपनी आन्तरिक भावनाओं के उद्घाटन के लिए स्वच्छन्दतावादी शैली पर प्रकृति का मानवीकरण भी 'प्रसाद' ने सफलतापूर्वक किया है।[5]

---

१. आँसू, पृ० ३५।
२. वही : पृ० २३।
३. (क) वही, पृ० २८।
   (ख) वही, पृ० ८।
   (ग) वही, पृ० १०।
४. वही : पृ० १५।
५. झरना (किरण), पृ० १४।

प्रकृति-रहस्य के प्रति आभ्यन्तरिक दृष्टिकोण 'प्रसाद' के काव्य में यत्र-तत्र प्राप्त होता है। प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों से आनन्द-विभोर होकर कवि 'झरना' की 'किरण' शीर्षक कविता में एक जिज्ञासु की भाँति रहस्य-दर्शन करता हुआ दिखाई देता है।[१] 'प्रसाद' के प्रकृति-चित्रण की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि प्रकृति उनके काव्य में प्रायः अकेले नहीं आती, मानव सदैव उसके पार्श्व में उपस्थित रहता है।

काव्य-शिल्प :

'प्रसाद' ने 'झरना' तथा 'आँसू' में यद्यपि उपमा, रूपक, श्लेष, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का यथावत् संयोजन किया है तथापि उनकी मुख्य प्रवृत्ति अप्रस्तुत-योजना, लाक्षणिकता, मानवीकरण तथा प्रतीक-योजना द्वारा काव्य में रमणीयता लाने की रही है। लक्षणा-व्यंजना की भाव-भंगिमा, अभिव्यक्ति में बाँकपन, अलंकारों के मार्मिक संकेत, संगीतात्मकता, गेयता आदि विविध शैलीगत विशिष्टताएँ उनकी रचनाओं में प्राप्त होती हैं। 'आँसू' में रीतिकालीन आलंकारिक शैली तथा आधुनिक-युगीन लाक्षणिक शैली का अनूठा समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

अप्रस्तुत-योजना :

'प्रसाद' के काव्य में अप्रस्तुतों के कई रूप मिलते हैं। उन्होंने परम्परागत प्रतीकों को नवीन भाव-बोध के साथ तो प्रस्तुत किया ही है सर्वथा नवीन अप्रस्तुतों की भी सर्जना की है। उनके अप्रस्तुतों में बाह्य साम्य की अपेक्षा आन्तरिक साम्य पर अधिक ध्यान दिया गया है। ऐसा करते समय उन्होंने उपचार-वक्रता का सर्वाधिक सहारा लिया है। उपचार-वक्रता में प्रायः अमूर्त में मूर्त का, ठोस में द्रव का और अचेतन में चेतन का आरोप किया जाता है। उपचार-वक्रता के सहारे रेखांकित अप्रस्तुत-विधान का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

> 'कामना-सिन्धु लहराता छवि पूरनिमा थी छाई,
> रतनाकर बनी चमकती मेरे शशि की परछाई।'[२]

यहाँ कवि ने पहले तो कामना (अमूर्त) में सिन्धु (मूर्त) का आरोप करके कामना की असीमता का परिज्ञान कराया है, लेकिन उसके बाद शशि (ठोस) जैसे प्रियतम के बिम्ब में रत्नाकर (द्रव) का आरोप करके छवि के बिम्ब को भाव-रत्नों की आभा से परिपूर्ण कर दिया गया है। एक अन्य उदाहरण लीजिए जिसमें कवि ने लौकिक और अलौकिक अप्रस्तुतों को मिला कर अलौकिक रहस्य को जानने का प्रयास किया है—

---

१. झरना (किरण), पृ० १५, १६।
[२. प्र]साद : आँसू, पृ० ३३।

'स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन
मिलाती हो उससे भू लोक ?'[१]

यहाँ किरण के लिए 'स्वर्ग' के सूत्र और किरण को पृथ्वी पर फैलने के लिए स्वर्ग से भू-लोक मिलाने की कल्पना की गयी है।

'प्रसाद' ने अप्रस्तुत-चयन में अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टिकोण का परिचय दिया है। एक नमूना देखिए—

'रिक्त-चषक-सा चन्द्र लुढ़क कर है गिरा
रजनी के आपानक का अन्त है।'[२]

यहाँ रिक्त-चषक का लक्ष्यार्थ है क्षीण-ज्योति-अर्द्धचन्द्र जो रात के अन्तिम समय की ओर संकेत करते हैं। कवि ने रूप-बोध के साथ ही परिवेश-बोध भी करा दिया है।

लाक्षणिकता :

'प्रसाद' ने अपने काव्य में प्रभविष्णुता लाने के लिए यथेष्ट रूप में लाक्षणिक प्रयोग किया है। आँसू में तो पग-पग पर लाक्षणिकता है। यथा—'शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग-जल का।'[३] में ज्वाला का वाच्यार्थ आग है लेकिन लक्ष्यार्थ में हृदय को व्यथित करने वाली वेदना। इसी प्रकार 'घिर जातीं प्रलय-घटाएँ कुटिया पर आकर मेरी'[४] में 'प्रलय घटाएँ' का लक्ष्यार्थ है मानसिक उथल-पुथल और कुटिया का लक्ष्यार्थ है हृदय।

'प्रसाद' ने लाक्षणिक भंगिमा लाने के लिए अचेतन में चेतन का आरोप करके मानवीकरण अलंकार का भी पर्याप्त सहारा लिया है। कवि को ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व-सुन्दरी प्रकृति अपनी सारी जड़ता समाप्त कर एक रमणी की भाँति आनन्द क्रीड़ा में रत है, गलबाँही डालकर घूमती है और चुम्बन, परिरम्भण आदि काम-क्रीड़ाओं में लीन होकर मधुर हास बिखेरती है।[५]

'विशेषण विपर्यय' अलंकरण भी प्रसाद के काव्य में लाक्षणिक भंगिमा लाने में सहायक हुई है। 'आँसू' में अभिलाषा करने वाला व्यक्ति करवट नहीं बदलता

१. प्रसाद : झरना (किरण), पृ० १४।
२. वही : (झरना), पृ० ११।
३. वही : (आँसू), पृ० १०।
४. वही : आँसू, पृ० १६।
५. वही : आँसू, पृ० २६।

अपितु स्वयं अभिलाषाएँ करवट बदलती हैं और व्यथा से पीड़ित सुप्त व्यक्ति नहीं जागता अपितु सुप्त व्यथाएँ ही जागती हैं।[1]

प्रतीक-विधान :

प्रतीक का कवि अन्तर्मुखी होता है। इसी कारण उसकी दृष्टि रूप की अपेक्षा गुण या धर्म पर अधिक जाती है। 'प्रसाद' के प्रतीकों में रूप-धर्म की समानता होने से उपमान ही प्रतीक है। कवि ने अधिकांश प्रतीक विश्व-सुन्दरी प्रकृति के मनोरम अंग-प्रत्यंगों से चुना है जो भावोद्रेक को सजीव बनाते हैं, अचेतन में चेतना भरते हैं और भाव-भंगिमा में नूतनता की सृष्टि करते हैं। उनके काव्य में कुछ प्रतीक तो परम्परागत हैं और कुछ कवि की नवीन सूक्ष्म दृष्टि के परिचायक हैं। पौराणिक प्रतीक का एक नमूना है—'गज समान है ग्रस्त, त्रस्त द्रौपदी सदृश है।'[2] परम्परागत प्रतीकों का एक उदाहरण—'शशि-मुख पर घूँघट डाले, अंचल में दीप छिपाये।'[3]

कवि ने कतिपय ऐसे नूतन प्रतीकों की योजना भी की है जिसके द्वारा काव्य में नूतन उद्भावनाएँ हुई हैं। जैसे 'मधु राका मुसक्याती थी पहले देखा जब तुमको।'[4]

'प्रसाद' ने रहस्यात्मक प्रतीकों की भी सर्जना की है। जैसे—'छायानट छवि परदे में सम्मोहन बीन बजाता'[5] यहाँ 'छायानट' परोक्ष सत्ता का प्रतीक है।

बिम्ब-विधान :

'प्रसाद' ने अपनी स्वच्छन्दतावादी कृतियों में स्थूल संवेदनात्मक बिम्बों को प्रधानता दी है। परिमाण की दृष्टि से उनके अधिकांश बिम्ब ऐसे हैं जिनका संवेदन नेत्रों के प्रति है। उन्होंने मूर्त विषयों के समग्र प्रभाव को उद्भूत करने के लिए अनेक रंगीन, कल्पनामय तथा समृद्ध बिम्बों की सृष्टि की है।[6]

'किरण' शीर्षक कविता में किरण के विभिन्न रूपों का जीवन्त एवं मूर्त चित्रण अनेक बिम्बों के माध्यम से किया गया है। इन विशिलष्ट एवं समृद्ध बिम्बों

---

१. 'अभिलाषाओं की करवट फिर सुप्त व्यथा का जगना।
फूलों का चुम्बन, छिड़ती-मधुपों की तान निराली।' —आँसू, पृ० २१।

२. प्रसाद : कानन-कुसुम, पृ० ६४।

३. वही : आँसू, पृ० १६।

४. वही : आँसू, पृ० १७।

५. वही : आँसू, पृ० ३३।

६. वही : झरना (किरण), पृ० १४-१५।

में अपेक्षित गुण विद्यमान हैं। ये बिम्ब 'किरण' के सम्पूर्ण सौन्दर्य एवं प्रभाव को संवेद्य बना कर उसके सहृदय चेतना को साकार कर देते हैं।'प्रसाद' ने यत्र-तत्र नाद सौन्दर्ययुक्त बिम्बों की सृष्टि भी की है जो उनके प्रभाव को तीव्रता प्रदान करने में सहायक हैं। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

"किसके तनमय अन्तरतम में, झिल्ली की झनकार हो रही।
स्मृति सन्नाटे से भर जाती, चपला ले विश्राम सो रही॥"[1]

उक्त छन्द में 'झिल्ली की झनकार' तथा 'सन्नाटा' शब्द-संयोजन द्वारा 'विषाद'-सदृश अमूर्त भाव की अनुभूति को ध्वन्यात्मक गुण से साकार कर दिया है। इन शब्दों की ध्वनि ही विषादयुक्त अवसाद को मूर्तिमान कर देती है।

छन्द :

'प्रसाद' ने शास्त्रीय नियमों पर आधारित छन्दों को जोड़-तोड़कर भावानुकूल नवीन छन्दों की सृष्टि की है। मात्रिक छन्दों को अतुकान्त रूप देने का सर्वप्रथम सफल प्रयास 'प्रसाद' ने किया। उन्होंने २१ मात्राओं के अरिल्ल छन्द को सन् १६१२ ई० में अपनी 'भरत'[2] नाम की रचना में अतुकान्त रूप में प्रयुक्त किया। अभी तक चार-चार चरणों वाले समछन्द स्वीकृत थे। 'प्रसाद' ने छन्द की सीमा तोड़ कर अतुकांत छन्दों को चरण संख्या के बन्धन से मुक्त कर दिया। बँगला के 'पयार' छन्द का तुकान्त प्रयोग उन्होंने 'चित्राधार' की 'सांध्यतारा' शीर्षक कविता में किया। उनके 'प्रेम पथिक'[3] की समस्त कविताएँ 'लावनी' छन्द में हैं।

'प्रसाद' की 'झरना' को छन्दों की चित्रशाला कहा जाता है। 'झरना' की प्रत्येक कविता प्रयोग के तौर पर एक नये छन्द में लिखी गयी है। 'झरना',[4] 'उपेक्षा करना', 'वेदना ठहरो' आदि कविताएँ मिश्र छन्द में रची गयी हैं। 'स्वभाव', 'दर्शन'[5] आदि कविताओं में कवि ने चतुर्दशपदी (सानेट) छन्द का विधान किया है। 'विन्दु'[6] की कविताएँ गीतिकाव्य (लिरिक) तथा गजल के रूप-विधान पर रची गयी हैं। 'पी! कहाँ!'[7] शीर्षक कविता को कवि ने प्रगीत शैली पर रचा है।

---

१. जयशंकर प्रसाद : (विषाद), पृ० १६।
२. इन्दु (कला-४), खण्ड—१, किरण १, प्रकाशन जनवरी, १६१३।
३. प्रेम पथिक, पृ० २३।
४. झरना (झरना), पृ० १, सं० १६६१ वि०।
५. वही (दर्शन), पृ० ४१।
६. (क) झरना (विन्दु), पृ० ७८।
   (ख) वही : पृ० ७८।
७. झरना (पी कहाँ), पृ० ७६।

'खोलो द्वार', 'दो बूँदें', 'वसन्त', 'किरण', 'अर्चना', 'वेदना ठहरो' आदि रचनाएँ सम्बोधन गीत (ओड) के रूप में अवतरित हैं।

'प्रसाद' ने एक प्राचीन छन्द 'सखी' को अपनी रचना 'आँसू' द्वारा लोकप्रिय बनाने का प्रशंसनीय कार्य किया। 'आँसू' में प्रयुक्त छन्द और प्राचीन सखी छन्द में लय-भिन्नता है। इसी कारण 'आँसू' में प्रयुक्त छन्द को 'आँसू' छन्द नाम दिया गया, जो उचित है।

इस प्रकार 'प्रसाद' के काव्य पर शास्त्रीय छन्दों, अंग्रेजी की छन्द विधाओं, बँगला के पयार तथा उर्दू के गज़लों का मिला-जुला प्रभाव पड़ा है। उन्होंने भाव-विशेष की सृष्टि के लिए रसानुकूल छन्द तथा छन्द-विधान के क्षेत्र में नाना-प्रकार का प्रयोग करके अपने स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण का परिचय दिया।

भाषा :

'प्रसाद' ने अपना कवि-कर्म ब्रजभाषा से प्रारम्भ किया था लेकिन ब्रजभाषा में उनका मन अधिक दिनों तक टिक नहीं पाया। उनकी प्रारम्भिक कृति 'प्रेम-पथिक' ब्रजभाषा में ही थी जिसका उन्होंने पुनः खड़ीबोली में अनुवाद कर प्रकाशन कराया। 'प्रेम-पथिक' उनकी स्वच्छन्दता का ज्वलन्त प्रमाण है जिसमें पूर्ववर्ती तुकान्त पद्धति को त्याग कर अतुकान्त पद्धति को अपनाया गया है। 'प्रसाद' की भाषा खड़ी शुद्ध साहित्यिक हिन्दी है जो क्रमशः प्रौढ़ और परिपक्व होती गयी है। द्विवेदी-युग भाषा-संस्कार का युग था और काव्य में इस कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने का सर्वप्रथम श्रेय 'प्रसाद' को है। 'प्रसाद' ने भाषा का नवीन अर्थ-चेतना के साथ संस्कार किया, अनेक नवीन शब्दों को अपने काव्य में अपना कर हिन्दी शब्द-भाण्डार की श्रीवृद्धि की। बाद में हिन्दी साहित्यकारों ने 'प्रसाद' द्वारा गढ़े गये—चीनांशुक[1] (भीगी पलकें), 'आपानक'[2] (प्रेम मधु) आदि शब्दों को अछूता ही छोड़ दिया। वास्तव में जिस समय कवि ने 'प्रेम-पथिक' और 'झरना' की रचना की थी उस समय तक उनकी भाषा पूर्ण रूप से परिपक्व नहीं हुई थी। 'झरना' में संकलित जो बाद की रचनाएँ हैं वे बहुत कुछ परिमार्जित और परिष्कृत हैं। उसमें कवि ने लक्षणा तथा व्यंजना का भी समावेश किया है। भावानुकूल शब्द-चयन की निपुणता, माधुर्य, संगीतात्मकता 'किरण' तथा 'विषाद' कविताओं में द्रष्टव्य है। 'आँसू' तक आते-आते 'प्रसाद' की भाषा पूर्ण रूप से प्रांजल स्वरूप ग्रहण कर लेती है।

---

१. 'चिनांशुक बनकर लिपटी है अंग में।' —आँसू, पृ० ६।
२. 'रजनी के आपानक का अब अन्त है।' —वही : पृ० ११।

भाषा-सौन्दर्य, नाद-सौन्दर्य, लक्षणा-व्यंजना की भाव-भंगिमा, छायार्थों का ग्रहण, संगीतात्मकता उनके काव्य में यत्र-तत्र विद्यमान है। 'परिरम्भ कुम्भ की मदिरा'[1] तथा 'चुन-चुन ले रे कन-कन से'[2] में जहाँ नाद-सौन्दर्य है, वहाँ काव्य-सौन्दर्य भी दर्शनीय है। इसमें भाषा और भाव दोनों के साथ लय तथा संगीतात्मकता का मणिकांचन संयोग है।

१. प्रसाद : आँसू, पृ० २७।
२. वही : पृ० ५८।

सुमित्रानन्दन पंत

प्रेम का स्वरूप :

'पंत' के काव्य में वर्णित प्रेम का स्वरूप बड़ा ही स्वच्छ तथा निर्मल है। उनकी प्रेम-विषयक उदात्त भावनाएँ प्रारम्भिक कृतियों में देखी जा सकती हैं। उन्होंने अपने प्रथम काव्य 'वीणा' में कविता को प्रेयसी का प्रतीक बनाकर बिम्ब-विधान के माध्यम से अपनी आन्तरिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की है।[1]

'पंत' जी अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में प्रेयसी के सपने सजाते हैं तथा उस पवित्र प्रेम में श्रेष्ठ वरदान का दर्शन करते हैं। कवि प्रेम के प्रथम स्पर्श से नारी-सुलभ संकोच, लज्जा और उसमें संघटित शारीरिक परिवर्तनों का सजीव चित्र खींचता है। प्रेयसी प्रिय के समक्ष खड़ी है। प्रेमातिरेक के कारण उसकी वाणी अवरुद्ध है। उसकी पलकें ऊपर उठती हैं और प्रिय-दर्शन कर गिर जाती हैं। इस विकम्पन की प्रक्रिया ने प्रणय-सम्बन्धों को मानो सुदृढ़ किया है।[2] इस प्रकार "ग्रंथि में आकर प्रकृति की सुषमा पर रीझने वाली कवि की दृष्टि नारी-रूप में बिंध जाती है। वह नारी में कुछ खोजता है। प्रणय-पादप से उद्भूत होने वाली शाखा-प्रशाखा रूपी कुतूहल, आशा, उल्लास, आह्लाद, निराशा, वेदना और वियोग प्रभृति भावनाओं की स्फुट झाँकियाँ प्रस्तुत करता है।"[3]

'उच्छ्वास' तथा 'आँसू' कविताओं में कवि की प्रेमानुभूति समस्त बन्धनों को तोड़ कर उमड़ पड़ी है। इन कविताओं में कवि के प्रेम का मुक्त स्वरूप अभि-व्यंजित है। कवि ने बालिका प्रेयसी के असफल प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। सामाजिक रूढ़ियाँ, घृणा की अशिव शक्तियाँ प्रेमी-प्रेमिका को वियुक्त कर देती हैं। अभागा प्रिय, प्रेमिका को दूसरे की बाँहों में देख कर चीत्कार कर उठता है—'हाय मेरे सामने ही प्रणय का ग्रन्थि-बन्धन हो गया (वह नव कमल)।[4] 'ग्रंथि' कवि के टूटे हुए स्वप्नों की करुण कथा है।

बालिका प्रेयसी का ग्रन्थि-बन्धन तो अन्यत्र हुआ लेकिन इससे युवक-हृदय में एक ग्रंथि पड़ गयी जो समय-समय पर खटकती रही। 'ग्रंथि' में 'वृद्ध अनुभव की

१. वीणा, पृ० २।
२. ग्रंथि, पृ० १०, सं० २००६ वि०।
३. डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, हरेन्द्र सिनहा, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २२८।
४. सुमित्रानन्दन पन्त : ग्रंथि, पृ० ३४।

सिकोड़' और ''ज्ञान-जृंभा' की जो कटूक्ति व्यंजित है वह रूढ़ियों के प्रति आधुनिक युवक-हृदय के आक्रोश का परिचायक है, साथ ही, टूटे हुए हृदय का रुदन एवं स्वच्छन्द प्रेम की मार्मिकता का द्योतक है।[1] इस प्रकार 'पंत' ने अपने सुकुमार भाव-सुमनों को सूक्ष्म कल्पना के सूत्र में पिरोया है। इन प्रेमांकनों का आधार स्थूल मांसलता नहीं, अपितु भावात्मक अनुभूति है। जिस प्रणय-सम्बन्ध में भाव की प्रधानता हो, उसमें स्थूल अंग-यष्टि को महत्त्व मिलना सम्भव नहीं। इसी कारण इसमें मादकता है, पर रीतिकालीन स्थूलता नहीं। वस्तुतः यह भावात्मक प्रणय गल्प है।

प्रेम का ही एक स्निग्ध रूप है स्नेह, जिसकी सर्वव्यापकता पर 'पंत' 'उच्छ्वास' में लिखते हैं—'कहाँ नहीं है स्नेह ? साँस-सा सबके उर में।'[2] लेकिन इस स्नेह से जब उनकी तृप्ति नहीं होती तो वे 'अनंग' में अनंग के अभिनय का गुण-गान करते हुए अपने निराश हृदय में उसके पुनः प्रसार का आह्वान करते हैं। लेकिन 'पंत' का यह 'अनंग' पौराणिक युग का स्थूल कामदेव नहीं, वरन् उसका सूक्ष्म रूप है। यह 'अनंग' असीम सौन्दर्य-सिन्धु की विपुल बीचियों का 'श्रृंगार' है, जिसे केवल 'मानस के तरंग' अर्थात् मनोजगत् में ही उठने का आग्रह कवि करता है।[3] इस प्रकार 'पंत' के काव्य में वर्णित प्रेम का स्वरूप सूक्ष्म तथा सुसंस्कृत है।

'पंत' के स्वच्छन्द प्रेम का आलंबन 'प्रेयसी' रही, जो आजीवन प्रेयसी ही बनी रही। एक ऐसी प्रेयसी जिससे 'किये भी हुआ कहाँ संयोग।'[4] इस प्रेयसी से उन्हें कभी तृप्ति नहीं मिली, जिससे उनकी प्रेम-भावना तृप्ति की तलाश में कल्पनालोक में विचरण करती रही। साहचर्यजन्य किशोर-वय प्रेम उनके मानस-पटल पर अमिट छाप छोड़ गया। इसी कारण उनके प्रेम में जहाँ कैशोर संकोच है, वहीं शैशव-सरलता भी है। पंत के प्रणय-चित्रण की विशेषता उनकी शैशव-सरलता में है। इसमें न तो मधु की-सी प्रगाढ़ मिठास है, न ज्वार का-सा उफान। इसमें छोटे-से पहाड़ी झरने की-सी तरलता है।.........उसमें युवा-सुलभ प्रगलभता नहीं है, बल्कि उसके स्थान

---

१. ग्रंथि, पृ० ३६।

२. पंत : पल्लव, पृ० ५७, संस्करण १६७७ ई०।

३. 'ऐ असीम सौन्दर्य सिन्धु की
विपुल बीचियों के श्रृंगार।
मेरे मानस की तरंग में
पुनः अनंग ! बनो साकार।' —पल्लव, पृ० ७८।

४. पल्लव, पृ० ६७।

पर कैशोर संकोच है।[१] उनका समस्त प्रेम-व्यापार बच्चों का खेल ही बना रहा। इस शैशव-प्रेम की सरलता पर कवि इतना मुग्ध है कि—'शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु सरल, कमनीय'[२] कह कर अपनी तुष्टि की उस पर मुहर लगा देता है।

सौन्दर्य-बोध :

'पंत' मुख्यतः सौन्दर्य के कवि हैं। उनके सौन्दर्य-बोध में सौन्दर्य का वह केन्द्रीय रूप विकसित हुआ है जो सुन्दरता को उपयोगिता का स्थानापन्न मानता है। वे सौन्दर्य-बोध को प्रायः सौन्दर्य-भावना के रूप में ग्रहण करते हैं। उनका सौन्दर्य-बोध क्रमशः स्थूल सौन्दर्य-प्रधान से भाव-प्रधान तथा भाव-प्रधान से ज्ञान-प्रधान होता गया है। इस प्रकार उनके गतिशील सौन्दर्य-बोध का विकास कैशोर से प्रौढ़ता की ओर हुआ है। प्रारम्भ में उनका सौन्दर्य-प्रेम, सुन्दर वस्तुओं के प्रति लिप्सा के रूप में ही प्रकट होता है, लेकिन कालान्तर में वे सौन्दर्य का उद्घाटन अथवा सर्जन भी करते चलते हैं।

यद्यपि वे सौन्दर्य को आत्मनिष्ठ मानते हैं तथापि मानसिक-सौन्दर्य के साथ ही उन्होंने नैसर्गिक सौन्दर्य को भी अपने काव्य में समान रूप से महत्त्व प्रदान किया है। उन्हीं के शब्दों में—"साधारणतः प्रकृति के सुन्दर रूप ने ही मुझे अधिक लुभाया है—मानव स्वभाव का भी सुन्दर पक्ष ही मैंने ग्रहण किया है।"[३] प्रकृति, नारी, मानव, शब्द-चयन, शिल्पगत-तराश आदि काव्य के विविध क्षेत्रों में कवि की सौन्दर्य-चेतना, सौन्दर्य-सृजन करने में समर्थ हुई है। जहाँ तक उनकी दृष्टि गयी है, उन्होंने जीव और जगत् के समस्त उपकरणों को सौन्दर्य के माध्यम से ही देखा तथा परखा है। जीवन और जगत् में सर्वत्र सौन्दर्य की प्रभुता देख कर कवि सौन्दर्य को समस्त ऐश्वर्यों का केन्द्र मानता है—

'अकेली सुन्दरता कल्याणि।
सकल ऐश्वर्यों की संधान।'[४]

"पंत" के काव्य में मानवीय, प्राकृतिक तथा भावात्मक सौन्दर्य का अनूठा संगम है। 'पंत' का मानवीय सौन्दर्य-बोध प्रेम की आधारशिला पर खड़ा है। उन्होंने नारी-सौन्दर्य को रस-लुब्ध नेत्रों से प्रायः नहीं देखा है। 'ग्रन्थि' में कवि का प्रेम नारी-सौन्दर्य के आन्तरिक उद्घाटन में लीन दिखाई देता है। 'ग्रन्थि' की

१. डॉ० नामवर सिंह : छायावाद, पृ० ६१, द्वि० सं० १९६८ ई०।
२. पंत, पल्लव, पृ० ५४।
३. सुमित्रानन्दन पंत : आधुनिक कवि, पृ० ३, संस्करण १९६४ ई०।
४. वही : पल्लव, पृ० ११२।

नायिका का सौन्दर्य मनोरम है। कवि का सुकुमार हृदय किशोरी के नैसर्गिक सौन्दर्य पर मुग्ध है लेकिन भावोद्रेक के कारण वह बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य का ही प्रक्षेपण करता है। भावात्मक धरातल पर ही हृदय-साम्राज्ञी का रूप-शृङ्गार करता है।[१] कवि की दृष्टि में सौन्दर्य भोग की वस्तु नहीं, भावना की वस्तु है। इसी कारण वह 'पल्लव' में नारी को एक साथ ही 'देवि ! माँ ! सहचरि ! प्राण।'[२] कहकर संबोधित करता है। नारी को स्नेह और सौन्दर्य का पुंज तथा उसके मृदुल हृदय को स्वर्गीय आगार मान कर कवि समस्त नारी-जाति के प्रति अपना हार्दिक स्नेह व सम्मान प्रकट करता है।[३] 'पंत' के काव्य में नारी-सौन्दर्य मर्यादित है। यथा—'नयन नलिन में बँधी मधुप-सी।'[४] वह कोमल है, लज्जाशील है। इसी प्रकार के मनोरम उपमानों से सज्जित नारी-सौन्दर्य के अनेकशः मोहक चित्र कवि के काव्य में उपलब्ध हैं जिसमें नारी के आन्तरिक सौन्दर्य का उद्घाटन मानवीय पृष्ठभूमि पर हुआ है।

'पंत' ने अद्भुत कल्पना शक्ति द्वारा नारी का जो भव्य रूप खड़ा किया है, उसके सामने पुराने कवियों की रूढ़ उपमाओं से अलंकृत नारी तुच्छ है। रीतिकालीन कवियों को भौंहें, कमान तथा आँखें, तीर के समान मालूम होती थीं जब कि 'पंत' को भौंहों में करुणा तथा आँखों में प्रेम छिपा दिखाई देता है।[५] ऐसा सौन्दर्य कभी कामोत्तेजना नहीं पैदा कर सकता, तभी तो 'पंत' कहते हैं—

'तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा स्नान।'[६]

प्रकृति की गोद में पले इस कवि के सुकुमार हृदय ने प्रकृति से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। "बहुरंगी प्राकृतिक शोभा ने पंत को इतना प्रभावित किया कि उनकी प्रकृति, प्रकृति से मिल-सी गयी।"[७] कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में नारी-सौन्दर्य एवं प्रकृति-सौन्दर्य का अनूठा संगम दिखाई देता है। उन्होंने प्रकृति के सुकुमार पक्ष को लेकर उसे नारी-रूप में चित्रित किया तथा अपने

१. ग्रन्थि, पृ० ६।
२. 'पन्त' : पल्लव (नारी रूप), पृ० ११३।
३. वही, पृ० ११२।
४. वही, (स्वप्न), पृ० ६०।
५. वही, पृ० ६८।
६. वही, पृ० ६८।
७. डॉ० अन्नपुरेड्डी, श्रीराम रेड्डी : पंत काव्य में सौन्दर्य-भावना, पृ० १४६, प्र० सं० १९७६ ई०।

कोमल वृत्तियों का उस पर आरोपण किया। 'छाया' को देखते ही 'पंत' विस्मय से बोल उठते हैं—

"कहो, कौन तुम परिहृत वसना,
म्लान मना, भू पतिता-सी,
वातहता विच्छिन्न लता-सी
रति श्रांता ब्रज वनिता-सी ?"[१]

आत्मप्रसार की प्रबल आकांक्षा ने कवि को जो विशेष दृष्टि प्रदान की, उससे वह प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों में मानव-मन के आन्तरिक सौन्दर्य को आँकने में समर्थ हो सका। कौतूहल, कोमलता, हास, विलास, मोद, मधुरिमा, स्नेह, हुलास आदि मानव-मन की स्वाभाविक अन्तर्वृत्तियाँ हैं। 'वसन्त श्री' कविता में ऊषा के सौन्दर्य में मानव-मन की इन अन्तर्वृत्तियों का अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्फुटन हुआ है।[२]

'कल्पना का मूल स्रोत अनुभूति और उसकी परणति है काव्य की रूपात्मक अभिव्यंजना।'[३] 'पंत' ने भाव और भाषा अर्थात् अनुभूति और अभिव्यक्ति के सामंजस्य को ही काव्य का आदर्श रूप माना है। अनुभूति की तीव्रता, भावावेग उत्पन्न करती है और तीव्र भावावेग में ही उदात्त कल्पना का जन्म होता है। 'पंत' के काव्य में अनुभूति की तीव्रता और कल्पना की उड़ान का सौन्दर्य प्रायः साथ-साथ दिखाई देता है। इस सौन्दर्य प्रेमी कवि ने नर-नरेतर जगत् के स्थूल एवं सूक्ष्म सौन्दर्य को कल्पना के सहारे उद्घाटित किया है। पूर्व-स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भ्रमर, पुष्प, चाँद, नक्षत्र, बादल, सरिता आदि को लेकर अनेक कल्पनाएँ की हैं। आधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवियों ने इन रूढ़ प्रतीकों को ग्रहण तो अवश्य किया है, लेकिन नवीन सौन्दर्य-बोध के साथ।

भारतीय काव्य में भ्रमर, प्रेम-व्यापार में छलना एवं एकोन्मुखी अभाव के कारण पुरुष की चंचल तथा रसलोलुप वृत्ति का प्रतीक रहा है। 'पंत' ने इस परम्परा को तोड़ा है। उनके काव्य में भ्रमर प्रबुद्ध गायक तथा प्रेम-पिपासु नायक के रूप में चित्रित है जब कि कली, हृदयहीन, प्रेमकलाविहीन नायिका के रूप में।[४] कवि मधुपकुमारि के मीठे गान पर इतना मुग्ध हो जाता है कि एक साथ कातर

१. पन्त : पल्लव (छाया), पृ० १०१।
२. वही, पृ० ८८।
३. डॉ० त्रिभुवन सिंह : (सम्पादक) साहित्यिक निबन्ध, पृ० ३६५।
४. वीणा, पृ० ३०।

होकर गान सीखने के लिए मनुहारें करने लगता है।[१] इस प्रकार आत्मचेता-कवि 'पंत' ने कुरूप भ्रमर के आन्तरिक सौन्दर्य को तलाशा है और परम्परा से अलग हट कर काव्य में उसे प्रस्तुत कर अपने स्वच्छन्द सौन्दर्य-बोध का परिचय दिया है। इन नवीन सौन्दर्य-दृष्टि का गहरा सम्बन्ध कवि के वैयक्तिक जीवन से भी है, जहाँ अनुरागी कवि को प्रेम-व्यापार में निष्ठुर सौन्दर्य से वांछित प्रतिदान नहीं मिला।

'पंत' के सौन्देर्य-बोध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी कल्पना-प्रवण अन्तर्दृष्टि बाह्य सौन्दर्य के अनुरेखन की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य के प्रक्षेपण में ही तन्मय रही, जिससे उनका सौन्दर्य-बोध प्रायः भाव-प्रधान है। उन्होंने रेखाओं से अधिक स्पन्दन को महत्त्व दिया है। सौन्दर्य के सत्य एवं शिव रूप को पहचाना है तथा उसे अपने काव्य में चेतनात्मक भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में—"सूक्ष्मतम सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से 'पंत' का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। भावना की परिष्कृति और कल्पना की नफ़ासत जैसी पंत की रचनाओं में मिलती है, वैसी अन्य कवि की कृतियों में उपलब्ध नहीं होती। विश्व के सौन्दर्य-चेता कवियों में पंत का अन्यतम स्थान है, इसमें सन्देह नहीं।"[२]

विरहानुभूति :

आचार्यों ने शृङ्गार को रसराज की संज्ञा दी, उसमें भी संयोग की अपेक्षा वियोग की ही प्रधानता स्वीकार किया। 'पंत' जी ने उससे भी आगे बढ़कर यह उद्घोष किया कि काव्य की सर्जना कोई वियोगी ही कर सकता है।[३] उनकी इस मान्यता के मूल में स्वानुभूति है। अपने स्वच्छन्द प्रेम को स्थायी बनाने का जो स्वप्न कवि ने सँजोया था वह पुरानी रूढ़ियों के एक चोट से चूर-चूर हो गया। ग्रंथि-बन्धन तो अन्यत्र हुआ लेकिन युवक-हृदय में एक ग्रंथि पड़ गयी। कवि उस स्वान्तः सुखाय प्रेमिका की तुलना मधुकर से करता है, जो उसके सद्यः प्रफुल्ल हृदय-कुसुम का मधुपान कर अन्य पुरुष की ओर चली जाती है।[४] विरह-जनित व्यथा एवं कटुता से कवि का समस्त अस्तित्व परिव्याप्त हो जाता है। प्रेम को अस्वीकृति से उत्पन्न यह वैयक्तिक पीड़ा समस्त संसार के दुःख एवं पीड़ा से उत्पन्न खिन्नता में परिवर्तित हो जाती है।[५] निराश कवि अपने को अकिंचन और असहाय अनुभव करने

---

१. 'सिखा दो ना, हे मधुपकुमारि।
मुझे भी अपने मीठे गान॥'—पल्लव, पृ० ७६।

२. डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० ११८, प्र० सं० १९८० ई०।

३. 'वियोगी होगा पहिला कवि'—पल्लव, पृ० ६२।

४. ग्रंथि, पृ० ३४।

५. वही, पृ० ३५।

लगता है लेकिन खीझ, निराशा एवं विरह की ज्वाला में दग्ध होते हुए भी वह प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ को अपने प्रिय से मिलने का आह्वान करता है।

विरह-विदीर्ण कवि को विश्व में चतुर्दिक् वेदना का ही प्रसार दिखाई देता है, जिससे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यह संसार वेदनाजन्य आँसुओं का ही क्रिया-व्यापार है। वह खूब रोना चाहता है ताकि उसकी पीड़ा घट जाय।[1] जब इससे भी उसकी पीड़ा नहीं घटती तो अन्त में वह वैयक्तिक वेदना को विश्व-वेदना में परिव्याप्त कर समरसता स्थापित कर लेता है।[2]

कवि ने 'उच्छ्वास', 'आँसू' और 'स्मृति' शीर्षक कविताओं में स्मृतिजन्य विरह-वेदना का करुण उद्गार अभिव्यंजित किया है। कवि वेदना के सर्वव्यापी रूप को देखकर समरसता तो स्थापित कर लेता है लेकिन प्रणय-ग्रंथि उसे समय-समय पर खटकती रहती है। साहचर्य काल के प्रणय-स्मृतियों के मानस-पटल पर उभरते ही कवि अतीत में खो जाता है, उच्छ्वास और अश्रुपात को विवश हो स्मृतियों के सागर में अंतरंग डूब जाता है।[3] लेकिन वेदना की पीड़ा सहकर भी वह अपनी प्रिया पर न तो कीचड़ उछालता है और न ही प्रेम की पावनता पर सन्देह करता है। उसका प्रणय, राधा-कृष्ण के प्रणय के समान उदात्त है।[4]

इस प्रकार 'पंत' ने अपने काव्य में विरहानुभूति की अत्यन्त सरस एवं मार्मिक अभिव्यंजना की है जिसमें उनके हृदय की उज्ज्वलता और दिव्यता का उत्कर्ष प्रकट हुआ है। विरह उनके लिए मनः शुद्धि का एक उत्तम साधन है।

प्रकृति-चित्रण :

'भारतीय दर्शन में प्रकृति को विश्व-सुन्दरी माना गया है।'[5] 'पंत' विश्व-सुन्दरी प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य को उन्होंने आत्मीयता भरी

---

१. ग्रंथि, पृ० ३६।

२. वेदना ही है अखिल ब्रह्मांड यह,
× × × ×
वेदना कितना विशद यह रूप। —ग्रंथि, पृ० ४१।

३. तुम्हारी सुधि की सुरभित साँस,
डुबा देता है मुझे सदेह
सूर सागर वह स्नेह। —पल्लव (स्मृति), पृ० १२८।

४. तुम्हारे स्वर का वेणु विलास,
हृदय का वृंदा धाम,
देवि, मथुरा का वह आमोद। —वही, पृ० १२८।

५. प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ३८०, संस्करण १९८० ई०।

सूक्ष्म दृष्टि से देखा, भावना-कल्पना में उसका चित्र-विधान किया तथा वर्णों में उसे चेतन-स्वरूप प्रदान किया। "अल्मोड़े के चित्रित घाटी में पला हुआ यह भावुक कवि प्रकृति के रंगीन स्वरूप में घुल-मिल-सा गया है—उसका सूक्ष्म-से-सूक्ष्म क्रिया-कम्पन इसके हृदय में पुलक और प्राणों में स्पन्दन भर देता है।"[१]

प्रकृति के पल-पल परिवर्तित वेश पर कवि अन्तरंग मुग्ध है। उसके प्राकृतिक अनुराग की गहनता का अनुभव इसी से लगाया जा सकता है कि वह प्रकृति विमुखता के मूल्य पर पार्थिव नारी-प्रेम की वर्जना करता है। उसने प्रकृति के भीतर जिस नारी-सौन्दर्य को देखा, उसने पार्थिव नारी के सम्मोहन को भी जीत लिया है।[२]

'पंत' ने आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण प्रायः काव्यशास्त्र की 'संश्लिष्ट-चित्रण प्रणाली' पर किया है जिसमें प्रकृति अलौकिक रमणीयता के साथ अपने पूर्ण एवं समग्र रूप में अंकित की जाती है। प्राचीन कवियों ने प्रकृति को केवल खण्डों में देखा था। इन खण्डों से निर्मित प्रकृति का जो अखण्ड रूप है उसे देखने, संश्लिष्ट रूप में चित्रित करने तथा ऐन्द्रिय-बोध के आधार पर उसका विश्लेषण करने की अद्भुत क्षमता 'पंत' में दिखाई देती है। 'पावस ऋतु' में पपीहों, झरनों, झींगुरों, बादलों, दादुरों का मिला-जुला संगीतमय स्वर सुनाई देता है, कवि का ध्वनि-विवेक प्रखर है। वह पर्वत-प्रदेश में वर्षा-स्वर की प्रतिध्वनि का अद्वितीय चित्र प्रस्तुत करता है।[३] संश्लिष्ट चित्र के अन्तर्गत हिन्दी कविता में पहली बार 'पंत' ने कुछ सर्वथा नवीन पर्वतीय दृश्यों को रेखांकित किया है। देखिये शैल और जलद के आँख-मिचौनी का खेल—

'बादलों के छाया मय मेल
घूमते हैं आँखों में फैल।
अवनि और अम्बर के वे खेल
शैल में जलद, जलद में शैल।'[४]

'पंत' के काव्य में प्रकृति संवेदनशील है। वह कवि के साथ सहचरी, सखी, प्रेयसी, माँ के रूप में घुल-मिल-सी गयी है—

'हाँ सखि, आओ बाँह खोल कर
लगकर गले जुड़ा लें प्राण।'[५]

---

१. डॉ० नगेन्द्र : सुमित्रानन्दन पंत, पृ० १८, संस्करण २०१२ वि०।
२. वही, पृ० ८४।
३. वही, पृ० ६६।
४. पंत : पल्लव (आँसू), पृ० ६५।
५. वही : (छाया), पृ० १०६।

इसी कारण वह कवि के हास-उल्लास के साथ पुलकित तथा विषाद-अवसाद के साथ अश्रुपूरित दिखाई देता है। कवि का हृदय जब कोयल की मादक तान सुनकर झूम उठता है तो उसे पल्लवों में भी पुलकन का आभास होता है।[१] विश्व की नश्वरता और क्षणभंगुरता को देख कर जब कवि का हृदय विषाद से भर उठता है तो उसे समीर निःश्वास भरता, आकाश रुदन करता, समुद्र सिसकियाँ लेता तथा तारा मण्डल सिहरता दृष्टिगोचर होता है।[२]

प्रकृति 'पंत' के काव्य में सचेतन एवं सप्राण है। प्रकृति के विविध उपकरण उनके काव्य में मानवीय भावनाओं के उद्‌घाटन में सचेष्ट हैं। 'छाया', 'बादल', 'मधुकरी', 'निर्झरी' आदि कविताएँ इसी भावकत्व से ओतप्रोत हैं। 'बादल' शीर्षक कविता में बादल एक चेतन प्राणी की भाँति अपने बारे में स्वयं कहता है। संशय के समान धीरे-धीरे उठने, अपयश के समान बढ़ने, मोह के समान उमड़ने और लालसा के समान फैलने में मानवीय भावनाओं का आरोपण तथा उद्-घाटन दोनों साथ-साथ हुआ है।[३] 'छाया' शीर्षक कविता में कवि छाया का मानवी-करण करता हुआ उसके साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेता है। छाया का एकाकी जीवन देख कर कवि की करुणा और उसका वैयक्तिक अवसाद काव्य में एक साथ फूट पड़ता है।[४]

प्रकृति 'पंत' के काव्य में कहीं-कहीं रहस्यमय है। प्रकृति के विविध क्रिया-कलापों को वह कुतूहलपूर्ण दृष्टि से देखता है और एक जिज्ञासु की भाँति रहस्यान्वेषण के लिए प्रश्न करता है। 'मौन निमंत्रण', स्वप्न', 'छाया' आदि कविताओं में वह इसी रहस्य को जानने के लिए आतुर है। कवि प्रकृति को एक अगोचर एवं अव्यक्त सत्ता का प्रतिरूप मानता है जो कभी नक्षत्रों में से मौन निमंत्रण दिया करती है, कभी लहरों में हाथ उठाकर बुलाया करती है तो कभी स्वप्नों में आकर इस छाया-जगत् में घुमाया करती है। कवि जब इस अज्ञात सम्मोहन का रहस्योद्‌घाटन करने में असमर्थ हो जाता है तो नारी जैसी कातर वाणी में कह उठता है—

'अहे सुख-दुख के सहचर मौन
नहीं कह सकती तुम हो कौन ?'[५]

'पंत' के काव्य में प्रकृति कतिपय अन्य रूपों में भी गौण रूप से आयी है। जैसे—उद्दीपन, उपदेशक तथा सौन्दर्याङ्कन के सहायक रूप में। कवि की 'आँसू'

---

१. पल्लव (पल्लव), पृ० ५१।
२. वही (परिवर्तन), पृ० १४२, १४३।
३. वही (बादल), पृ० १२५।
४. वही : (छाया), पृ० १०१।
५. पंत : पल्लव (मौन निमंत्रण), पृ० ८७।

शीर्षक कविता में उद्दीपन-विभाव का अद्वितीय प्रस्फुटन हुआ है। मधुकर को प्रसूनों का रस-पान करते जब कवि देखता है तो नवोढ़ा बाल-लहर कूल पर आकर शीघ्र आगे सरक जाती है। कवि का प्राण सर्वत्र मिलन का व्यापार देखकर व्याकुल हो उठता है और उसका हृदय अपूर्व मादकता से सिहर उठता है।[१] 'परिवर्तन' कविता में कवि प्रकृति के व्याज से जीवन और जगत् की अस्थिरता, अचिरता, क्षणभंगुरता की ओर संकेत करता है।[२] 'छाया' में कवि छाया के माध्यम से परदुःखकातरता एवं सेवा भाव का उपदेश देता है।[३] कवि के काव्य में प्रकृति के उपकरण कहीं-कहीं आन्तरिक सौन्दर्य के उद्घाटन में भी सहायक हुए हैं। वह उषा तथा चाँदनी के व्याज से हृदय के मधुर आलोक तथा स्वभाव की शीतलता एवं निश्छलता का उद्घाटन बड़े ही सरस ढंग से करता है।[४]

'पंत' का 'पल्लव' प्रकृति की चित्रशाला है। इसमें कवि ने सौन्दर्य-प्रेम और प्रकृति-प्रेम को मिला दिया है।[५] संक्षेप में 'पंत' के प्रकृति-चित्रण की अग्रलिखित विशेषताएँ हैं—(१) साधारणतः 'पंत' प्रकृति के सुन्दर रूप पर ही मुग्ध हुए हैं—परिवर्तन इसका अपवाद है, (२) प्रकृति क्रिया-व्यापारों में भावनाओं का सौन्दर्य मिला कर या भावनाओं पर ही प्रकृति का आवरण चढ़ा कर प्रकृति-चित्रण करने में तन्मय हुए हैं, (३) प्रकृति को अपने से अलग सजीव सत्ता और नारी-रूप में देखा है और पूर्ण तादात्म्य स्थापित करके कभी-कभी अपने को भी नारी-रूप में प्रस्तुत किया है, (४) प्राकृतिक अनुराग सौन्दर्य-प्रधान से भाव-प्रधान और भाव-प्रधान से ज्ञान- प्रधान होता गया है, (५) प्रकृति को ब्रह्म की व्यापक सत्ता मान कर उसके व्याज से अपने दार्शनिक विचारों का उद्घाटन किया है।

रहस्यानुभूति :

कुतूहल, जिज्ञासा एवं रहस्य-दर्शन मानव-मन की श्रेष्ठ वृत्तियाँ हैं। 'पंत' के काव्य में इन वृत्तियों का उदात्त स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति के विराट् रंगमंच पर उभरते दिव्य दृश्यों की आँख-मिचौनी सुकुमार कवि के भावुक हृदय को मंत्रमुग्ध कर देती है। प्रकृति का सूक्ष्म क्रिया-व्यापार उसके हृदय में पुलक, प्राणों में स्पन्दन और मन में कुतूहल का भाव जगाने लगता है। कवि का जिज्ञासु मन रहस्य-दर्शन

---

१. पल्लव : (आँसू), पृ० ६४।
२. वही : (परिवर्तन), पृ० १४०-५५।
३. वही : (छाया), पृ० १४५।
४. वहीं : (आँसू), पृ० ६६।
५. डॉ० अजब सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, पृ० १३१, संस्करण १९७५ ई०।

को मचल उठता है। प्रभात की प्रथम रश्मि के स्पर्श से विहंगिनि के कण्ठ से जब गीत फूट निकलता है तो कवि सहसा विस्मित होकर उससे पूछने लगता है—

> "प्रथम रश्मि का आना रङ्गिणि !
> तूने कैसे पहचाना ?"[१]

इसी प्रकार कभी वह निर्झर[२] से, कभी छाया[३] से अपने कुतूहल का समाधान पाने का उपक्रम करता है। कुतूहल की यह अनुभूति जब और गहरी हो जाती है तो कवि प्रकृति में रहस्यमय आकर्षण का अनुभव करने लगता है। प्रकृति से एक सम्मोहन, एक अकथनीय आनन्द पाकर वह आश्चर्यचकित हो पूछ उठता है—

> 'विश्व के पलकों पर सुकुमार
> विचरते हैं जब विश्व अजान
> न जाने, नक्षत्रों से कौन
> निमन्त्रण देता मुझको मौन।'[४]

प्रकृति रहस्य की भाँति ही 'मानवीय रहस्य' ने भी कवि को अभिप्रेरित तथा आश्चर्यचकित किया है। 'वीणा' में कवि शिशु के व्याज से विश्व-नियन्ता के विराट् स्वरूप तथा अद्भुत लीला की रहस्य-रंजित झाँकी प्रस्तुत करता है। सोते हुए स्वप्न-मग्न शिशु के कम्पित अधरों पर खिलती मधुर मुस्कान को देखकर कवि आश्चर्यचकित हो उठता है और शिशु उसे रहस्यमय पहेली-सा प्रतीत होने लगता है। अतः अपने विस्मय का समाधान पाने के लिए वह प्रश्नों की झड़ी लगा देता है।[५]

'वीणा' में कवि अपने प्राण-प्रिय अव्यक्त के लीला-विलास पर मुग्ध होकर उसके प्रति आत्मीयता का अनुभव करने लगता है।[६] वह उसके हृदय में अधिष्ठित चिरसुन्दर अनिर्वचनीय आनन्द की सृष्टि कर रहा है लेकिन कवि की वाणी इसका रहस्योद्घाटन नहीं करना चाहती।[७] कवि इस अनिर्वचनीय आनन्द से इतना अभिभूत है कि उसकी आत्मा परमात्मा से मिलने को व्याकुल हो उठती है—

---

१. 'पंत' : वीणा, पृ० ७७।
२. पल्लव (निर्झर गान), पृ० ६६।
३. वही : (छाया), पृ० १०३।
४. वही : (मौन निमन्त्रण), पृ० ८२।
५. वीणा, पृ० ४०।
६. वही : पृ० २०।
७. वही, पृ० ३४।

'हाँ सखि ! आओ, बाँह खोल हम
लगकर गले जुड़ा लें प्राण।'[1]

यहाँ छाया के व्याज से आध्यात्मिक प्रियतम की ओर स्पष्ट संकेत है।

रहस्यात्मक चित्र 'पंत' जी की रचनाओं में प्रभूत मात्रा में विद्यमान है। इन चित्रों में आध्यात्मिक तत्त्व-चिन्तन के स्थान पर आध्यात्मिक संस्पर्श मात्र है, अव्यक्त सत्ता के प्रति कवि जिज्ञासु है, उसका उपासक नहीं।

शिल्प

अप्रस्तुत-योजना :

कवि अपनी आन्तरिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में रमणीयता तथा स्पष्टता लाने के लिए कल्पना के आधार पर प्रस्तुत में अप्रस्तुत का आरोप करता है। काव्य में प्रस्तुत की प्रधानता होते हुए भी अप्रस्तुत को गौण नहीं कहा जा सकता क्योंकि अप्रस्तुत ही प्रस्तुत को व्यक्तित्व प्रदान करता है, अस्पष्ट को स्पष्ट करता है।

'पंत' के काव्य में प्रचुर मात्रा में परम्परागत अप्रस्तुत नवीन कलेवर धारण कर उपस्थित हुए हैं। रूढ़ उपमानों में चाँदनी, कमल, स्वर्ण, कली, लहर, कुसुम, लता, प्रात, संध्या, उषा, किरण, पिक, चातक, मयूर आदि सुन्दर और कोमल उपमान उन्होंने ग्रहण किया है। अक्षय कल्पना शक्ति द्वारा कवि ने रूढ़ अप्रस्तुतों का आधार लेकर भी चमत्कार पैदा कर दिया है। परम्परागत उपमानों द्वारा सूक्ष्म अनुभूतियों का प्रस्फुटन 'पंत' की अनूठी विशेषता है। चन्द्रमा रूढ़ियों से मुख का अप्रस्तुत रहा लेकिन 'पंत' के काव्य में वह नितान्त मौलिक रूप में प्रयुक्त है।[2] इसी प्रकार परम्परागत उपमान खंजन और भ्रमर को लेकर नवीन भंगिमा की सृष्टि की गयी है।[3] प्राचीन काव्य का मूक खंजन 'पंत' के काव्य में पंख फड़का कर, भ्रमर को चोट मार विकल बनाने लगता है। युगों से चंचल तथा रस-लोलुप वृत्ति वाला भ्रमर शील और सौम्य आचरण करने लगता है।

सर्वथा नवीन अप्रस्तुतों से 'पल्लव' की कविताएँ जीवन्त हो उठी हैं। उनकी 'बादल' शीर्षक कविता में नवीन अप्रस्तुतों का जमघट द्रष्टव्य है। बादल कवि को कभी जमुना-जल में तैरते हुए 'विशाल जम्बाल-जल' कभी 'आकाश के मधुगृह' में लटके हुए 'स्वर्ण-भृंग', कभी 'अनिल-स्रोत' में बहते हुए 'तमाल पात' तो कभी

---

१. 'पंत' : पल्लव (छाया), पृ० १०६।
२. ग्रंथि, पृ० ६।
३. वही, पृ० १८।

गगन की शाखाओं पर फैलते हुए 'मकड़ी के जाल' की भाँति प्रतीत होते हैं।[१] बादल के उठान में संशय, बढ़ाव में अपयश, उमड़ाव में मोह और फैलाव में लालसा जैसे अमूर्त अप्रस्तुतों के विधान द्वारा बादल के क्रिया-व्यापारों का प्रस्तुतीकरण कवि के अपूर्व कल्पना-शक्ति का द्योतक है।[२]

इसी प्रकार 'पल्लव' की 'छाया' शीर्षक कविता में भी कवि ने सर्वथा नवीन अप्रस्तुतों का विधान किया है। कवि को 'छाया' कभी 'रति श्रान्त ब्रज वनिता-सी' प्रतीत होती है, कभी 'दमयन्ती-सी' प्रतीत होती है तो कभी कवियों की गूढ़ कल्पना-सी।[३] यही नहीं, लोभ और तृप्ति जैसे अमूर्त अप्रस्तुतों का विधान कर कवि ने छाया की लम्बाई और क्षीणता को भी नापा है।[४]

'पंत' का अप्रस्तुत विधान आकार-साम्य पर आधारित न होकर प्रभाव-साम्य पर आधारित है। 'फैल लालसा से निशि-भोर' में कवि की दृष्टि बादल के फैलने वाले धर्म की ओर तथा 'कभी लोभ से लम्बी होकर' में छाया के लम्बे होने वाले धर्म की ओर गयी है।

लाक्षणिक-भंगिमा :

काव्यशास्त्र के अनुसार लक्षणा में मुख्यार्थ का बोध न होकर उससे संबंधित सांकेतिक अर्थ का बोध होता है। लाक्षणिक भंगिमा ने आधुनिक काव्य को सूक्ष्माति-सूक्ष्म अभिव्यक्ति-सक्षम तथा चित्रमय बना दिया है। 'पंत' ने अपने काव्य में लाक्षणिक भंगिमा लाने के लिए प्रमुख रूप से मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय तथा प्रतीक-विधान का सहारा लिया है।

(क) हिन्दी काव्यशास्त्र का धर्म-विपर्यय अंग्रेजी अलंकरणशास्त्र में विशेषण-विपर्यय नाम से प्रचलित है। इसमें दो अवयवों के संसर्ग से एक का गुण दूसरे में आरोपित हो जाता है। 'पंत' ने लाक्षणिक-भंगिमा लाने के लिए अंग्रेजी के विशेषण-विपर्यय अलंकरण का भी कहीं-कहीं सहारा लिया है, यथा—

'निद्रा से उस अलसित वन में,
वह क्या भावी की छाया ?'[५]

'वन' अलसित नहीं हो सकता लेकिन यहाँ पर उसने निद्रा का यह गुण ग्रहण कर लिया है। दुहरे विपर्यय का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

१, 'पंत' : पल्लव (बादल), पृ० १२४-२५।
२. 'फैल लालसा से निशि भोर'—पल्लव (बादल), पृ० १२५।
३. वही, पृ० १०१।
४. वही, पृ० १०५।
५. वही, (स्वप्न), पृ० ८६।

'मूक व्यथा का मुखर भुलाव।'[1]

यहाँ व्यथा नहीं है वरन् व्यथित व्यक्ति की मूक है, दूसरी ओर 'भुलाव' मुखर नहीं, भूलने वाला है। इस प्रकार समस्त पंक्ति में दुहरा विपर्यय है।

(ख) मानवीकरण अलंकरण का अर्थ है प्रकृति और विश्व की जड़ तथा अरूप वस्तुओं का चेतन और सरूप बनकर मानवीय भाव-भावना और क्रिया-व्यापार की अनुभूति कराना। इसमें अमूर्त को मूर्त, जड़ को चेतन और चेतन को मानव रूप में उपस्थित किया जाता है। 'पंत' ने अपने काव्य में लाक्षणिक भंगिमा लाने के लिए इस अलंकरण का बृहद् प्रयोग किया है। 'कभी लोभ से लम्बी होकर, कभी तृप्ति से हो फिर पीन।'[2] में अमूर्त भावों का बादल के व्याज से मूर्तिकरण, 'मेखलाकार पर्वत अपार अपने सहस्र दृग सुमन फाड़।'[3] में जड़ का चेतनीकरण द्रष्टव्य है। कवि की 'छाया' शीर्षक कविता में चेतन के मानवीकरण का एक उदाहरण देखिए—

'गाओ, गाओ विहग बालिके
तरुवर से मृदु मंगल गान,
मैं छाया में बैठ तुम्हारे
कोमल स्वर में कर लूँ स्नान।'[4]

(ग) **प्रतीक-विधान :** 'पंत' जी ने भावानुभूति के सफल प्रक्षेपण के लिए प्रचलित प्रतीकों का नवीन अर्थ-बोध के साथ संस्कार किया तथा बड़ी संख्या में सर्वथा नवीन प्रतीकों की सर्जना की। 'हाय मेरे सामने ही प्रणय का ग्रंथि-बन्धन हो गया, (वह नव कमल)'[5] में आया हुआ (नव कमल) परम्परागत है लेकिन कवि ने इसका प्रयोग परम्परा से अलग प्रेयसी के लिए किया है।

पल्लव में भावात्मक प्रतीकों की अपूर्व छटा है जो प्रायः प्रकृति के विशाल प्रांगण से गृहीत हैं। एक ही छन्द में अनेक प्रतीक (लाक्षणिक प्रयोग) समन्वित हो गये हैं।[6] कवि ने स्वभाव की स्निग्धता के लिए चाँदनी, उच्चता के लिए आकाश,

---

१. 'पंत' : पल्लव (निर्झरी), पृ० ११६।
२. वही : पल्लव (छाया), पृ० १०५।
३. वही : (उच्छ्वास, पृ० ५५।
४. वही : (छाया), पृ० १०६।
५. वही : (ग्रंथि), पृ० ३४।
६. 'बना मधुर मेरा जीवन!
नव-नव सुमनों से चुन-चुनकर
धूलि, सुरभि, मधुरस, हिमकण,
मेरे उर की मधु कलिका में,
भर दे, कर दे विकसित मन।'—पल्लव, पृ० १३८।

नर्मल हँसी के लिए शिशुओं का संसार, भावोद्गार के लिए कली का मृदुल विकास, विचारों की निश्छलता के लिए बच्चों की साँस जैसे अनेक सर्वथा नवीन भावात्मक प्रतीकों की सृष्टि की है, जो उसकी प्रतिक-विधायिनी प्रतिभा का द्योतक है।

'पंत' के काव्य में प्रतीकात्मक दुरूहता के भी दर्शन होते हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि वे प्रतीक नितान्त वैयक्तिक हैं साथ ही, विभिन्न स्थानों पर अर्थ-भिन्नता लिये हुए हैं। 'पंत' की 'विश्वव्याप्ति'[१] कविता में फूल केवल पार्थिव फूल नहीं है, वह अबोध, सुन्दर तथा कोमल शिशु का प्रतीक है।

'वीणा' और 'पल्लव' में अंग्रेजी काव्य से गृहीत लाक्षणिक प्रयोग भी कहीं-कहीं मिलते हैं, जैसे—'सुवर्ण का काल' जो सुख-समृद्धि का प्रतीक है अंग्रेजी के 'गोल्डेन एज़' से निर्मित है। इसी प्रकार 'स्वर्ण स्वप्न' अंग्रेजी के 'गोल्डेन ड्रीम' से गृहीत है।

बिम्ब-विधान :

बिम्ब-विधान में कवि अपने भावों को कल्पना-शक्ति तथा शब्द-शक्ति के द्वारा प्रतिबिम्बित करता है। 'पंत' ने 'पल्लव' की भूमिका में जो चित्रराग की चर्चा किया है वह वस्तुतः बिम्ब-विधान ही है। 'भाव और भाषा का सामंजस्य, उनका स्वैक्य ही चित्रराग है, जैसे भाव ही भाषा में घनीभूत हो गये हों।'[२] उन्होंने अपनी कविताओं में चित्रमयी भाषा का प्रयोग किया है जिसके शब्द स्वयं बोलते हैं, नाद-सौन्दर्य उत्पन्न करते हैं। 'पंत' जी की संवेदन शक्ति अत्यन्त प्रबुद्ध थी। उन्होंने कल्पनाजन्य अनेकशः सूक्ष्म चित्र उतारे हैं। 'पंत' जी के अधिकांश बिम्ब गत्यात्मक एवं क्रिया-प्रधान हैं। 'वीणा', 'ग्रंथि' तथा 'पल्लव' में स्थूल,[३] सूक्ष्म,[४] संश्लिष्ट,[५] स्मृति,[६] इन्द्रियबोध-जन्य;[७] शब्द-शक्ति,[८] नाद,[९] गति,[१०] विविध बिम्बों की छटा दर्शनीय है।

१. 'पंत : पल्लव (विश्वव्याप्ति), पृ० १३६-३७, संस्करण १९७० ई०।
२. वही : पल्लव (प्रवेश), पृ० ३०।
३. पल्लव (बादल), पृ० १३४।
४. वही : (आँसू), पृ० ६९।
५. वही, (परिवर्तन), पृ० १४६।
६. ग्रंथि, पृ० १०।
७. वही, (बादल), पृ० १२५।
८. वही, (छाया), पृ० १०२।
९. वही, (उच्छ्वास), पृ० ५३।
१०. वही : पृ० ५६।

छन्द :

कविता और छंद के अन्तरंग सम्बन्ध की चर्चा करते हुए 'पंत' जी 'पल्लव' की भूमिका में लिखते हैं—"कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कंपन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है।"[१] कुछ छंदों के लय में अन्तर्निहित भावों पर उनका अभिमत है कि पियूषवर्षण, रूपमाला, सखी और प्लवंग छंद में करुणा है, रोला में बरसाती नाले का कलनाद, रूपमाला में थकान की मंथरता, राधिका में क्रीड़ा-प्रियता, अरिल्ल में निर्झरिणी की स्वच्छन्दता और चौपाई में बाल-चापल्य है।[२] अपनी इसी धारणा के आधार पर 'पंत' जी ने विषय और भाव के अनुकूल कविता-प्रणयन में छन्दों का चयन किया। 'ग्रन्थि' में कवि ने प्राचीन राधिका छन्द को काट-छाँट कर सजीव बना दिया है—'इंदु पर, उस इंदु मुख पर साथ ही।'[३] में लय की अद्वितीय थिरकन है। 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में रोला की मनोरम झड़ी है। 'प्रथम रश्मि', 'छाया', 'बादल', अनंग,' 'स्वप्न' आदि में लावनी छन्द की लयमयता, नवीनता दर्शनीय है।

बँगला तथा अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित होने के कारण कवि ने प्रायः अतुकान्त छन्दों का प्रयोग किया है। वे सममात्रिक छन्दों के पक्षपाती नहीं थे, वरन् आवश्यकतानुसार छन्दों में जोड़-तोड़ करना आवश्यक समझते थे। उनका ध्यान लय और गति पर अधिक था। 'उच्छ्वास,' 'आँसू' कविताएँ इसका ज्वलंत उदाहरण हैं। इन कविताओं की मात्राओं में उन्होंने स्वच्छन्दतापूर्वक जोड़-तोड़ किया है। 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में भी नियमबद्धता के स्थान पर नाद-सौन्दर्य एवं चित्रमयता दिखाई देती है।

छंदों में प्रवाह लाने के लिए उन्होंने यत्र-तत्र ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व रूप में प्रयोग किया जैसे ऊषा के स्थान पर उषा। छन्द का स्वरूप पूरा होने पर भी उसका अपना नियम है। इस प्रकार चार पंक्तियों में छन्द पूरा हो, इस आग्रह को भी 'पंत' ने स्वीकार नहीं किया और तीन पंक्तियों के भी छन्द रखा। साथ ही पाँच, सात, नौ तथा अन्य बहुसंख्यक पंक्तियों के भी। इस प्रकार मात्रा और पंक्ति में संयत रह कर भी छन्द किसी निश्चित संख्या के बन्धन में बँधे नहीं हैं।[४] सत्य तो यह है कि 'पंत' ने छन्द-विधान के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। छन्दों में जोड़-

---

१. पंत : पल्लव (प्रवेश), पृ० ३३।

२. वही : पृ० ४२, ४३।

३. ग्रंथि : पृ० ६।

४. भगीरथ मिश्र : कला, साहित्य और समीक्षा, पृ० ३३४, संस्करण १९६२ ई०।

तोड़ करने का उनका मुख्य उद्देश्य कला में स्वाभाविकता लाना था। इसी से उन्होंने वाणी को छन्दों के कठोर बन्धन से मुक्त किया।

भाषा :

'पंत' जी ने जिस समय काव्य-क्षेत्र में प्रवेश किया उस समय ब्रजभाषा अंतिम साँसें गिन रही थी और खड़ीबोली काव्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। ब्रजभाषा तथा उसके साहित्य पर कटाक्ष करते हुए पंत जी लिखते हैं—'ओह इस पुरानी गुदड़ी में असंख्य छिद्र अपार संकीर्णताएँ हैं।'[१] पुनः खड़ीबोली के प्रति उनका श्रद्धापरक कथन है—'खड़ीबोली आगे की सुवर्णाशा, उसकी बाल-कला में भावी की लोकोज्ज्वल पूर्णिमा छिपी है। वह हमारे भविष्याकाश की स्वर्गङ्गा है।'[२] ये उक्तियाँ ब्रजभाषा के प्रति उनके आक्रोश और खड़ीबोली के प्रति अटूट प्रेम की परिचायक हैं।

भाषा के सम्बन्ध में 'पंत' जी का अभिमत है—"भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व के हृत्तंत्री की झंकार है, जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाती है।"[३] 'पंत' जी ने अपने भाषा का स्वरूप इसी मानदण्ड पर निर्धारित किया। उनकी भाषा संस्कृत के तत्सम तथा कोमलकांत पदावली युक्त भाषा है। इसमें 'निराला' की भाँति सामासिक पदों की क्लिष्टता नहीं है। समास पद है पर मात्रा में बहुत कम है। आभ्यन्तरिक अनुभूतियों का गहन स्पर्श होने के कारण उनकी भाषा स्निग्ध, मसृण, कोमल एवं मोहक है। इनकी भाषा की कोमलता, प्रांजलता एवं शब्द परिष्कार का एक नमूना प्रस्तुत है जिसमें दो-दो, तीन-तीन वर्णों के छोटे-छोटे शब्दों द्वारा अद्वितीय सौन्दर्य की सृष्टि की गयी है—

'खुले पलक, फैली सुवर्ण-छवि
खिली सुरभि, डोले मधु-बाल
स्पन्दन-कम्पन और नव-जीवन
सीखा जग ने अपनाना।'[४]

'पंत' जी ने संस्कृत के छन्दों को स्वच्छन्द रूप में ग्रहण किया है। यथा—तरुण, उषा, केश-राशि, निरुपमिते, दीप, शलभ स्फीत आदि। कहीं-कहीं पर ढिग, पियालो, करतार, रतन जैसे लोकभाषा के शब्द भी उनकी कविताओं में दिखाई देते हैं। समुचित शब्द-चयन पर 'पंत' जी का सर्वोपरि ध्यान है।

१. 'पंत' : पल्लव (प्रवेश), पृ० २०।
२. वही : पृ० २५।
३. वही, पृ० २६।
४. वही : वीणा, पृ० ८८।

अभिव्यक्तिशील, अनेकार्थक संस्कृत के तत्सम शब्दों को प्राथमिकता देते हुए भी वह अपने को इस चौखटे तक ही सीमित नहीं रखते ।

'पंत' जी शब्द-निर्माण कला में बड़े पटु थे । भारतीय काव्य-शिल्प का संस्कार तो उनमें था ही, 'शेली' तथा 'कीट्स' के रोमाण्टिक काव्य और रवीन्द्रनाथ के शब्द-विन्यास से भी वे प्रभावित थे । फलतः नयी-नयी भाव-भंगिमा वाले शब्दों को उन्होंने गढ़ा और काव्य में प्रयोग किया । उदाहरणार्थ—अलस से अलसित, अवसान से अवसित, इन्द्रधनुष से इन्द्रधनुषी, फेन से फेनिल, स्वप्न से स्वप्निल, स्वर्ण से स्वर्णिम आदि स्वर संधि के आधार पर तत्सम शब्दों को विशाल आकार प्रदान कर उन्होंने शब्दों में नवीन अर्थ-शक्ति का संचार किया, जैसे भीमाकाश, तमसाकार, निशाभिसार, ग्रीवालिंगन आदि ।

'पंत' जी ने अंग्रेजी से भी भाव लेकर शब्द-विन्यास किया, जैसे—'अण्डर-लाइन' से 'रेखांकित', 'गोल्डेन एज' से 'सुवर्ण काल', 'ब्रोकेन हार्ट' से 'भग्न हृदय' आदि । ब्रज के कई शब्दों को पुनर्जीवित किया, जैसे—दुराव (गोपन), बोर (मग्न करना), हुलास (उल्लास) आदि । कई स्वेच्छाचारी प्रयोग भी उन्होंने किये हैं, जैसे बूँद, कम्पन आदि को उभय लिंगों में प्रयोग करना, णाकारान्त शब्दों को नकारान्त लिखना, प्रभात आदि पुँल्लिग में शब्दों को स्त्रीलिंग में लिखना आदि । संगीत-भेद के आधार पर पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग उल्लेखनीय है । जैसे—क्रोध की वक्रता के लिए 'भ्रू' (तेरे भ्रू भंगों में कैसे बिंधवा दूँ निज दृग-सा मन)[1] स्वाभाविक प्रसन्नता के लिए 'भौंहों' (करुण भौंहों का था आकाश)[2] तथा कटाक्ष की चंचलता के लिए 'भृगुटि' (भृगुटी विलास)[3] आदि । यह परिवर्तन उन्होंने नाद-सौन्दर्य को ध्यान में रख कर किया है । व्याकरण की रूढ़ियों में न बँध कर नाद-सौन्दर्य के आधार पर उन्होंने सन्धियाँ कीं, जैसे—प्रियाह्लाद के स्थान पर 'प्रि' आह्लाद, मरुदाकाश के स्थान पर मरुताकाश आदि ।

'पंत' जी की सूक्ष्मता से विकसित काव्य-भाषा से, उनकी कविता की सरलता एवं पार्थिवता के मूल में 'हजारों टन शाब्दिक कच्ची धातु' के शोधन-परिमार्जन किये गये महत्-प्रयत्न निहित हैं ।[4] निःसन्देह शब्द-शोधन, शब्द-सर्जन, शब्द-चयन तथा शब्द-संस्कार के अपने अभिनव प्रयोग द्वारा पंत ने हिन्दी काव्य-भाषा के विकास में अद्वितीय योगदान किया ।

———

१. पल्लव : (भौंह), पृ० ८४ ।
२. वही : (आँसू), पृ० ६८ ।
३. वही : (परिवर्तन), पृ० ४४ ।
४. डॉ० ई० चेलिशेव : सुमित्रानन्दन पंत तथा आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परा और नवीनता, पृ० ८८, संस्करण १९७० ई० ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

प्रेम-निरूपण :

"श्रृंगार गीत में कामनाओं का नर्तन होता है, प्रेम का मूर्तन होता है तथा सौन्दर्य का बिम्बन होता है।"[1] निराला की प्रारम्भिक रचनाओं में यौवन-सुलभ श्रृंगारिक भावनाओं की तीव्रता और उष्णता रह-रह कर झलक मारती है, लेकिन उनका वर्ण्य-विषय और प्रस्तुतीकरण पुरानी श्रृंगारिक परम्परा से जुड़ नहीं पाता। 'जुही की कली' में रीतिकालीन श्रृंगारिकता प्रकारान्तर से उभर कर आयी है। यह लघु प्रगीत अपने सीमित आकार में संयोग और वियोग श्रृंगार का अनुपम उदाहरण है,[2] तथापि यह रीतिकालीन नायक-नायिका के सहेट-मिलन से पर्याप्त भिन्न है। 'प्रेयसी'' 'विफल-वासना' और 'जागृति में सुप्ति थी' शुद्ध श्रृंगारिक रचनाएँ हैं जिनमें कवि के प्रेम-चिन्तन की झलक मिलती है।

"स्वच्छन्दतावादी वृत्ति के कारण 'निराला' के प्रेम और सौन्दर्य के चित्र परम्परागत न होकर प्रकृत भाव-भूमि पर स्थित, अनुभूति के सहज उच्छलित रूप हैं।"[3] उनकी प्रेमानुभूति बहुत कुछ उनके जीवन-वैषम्य से सम्बद्ध है। इस जीवन-गत विषमता ने उन्हें नीर-क्षीर विवेक की शक्ति दी। फलस्वरूप श्रृंगार के विशाल चित्र-पट पर एक कुशल चित्रकार की भाँति वे अनुभूति के सूक्ष्म रंगों को प्रभ-विष्णुता के साथ उभारने में समर्थ हो सके। उनका प्रेम-चिन्तन नैसर्गिक आभा से मंडित है।

'निराला' का प्रेम-चिन्तन मौलिक रूप में मुक्त प्रेम-चिन्तन है। प्रायः 'मुक्त प्रेम' का अर्थ अनियंत्रित प्रेम से लिया जाता है लेकिन 'निराला' ने मुक्त प्रेम को नये मूल्यों में बाँध दिया है। राम 'पंचवटी' में प्रेम को 'सर्वस्व-त्याग-गर्जन-घन' कहते हैं।[4] 'राम की शक्तिपूजा' में राम को परिणीता सीता की नहीं, कुमारी सीता की याद आती है और प्रथम लतान्तराल मिलन से उत्पन्न प्रेम के रंगीन चित्र उभरने

---

१. डॉ० शिवशंकर सिंह : निराला की काव्य-भाषा, पृ० ४०, संस्करण १९७८ ई०।

२. परिमल (जुही की कली), पृ० १७१।

३. श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' (सम्पा० प्रभात शास्त्री) : निराला साहित्य संदर्भ, प्रथम संस्करण १९९४ वि०, पृ० १००।

४. डॉ० बच्चन सिंह : क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० १९९।

लगते हैं।[१] ये प्रेम-चित्र जितने ही उदात्त हैं, उतने ही स्वच्छन्द भी हैं। सम्राट् एडवर्ड अष्टम ने जब अभिजात संस्कारों का परित्याग कर अपने को परिणय-सूत्र में बाँधा, तो 'निराला' की मुक्त विचारधारा को अशेष बल मिला। उनकी लेखनी ने 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' शीर्षक कविता में इस औदात्य प्रणय-व्यापार का गर्मजोशी से स्वागत किया।[२] 'निवेदन' की नायिका परकीया है जिसके प्रति कवि का मुक्त प्रेम सहज भाव से चित्रित है।[३]

'निराला' का प्रेम-चिन्तन जाति और धर्म के बन्धनों को स्वीकार नहीं करता लेकिन वह प्रेम-व्यापार में गांभीर्य का प्रबल समर्थक है।[४] वस्तुतः 'निराला' का यह प्रेम मुक्त होकर भी बद्ध है—'मुक्त है वासना से युक्त है प्रीति से।'[५]

कवि का प्रेम-चिन्तन विविध बीथियों के बीच प्रवाहित हुआ है। 'जुही की कली' और 'शेफालिका' में जहाँ यौवन-विलास का उद्दाम आवेग है, वहीं 'सरोज स्मृति' में वात्सल्य-प्रेम तथा प्रेयसी में परकीया-प्रेम के विविध भाव-चित्र अंकित हैं। 'निवेदन' में मुक्त-प्रेम का वासना-मुक्त प्रसार है। 'बहू' के दाम्पत्य प्रेम में कवि के प्रेम-चिन्तन की उदात्तता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है।[६] 'विधवा', 'भिक्षुक' आदि कविताओं में कवि का मानवीय प्रेम उमड़ पड़ा है। 'प्रगल्भ-प्रेम' में नवोन्मेष से प्यार का संदेश है। ये सभी प्रेम-चित्र प्रायः उदात्त भावभूमि पर अवतरित हैं। इन चित्रणों में पुरानी मान्यताओं को युगानुकूल मोड़ देने की उत्कट अभिलाषा प्रमुख रूप से दिखाई देती है। कवि ने काल्पनिक प्रणय-चित्रण के स्थान पर स्वानुभूतिक मुक्त प्रेम-चित्रण को स्वीकार किया है। उसमें शालीनता भी है और गांभीर्य भी। स्वकीया-परकीया का भेद भी है और अभेद भी। मूल्यों का अतिक्रमण भी है और उसके प्रति प्रतिबद्धता भी।

कवि की प्रेम-चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह नैतिक अंकुश

---

१. अनामिका, पृ० १५१, सं० २००५ वि०।

२. वही, पृ० २१।

३. परिमल, पृ० ३२, संस्करण १९६९ ई०।

४. 'दोनों हम भिन्न-वर्ण,
भिन्न-जाति, भिन्न-रूप
भिन्न-धर्म भाव, पर
केवल अपनाव से, प्राणों से एक थे।'
अनामिका, पृ० ८।

५. डॉ० बच्चन सिंह : क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० २००।

६. परिमल, पृ० १४६।

को नकारते हुए भी निरंकुश नहीं है। रीतिकालीन शृंगारिकता और द्विवेदी-युगीन नैतिकता के बीच वह मध्यमार्गी है। उसमें स्वच्छन्दता और शुचिता, सतीत्व और नारीत्व, हृदय और मस्तिष्क का अनूठा संगम है। दाम्पत्य-प्रेम के गांभीर्य और मुक्त-प्रेम के उच्छलित प्रवाह से वह सम्पृक्त है।

सौन्दर्य-बोध :

'निराला' जी की कविताओं में सौन्दर्यानुभूति बहुव्याप्त है। उन्हें सौन्दर्य की दिव्य सत्ता में अटूट विश्वास था। परियों, दिक्कुमारियों 'अप्सराओं' जैसे शब्दों के प्रचुर प्रयोग इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण हैं। 'वसन्त परी को', 'छवि विभावरी', 'हेमन्त की परी, 'नन्दन की अप्सरा', 'तनु की नाचती उतरी परी', 'अप्सरा कुमारी' इस अभिरुचि से परिपूर्ण विविध सन्दर्भ उनके काव्य में मिलते हैं। इन परियों का सौन्दर्य 'निराला' जी की दृष्टि में अधिक पवित्र है तभी तो वे अपनी पुत्री का सौन्दर्याङ्कन करते हुए कहते हैं—'खेलती हुई तू परी चपल',[1] 'आई पुतली तू खिल-खिल-खिल।'[2]

नारी इस सृष्टि की सर्वोत्तम रचना है। यदि उसमें यौवनागम हो गया हो तो उसके आकर्षण का कहना ही क्या? 'निराला' ने प्रेयसी में एक ऐसी ही तरुणी के यौवनागम-प्रभाव को लेखनी-बद्ध किया है।[3] उसमें रूपलिप्सा के स्थान पर रूपाकर्षण मात्र है। द्विवेदीयुगीन कवियों की भाँति इस आकर्षण के प्रति कवि नाक-भौंह नहीं सिकोड़ता और न रीतिकालीन कवियों की भाँति यह आकर्षण भोगपरक है। यह यौवनागम एक चेतना की सृष्टि करता है जिसके प्रभाव से—'प्रस्रवण झरते आनन्द के चतुर्दिक्-भरते अन्तर पुलकराशि से बार-बार'।[4]

'निराला' ने आँखों के सौन्दर्य को विविध रूपों में अंकित किया है। 'राम की शक्तिपूजा' में राजीव लोचन राम का नेत्राकर्षण 'कमल-नयन' की परिकल्पना पर आधारित है। 'किसान की नयी वधू की आँखें' में नेत्रों के सौन्दर्य-मुग्ध भाव चित्रित हैं।[5] उन्होंने नेत्रों के सौन्दर्याङ्कन में बिम्बों का प्रचुर विधान किया है, जैसे—किशोर पलकें, मृदु चितवन की तूलिका, नयनों का प्रात, किरणोज्ज्वल नयन, परिमल पलक, दृगों की गलियाँ, पलकों की नीड़, नयनों के सधे बान, तरुणी की पक्षमल आँखें आदि समस्त बिम्ब चाक्षुष श्री के प्रति आकृष्ट दिखाई देते हैं।

---

१. 'निराला' : अनामिका (सरोज-स्मृति), पृ० १२३।

२. वही : पृ० १२५।

३. अनामिका, पृ० १।

४. वही, पृ० २।

५. वही, पृ० १४६।

'निराला' जी ने दृढ़ तथा प्रबल भुजाओं को देख कर 'गह, बाँह, बाँह में भर'[१] लेने की परिकल्पना की है।

'निराला' ने नारी के अवयवी सौन्दर्य को समग्र रूप में भी देखा है। 'पंचवटी प्रसंग में 'शूर्पणखा' अपने अद्वितीय सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए नारी-मनोविज्ञान का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है।[२] इसी आत्मश्लाघा के साथ यह रूपगर्विता नारी अपना शिख-नख वर्णन भी कर डालती है।[३] लेकिन यह शिख-नख वर्णन रीतिकालीन शिख-नख वर्णन से बहुत-कुछ भिन्न है। "रीतिकालीन शिख-नख वर्णन जहाँ जड़ है वहाँ यह गतिशील है, जहाँ पहला सीमित है वहाँ दूसरा व्यापक और विराट् है।"[४] कवि ने 'योजना-गन्ध-पुष्प-जैसे प्यारा यह मुख-मण्डल,-फैलते पराग दिङ्मण्डल आमोदित कर,—खिच आते भौंरे प्यारे'[५] में रूप-रस-गंध की सृष्टि कर मुखमण्डल की शोभा को व्यापक बना दिया है। कण्ठ, कर, उरोज, कटि आदि के सौन्दर्य को उभारने के लिए जहाँ रीतिकालीन अप्रस्तुतों का सहारा लिया गया है, वहाँ भी प्रस्तुतीकरण की कलात्मक भंगिमा के कारण आँखों के समक्ष जो नारी का समग्र चित्र उपस्थित होता है वह सम्मोहक तो है पर अश्लील नहीं। नग्नता यथार्थ है, पर कला इस यथार्थ को अतीन्द्रिय जगत् में ले जाती है और सम्मोहन उसको सौन्दर्य से समन्वित कर देता है।[६] वस्तुतः अश्लीलता विषय में नहीं, अभिव्यंजना में होती है। 'वह तोड़ती पत्थर' में 'निराला' की सौन्दर्य-चेतना जहाँ मजदूरनी के भरे और बँधे सौन्दर्य से संवेदित है,[७] वहीं 'वन-बेला' में पर्वत को पृथ्वी के उरोज के रूप में प्रतिबिम्बित कर अपनी अश्लील मांसलता का भी परिचय देती है।[८]

"निराला' की दृष्टि केवल बाह्य रूप-सौन्दर्य के अनुरेखन पर ही टिकी

---

१. निराला : अनामिका (प्रेयसी), पृ० ६।

२. परिमल, पृ० २३२।

३. निराला : परिमल (पंचवटी-प्रसंग), पृ० २३३-३४।

४. डॉ० बच्चन सिंह : क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० ४७।

५. निराला : परिमल (पंचवटी-प्रसंग-३), पृ० २३३-३४।

६. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : आधुनिक परिवेश और नवलेखन, पृ० ५०, संस्करण १६७० ई०।

७. 'श्याम तन का बँधा यौवन
नत नयन प्रिय कर्म-रत-मन'—अनामिका, पृ० ७६।

८. 'पृथ्वी के उठे उरोज मंजु पर्वत निरूपम।'—अनामिका, पृ० ८३।

रही, ऐसी बात नहीं। उन्होंने नारी के आन्तरिक सौन्दर्य को भी देखा और पहचाना है। 'विधवा' की शान्त, गम्भीर मुद्रा में उन्हें दिव्य आभा का दर्शन मिला,[1] तो 'बहू' की सरलता और संकोच में अद्भुत आकर्षण जैसे 'सौन्दर्य-सरोवर की वह एक बँधी तरंग हो।'[2] 'जागृति में सुप्ति थी' शीर्षक कविता में कवि ने सोई हुई प्रिया का अत्यन्त सूक्ष्म संवेदनात्मक रूप-चित्र खींचा है।[3] इसमें प्रिया के जागृत सौन्दर्य को दो रेखाओं में उभार दिया गया है—नयनों में जड़े स्वप्न और मौन अधरों में सोये सुरा-सुर के द्वारा। 'स्वप्न' के लिए जो 'बहुरंगी पंख विहग' तथा 'प्रिया के मौन अधरों में सुरा-स्वर' के लिए 'निद्रित सरोवर का एक क्षुब्ध कम्पन' अप्रस्तुत लाये गये हैं, वे भावात्मक रूप-चित्र का सृजन करते हैं। यहाँ कवि का सौन्दर्य-बोध संवेदना का तलस्पर्श करने में समर्थ हुआ है।

'निराला' ने प्रेम के समान ही सौन्दर्य को भी नवीन मूल्यों में बाँधा है। वे सौन्दर्य से सतत अनुप्रेरित ही होते रहे, लिप्साग्रस्त नहीं। सौन्दर्य के प्रति उनका यह औदात्य दृष्टिकोण 'राम की शक्ति पूजा' में और अधिक स्पष्ट हो जाता है। इसमें एक प्रसंग है लतान्तराल-मिलन की स्मृति का। राम इस मधुर स्मृति के प्रभाव से रंचमात्र भी कुण्ठाग्रस्त नहीं होते, वरन् जानकी की सौन्दर्य-चेतना राम के हृदय में विश्व-विजय की भावना भर देती है।[4]

वस्तुतः 'निराला' ने सौन्दर्य को बड़ी बारीकी से देखा, समझा तथा चित्रित किया है। उनके रूप-चित्रों में न तो 'पंत' के समान आवेगात्मक उष्णता है और न तो प्रसाद के समान भावात्मक तरलता। उनका सौन्दर्य-बोध जितना ही उदात्त है उतना ही निरावृत्त भी, सौन्दर्यलिप्सा तो उसमें है ही नहीं।

वेदना-विवृत्ति :

'निराला' का वैयक्तिक जीवन व्यथा-भार से बोझिल था।[5] लेकिन वेदनाओं से आहत होकर भी वे अपने कर्म-पथ पर अडिग रहे। उन्होंने जीवन भर वेदना-विष को भगवान् शंकर की भाँति बड़ी दृढ़ आस्था के साथ पान किया। कवि की जीवनगत विषमता, वेदना उसके काव्य में बहुव्याप्त है। 'परिमल' की 'नयन'

---

१. 'वह इष्टदेव की मन्दिर की पूजा-सी
   वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन'—परिमल, पृ० ११६।
२. निराला : परिमल, पृ० १४६, संस्करण १६६६ ई०।
३. परिमल (जागृति में सुप्ति थी), पृ० १७३।
४. अनामिका, पृ० १५१-५२।
५. अनामिका (सरोज-स्मृति), पृ० १३४।

शीर्षक रचना में कवि ने अपनी वेदनाओं का मार्मिक उद्घाटन किया है।[१] 'खेवा' में कवि की वेदना सहनशीलता की उस सीमा को पार कर गयी है जहाँ पहुँचकर उसकी जीवन-नौका व्यथा-भार से डगमगाने लगती है। वह असहाय हो सहायता-याचना को विवश हो उठता है—'डोलती नाव, प्रखर है धार, सँभालो जीवन-खेवनहार।'[२] निराला की वेदना व्यक्ति और समाज के संघर्ष की उपज है।

'हताश', 'सरोज-स्मृति' तथा 'राम की शक्ति पूजा' में कवि की वेदना विविध बीथियों से होकर प्रवाहित हुई है। 'राम की शक्ति पूजा' में श्री दुर्गा द्वारा परीक्षा लिये जाने पर साधना के खण्डित होने के भय से राम के मन में उठी वेदना-भाव-तरंगों का 'निराला' जी ने अत्यन्त मर्मान्तिक चित्र खींचा है।[३] इस कठिन परीक्षा से दृढ़ प्रतिज्ञ राम का मन हताश नहीं होता और उनकी बलिदानी भावना अडिग होकर उपस्थित समस्या का समाधान खोज निकालती है। राम की दृढ़ बलिदानी भावना से प्रसन्न होकर श्री दुर्गा ने विजय-श्री पाने का आशीर्वचन दिया—'होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन!'[४] यह 'नवीन पुरुषोत्तम' नयी पीढ़ी है जिसे जय के प्रति निष्ठावान् होने के लिए कवि सन्देश देता है। यहाँ संघर्षों और अन्तर्द्वन्द्वों के बीच विश्वासपूर्ण जयघोष मुखर है।

स्पष्ट है कि "निराला" जी की वेदना का पर्यवसान कुण्ठा, अकर्मण्यता और जीवन से पलायन में नहीं होता। दृढ़ता और ओजस्विता के प्रभाव से उनकी वेदना में एक कर्म-प्रेरक शक्ति आ गयी है जो "राम की शक्ति पूजा', 'सेवा प्रारम्भ,' 'प्रलाप' आदि कविताओं में दिखाई देती है। वस्तुतः "निराला" जी की वेदना उस योद्धा की वेदना है, जो विकराल प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझा है। यह उस कलाकार की वेदना है जो अपने काव्य-कानन के सुमनों के मृदु गंध पराग से, इस द्वेष-विष जर्जर संसार को सुरभित, प्रेमहरित, स्वच्छन्द करने का संकल्प लेकर ही आया था। यह उस भक्त की वेदना है जो आजीवन स्वधर्माचरण करता रहा और सब कुछ प्रभु के पादपों में समर्पित कर मुक्त होना चाहता है।[५] वेदना का आधिक्य होते हुए भी उनकी कविताओं में निराशा या पलायन के भाव नहीं हैं।

---

१. निराला : परिमल (नयन), पृ० ७५।
२. वही:प रिमल (खेवा), पृ० ३०।
३. 'धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।
जानकी! आह, उद्धार, दुख, जो न हो सका।'—अनामिका, पृ० १६३।
४. 'निराला' : अनामिका (राम की शक्ति पूजा), पृ० १६५, सं० २००५ वि०।
५. विष्णुकान्त शास्त्री : कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध, पृ० २२, संस्करण १९६३ ई०।

करुणानुभूति :

"निराला" दुःख के कवि नहीं हैं, वे मानवीय करुणा और सहानुभूति के कवि हैं। उनका हृदय देश के दलित, पीड़ित तथा अभिशप्त जन-समुदाय को देख कर द्रवीभूत हो उठा था। उनकी "विधवा," "खण्डहर के प्रति", "भिक्षुक", "सरोज-स्मृति" आदि कविताओं में करुणा का भाव छलका-सा पड़ता है। कवि ने इन कविताओं में अपनी सम्पूर्ण करुणानुभूति को उड़ेल दिया है। "दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता"[१] में कवि की संवेदना भिक्षुक की करुण दशा को देखकर फूट पड़ी है। भौतिक घटनाओं एवं आर्थिक अभावों से प्रताड़ित इस संवेदनशील कवि की करुणा का आत्मप्रकाशन "सरोज-स्मृति" में अत्यन्त मर्मस्पर्शी रूप में हुआ है।[२]

करुणा के साथ साहस और संयम का जैसा समन्वय 'निराला' के व्यक्तित्व में था वैसा न 'पन्त' के व्यक्तित्व में था न 'प्रसाद' के। 'निराला' मानव-दुःख को देखकर मात्र दुःखी होने वाले कवि नहीं थे, वे उससे मुक्ति पाने का मार्ग भी ढूँढ़ते रहते थे। कवि की ओजस्वी वाणी हाहाकार को चुनौती देती है और उससे मुक्ति पाने के लिए ललकारती भी है। 'जागो फिर एक बार' में यही ललकार है, मुक्ति का प्रयास है। इस प्रकार 'निराला' की करुणानुभूति में संवेदना की मात्र पुकार नहीं, वरन् उसमें वह सन्देश भी निहित है जो उसके मूल को निर्मूल कर मानव-मात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है।

विद्रोह की प्रबल किन्तु रचनात्मक भावना :

क्रान्तिकारी कवि 'निराला' अत्यन्त विशाल व्यक्तित्व के पुरुष थे।[३] उनके व्यक्तित्व में फ्रायड का 'अहं' तथा 'उच्च अहं' दोनों ही समान रूप से समाया हुआ था। फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व में विद्रोह का ऊर्ध्वमुखी विकास हुआ। पुरानी सड़ी-गली परम्पराओं, रूढ़ियों, सामाजिक-राजनीतिक विडम्बनाओं एवं शास्त्रीय नियमों के विरुद्ध उन्होंने विद्रोह का शंखनाद किया। वैयक्तिक जीवन के घात-प्रतिघातों से आहत इस आत्मचेता कवि ने मानव-जीवन तथा उसके क्रिया-व्यापारों को बहुत पास से देखा, अनुभव किया तथा अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को विद्रोहात्मक स्वर में विविध बीथियों के बीच प्रवाहित किया। विद्रोह का जैसा ऊर्ध्वमुखी स्वर

---

१. निराला : परिमल (भिक्षुक), पृ० १२५।

२. अनामिका (सरोज-स्मृति), पृ० ११८।

३. "जितना प्रच्छन्न अथवा अस्खलित व्यक्तित्व निराला जी का है, उतना न प्रसाद जी का है, न पन्त जी का।"—नन्ददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ० १४३।

'निराला' की कविताओं में उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। "आदि से अन्त तक उनकी कविताओं में प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह बना हुआ है। चाहे वे सामाजिक रूढ़ियाँ हों अथवा साहित्यिक इनका विद्रोही व्यक्तित्व इनकी रचनाओं में सर्वत्र पुरुष रूप में अभिव्यक्त हुआ है।"[1] 'निराला' ने वेदान्त को जीवन-दर्शन के रूप में ग्रहण किया है। उनकी क्रान्तिकारी विचारधारा का स्रोत यह वेदान्त ही है जिसका सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रयोग करके वे समस्त रूढ़िवाद का विरोध करते हैं।

"निराला" जी अपना जागृत 'अहं' कभी नहीं खो सके। उन्हें किसी भी प्रकार का बन्धन स्वीकार नहीं था। निरपेक्ष गीतों का निर्माण सटीक और चुभते व्यंग्यों की सृष्टि, कजली और गजलों के विधान में सर्वत्र इनकी स्वच्छन्दप्रियता परिलक्षित होती है।[2]

'निराला' ने काव्यशास्त्रीय नियमों का परित्याग करते हुए 'मुक्त छन्द' में रचित अपनी प्रथम रचना 'जुही की कली' के साथ हिन्दी काव्य-जगत् में प्रवेश किया और अन्त तक व्यंग्यों, विरोधों को झेलते हुए नवोन्मेष के अपने इष्ट मार्ग पर आगे बढ़ते रहे। वे बन्धनों के प्रति जितने अधिक विद्रोही थे, नवीनता के प्रति उतने ही अधिक संवेदनशील। उनके काव्य सम्बन्धी अनेक नवीन मूल्य 'मित्र के प्रति' कविता में व्यक्त हैं। प्राचीनता के पोषक एक मित्र ने कहा—'यह नीरस गान बन्द करो।' कवि ने उत्तर दिया—'ठीक है, लेकिन क्या तुम्हें मधुर भावों से सम्पृक्त भीने गन्धयुक्त छन्दों का दर्शन अभी तक नहीं मिला।'[3] आगे चलकर 'प्रगल्भ-प्रेम' में कवि का काव्यशास्त्रीय नियमों के प्रति खुला विद्रोह मुखर हो उठा है। वह कविता को छन्द के बन्धनों से मुक्ति का आह्वान करता है।[4] इतना ही नहीं, वह कोमल छन्दों का बन्धन तोड़कर कविता-कामिनी का पौरुष-प्रधान छन्दों से शृंगार करने को आतुर है।[5] 'बादल राग' में शास्त्र-बन्धनों से मुक्त कवि की अपनी रागिनी है, विशिष्ट संगीत है। 'समकालीन साहित्य में उनकी तरह बागी कोई दूसरा नहीं हुआ।'[6]

---

१. डॉ० त्रिभुवन सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा, पृ० १३४, संस्करण १९७७ ई०।
२. डॉ० बच्चन सिंह : क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० २२७, संस्करण १९६१ ई०।
३. अनामिका, पृ० १२।
४. वही, पृ० ३४।
५. परिमल, पृ० १३८।
६. आचार्य शिवपूजन सहाय : वे दिन वे लोग, पृ० ६८, संस्करण १९६५ ई०।

'निराला' के काव्य में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोही व्यक्तित्व का आभास हमें 'प्रेयसी', 'चुम्बन' तथा 'सरोज-स्मृति' में मिलता है। कवि ने सामाजिक कुरीतियों, संकीर्ण विवाह पद्धतियों, दहेज की दूषित प्रथाओं तथा छिद्रान्वेषण की हेय प्रवृत्तियों पर करारी चोट की है।[१]

'निराला' के काव्य में उनके प्रबल क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का आभास हमें 'बादल राग', 'नाचे उस पर श्यामा', आह्वान', 'जागो फिर एक बार' तथा 'मुक्ति' में मिलता है। 'बादल राग' कवि की आस्था एवं संघर्ष का राग है। इसमें 'निराला' का क्रान्तिकारी व्यक्तित्व विप्लव का ताण्डव करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यहाँ बादल विप्लवकारी भी है और कल्याणकारी भी। बादल के विप्लवकारी क्रिया-व्यापारों में कवि ने अपनी क्रान्तिकारी भावनाओं को उड़ेल दिया है। विदेशियों के अत्याचार से पीड़ित भारतीयों की दुर्दशा को देखकर कवि का 'अहं' जाग उठता है और वह बादल के माध्यम से भारतीय जनता को विद्रोह करने के लिए प्रेरित करता है।[२] 'गरजो विप्लव के नवधार' में विप्लव का जहाँ अथाह जलराशि से संगति है, वहीं वह सम्पूर्ण क्रान्ति का भी प्रतीक है। 'आह्वान' में कवि रण-ताण्डव का 'आह्वान' करता हुआ दिखाई देता है[३] और इस रण-ताण्डव में वह तटस्थ नहीं सहभागी बनने को आतुर है।[४] 'जागो फिर एक बार' में निराला विविध परिवेशों का चित्रण करके शौर्यपूर्ण अतीत और दार्शनिकता के सहारे अपने देशवासियों की सुप्त धमनियों में रक्त-संचार करना चाहते हैं। इसमें 'शेर' (भारतीय) और 'स्यार' (अंग्रेज) प्रतीकात्मक संकेतों द्वारा शक्ति-परीक्षण की जो ललकार ध्वनित है वह कवि की पौरुष वृत्ति की परिचायक है।[५]

'निराला' की विद्रोहात्मक कविताओं में जहाँ कवि का 'अहं' मुखर है वहीं उसमें 'उच्च अहं' का भी उस समय दर्शन होता है, जब वे गौरवशाली अतीत के सहारे आदर्श की स्थापना का प्रस्ताव करते हैं। उनके ये क्रान्ति-गीत प्रगतिवादियों की भाँति विध्वंसात्मक न होकर रचनात्मक हैं। वास्तव में सामाजिक, साहित्यिक परम्पराओं, रूढ़ियों तथा राजनीतिक विडम्बनाओं के विरुद्ध शंखनाद करने वाले वे हिन्दी के अद्वितीय कवि हैं।

---

१. अनामिका, पृ० १२६।
२. परिमल, पृ० १६२।
३. परिमल (आह्वान), पृ० १३८।
४. वही : पृ० १३८।
५. (क) परिमल, पृ० १८८।
(ख) वही : पृ० १८६,

राष्ट्रीयता एवं देश-प्रेम :

'निराला' ने अपना काव्य-सृजन विशुद्ध स्वदेशी भूमि पर किया है। उन्हें प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा अतीतकालीन वैभवपूर्ण इतिहास से अगाध प्रेम था। उनके हृदय में सच्ची राष्ट्रीयता एवं देश-प्रेम की भावना कूट-कूटकर भरी थी। रोमाण्टिक रंगीनियों के बीच भी उनकी राष्ट्रीय-चेतना सतत जागरूक रही। देश-प्रेम विषयक कविताओं में उनका सम्पूर्ण पौरुष जाग उठा है। उनकी सम्पूर्ण काव्य-साधना ही भारतीय-दर्शन की पृष्ठभूमि पर खड़ी है। क्रान्तिकारी विचारधारा स्रोत भी भारतीय अद्वैत दर्शन ही है।

'निराला' के व्यक्तित्व पर विवेकानन्द का गहरा प्रभाव था। जातीय जीवन से उनका अटूट लगाव था। गीता में जिस कर्मयोग का निर्देश किया गया है, 'निराला' उसके जीते-जागते प्रतीक थे। 'जागो फिर एक बार' में उनका देश-प्रेम पश्चिम की उन समस्त उक्तियों को चुनौती देता है, जो हमारे ज्ञान और संस्कृति को हीन सिद्ध करती हैं। उनकी दृष्टि में 'योग्य जन जीता है' अंग्रेजी विचारक डार्विन के 'सर्वाइवल आफ दी फिटेस्ट' का प्रतिफलन नहीं है। यह गीता की गूँज है। इस उक्ति द्वारा कवि भारतीय जन-मानस में राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जागरण का दुहरा मन्त्र फूँकता है।[१]

'निराला' की जातीय चेतना अत्यन्त उदार, विशद, समन्वयकारी और आधुनिक थी।[२] जातीय जीवन के आधार पर निराला ने युगीन यथार्थ को नवीन मोड़ दिया तथा नवीन यथार्थ के आधार पर परम्परित मान्यताओं का पुनर्मूल्यांकन किया। 'राम की शक्ति पूजा' उनकी इसी शक्ति-साधना का परिणाम है। इसमें जातीय संस्कार का ही विजयाकांक्षी उद्घोष है।[३] 'राम की शक्ति पूजा' की भारतीयता उसमें स्वीकृत पौराणिकता से भी अधिक स्वाधीनता-संग्राम की आधुनिक चेतना में है।[४]

'निराला' ने भारतीयों में अपने बल-पौरुष के प्रति आस्था तथा विश्वास का भाव जगाने के लिए जातीय-जीवन और युग-जीवन दोनों ही आधार पर वैचारिक प्रयोग किया। 'महाराज शिवा जी का पत्र' शीर्षक कविता में वे प्राचीन भारत के गौरवशाली ऐतिहासिक-सांस्कृतिक चित्रों द्वारा भारतीयों के भग्न आत्मविश्वास को पुनर्जीवित करने तथा साम्प्रदायिक सद्भाव, पारस्परिक ऐक्य की स्थापना के लिए

१. परिमल : पृ० १८६, १६०।
२. डॉ० शिवशंकर सिंह : निराला की काव्य-भाषा, पृ० १०६, संस्करण १६७८ ई०।
३. अनामिका, पृ० १६५।
४. निर्मला जैन : राम की शक्ति पूजा, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, फरवरी, १६६८ ई०।

प्रयत्नशील हैं क्योंकि भारतीयों के हृदय से कर्षण-विकर्षण का भाव नहीं मिटा तो कवि के अनुसार—'स्वप्न सा विलीन हो जायेगा अस्तित्व सब'[१], इसीलिए वह चेतावनी देता है—'याद रहे--शेर कभी मारता नहीं है शेर।'[२]

'बादल राग', 'जमुना के प्रति' तथा 'आह्वान' में क्रान्तिकारी राष्ट्रीय स्वर की गूँज है। कवि बादल के माध्यम से देश में आनन्द-रस की वृष्टि करना चाहता है—'अरे वर्ष के हर्ष! बरस तू बरस-बरस रसधार।'[३] 'आह्वान' में भारत माँ को विदेशी दासता से मुक्त कराने के लिए कवि के हुंकार की तीव्र-ध्वनि सुनाई देती है।[४]

'निराला' का अतीत-प्रेम मूलतः उनकी राष्ट्रीय-चेतना से सम्बद्ध है। वे भारत के गौरवपूर्ण अतीत से सतत अनुप्राणित होते रहे। 'जमुना के प्रति', 'खण्डहर', 'दिल्ली' आदि कविताएँ उनकी अतीत-दर्शन की तीव्र अभिलाषा को व्यक्त करती हैं। इन कविताओं में प्राचीन भारतीय संस्कृति के भव्य चित्र हैं। 'खण्डहर' में उपनिषद्-काल से वर्तमान युग तक के अतीत का सिंहावलोकन करते हुए कवि पुनर्जागरण का सन्देश देता है। 'दिल्ली' में अतीत के सांस्कृतिक धरोहर के सहारे कर्मयोग एवं पुरुषार्थ का मर्मस्पर्शी आदर्श देशवासियों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।[५] 'राम की शक्ति पूजा' में पौराणिक कथा का मूल भाव ग्रहण कर राम को मानव रूप में आधुनिक सन्दर्भों में चित्रित किया गया है जो कवि की स्वच्छन्दतावादी रुझान का द्योतक है।

'परिमल' और 'अनामिका' की राष्ट्रीयतामूलक रचनाओं में कवि की वाणी की ओजस्विता भारतीय जीवन की सच्चाई को निरावृत्त करने तथा भारतीयों के हृदय में स्वतंत्रता-प्राप्ति की भावना भरने में प्रस्फुटित हुई है। वस्तुतः कवि का जीवन-दर्शन ही राष्ट्रीय-दर्शन बन गया है।

काव्य और दर्शन का सरस समन्वय :

दर्शन स्वयं में शुष्क है लेकिन जब यह काव्य में घुल-मिल जाता है तो श्रेयमय प्रेम बन जाता है। समर्थ कवि अपनी प्रतिभा के सहारे दार्शनिक तत्त्वों

---

१. निराला : परिमल (महाराज शिवाजी का पत्र), पृ० २१६।

२. वही : पृ० २०६।

३. वही : (बादल राग), पृ० १६०।

४. 'भैरवी! मेरी तेरी झंझा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ायेगी जब तुझसे पंजा,
लेगी खड्ग और तू खप्पर,
उसमें रुधिर भरूँगा माँ'—परिमल, पृ० १३८।

५. अनामिका, पृ० ५८।

को काव्यात्मक तत्त्वों के साथ इस प्रकार समन्वय कर देते हैं कि दर्शन और काव्य का भेद समाप्त हो जाता है। दर्शन का सत्य और शिव कवि की अनुभूतियों से छन कर जब काव्य के सौन्दर्य से तादात्म्य स्थापित कर लेता है तो महान् काव्य का सृजन सम्भव होता है। 'निराला' ऐसे ही समर्थ कवि हैं जिन्होंने उदात्त अद्वैतवादी दर्शन को आत्मसात् कर समृद्ध काव्यगत भावों से उसे सम्पृक्त किया है। वे हिन्दी के श्रेष्ठ दार्शनिक प्रयोक्ता कवि हैं। उनकी 'रेखा', 'जागरण' आदि कविताएँ दर्शन और काव्य के सामंजस्य की अनुपम सृष्टि हैं।[१] कुछ रचनाओं के अन्त में वे दार्शनिक पुट देते हुए भी दिखाई देते हैं—

'आशा की प्यास एक रात में भर जाती है,
सुबह को आली, शेफाली झर जाती है।'[२]

वैयक्तिकता, भाव संवेद्यता एवं कल्पना तत्त्व :

वैयक्तिकता, 'निराला' की सर्वनिष्ठ विशिष्टता है और उसे उन्होंने 'मैंने मैं शैली अपनाई'[३] लिख कर स्पष्ट रूप से स्वीकार भी किया है। लेकिन उनकी वैयक्तिकता 'विशाल व्याप्ति' का साधन मात्र है। वस्तुतः वे वैयक्तिक होते हुए भी निर्वैयक्तिक हैं। 'अहं' ने उनके व्यक्तित्व को वैयक्तिकता का आग्रही बनाया जबकि 'उच्च अहं' के प्रभाव से उनका व्यक्तित्व सार्वभौमिक हो उठा है। उनकी वैयक्तिक वेदना काव्य में विश्वव्यापी वेदना के रूप में प्रस्फुटित हुई है—'हम तपस्वी हैं सभी दुःख सह रहे।'[४] करुणा का प्रवाह 'भिक्षुक' तथा 'विधवा' में उतना ही है जितना 'सरोज स्मृति' में। 'निराला' ने जीवन और जगत् को निर्बन्ध दृष्टि से देखा है और अपनी वैयक्तिकता का ऊर्ध्वमुखी प्रसार किया है। इसी कारण वैयक्तिकता के साथ प्रगतिशीलता का उनके काव्य में यथोचित समन्वय सम्भव हुआ है।

इस वैयक्तिकता ने "निराला" को भाव-संवेद्य तथा कल्पनाशील बनाया। परन्तु न तो वे कल्पनाजीवी हैं और न ही भावजीवी। उनके काव्य में न तो भावों का अतिरेक है और न भावशून्य कल्पनाओं का सान्द्रण। "इनमें भाव-कल्पना तथा बुद्धि का समुचित योग है।"[५] आचार्य वाजपेयी ने "निराला" के काव्य में उपस्थित काल्पनिक तत्त्वों की ओर लक्ष्य करते हुए लिखा है-"निराला जी की कल्पनाएँ उनके

१. निराला : परिमल (जागरण), पृ० २४८।
२. वही : परिमल (शेफालिका), पृ० १७६।
३. वही : परिमल (अधिवास), पृ० १८७।
४. वही : परिमल, पृ० ७५।
५. डॉ० बच्चन सिंह : क्रान्तिकारी कवि निराला, उपसंहार, पृ० २४१।

भावों की सहचरी हैं। वे सुशीला स्त्रियों की भाँति पति के पीछे-पीछे चलती हैं।[१]"

"निराला" के काव्य में स्मृति-प्रधान काल्पनिक-चित्रों की अनेक रूपों में अवतारणा हुई है। "प्रेयसी" नामक कविता में कवि अपने अतीत को काल्पनिक चित्र-विधान द्वारा बड़ी सफाई से प्रस्तुत करता है।[२] "दिल्ली" तथा "यहीं" में प्रत्यभिज्ञाश्रित कल्पनाओं का हृदयस्पर्शी संयोजन हुआ है। "परिमल" की व्यंजना-प्रधान कविताओं में कवि का व्यक्तित्व मुखर नहीं हुआ है लेकिन "तुम और मैं", "जुही की कली", "शेफालिका" आदि कविताओं में उनकी कल्पना आवेगों के साथ होड़ करती है।

कवि के कल्पना-विधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उससे कहीं भाव भंग नहीं होता, बल्कि भाव-भंगिमा की सृष्टि होती है। कल्पना भावों के संधान में ही अनुरक्त है, अपनी अलग उड़ान दिखाने में नहीं।

अभिजात काव्य-दर्शन की उपेक्षा :

"निराला" की स्वच्छन्द दृष्टि के स्पष्ट चिह्न उनके काव्य-वस्तु के चुनाव में परिलक्षित होते हैं। उनके संवेदनशील हृदय ने तत्कालीन समाज के उपेक्षित वर्गों को पहचान कर उसकी प्रतिष्ठा के प्रति गहरी आस्था व्यक्त की। तत्कालीन समाज में व्याप्त जन-साधारण की उपेक्षा, शोषण, दुःख की स्थिति ने कवि की क्रान्तिकारी भावनाओं को झकझोर डाला। वे स्वयं भी उस उपेक्षित, शोषित तथा सताये गये समाज के एक प्राणी थे। फलस्वरूप उनकी वैयक्तिक संवेदना काव्य में उद्दाम वेग से फूट पड़ी।

हिन्दी साहित्य का वीरगाथा काल तथा रीतिकाल अभिजातीय काव्य-सम्पदा से भरा पड़ा है। उस युग के कवियों ने ऐश्वर्य-भोग की लिप्सा से अभिजात वर्ग का पोषण किया और जन-साधारण को उसके हाल पर छोड़ दिया। "निराला" ने इसी दुखती नस पर उँगली रखा। वे अपनी काव्य-साधना के प्रारम्भ से ही अभिजात संस्कारों से काव्य को मुक्ति दिलाने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। उपेक्षित के उन्नयन, उसके प्रति गहरी संवेदना तथा सामान्य की प्रतिष्ठा को अभिव्यंजित करने वाली कविताएँ "परिमल" तथा "अनामिका" में प्रचुरता से मिलती हैं। "विधवा", "भिक्षुक", "वह तोड़ती पत्थर", "खण्डहर के प्रति" "वे किसान की नई बहू की आँखें", "दीन", "रास्ते के फूल से" आदि कविताओं का प्रणयन इसी

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ० १४४, संस्करण १९६३ ई०।

२. अनामिका (प्रेयसी), पृ० ३।

वैचारिक पृष्ठभूमि पर हुआ है, जिसमें कवि ने अपने हृदय की सम्पूर्ण करुणा उड़ेल दी है।

भिक्षुक की दिनचर्या को देख इस संवेदनशील कवि का हृदय चीत्कार कर उठा। फलस्वरूप उसकी करुण गाथा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत कर कवि ने अभिजात सामाजिक व्यवस्था पर करारी चोट की।[1] भारतीय विधवाएँ अपनी समस्त आकांक्षाओं को तिलांजलि देकर अपने जीवन को अतृप्ति की अग्नि में झोंक देती हैं। कवि का भावुक हृदय इस सामाजिक विडम्बना पर क्षुब्ध हो उठता है और समाज के ठेकेदारों से इस अभिशप्त व्यवस्था को समाप्त करने का आग्रह करता है क्योंकि उसकी दृष्टि में ये उपेक्षणीय नहीं पूजनीय हैं।[2] भारतीय "विधवा" यदि सामाजिक रूढ़ियों की सृष्टि है तो "भिक्षुक" आज के पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था की उपज। "वह तोड़ती पत्थर" में एक ग्रामीण मजदूरनी के क्रिया-व्यापारों का यथार्थ चित्र अंकित है। ये कविताएँ जहाँ नग्न सामाजिक यथार्थ की चरम परिणति हैं वहीं कवि की स्वच्छन्द काव्य-दृष्टि की भी परिचायक हैं। इनमें जहाँ एक ओर करुणा का उभार है वहीं दूसरी ओर वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पर गंभीर आक्रोश भी है। इन उपेक्षित विषयों को अपनाकर "निराला" ने एक सर्वथा नये सौन्दर्य-शास्त्र का प्रवर्तन किया, जिसे बाद में प्रगतिवाद के नाम से अभिहित किया गया।

अभिजात काव्य-दर्शन और शास्त्रीयता का गहरा संबंध है। "निराला" ने मुक्त छंद के साथ शास्त्रीयता पर प्रबल प्रहार करके अभिजात्य साहित्य का मान-मर्दन कर दिया। उन्होंने प्रायः अस्पृश्य विषय पर ही लेखनी उठाई है और जहाँ परम्परित विषय को अपनाया भी है वहाँ उसकी पुनर्सर्जना द्रष्टव्य है। "वे नख से शिख तक मौलिक हैं।"[3]

प्रकृति-चित्रण :

स्वच्छन्दतावादी कवियों के प्रकृति-चित्रण का सही मूल्यांकन शास्त्रीयता-मूलक आलम्बन और उद्दीपन की कसौटी पर कसकर या खण्डों में नहीं किया जा सकता। "निराला" जी तो अपनी पहली ही रचना "जुही की कली" के साथ इन विभावों की परिधि से बाहर निकल आये। उनका प्रकृति-चित्रण रूढ़ियों से सर्वथा मुक्त है।

'निराला' जी की दृष्टि प्रकृति के कोमल तथा कठोर दोनों पक्षों की ओर समान रूप से गयी है। उनकी 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'सन्ध्या सुन्दरी'

१. परिमल (भिक्षुक), पृ० १२५।
२. परिमल (विधवा), पृ० ११९।
३. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : निराला जी, पृ० ३५, संस्करण १९६३ ई०।

आदि रचनाएँ जहाँ प्रकृति के कोमल पक्ष को उभारती हैं, वहीं 'बादल-राग' में प्रकृति के उग्र रूप को उभार कर कवि ने युग-चेतना के अनुसार नयी उद्‌भावनाएँ भी की हैं।

'निराला' ने प्रकृति के चेतन-रूप को ग्रहण किया है। प्रकृति उनके लिए हँसती, रोती, प्रणय-व्यापार करती एक सजीव सत्ता है। उन्होंने प्रकृति के माध्यम से अपने विविध-भाव, गर्जन, घोष, विद्रोह और वेदना को अभिव्यक्त किया है।

'निराला' जी ने प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों का स्वतंत्र तथा सूक्ष्म निरीक्षण किया है। प्रारम्भ से ही उनकी दृष्टि प्रकृति के सूक्ष्म क्रिया-व्यापारों की ओर गयी है। फलस्वरूप स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर उन्मुख उनकी प्रकृति-भावना युग की एक नवीन उद्‌भावना बन गयी।

'निराला' ने प्रकृति को एक जीवन-दर्शन के रूप में ग्रहण किया है। उन्हें प्रकृति ज्ञान से परिपूर्ण एक पुस्तक के रूप में दिखाई देती है। प्रकृति के प्रत्येक क्रिया-व्यापार उन्हें जीवन का सन्देश देते हुए दिखाई देते हैं। वायुमण्डल जहाँ उन्हें ईश्वरीय सत्ता का संकेत करते हैं, वहीं तृण, जीवात्मा का बोध कराते हैं। बादल, क्रान्ति का जयघोष करते हैं तो वसन्त, नव-चेतना का और पवन, प्रेम का भाव उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार प्रकृति के ये विविध उपादान जीवन का संकेत देकर काव्य को भाव-सम्प्रेषण की क्षमता प्रदान करते हैं।

प्राकृतिक सौन्दर्य-बोध :

'निराला' प्राकृतिक सौन्दर्य-बोध के मूल में भी एक जीवन-दर्शन देखते हैं। इससे उनके प्रकृति-चित्रों में सौन्दर्य की व्यापकता और बढ़ गयी है। उदाहरण के लिए 'संध्या सुन्दरी' शीर्षक से उनका सांध्य-चित्र ले सकते हैं। 'पंत' ने संध्या को सम्मोहक प्रेयसी के रूप में देखा है, इसी से उनकी दृष्टि उसकी तिर्यक् ग्रीवा, मुकुलित नयन, मधुर नूपुर-धुनि, लज्जारुण कपोल, मदिर अधर पर ही केन्द्रित होकर रह गयी, जबकि 'निराला' जी की संध्या प्रेयसी न होकर एकांत रूपसी है, इसी से उसका कार्य-क्षेत्र व्यापक है। उसमें परी-सी पवित्रता है, हास-विलास के स्थान पर सहज गाम्भीर्य है।[1] उसके हृदय में मानव-मात्र के कल्याण की सहज अभिलाषा है। उसके हाथों में न तो वीणा बजती है और न रागालाप, वह तो केवल थपकियों से थकित जीवों को अपने अंक में सुला देती है।[2] तभी तो कवि का उसके प्रति अनुराग उमड़ पड़ता है—'कवि का बढ़ जाता अनुराग।'[3]

---

१. परिमल, पृ० १२६।
२. वही, पृ० १२७।
३. वही : पृ० १२७।

'निराला' जी के काव्य में प्रकृति-सौन्दर्य का विशद उद्घाटन हुआ है। स्वच्छन्द मनोवृत्ति के होने के कारण उन्होंने ग्रामीण अंचल, पर्वतों, नदियों तथा प्रकृति के अन्य उपादानों का बड़ा ही मनोरम चित्र खींचा है। कवि के सौन्दर्य-बोध को झंकृत करने में संध्या के समान ही उषा, पवन, पुष्प, वसन्त, वर्षा आदि प्रकृति के विविध उपादान सहायक हुए हैं।

'निराला' ने प्रकृति को सौन्दर्य-सत्ता का पूर्ण प्रतीक माना है। इसी मापदण्ड पर उन्होंने मानवीय-सौन्दर्य का जहाँ मूल्यांकन किया है वहीं प्राकृतिक सौन्दर्य में मानवीय-सौन्दर्य का दर्शन भी। जब वे लिखते हैं—"सृष्टि भर की सुन्दर प्रकृति का सौन्दर्य-भाग, खींचकर विधाता ने भरा है इस अङ्ग में" तो इससे प्राकृतिक सौन्दर्य की पूर्णता के प्रति उनकी यही आस्था ध्वनित होती है। इनकी 'संध्या सुन्दरी' रूपसी है और 'शेफालिका' तथा 'जुही की कली' अल्हड़ युवतियाँ। इन प्राकृतिक रूपसियों के चित्रण में कवि ने मानवीय जीवन-दर्शन के सौन्दर्य पक्ष का सहारा लिया है। नारी-हृदय तथा नारी-मनोविज्ञान की उन्हें अच्छी पहचान थी, साथ ही, नारी-सौन्दर्य का सूक्ष्म ज्ञान भी था। प्रकृति के चतुर चितेरे तथा कुशल चित्रकार तो वे थे ही। फलस्वरूप नारी का सौन्दर्याङ्कन उन्होंने सफलतापूर्वक किया। उल्लेखनीय बात यह है कि नारी-सौन्दर्य के उद्घाटन में सौन्दर्य के अधिकांश प्रसाधन उन्होंने प्रकृति के विशाल प्रांगण से ही जुटाये हैं।

मानवीकरण :

'निराला' जी ने प्रकृति-चेतना को मानव-चेतना से अभिन्न माना है। उन्होंने जहाँ पर प्रकृति का मानवीकरण किया है वहाँ पर प्रकृति तथा मानव के बीच भेदक रेखा समाप्त-सी दिखाई देती है। उनकी प्रकृति भी मानवीय दिनचर्या को स्वीकार कर मानवीय सुख-दुःख, हास-विलास की सहभागी बन गयी है।

प्रकृति के मानवीकरण का हृदयस्पर्शी उदाहरण हमें 'शेफालिका', 'जुही की कली', संध्या-सुन्दरी' आदि प्रकृतिपरक कविताओं में प्राप्त होता है। 'शेफालिका' का चित्रण कवि एक ऐसी अल्हड़ युवती के रूप में करता है, जिसकी कंचुकी के बन्ध पल्लव पर्यङ्क पर सोते समय यौवन के भार से स्वयं टूट जाते हैं। वास्तव में कवि यहाँ 'शेफालिका' के प्रकृति रूप में खिलने का काव्यात्मक संकेत करता है।[1] इसी प्रकार 'जुही की कली' एक ऐसी प्रोषितपतिका नायिका के रूप में चित्रित है जिसका प्रवासी प्रियतम (पवन) 'प्रिया' (कली) की मधुर स्मृति आते ही उद्विग्न हो उपवन सर-सरित गहन-गिरि-कानन, कुंज-लता-पुंजों को पारकर केलि-क्रीड़ा-स्थल पर आ पहुँचता है और आते ही अपनी निद्रामग्न प्रिया की सुकुमार देह को निर्ममतापूर्वक

१. परिमल, पृ० १७५।

झकझोरने लगता है।[1] उनकी रूपगर्विता 'संध्या सुन्दरी' की मन्द-मन्थर गति का क्या कहना, वह परी-सी धीरे-धीरे मेघमय आसमान से उतरती हुई समस्त जगती-तल में छा जाती है।[2] इस प्रकार 'निराला' ने प्राकृतिक उपादानों तथा उसके क्रिया-व्यापारों का मानवीकरण अनूठी तथा अछूती कल्पनाओं के सहारे किया है।

प्रतीक योजना :

'निराला' के काव्य में प्राकृतिक प्रतीकों की बड़ी सुन्दर योजना हुई है। उनके काव्य में 'पवन' और 'भ्रमर' प्रेमी के प्रतीक बनकर आते हैं तो प्रियपात्र के प्रतीक 'पुष्प' और 'नदी' हैं। 'बादल' क्रान्ति का प्रतीक बनकर आया है तो 'वसन्त' नव-विलास अथवा नव-चेतन का। 'जलधर' क्रान्ति का फलागम देने वाला प्रतीक है तो 'वर्षा' सर्जना और विध्वंस दो अर्थों में प्रतीकित है।

'जुही की कली' और 'बादल-राग' 'निराला' की श्रेष्ठ प्रतीकार्थी कविताएँ हैं। 'जुही की कली' कवि की प्रेयसी को और 'बादल-राग' क्रान्ति के राग को प्रतीकित करता है। 'जुही की कली' में 'पवन' को प्रवासी प्रियतम तथा कली को विरहिणी प्रेयसी का प्रतीक मानकर संयोग-शृंगार की बड़ी सुन्दर उद्भावना की गयी है।[3] 'बादल-राग' में बादल का क्रान्तिकारी राग हिन्दी साहित्य के लिए सर्वथा नवीन राग है।

'निराला' के प्रकृतिपरक प्रतीक-विधान की विशेषता उसकी प्रतीकार्थक सरलता, यथार्थ तन्मयता तथा काव्य का स्वयंभू नियंता न होने में है। उदाहरण के लिए 'राम की शक्ति पूजा' की निम्नांकित पंक्तियाँ देखिये—

> 'है अमानिशा, उगलता गगन घन अन्धकार।
> खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार'[4]

यहाँ कवि ने 'अमानिशा' तथा 'गगन' आदि महानाश के विराट् प्रतीकों के माध्यम से राम के अन्तर्मन में घनीभूत नैराश्य की निविड़ता को अनुभूतिगम्य बनाया है। 'अमानिशा' और 'गगन' क्रमशः सघनता एवं व्यापकता के मर्म-साम्य की उद्भावना करते हैं।

बिम्ब-योजना :

'निराला' के काव्य में प्रकृतिकपरक बिम्ब सर्वाधिक आये हैं और उनमें भी चाक्षुष तथा गत्वर बिम्बों की प्रधानता है। 'प्रेयसी' में प्रिया का प्रिय से मिलन

---

१. परिमल, पृ० १७२।
२. वही, पृ० १२६।
३. वही, पृ० १७२।
४. निराला : अनामिका, पृ० १५०।

का चाक्षुष बिम्ब प्रस्तुत करने के लिए 'नीलिमा ज्यों शून्य से'[1] अप्रस्तुत लाया गया है जिसके द्वारा कवि प्रिया और प्रिय की अभिन्नता के भाव को एक विराट् परिवेश में बड़ी ही प्रभविष्णुता के साथ चित्रित कर देता है। गत्वर बिम्ब का एक चित्र प्रस्तुत है—

'फिर क्या ? पवन
उपवन-सर-सरित-गहन-गिरि-कानन
कुंज लतापुंजों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली खिली साथ।'[2]

'उपवन-सर-सरित-गहन-गिरि-कानन कुंज-लतापुंजों को पार कर पहुँचा' शब्द-विन्यास प्रियतमा से मिलने की उत्कण्ठा से उद्विग्न पवन की तीव्रगति को स्पष्ट रूप से बिम्बित कर देता है।

'जड़े नयनों में स्वप्न, खोल बहुरंगी पंख विहग-से'[3] पंक्ति में कवि ने प्रकृति के व्याज से नारी के जागृत सौन्दर्य का संवेदनात्मक बिम्ब-चित्र प्रस्तुत किया है। स्वप्न के लिए प्रयुक्त प्राकृतिक अप्रस्तुत 'बहुरंगी पंख विहग' अनेक अपूर्ण आकांक्षाओं की रंगमयता की सार्थक ऐन्द्रिय विवृत्ति करते हुए प्रिय के जागृत सौन्दर्य का भावपूर्ण रूप-चित्र निर्मित कर देता है।

रहस्यात्मकता :

विस्मय 'निराला' की काव्य-सम्पदा का अनिवार्य अंग है। इस भावना ने उन्हें सान्त में अनन्त के तथा व्यष्टि में समष्टि के दर्शन कराये। उनके विराट्-दर्शन के मूल में विस्मय की भावना ही क्रियाशील है। लेकिन 'निराला' ने प्रकृति को समझने के लिए 'पंत' के समान रहस्य का सहारा नहीं लिया है, वरन् उनका रहस्यवाद प्रकृति-चित्रण के साथ घुल-मिल-सा गया है।

निराला की रहस्यवादी कविताओं में भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है। एक दार्शनिक की तटस्थता ही उन्हें रहस्यवादी बना देती है। अद्वैतवादी रहस्यात्मकता का सर्वोत्तम उदाहरण उनकी 'तुम और मैं' रचना है जिसमें कवि अव्यक्त सत्ता के विराट् स्वरूप का उद्घाटन इस प्रकार करता है—

'तुम तुंग-हिमालय-शृंग
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता।'[4]

---

१. निराला : अनामिका, पृ० ४।
२. वही, परिमल (जुही की कली), पृ० १७१।
३. वही : अनामिका (जागृति में सुप्ति थी), पृ० १७३।
४. वही : परिमल, पृ० ८०।

'निराला' प्रकृति के दृश्य जगत् के परे कुछ और देखते थे। प्रकृति के प्रत्येक कण, उपादान और क्रिया-व्यापार में वे अव्यक्त विराट् सत्ता की अनुभूति करते थे। बिन्दु या शून्य को हमारे शास्त्रों ने शक्ति का पुंज माना है, वैज्ञानिकों ने भी परमाणु की अनन्त शक्ति की पुष्टि की है। पंचभूतों के मूल में भी यही है। 'निराला' इसी बिन्दु (कण, शून्य) की अद्भुत लीला पर विस्मित हो पूछते हैं—

'बिन्दु ! विश्व के तुम कारण हो
या यह विश्व तुम्हारा कारण ?
कार्य पंचभूतात्मक तुम हो
या कि तुम्हारा कार्य भूतगण ?'[१]

काव्य-शिल्प :

'निराला' प्रयोग-सिद्ध कवि थे।'[२] उन्होंने हिन्दी-कविता की आकृति और प्रकृति दोनों में ही महान् परिवर्तन किये।[३] उनकी प्रयोग-सिद्धता ने हिन्दी काव्य के रूप-विधान, छन्द, भाषा आदि को बहुविधि प्रभावित तथा समृद्ध किया है। उन्होंने काव्य-क्षेत्र में मुक्तक के सिद्धहस्त कवि के रूप में प्रवेश किया तथा अपने बहुस्पर्शी प्रयोगों द्वारा साहित्यिक-क्रान्ति का सूत्रपात किया।

शैली-प्रयोग :

'निराला' के काव्य में उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही विविध शैलियों का विकास हुआ है। "इतना बड़ा शैली-प्रयोक्ता कवि आधुनिक हिन्दी-काव्य में तो है ही नहीं, नव युग के सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में भी मुश्किल से मिलेगा।" 'निराला' जी की प्रारम्भिक रचनाओं में पारम्परिक दृष्टि से तीन प्रकार की शैलियों का विकास हुआ है—(१) उदात्त या पाण्डित्य-प्रधान शैली, (२) विद्रोहिणी या ओज-प्रधान शैली, (३) ललित-मधुर या आलोक शैली।

उदात्त-शैली के अन्तर्गत कवि ने संश्लिष्ट एवं पाण्डित्यपूर्ण समास-प्रधान भाषा द्वारा विराट् चित्रों की अवतारणा की है। 'राम की शक्तिपूजा' की रचना इसी शैली में की गयी है। इस रचना में भावों की दिव्य अवतारणा, नाद-सौन्दर्य, ओजस्वी पद-बन्ध, विराट् ध्वनियों के प्रस्तुतीकरण, सामासिकता तथा भव्य शब्दों के संयोजन द्वारा उदात्तता की सृष्टि की गयी है।

---

१ निराला : परिमल (कण), पृ० १५७।

२. डॉ० शिवशंकर सिंह : निराला की काव्य-भाषा, पृ० १००।

३. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, कवि निराला, पृ० १३७, संस्करण १९६५ ई०।

यथा :

'प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह,-भेद-कौशल-समूह-
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह-क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह ।'[१]

'प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह' तत्काल व्यूह-परिवर्तन का दृश्य सामने उपस्थित कर देता है। 'क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह' से युद्ध के कोलाहलपूर्ण वातावरण की सजीव सृष्टि हो जाती है।

ओज-प्रधान शैली 'निराला' की सबसे सशक्त शैली है। इसमें उनका पौरुष मुखर हो उठा है। "मानव-जीवन की सारी विषमताओं और रूढ़ियों का आपात् विनाश करने वाली भाव-चेतना इसी शैली का आश्रय लेकर परिस्फुट हुई है।"[२] इस शैली को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने स्वच्छन्द और विद्रोहिणी शैली कहा है। 'बादल-राग,' 'जागो फिर एक बार' और 'आह्वान' इसी शैली की रचना हैं।[३]

'निराला' की तीसरी शैली ललित-मधुर शैली है जिसे आचार्य वाजपेयी ने आलोक शैली के नाम से अभिहित किया है।[४] 'निराला' के काव्य की शृंगारिक गीतियाँ तथा प्राकृतिक छवियाँ इसी शैली में अनुरेखित हैं। इसमें सौन्दर्य-चेतना के साथ-साथ कवि की दार्शनिक चेतना भी प्रस्फुटित हुई है। 'शेफालिका', 'जुही की कली', 'गीत' और 'संध्या-सुन्दरी' इसी शैली की रचनाएँ हैं।[५]

अप्रस्तुत-योजना :

अप्रस्तुत-योजना द्वारा कवि जो बिम्ब प्रस्तुत करना चाहता है, उसका सीधा सम्बन्ध उसके जीवन-दर्शन से होता है। निराला के अप्रस्तुतों में उनके व्यापक व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। उनके अप्रस्तुत प्रायः विराट् बिम्ब प्रस्तुत करते हैं जिनमें तलस्पर्शी अर्थ-गाम्भीर्य होता है। 'विधवा' में कवि भारतीय विधवा की दशा का चित्र इस प्रकार प्रस्तुत करता है—

'वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन'[६]

यहाँ विधवा के पवित्रता को इंगित करने के लिए 'इष्टदेव के मंदिर की पूजा'

---

१. निराला : अनामिका (राम की शक्तिपूजा), पृ० १४८।

२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० १३३३, संस्करण १९६५ ई०।

३. परिमल (जागो फिर एक बार), पृ० १९०।

४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० १३४।

५. निराला : परिमल (गीत), पृ० ८६।

६. वही; परिमल (विधवा), पृ० ११९।

तथा उसकी नीरव-गंभीरता को व्यंजित करने के लिए 'दीप-शिखा' अप्रस्तुत लाये गये हैं, जो सर्वथा अछूते तथा अर्थ-गाम्भीर्य से समन्वित हैं।

'सौन्दर्य-सरोवर की वह एक तरंग भावमग्न कवि की वह एक मुखरता-र्वजित-वाणी'[१] में भारतीय बहू का द्युतिमान् सौन्दर्य और उसका लाज-संकोच अपने पूर्ण सांस्कृतिक परिवेश में चित्रित हो उठा है। बहू की लज्जा, संकोच को प्रस्तुत करने के लिए जो कवि की 'मुखरता-वर्जित-वाणी' अप्रस्तुत लाया गया है, वह जितना ही व्यापक है उतना ही यथार्थ भी। इसी प्रकार 'काँपा कोमलता पर सस्वर, ज्यों मालकोश नव वीणा पर'[२] में यौवन के प्रथमागम का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है। मालकोश की भाँति यौवन भी अनुभूत्यात्मक है जो स्पर्श मात्र से झंकृत हो उठता है। यहाँ यौवन के लिए मालकोश अप्रस्तुत लाकर कवि ने यौवन की मौलिक प्रवृत्ति को उजागर कर दिया है।

'जड़े नयनों में स्वप्न खोल बहुरंगी पंख विहग-से'[३] में स्वप्न के लिए जो 'बहुरंगी पंख विहग' अप्रस्तुत लाया गया है वह अपूर्ण रंगीन आकांक्षाओं की संवेदनात्मक ऐन्द्रिय विवृत्ति करता है।

निष्कर्षतः 'निराला' के अप्रस्तुत संवेदनात्मक हैं तथा भाव-सम्प्रेषण की व्यापक क्षमता रखते हैं। वे सर्वथा नवीन तथा अछूते हैं। यथार्थ तन्मयता के कारण उनमें स्थायी प्रभाव छोड़ने की अद्भुत क्षमता है। 'पंत' जी के आवेगात्मक तथा 'प्रसाद' जी के शृंगारिक बिम्बों में इस प्रकार के अछूते, प्रभविष्णु और संयमित अप्रस्तुत प्रायः नहीं मिलते।

प्रतीक-योजना :

काव्य में सूक्ष्म सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का विधान किया जाता है। 'निराला' के काव्य में शब्द, पद, शीर्षक, व्यंग्य, परिवेश, अलौकिक अभिधान आदि विविध प्रकार के प्रतीक सूक्ष्म-सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में पवन, भ्रमर, पुष्प, नदी, वसन्त आदि परम्परित प्रतीकों की सुन्दर योजना हुई है। उनके काव्य में 'पवन' और 'भ्रमर' प्रेमी के प्रतीक हैं, तो 'पुष्प' और 'नदी' प्रियपात्र के। वसन्त नव-विकास और नव-चेतना के प्रतीकात्मक रूप में प्रयुक्त हुआ है। इन परम्परित प्रतीकों के अतिरिक्त 'निराला' ने नवीन प्रतीकों को सर्वथा नवीन संदर्भों में नवीन भाव-चेतना से मण्डित करके प्रयुक्त किया है। 'बादल' उनके काव्य में क्रान्ति का प्रतीक बन कर आया है तो 'जल' क्रान्ति

---

१. निराला : परिमल (बहू), पृ० १४४-४८।
२. वही : अनामिका (सरोज-स्मृति), पृ० १२६।
३. वही : परिमल (जागृति में सुप्ति थी), पृ० १७३।

का फलागम देने वाला है।[1] प्रकृति के विविध उपादान प्रतीकात्मक रूप में जीवन का संकेत देकर काव्य को भाव-सम्प्रेषणीयता की क्षमता प्रदान करते हैं।

'निराला' ने उदात्त एवं अतिशय सूक्ष्म अनुभूतियों को बोधगम्य तथा भाव-सम्प्रेष्य बनाने के लिए विराट् प्रतीकों की सृष्टि की है। 'राम की शक्ति पूजा' में युद्ध-क्लान्त राम के अन्तर्मन में घनीभूत नैराश्य की निविड़ता को बोधगम्य बनाने के लिए कवि ने 'अमानिशा', 'गगन', 'विशाल अम्बुधि', 'भूधर' आदि महानाश के विराट् प्रतीकों का सहारा लिया है।[2] 'अमानिशा' और 'गगन' द्वारा कवि ने घनीभूत नैराश्य की क्रमशः सघनता और व्यापकता का संकेत किया है। विशाल अम्बुधि भीषण उद्वेलन और आलोड़न के उद्भावक हैं। 'स्तब्ध है पवन चार' और 'केवल जलती मसाल' द्वारा कवि ने अमानिशा की भयंकरता को विराट् बनाया है।

'निराला' की प्रतीकात्मक सर्जना की तीन विशेषताएँ हैं—यथार्थ तन्मयता, प्रयोग-भिन्नता और एक ही स्थल पर विशिष्ट अर्थ-गौरव की सृष्टि के लिए एकाधिक प्रतीकों का जमघट। यथार्थ तन्मयता के कारण ही 'निराला' का 'बादल' 'पंत' के 'बादल' से सर्वथा भिन्न रूप में प्रतीकित है। जहाँ तक प्रयोग-भिन्नता का प्रश्न है वर्षा 'निराला' के काव्य में 'सर्जना' और 'ध्वंस' दो विरोधी अर्थों में प्रतीकित है तथा 'पर्वत' भय और आदर दो भिन्न स्थितियों का सूचक है। 'राम की शक्ति पूजा' में 'निराला' के प्रायः समस्त प्रतीक संगठित होकर अद्भुत सम्मिलित प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

बिम्ब-विधान :

"'निराला' की कविता चित्र-प्रधान और वस्तु-मुख होने के कारण शब्दों की अभिधा शक्ति पर अधिक केन्द्रित है।"[3] बिम्ब अभिधा शक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण व्यापार है। चित्र-प्रधान कवि होने के कारण 'निराला' में बिम्ब-निर्माण की सशक्त प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। उनके अधिकांश बिम्ब अप्रस्तुत-योजना के सहारे गत्वर रूप में उपस्थित होते हैं और वे प्रायः प्रकृति और नारी से संबधित हैं। 'निराला'-काव्य में ऐन्द्रिय बिम्ब, शब्द-बिम्ब, वर्ण-बिम्ब, सानुभूतिक-बिम्ब, गत्वर-बिम्ब, उदात्त-बिम्ब आदि के पर्याप्त उदाहरण प्राप्त होते हैं।

लाक्षणिकता :

अर्थ-गौरव की दृष्टि से 'निराला' के काव्य में यद्यपि व्यंजनामूलक शब्द-शक्ति का सर्वोच्च स्थान है तथापि लक्षणामूलक शब्द-शक्ति के द्वारा भी निराला ने

१. परिमल (बादल-राग), पृ० १६२।
२. अनामिका, पृ० १५०।
३. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० ११२, संस्करण १६६२ ई०।

अर्थ-गौरव की सृष्टि की है। उनके काव्य में लाक्षणिक-भंगिमा के समर्थ उदाहरण प्राप्त होते हैं। 'तुम और मैं' शीर्षक कविता में आदि से अन्त तक लाक्षणिक अर्थ-प्रयोग की अनुपम छटा विद्यमान है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

रूढ़ालक्षणा :

'एक बार बस और नाच तू श्यामा।' —परिमल, पृ० १३८।

यहाँ 'श्यामा' अपने रूढ़ अर्थ में 'रणचण्डी' के लिए प्रयुक्त है।

प्रयोजनवती-लक्षणा :

'पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक' —परिमल, पृ० १२५।

यहाँ भूख की समस्त शारीरिक क्लान्ति के उद्घाटन की प्रयोजनशीलता अभीष्ट है।

गौणी लक्षणा :

'ढल रहे थे मलिन-मुख-रवि, दुख-किरण
पद्म-मन पर थी, रहा अवसन्न वन,
देखती यह छवि खड़ी मैं, साथ वे
कह रहे थे हाथ में यह हाथ ले' —परिमल, पृ० ४०।

यहाँ 'दुख' और 'किरण' तथा 'पद्म' और 'मन' में सादृश्य-सम्बन्ध के आधार पर अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति हो रही है।

गौणी-लक्षण-लक्षणा :

'शेरों की माँद में
आया है आज स्यार' —परिमल, पृ० १८८।

यहाँ 'शेरों' से भारतीयों और 'स्यार' से अंग्रेज जाति का गुण-सादृश्य-सम्बन्ध है। 'शेर' और 'स्यार' अपना अर्थ छोड़कर लक्ष्यार्थ ज्ञापन कर रहे हैं।

गौणी-सारोपा-उपादान-लक्षणा :

'तुम प्राण और मैं काया
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया।' —परिमल, पृ० ८१।

यहाँ तुम पर 'प्राण' और 'सच्चिदानन्द ब्रह्म' तथा 'मैं' पर 'काया' और 'मनमोहिनी माया' का आरोप हुआ है। ये आरोप सादृश्य-सम्बन्ध पर आधारित हैं।

शुद्धा-लक्षणा :

'काढ़ देना चाहते हो दक्षिण के प्राण'—परिमल, पृ० १६४।

यहाँ दक्षिण का सम्बन्ध दिशा-विशेष से नहीं वरन् आधाराधेय सम्बन्ध के आधार पर 'दक्षिण में रहने वाले' लोगों से है।

शुद्धा लक्षण-लक्षणा :

"वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता
पथ पर आता"

—परिमल, पृ० १२५।

'दो टूक कलेजे के करता' में गहरी चोट की मर्मस्पर्शी करुणा उपस्थित है। यहाँ 'दो टूक करने' और गहरी चोट की करुणा में साहचर्य-सम्बन्ध स्पष्ट होता है।

छन्द :

'साहित्य वास्तव में कवि के भाव-सत्ता के साथ उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का समाहार है।'[१] 'निराला' के प्रगीतों में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप स्वच्छन्द शैली का निर्माण स्वयं किया है जो अन्य कवियों से मेल नहीं खाती। छन्दों की मुक्ति 'निराला' की काव्य-साधना का सबसे बड़ा मिशन रहा है। उन्हें इस तथ्य का आभास था कि बँधे-बँधाये छन्दों में भाव-भंग होने का भय रहता है। वे जिस प्रकार मानव मुक्ति के प्रबल समर्थक थे, उसी प्रकार काव्य के मुक्त छन्द के भी।[२]

हिन्दी साहित्य में मुक्त छंदों को परम्परा का उन्होंने विधिवत् श्रीगणेश किया। उनके मुक्त छन्द दो प्रकार के हैं—तुकान्त और अतुकान्त। प्रायः दोनों में प्रगीतात्मकता है। तुकान्त का विधान भी उन्होंने आग्रहपूर्वक नहीं किया, वरन् भावों के उद्वेग के साथ यह विशेषता स्वतः आ गयी है। उनकी कविताओं में चरणगत विषमता का प्राधान्य है। कोई चरण बहुत लम्बा तो कोई बहुत छोटा। उसमें रबर के समान लोच है तो केचुआ के समान आकार-विस्तार की क्षमता। इसी कारण

---

१. रामविलास शर्मा, संस्कृत और साहित्य (आधुनिक हिन्दी कविता, लेख) पृ० २७।

२. 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना।"—निराला : परिमल (भूमिका), पृ०१२।

समसामयिक आलोचकों ने इसे रबर छंद, केचुआ छंद कह कर इसकी खिल्ली उड़ाई। लेकिन आज यही स्वच्छन्द छंद कवियों का कण्ठहार बना हुआ है। इस प्रकार के स्वच्छन्द छंदों में कवि के भावों का उतार-चढ़ाव स्वतः ढलता गया है। मुक्त छंद में जहाँ कवि ने "जुही की कली" जैसी भाव-प्रवण कोमल कल्पना-युक्त प्रगीत रचा है वहीं "बादल-राग" जैसी ओजपूर्ण रचना भी की है। इससे स्पष्ट है कि मुक्त छंद में कवि की स्वच्छन्द कल्पना को उड़ान के लिए दिगन्तव्यापी अन्तरिक्ष मिला है। अपनी प्रथम रचना "जुही की कली" में ही उन्होंने छंद का बन्धन साहसपूर्वक तोड़ डाला। "बादल-राग" में वर्ण-मात्रा के नियमों को तोड़ती हुई अतुकान्त चरणयुक्त कविता लोच और आकार-विस्तार में अद्भुत है।[१]

छंद, कविता का बाह्य स्वरूप है। श्रेष्ठतम कविता बिना छंद के भी संभव है। कवि का प्रयोग यदि लय-गति और सौन्दर्य-बोध की सृष्टि करता है तो वह प्रशंसनीय है। "भावातिरेक में कवि-हृदय से निःसृत वाणी संगीतात्मक प्रवाहों से उन्मुक्त नहीं रह सकती।"[२] छंदों की बन्दिश से प्रवाह में छंदों के नियम बाधक होते हैं। "निराला" ने "मेरे गीत और कला" शीर्षक निबन्ध में स्वयं लिखा है—"भावों की मुक्ति छंदों की भी मुक्ति चाहती है। यहाँ भाषा, भाव और छंद तीनों स्वच्छन्द हैं।" "परिमल" की भूमिका में उन्होंने लिखा है-"उनमें (मुक्त छंद में) नियम कोई नहीं। केवल प्रवाह कवित्त छंद-सा जान पड़ता है। मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम-राहित्य उसकी मुक्ति।"[३] इस प्रकार मुक्त छन्द मुक्त भी है और छंद भी।

'निराला' छन्दोगुरु थे।[४] हिन्दी काव्य में मुक्त छन्दों के प्रयोक्ता, विकास-कर्ता, प्रौढ़कर्ता होने के साथ ही उन्होंने हिन्दी के अनेक उपेक्षित छन्दों को पुनर्जीवित भी किया है। 'राम की शक्ति पूजा' में 'रोला' के साथ 'राधिका' का अनूठा समन्वय है और इस नवनिर्मित छन्द को समीक्षकों ने 'शक्ति पूजा' छन्द के नाम से अभिहित किया है।[५] 'प्रेयसी' शीर्षक कविता शुद्ध 'घनाक्षरी' लयाधार पर रची गयी है। 'निवेदन' में हिन्दी के 'विधाता' और उर्दू के बहर का सुन्दर समन्वय है। 'बादल-राग' में 'निराला' ने शुद्ध 'बरवै' को नयी लयात्मकता से युक्त कर उसका पुनरुद्धार

---

१. परिमल, पृ० १६१।

२. डॉ० बच्चन सिंह : क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० २१।

३. निराला : परिमल (भूमिका), पृ० १६।

४. रामधारी सिंह 'दिनकर' : हिन्दी कविता और छन्द, मिट्टी की ओर, पृ० १३७, संस्करण १६४६ ई०।

५. निराला : अनामिका, राम की शक्ति पूजा, पृ० १४८-१६५।

किया है।[१] इस प्रकार 'निराला' ने कई उपेक्षित पुराने छन्दों को पुनर्जीवित कर अपनी छन्दगत स्वच्छन्दता का परिचय दिया है।

इस प्रकार 'निराला' मुक्त छन्द के आदि प्रणेता, उपेक्षित छन्दों के उद्धारक तथा वैविध्यपूर्ण छन्द-प्रयोगी के रूप में हिन्दी काव्य-जगत् में अप्रतिम हैं। हिन्दी काव्य को उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण देन मुक्त-छन्द-विधान है जो पाश्चात्य छन्दः क्रान्ति का अनुकरण-मात्र न होकर कवि की हिन्दी-काव्य को कृत्रिम सीमाओं से मुक्त करने की दृढ़ आस्था का प्रतिफल है। संस्कृत, अंग्रेजी, बँगला, उर्दू तथा लोक-प्रचलित छन्दों से उन्होंने प्रेरणा ग्रहण किया तथा हिन्दी में उस प्रभाव का सफल विनियोजन किया।

भाषा :

'निराला' काव्य-भाषा के अन्यतम प्रयोक्ता, अद्भुत शिल्पी थे। उन्होंने काव्य-भाषा गढ़ी, सँजोयी और व्यवस्थित की। वे ऐसे समय में काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए थे जब हिन्दी-काव्य की भावात्मक क्षमताएँ विकसित नहीं हुई थीं। उन्होंने हिन्दी-भाषा की व्यंजना-शक्ति का विस्तार किया और अभिधा-शक्ति के उत्कर्ष का निर्देशन किया। लालित्य और पौरुष, सपाट और अलंकृत, समास्य और समासहीन तत्सम शब्दावली-भरी और तद्भव एवं आंचलिक बोलियों से समृद्ध कई प्रकार के भाषिक प्रयोग उपस्थित किये।[२] "आधुनिक हिन्दी में 'निराला' इतना बड़ा शब्दकोश किसी कवि के पास नहीं। संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी, फारसी, साहित्यिक भाषा, ग्रामीण बोली-सब का प्रयोग उन्होंने खुलकर किया है।"[३] भाषा की आवेग-शक्ति, संवेदनशीलता, ध्वन्यात्मकता और व्यंजना-शक्ति की उन्हें बड़ी सटीक पहचान थी।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने निराला की काव्य-भाषा की विशेषता का उल्लेख इस प्रकार किया है—"निराला की काव्य-भाषा जयदेव की भाँति सामासिक, संगीतात्मक और माधुर्य गुण सम्पन्न है, साथ ही, वह कालिदास की शु, ण, लव, व निकाय के विपरीत जयदेव की तरह वेदन्त्य वर्ण के प्रयोगों से भरपूर है।......वह समास-गुम्फित, सरल-प्रसाद-गुण सम्पन्न एवं शालीन देशज का मिश्रण बनकर उनके विराट् काव्य-फलक पर अंकित हो उठी है। स्पष्ट है कि भाषा के क्षेत्र में पवित्रता-वादी दृष्टि निराला की नहीं थी।"[४] रवीन्द्रनाथ टैगोर की सांगीतिकता और लोच-विस्तार क्षमता से उनकी भाषा प्रभावित है।

---

१. परिमल (बादल-राग), पृ० १६०।
२. डॉ० शिवशंकर सिंह : निराला की काव्य-भाषा, पृ० १३७, संस्करण १६७८ ई०।
३. डॉ० कामेश्वर शर्मा : बोध और व्याख्या, पृ० ४०१, संस्करण १६६२ ई०।
४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : कवि निराला, पृ० ८६, संस्करण १६६५ ई०।

'परिमल' और 'अनामिका' की भाषा अत्यधिक समृद्ध तथा संस्कृत-गर्भित है। उसमें समासयुक्त लम्बी पदावली का बाहुल्य है। शब्दों की मितव्ययिता अथवा एक-एक शब्द में एक-एक वाक्य को समेटने की क्षमता 'निराला' की भाषा की अन्यतम विशेषता है। उनकी रचना में शब्द-मितव्ययिता सम्बन्धी धारणा अनायास ही मुखर हो उठी है—'भाषा में तुम पिरो रही हो शब्द तोलकर।'[१]

'निराला' ने अपना समस्त भाषागत प्रयोग अर्थ-गौरव की सृष्टि के लिए किया है।[२] वे मूलतः अर्थ-गौरव के कवि हैं, अभिधा और व्यंजना के कवि हैं। अत्यधिक तत्सम-प्रियता, समास-प्रियता एवं बौद्धिकता के कारण उनकी कविता में कहीं-कहीं दुरूहता आ गयी है। अर्थ-गौरव की सृष्टि प्रायः अर्थगत दुरूहता को आमन्त्रित कर लेती है। यह 'निराला' की दुर्बलता नहीं, कवित्व-शक्ति की परिचायक है। गूढ़ार्थ का प्रयोक्ता कवि अपने पाठकों को रुकने, ठहरने, चिन्तन करने और अध्ययन करने के लिए बाध्य करता है। भावानुकूल भाषा के प्रयोग में वे सिद्धहस्त थे। उनकी रचना में जहाँ ओज काव्यार्थ की गम्भीरता है, वहाँ भाषा क्लिष्ट है, लेकिन जहाँ भाव-प्रवणता का प्राधान्य है, वहाँ भाषा सरल, सरस, प्रवाहमय एवं कोमलकान्त पदावली-युक्त है। 'विद्धाङ्गबद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर-स्राव'[३] में जहाँ दुरूहता है, वहीं 'नयनों का—नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण'[४] में सरलता तथा प्रवाहमयता है। 'निराला' जब भावपूर्ण होकर ऊर्जस्वी शैली में रचना करते हैं तो भाषा को उसका बोझ वहन करना कठिन हो जाता है और वह लड़खड़ाने लगती है। भाषा को नवीन अर्थ-चेतना से समन्वित करने, अर्थगर्भत्व की सृष्टि करने, अपरिचित शब्दों, नवीन अभिव्यंजना-कौशल को व्यवहृत करने और अधिकाधिक समास-गुम्फन से 'निराला' की काव्य-भाषा परम्परागत अर्थ-बोध से बाहर हो गयी है।

'निराला' ने अपनी काव्य-भाषा में तत्सम, तद्भव और विदेशी शब्दों का सुन्दर समन्वय किया है। यथा : 'सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा', चुप-चुप-चुप, है गूँज रहा सब कहीं'[५] —में 'सिर्फ', विदेशी शब्द 'अव्यक्त', तत्सम शब्द 'गूँज', तद्भव शब्द एक साथ सहज समन्वित हैं। इसी प्रकार—'विजन वन वल्लरी पर, सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न'[६] में 'विजन-वन-वल्लरी' और 'स्नेह-स्वप्न-मग्न' तत्सम

१. निराला : परिमल (तरंगों के प्रति), पृ० ७६।
२. '……इनके सारे भाषा प्रयोगों के नाभि-केन्द्र (न्यूक्लियर) या सार (केर्नेल) अर्थ ही है।' —शिवशंकर सिंह, निराला की काव्य-भाषा, पृ० ३६१।
३. निराला : अनामिका (राम की शक्तिपूजा), पृ० १४८।
४. वही : पृ० २५१।
५. वही : परिमल, पृ० १२६।
६. वही : परिमल, पृ० १७१।

पद-शय्याओं के बीच 'सुहाग भरी' तद्भव शब्द-योजना इतनी कुशलता से पिरोई गयी है कि रसज्ञ को रंचमात्र अस्वाभाविक नहीं लगता। निराला जी किसी भी शब्द को काव्य के लिए परित्यजनीय नहीं मानते थे।

'निराला' के काव्य-भाषा-प्रयोग सर्वातिशायी रूप में वैविध्यपूर्ण, बहुस्तरीय, गम्भीर, मौलिक और एकरस न होकर नवरस-रुचिर हैं।[1] उनके ये प्रयोग चौंकाते भी हैं और मुग्ध भी करते हैं। काव्य-भाषा पर कवि के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। निश्चय ही वे खड़ीबोली के क्रान्तिकारी कवि और महान् शिल्पी हैं।

---

१. डॉ० शिवशंकर सिंह : निराला की काव्य-भाषा (निमीलन), पृ० ३६६।

गुरुभक्त सिंह 'भक्त'

प्रेम-भावना :

'भक्त' जी के काव्य में परम्परागत कवियों के समान न तो प्रेम का अश्लील चित्र दिखाई देता है और न रीति-स्वच्छन्द कवियों के समान किसी प्रेमिका के रूप-सौन्दर्य पर रीझ कर खींचा गया प्रेम का तरल चित्र। ये वास्तव में प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य पर रीझे हुए प्रकृति-प्रेमी कवि हैं। कहीं-कहीं पर प्रकृति के व्याज से प्रेम का सूक्ष्म किन्तु उदात्त चित्र भी प्रस्तुत करने में वे सफल हुए हैं। नारी को उन्होंने पूज्य माना तथा प्रेमिका को हृदय-मंदिर की देवी। अपने को प्रेम-पुजारी मान कर उन्होंने प्रेम की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने का आह्वान किया।[1]

'सरस-सुमन' में कवि ने प्रेम-निरूपण प्रेमी 'पवन' तथा प्रेमिका 'सुमन' के व्याज से किया है। प्रेम-विह्वल प्रेमी को जब प्रेमिका का बार-बार स्मरण होता है तो वह चक्कर खाने लगता है तथा विरह-व्यथा व्याकुल होकर हा:-हा: शब्द की ध्वनि करता है। इसी भाव को कवि ने अपनी कविसुलभ प्रतिभा द्वारा इतनी बारीकियों से उरेहा है कि पाठकगण उसे पढ़ कर रसमग्न हुए बिना नहीं रहते।[2]

सघन कुंजों में वृक्ष परस्पर आलिंगनबद्ध खड़े रहते हैं। उनकी शाखाएँ हरे-हरे पल्लवों से आच्छादित रहती हैं, जिस पर कुसुमित लताएँ फैलकर मंडप-सा बना लेती हैं। इन वृक्षों के पत्ते और डालियाँ इतनी मिली हुई होती हैं कि सूर्य की किरणें भी अन्दर बड़ी कठिनाई से प्रविष्ट हो अपनी कला का प्रदर्शन कर पाती हैं। प्रकाश के अभाव में मधुमक्षिका को भी मधुरस लेकर चलने में बार-बार कठिनाई का अनुभव होता है। यही सघन कुंज है जहाँ पर मानव की छाया भी आज तक नहीं पड़ी, पवन की प्रेमिकाओं का विलास-गृह है। कुसुम-कलियाँ अभी तक अछूती ही हैं क्योंकि उन्हें अभी तक सूर्य की किरणें भी जूठी नहीं कर पायीं और न वे किसी विमुग्धा बाला के कम्पित करों से किसी प्रेमी के गले का हार ही बनीं[3]। इसी प्रकार कवि ने अनेक छन्दों में प्रेम का बड़ा भव्य दृश्य प्रस्तुत किया है।[4]

सौन्दर्यानुभूति :

"भक्त" जी मानवेतर जगत् से सौन्दर्य लेकर हिन्दी-जगत् में अवतरित हुए।

---

१. वन-श्री, पृ० १३।

२. सरस सुमन, पृ० २, संस्करण १६२५ ई०।

३. वही, पृ० ५।

४. वही, पृ० ११।

प्रकृति की अप्रतिम शोभा पर वे प्रारंभिक अवस्था से ही मुग्ध थे। अंग्रेजी कवियों की भाँति सौन्दर्यानुभूति की अतुल राशि अपने क्रोड़ में वे समाहित किये हुए थे।

प्रकृति, नारी का दूसरा रूप है। 'भक्त' जी की चेतना 'सरस-सुमन' की कविताओं में विप्रलंभ शृंगार का कलेवर धारण कर अवतरित हुई है। 'चपला' शीर्षक कविता में कवि की पूर्व स्मृतियाँ सजल हो उठी हैं जिसे पढ़कर सहृदय पाठक सर्वाङ्ग डूब जाता है।[1] इस कविता में कवि की आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति, आत्मरंजन एवं स्वान्तः सुख से अनुप्राणित होकर विषयीगत बन गयी है। इसमें कवि ने दर्शन का सहारा छायावादी कवियों की तरह नहीं लिया है वरन् दर्शन यहाँ कवि के मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है। इस कविता में कवि ने कहीं भी प्रेम का संकेत नहीं किया है किन्तु ऐसा लगता है कि इस कविता का उनके जीवन के किसी बिन्दु से सम्बन्ध अवश्य है।

'वासन्ती' शीर्षक कविता में भक्त जी ने जो चित्र खींचा है वह अत्यन्त सजीव एवं मार्मिक है। यह सजीवता उस समय और अधिक सुन्दर बन जाती है जब हम भ्रमर-भक्त की व्यंजना में उसे प्रतीकात्मक समझने में समर्थ होते हैं।[2]

प्रकृति-चित्रण :

'भक्त' जी मूलतः प्रकृति-प्रेमी कवि हैं। 'वर्ड्सवर्थ' की भाँति प्रकृति के प्रति आत्मीयता एवं अनुरक्ति का भाव उनके हृदय की गहराइयों में तरंगायित होता रहा है। वे परम्परागत कवियों की घिसी-पिटी लीक पर नहीं चल सके। उनका प्रकृति-प्रेम सहज स्वाभाविक रूप से मानवीय संवेदना की भाव-भूमि पर पल्लवित हुआ है। उनकी सहानुभूति साधारण पर विशेष रूप से रही है।।[3] उनका प्रकृति-प्रेम केवल कोयल, चातक, बुलबुल तक ही सीमित नहीं है वरन् साधारण 'अगिन' एवं 'नील-कण्ठ' के क्रिया-कलापों पर मोहित होकर उन्होंने पूरी 'वन-श्री' लिख डाली। 'शंख पुष्पी', 'वनगोभी' आदि उपेक्षित प्राकृतिक उपकरणों पर दृष्टिपात करने वाले प्रथम कवि 'भक्त' जी ही हैं। वृक्ष के पत्तों को झड़ते हुए सब ने देखा है, लेकिन पृथ्वी की इस आकर्षण लीला को देखकर उसमें अन्तर्निहित शक्ति की कल्पना करना न्यूटन जैसे पारखी वैज्ञानिक का ही काम था। 'भक्त' जी ऐसे ही साधारण को असाधारणत्व प्रदान वाले साहित्यकार हैं।

बरसात में जब आकाश-मण्डल में घने काले बादलों के छाये रहने पर दिन

---

१. (क) सरस-सुमन, पृ० १४।
   (ख) वही, पृ० १६।

२. वही, पृ० २३, २४।

३. वही, पृ० २३।

में ही अन्धकार छा जाता है, उस समय ग्रामीण अंचल में सूर्यास्त की सूचना चकबड़ के सिकुड़ते हुए पत्तों से मिलती है। पत्तों के दो दल जो दिन में फैले रहते हैं वे संध्या होते ही सिकुड़ कर एक-दूसरे से चिपक जाते हैं। कवि ने 'वन-श्री', 'निशा' शीर्षक कविता में वनस्पतियों के इन क्रिया-व्यापारों का बड़ा ही सुन्दर चित्रांकन किया है।[1] वास्तव में प्रकृति से उन्होंने प्रेरणा ग्रहण की, सौन्दर्य ने उनके भावों को जगाया, वाणी ने रूप दिया और प्रतिभा ने उसका शृंगार किया। अतः स्वरचित काव्य की छवि पर ही कवि मुग्ध रहता था।

भक्त जी के शब्दों में—"इन प्राकृतिक सुषमाओं ने पूर्वजन्म-संचित सोते हुए काव्य-सोते को गुदगुदाकर जगा दिया और एक दिन एक भव्य भवन की विमल चाँदनी में नहाती हुई अनुपम छटा को देख कर वाणी मानो रसवन्ती रसना पर थिरकने लगी।[2] प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन श्रीधर पाठक के बाद 'भक्त' जी ने किया है। प्रकृति के जो पक्ष उपेक्षित थे या जिनका ग्रहण काव्य में नहीं हुआ था, उसे ग्रहण कर उन्होंने अपने सहृदयता का परिचय दिया। यद्यपि सृष्टि के उपेक्षित क्षेत्र की ओर आकृष्ट होने की अभिरुचि इन कवियों ने अंग्रेजी साहित्य से ग्रहण की, तथापि यह भारतीय साहित्य की प्राचीन प्रवृत्ति रही है। महर्षि वाल्मीकि ने प्राकृतिक वर्णन में सामान्य पेड़, लता-गुल्मों का वर्णन किया था। संस्कृत वाङ्मय में यह प्रवृत्ति कालिदास, भवभूति तक बनी रही, परन्तु हर्ष तक आते-आते यह प्रवृत्ति बदल गयी। काव्य में अब केवल विशिष्ट का ही महत्त्व रह गया, साधारण उपेक्षित हो गया। प्रारम्भ में हिन्दी कवियों ने प्रकृति पर दृष्टिपात किया ही नहीं और किया भी तो उससे केवल उद्दीपन का काम लिया। आधुनिक काल में आकर प्राकृतिक विभूतियों का दर्शन 'पाठक' जी के बाद 'भक्त' जी ने कराया।

'मधुऋतु' नामक कविता में जहाँ कवि को प्रकृति का एक साधारण-सा उपकरण लुभाने में सफल हुआ है वहीं मानव-जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव के चित्र भी बड़े ही प्रभविष्णु बन पड़े हैं। रससिक्त गन्ने के पोर कवि के तरल भावों को उद्दीप्त कर देते हैं जिससे उनका लाज-संकोच संयम का बाँध तोड़कर प्यार के तरंग में अभिसार करने को मचल उठता है।[3] वैयक्तिकता से परे, दुराव-छिपाव की अस्वस्थ भावना से मुक्त, प्रकृति-परिवेश में स्वच्छन्द प्रेम की ऐसी सार्वभौमिक कल्पना हिन्दी साहित्य में अनूठी है।

---

१. वन-श्री (निशा), पृ० ३१।

२. गुरुभक्त सिंह 'भक्त' : कविता की कहानी (नव शताब्दी तथा भक्त का उदय) पृ० २, ३, अप्रकाशित।

३. आधुनिक कवि (होली), पृ० २८, भाग—१२।

प्रकृति के प्रति कवि की आत्मीयता हृदय को लपेटकर चलती है। इसी कारण उनके काव्य में आन्तरिक अनुभूतियों का सहज प्रसार संभव हो सका है। न तो उसमें दर्शन का बोझ है और न परम्पराओं का बन्धन बल्कि कवि का स्वच्छन्द व्यक्तित्व ही उसमें घुल-मिल गया है। "भक्त जी की भावधारा में एक अनूठी मादकता है। स्वच्छन्द आवेग अपने सहज उष्मा के साथ उनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुआ है। इस सहज भाव-विस्तार में कहीं भी दर्शन और विचार-रूढ़ियों की गाँठ नहीं है। समस्त भाव-विस्तार के पीछे कवि का एक फड़कता हुआ स्वच्छंद व्यक्तित्व विद्यमान है।"[१]

मानवीय भावना :

"जिस प्रकार 'वर्ड्सवर्थ के समान 'भक्त' जी प्रकृति के पुजारी हैं, उसी प्रकार वे उन्हीं के समान साधारण मानवता के भी पुजारी हैं। यहाँ भी असाधारण पर ही उनका अनुराग नहीं है, वे जन-साधारण पर भी सहृदय कलाकार की दृष्टि डालते हैं।"[२] दीन-हीन के प्रति उनकी सहानुभूति 'वन-श्री' में संकलित 'भड़भूजा', 'गाड़ीवान्', 'कृषक वधूटी', 'नाविक वधू', 'अनाथ' आदि कविताओं में देखी जा सकती है।

सन् १९२०-२५ के बीच जब कि स्वच्छन्दतावादी काव्य आध्यात्मिक संस्पर्श में लीन था, 'भक्त' जी ने रहस्यमयी आध्यात्मिकता से दूर हटकर मानवीय भावनाओं को अपने काव्य में स्थान दिया। इस मानवतावादी कवि का न तो बाह्य-प्रदर्शन में कोई विश्वास था और न रहस्य-दर्शन में। कवियों की दलगत भावना से दूर हटकर मानवीय संवेदना का अनुरेखन करना ही कवि का अभिप्रेत रहा। 'भक्त' जी के शब्दों में—"मेरी कविता का विषय रहा है—मानव और मन तथा विविध परिस्थितियों में उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया। साधारण और उपेक्षित की ओर मेरा विशेष ध्यान गया चाहे वे जड़ हों अथवा चेतन।"[३]

कृषक जीवन के सुखमय परिवार की अद्भुत झाँकी कवि ने 'चपला'[४] एवं 'कृषक वधूटी'[५] में बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की है। मानव-मन की सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं

---

१. डॉ० त्रिभुवन सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा, पृ० १७२, तृतीय संस्करण १९७७ ई०।
२. डॉ० किशोरीलाल गुप्त : गुरुभक्त सिंह 'भक्त' की काव्य-साधना, 'आज' साप्ताहिक विशेषांक, ४ अगस्त, सन् १९६३ ई०।
३. गुरुभक्त सिंह 'भक्त' : आधुनिक कवि भाग-१२, पृ० १०।
४. आधुनिक कवि-भाग-१२, पृ० ११४, प्रथम संस्करण १९६७ ई०।
५. वन-श्री, पृ० ८९।

का अध्ययन, नर-नारी के हृदय का भाव, उनकी आकृति, मुद्रा तथा क्रिया-व्यापारों को आँक लेने की अद्भुत क्षमता, जीवन-लीला को जानने की विकट अभिलाषा, अन्वेषण और खोज की लगन तथा प्रकृति-सुन्दरी की छटा पर विमुग्धता एवं विभोरता, आँखों देखा दृश्य चित्त पर उतार कर उसे कविता द्वारा उसी सजीवता और रंगों में अंकित कर देने की कला, शब्दों का जादू, चुलबुलापन, सरस मुहावरेदार चलती भाषा का मोहन मंत्र आदि 'भक्त' जी के प्रकृत गुण हैं।

काव्य-शिल्प :

(क) वाग्वैदग्ध्य :

वाग्वैदग्ध्य काव्य की आत्मा भले ही न हो, लेकिन उसके प्रवेश से कविता में रमणीयता अवश्य आ जाती है। रीतिकाल के कुछ कवि इसी काव्य-गुण के कारण आज भी भावुक व्यक्तियों के गले का हार बने हुए हैं। खड़ीबोली के कवियों में 'भक्त' जी का काव्य वाग्विदग्धता की खान है। चाहे प्रबन्ध काव्य हो या स्फुट रचनाएँ काव्य का यह तत्त्व सर्वत्र विद्यमान है। "संसार स्वार्थों की क्रीड़ास्थली है। यहाँ का मानवीय आकर्षण भी स्वार्थों की पूर्ति पर निर्भर रहता है। जिससे हमारे स्वार्थों की पूर्ति होती है वही वस्तु हमें प्रिय है अन्यथा वह वस्तु हमारी उपेक्षा का कारण बन जाती है। 'भक्त' जी ने इसी भाव की अभिव्यक्ति अन्धे (जलविहीन) कुएँ के माध्यम से की है।"[१] वही भूर जो जलस्रोत कहलाता है, जब उसमें मिट्टी भर जाती है तो उसका अस्तित्व ही खतम हो जाता है। ऐसे कुएँ से पानी भरना बालू से तेल निकालने के समान असम्भव है। 'भक्त' जी ने ऐसे ही असम्भव कार्य को सम्भव कराया है। पानी तो भर ही गया, गागर में न सही आँखों में ही सही।[२]

(ख) चित्रात्मकता :

देश-काल के परिवेश में 'भक्त' जी ने काव्य-चित्रों में रूप-रंग, साज-सज्जा

---

१. 'जीवन दे जो श्रम हरता था,
　　　　भूल गया निज धंधा है।
　टूटी पड़ी जगत है उसकी,
　　　　जगत टूटता था जिस पर
　भूरि-भूरि था जिसे सहारा
　　　　गया आज वह रज से भर।' —वन-श्री, पृ० ६३।

२. 'एक बटोहिन सलिल के लिए
　　　　आई वहाँ दूर से चल
　रस्सी डाले साँस खींचती
　　　　आँखों में भर लाई जल।' —वही, पृ० ६३।

का उचित संदर्भ में ध्यान रखा है। 'भक्त' जी की स्फुट रचनाओं में कुछ छन्द बड़े प्रभविष्णु हैं। 'अभिसारिका' में एक ग्रामीण युवती अपने ग्रामीण प्रेमी के साथ अभिसार करने को चली जा रही है। ग्रामीण एवं ग्रामीणा का व्यक्ति-चित्र तो है ही साथ ही, पृष्ठभूमि जिस पर इन चित्रों की स्थापना की गयी है, साकार हो उठी है।[1] इसी प्रकार इनकी स्फुट रचनाओं में जैसे—'कृषक वधूटी', 'चपला', 'मृगछौने,' 'शिवालय' आदि में बड़े ही हृदयस्पर्शी दृश्य प्रस्तुत हुए हैं।

(ग) छन्द :

'भक्त' जी आधुनिक कवि हैं, लेकिन आत्मा साहित्य के इतिहास से अनुप्राणित है। उन्हें अतीत से बहुत लगाव था इसी कारण उन्होंने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में परम्परागत छन्द, दोहा, कविता और सवैया का अधिक प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा के 'पद' का भी उदाहरण उनकी 'प्रेमपाश' आदि रचनाओं में मिल जाता है।

(घ) भाषा :

'भक्त' जी की भाषा सामान्यतः बोल-चाल की भाषा है। प्रारम्भ में उर्दू, फारसी के भी शब्द आ गये हैं, जो भाषा की सफाई और मुहावरेदानी में सहायक हुए हैं। भक्त जी के शब्दों में—"मेरी कविता की धारा उर्दू-कालिन्दी के कूलों पर केलि करती हुई गौरांगी अंग्रेजी-गंगा को गले लगाती, हिन्दी की सरस्वती धारा के संग प्रयाग में संगम कर 'भक्त' भागीरथ की अनुगामिनी बन, सुरसरि-सी अग्रसर हो चली।"[2]

पावस की अँधेरी रात में एक ग्रामीण कुमारी का जाड़े से काँपते हुए, वस्त्र को समेटे, अपनी आँखों को बिजली के कौंधने से बन्द किये हुए खड़े होने का कितना स्वाभाविक चित्र 'भक्त' जी ने खींचा है, देखिए—

'जलज पटल के विपुल वारि से बचने को तब वृक्ष तले।
शीतल वायु झकोरों से लड़ दाबे कर के चीर भले।
नव आश्रित लतिका से लिपटी रहती लिपट सहारे से।
मूंदे नयन चंचल चमके कंपती थर-थर जाड़े से।'[3]

यहाँ भाषा बड़ी ही सरस तथा हृदयग्राही है। भावों के साथ भाषा की मधुरता देखने योग्य है। चिर-परिचित प्रचलित शब्द भी बड़ी स्वाभाविकता से प्रयुक्त हैं। वास्तव में सरल, स्वाभाविक भाषा ही 'भक्त' जी के काव्य का प्राण है।

---

१. 'नंगे पाँव चली आती है, लिए दूध की मटकी।
गुखरू के कितने ही काँटे, पग में लगे न अटकी।
सारी की लहरी में पड़कर, झुक-झुक शीश नवाकर।
कुसुमित घासों ने पुष्पों से, भेजा उसे सजाकर।' —वन-श्री, पृ० ६३।

२. गुरुभक्त सिंह 'भक्त' : कविता कहानी (नव शताब्दी तथा भक्त का उदय), पृष्ठ ४, अप्रकाशित।

३. वही : सरस-सुमन, पृ० १६, संस्करण १६२५ ई०।

अध्याय ४

रीतियुगीन स्वच्छन्द काव्य-प्रवृत्तियाँ

प्रेम-निरूपण :

"स्वच्छन्द कवियों का मूल वक्तव्य प्रेम है। इसी मूलवर्ती संवेदना से उनका सम्पूर्ण काव्य स्पन्दित है, चाहे वह मुक्तकों के रूप में लिखा गया हो, चाहे आख्यान के रूप में। आख्यान रूप में संवेदित किये जाने पर भी प्रेम ही समूची कथा का मूल तत्त्व, सूत्र एवं वर्ण्य मिलेगा। मुक्तकों में तो वक्तव्य विषय से इधर-उधर जाने की गुंजाइश नहीं, परन्तु प्रेम की सुरा पीकर छके हुए ये कवि प्रबन्धों में भी इधर-उधर नहीं हुए।" [1] वास्तव में प्रेम ही इन कवियों का प्रणव रूप है, जिसका उन्होंने आजीवन स्तवन किया।

रीतिमुक्त कवियों ने परम्परा के प्रति अपनी विद्रोही चेतना को रूपायित करने में जैसी उत्कट ललक प्रदर्शित की वह निश्चय ही अपने आप में अप्रतिम एवं बेजोड़ थी। भावुक, संवेदनशील एवं हृदय की ऋजुता पर सच्ची आस्था रखने वाले इन कवियों ने अपने काव्य में प्रेम के उदात्त स्वरूप को निरूपित किया है। प्रेम-मार्ग मे आने वाले अनेक घात-प्रतिघातों को सहते हुए भी अपने प्रेम को अक्षुण्ण बनाये रखा।

प्रेम में उन्मत्त इन कवियों ने कभी यह परवाह नहीं की कि उनका प्रिय उनसे प्रेम करे ही, क्योंकि सच्चे प्रेम में आदान की इच्छा कम प्रदान की प्रबल होती है। [2]

---

१. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा : रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ६७, संस्करण १९६७ ई०।

२. (क) 'चाहो अनचाहो जानप्यारे पै आनन्दघन
प्रीति-रीति विषम सु रोम-रोम रमी है।' —घनआनंद ग्रं० पृ० ६१, छन्द १८७।

(ख) 'उपचार औ नीच विचारने ना उर अन्तर वा छवि की घर है।
हमको वह चाहै नहीं हम चाहिये वाहि विथा हर है।'—बोधा ग्रन्थावली, पृ० २।

(ग) 'मन भावै सुजान सोई करियो हमें नेह की नातो निबाहने हैं।'
—ठा० ठ०, ०पृ १४।

स्वच्छन्द कवियों के प्रेम की कसौटी मीन, चातक एवं पतंग नहीं हैं। इन कवियों के प्रेम के समक्ष रीतिमार्गी कवि हीन जान पड़ते हैं। इन कवियों का प्रिय अत्यन्त निर्मम एवं कठोर है। इसी कारण इनके प्रेम में जितनी विवशता, तड़प और आह्लाद दिखाई पड़ता है वैसा उस युग के किसी कवि में नहीं।[१]

स्वच्छन्द कवियों की प्रेमानुभूति बाह्य न होकर आन्तरिक है। इनके हृदय-रूपी सागर में भाव की असंख्य तरंगें उठा करती हैं। ऐन्द्रियता की उष्ण गंध इनके प्रेम-प्रसंगों में प्रायः नहीं है। उसमें 'भावना-भेद' के अनेक संश्लिष्ट एवं विश्लिष्ट रूपों को अतुल गहराई प्रदान करने का अथक प्रयास सन्निहित है। प्रेम के स्वरूप को जैसी व्यापकता इन कवियों ने प्रदान की, उससे यही प्रतीत होता है कि इनका विश्वास अभिव्यंजना-कौशल से अधिक आनुभूतिक कथ्य पर था।

रीतिबद्ध कवि भावपक्ष की दृष्टि से रंक दिखाई देते हैं। इन कवियों ने अपने काव्य में स्वानुभूतिक चित्रण न कर लोकानुभूति को चित्रित किया, दरबार के बाह्याकर्षण एवं वैभव-विलास को ही कल्पना का पुट देकर अपने काव्य का विषय बनाया। उन्होंने अन्तर्दशाओं की अपेक्षा काल्पनिक प्रणय तथा शारीरिक माप-तौल के प्रति अधिक रुचि प्रदर्शित की है। बाह्य प्रदर्शन की दृष्टि से व्यंजित रीतिमार्गियों की उक्तियों में जहाँ ऊहात्मकता की भरमार है, वहीं रीतिमुक्तों के कथ्य आनुभूतिक आवेग में संवलित होने के कारण हृदय को स्पर्श करते हैं।

रीति-स्वच्छन्द कवियों का प्रेम विलक्षण था। उनके प्रेम में एकोन्मुखता थी। अपनी-अपनी नायिकाओं से उपेक्षित होकर भी ये आजीवन उनकी रूपराशि का मानस-पान करते रहे और जब उपालंभ भी दिया तो याचना भरी वाणी में, निन्दक रूप में नहीं।[२]

भारतीय वाङ्मय में गोपियाँ प्रेम की प्रतीक मानी गयी हैं क्योंकि असह्य प्रेम-पीर सहकर भी वे प्रेम मार्ग को प्रशस्त करती हैं। इसी कारण स्वच्छन्द कवियों ने अपनी प्रेमाभिव्यक्ति के लिए गोपियों को माध्यम बनाया। रसखान ने प्रेम के समक्ष संसार के समस्त सुख-साधनों को तुच्छ समझा।[३] 'घनानन्द' सुजान के रूप पर इतने रीझ चुके थे कि एक क्षण भी इधर-उधर नहीं जा सकते थे।[४] 'बोधा' ने लोक की लज्जा और परलोक के भय को प्रेम पर न्यौछावर कर दिया था।[५]

१. घनआनंद ग्रं०, पृ० ६५, छं० २०२।
२. ठा० ठ०, पृ० १६, छं० ४५।
३. रसखानि ग्रन्थावली, पृ० ११०, सं० २०२१ वि०।
४. घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० १५, छं० ४१।
५. बोधा ग्रन्थावली, इ० ना०, पृ० ३।

'आलम' ने तो सच्ची प्रीति पर सब कुछ न्यौछावर कर देने का सन्देश दिया है।[१]

रीति-स्वच्छन्द कवियों को दरबार की चाटुकारिता पसन्द नहीं थी। इसी कारण इन्हें राजदण्ड का भागी होना पड़ा और प्रिय-वियुक्त होकर अभिशप्त जीवन जीना पड़ा। यही दशा वास्तविक तन्मयता की होती है, जिसे प्राप्त कर प्रेमी, प्रिय को सर्वत्र देखने लगता है। "प्रेमी को अपने प्रेमपात्र से वियुक्त होने पर भी उसकी स्मृति सदा आनन्द-विभोर किये रहती है और वह उसके विरह में दुःख झेलना तक सुखद समझता है।"[२] वास्तव में रीतिमुक्तों ने प्रिया-वियुक्ति को इसी रूप में ग्रहण किया है। "इन कवियों का प्रेम मुख्यतः अशरीरी और मानसिक है। वैयक्तिकता के प्रभाव के कारण इनके प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण को रोमाण्टिक प्रेम की संज्ञा दी जा सकती है।"[३]

उदात्त-प्रेम :

स्वच्छन्द कवियों का प्रेम एकोन्मुख होने के कारण ही उदात्त स्वरूप ग्रहण कर सका है। यह भाव भले ही प्रिय पक्ष का न होकर प्रेमी पक्ष का हो, लेकिन यह वैयक्तिक होने के कारण अत्यन्त मौलिक एवं अनूठा है। इन कवियों का चरमोत्कर्ष प्रेमी-प्रिय के एकाकार होने में मिलता है। प्रेमी और प्रिय में इस स्थिति तक पहुँचने पर कोई भेद-भाव नहीं रह जाता, चन्द्रमा चकोर बन जाता है और चकोर चन्द्रमा। यही अवस्था चरमोत्कर्ष की है। प्रेम के इसी स्वरूप का प्रतिपादन घनानन्द ने अत्यन्त सुन्दर शब्दों में किया है।[४]

इन कवियों की प्रेमाभिव्यक्ति भी प्रेम-भाव की तरह उदात्त है। उन्होंने प्रेम को जीवन का सार माना तथा प्रेम-पिपासु दृष्टि को अत्यन्त उत्कृष्ट और प्रेम-हीनों की निन्दा की।[५] रसखान ने प्रेम को हरि रूप कहा—'प्रेम हरी को रूप है त्यों हरि प्रेम सरूप।'[६]

इन कवियों के प्रेम में दैन्यभाव की प्रधानता है। उन सब ने प्रिय को हर दृष्टि से श्रेष्ठ समझा तथा अपने को उसके समक्ष दीन-हीन और लघु। इसी भाव से इन प्रेम-पिपासुओं ने प्रिय के रूप और क्रिया-व्यापारों का चिन्तन तथा उसके प्रति

---

१. हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० ६१६।

२. परशुराम चतुर्वेदी : मध्यकालीन प्रेम-साधना : पृ० १८२, संस्करण १९५२ ई०।

३. डॉ० बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेमाभिव्यंजना, पृ० २५६, सं० २०१५ वि०।

४. घनआनँद ग्रं०, पृ० ९५, छं० २९६।

५. घनआनँद कवित्त, पृ० ३३८, सं० २०१७ वि०।

६. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली, पृ० ११०।

अपनी प्रेमानुभूतियों का अभिव्यंजन किया।[1] यह प्रेम का वही रूप है जो भगवत् प्रेम में परिलक्षित होता है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने प्रेम के कृत्रिम-व्यापारों को हेय समझा। उनके प्रेम-चिन्तन में अनन्यता और प्रेम-तन्मयता का वह रूप विद्यमान है जो प्रेम को उदात्त बनाता है।[2] उनका स्वच्छन्द प्रेम-भावन उच्चकोटि का है। प्रेम के प्रति उनका विश्वास इतना गहन और आस्था इतनी पुष्ट है कि इसी के सहारे वे संसार-सागर को पार करना चाहते हैं।[3] इस प्रकार के उदात्त एवं भावपूरित प्रेम के लिए लौकिक बन्धनों से मुक्ति आवश्यक है। इसी कारण प्रेम के मार्ग में नियम-पालन करने वालों को 'घनानन्द' ने उलूक तक कहा है।[4]

विषम-प्रेम :

प्रेम में विषमता फारसी काव्य-परम्परा की देन है। यह विषमता प्रेमपात्र की निष्ठुरता को लेकर फारसी काव्य के माध्यम से हिन्दी में आयी है। उससे रीतिमुक्त स्वच्छन्द कवि प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। अन्तर केवल इतना है कि फारसी में जैसा वैषम्यमूलक प्रेम का निरूपण हुआ है, रीतिमुक्त कवियों ने उसे तद्वत् ग्रहण नहीं किया, वरन् विषम-प्रेम की अभिव्यक्ति को अपने हृदय से अधिकाधिक सम्पृक्त करने की चेष्टा की। हृदय के संस्पर्श से इनके विषम-प्रेम में तीव्रता एवं प्रभविष्णुता अधिक बढ़ गयी है। रीतिमुक्त कवियों ने विषम-प्रेम के अन्तर्गत 'प्रिय की निष्ठुरता, विश्वासघात तथा प्रेमी के अकेलेपन के व्यथा-चित्र'[5] के साथ भारतीय भक्तिमार्ग की अनन्यता, आत्मसमर्पण और त्यागनिष्ठा का अनुपम संयोजन किया है। इनकी सम-विषम प्रेमानुभूतियों का स्तर निश्चय ही फारसी काव्य-परम्परा के विषम-प्रेम-निरूपण से बहुत-कुछ भिन्न हो गया है।

भारतीय प्रेम-पद्धति के अन्तर्गत उभयपक्षीय प्रेम स्वीकृत है। कहीं-कहीं विषम-प्रेम का संकेत-मात्र उपलब्ध होता है। तुलसीदास ने भक्तिमार्ग के अन्तर्गत चातक-प्रेम के रूप में विषम-प्रेम का संकेत किया है लेकिन इसका सम्यक् स्फुरण एवं विकास रीतिकाल में कवियों के काव्य में देखने को मिला। विषमतामूलक प्रेम-चित्रण में प्रेमी की प्रिय के प्रति उपालम्भ, उसकी निष्ठुरता और उसके अमानवोचित

---

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ६६, छं० २६६।
२. घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ३३, छं० १०१।
३. बोधा ग्रन्थावली, पृ० २।
४. घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ४६, छं० १५१।
५. डॉ० बच्चन सिंह : रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, पृ० २४८, सं० २०१५ वि०।

व्यवहार की चर्चा स्थल-स्थल पर की गयी है।[१] प्रेमी प्रिय के लिए रोता है, तड़पता है यहाँ तक कि वह मेघ से प्रार्थना करता है कि वे उसके आँसुओं को ही उस अविश्वासी सुजान के आँगन में ले जाकर वर्षा दें।[२] लेकिन प्रिय इतना उदासीन है कि प्रेमी को पहचानता भी नहीं।[३]

विषम-प्रेम-निरूपण में रीति-स्वच्छन्द कवियों का अभिप्रेत प्रिय को क्रूरकर्मी दिखाना नहीं है वरन् अपनी ही प्रेम-पिपासा को ध्वनित करना है। प्रिय को उपालम्भ देते समय भी वे अपने ही भाग्य को दोष देते हैं—'ऊधौ जू दोष तुम्हें न उन्हें हम आपुही पाँव पै पाथर मारे।'[४] विषम-प्रेम के माध्यम से उनके हृदय की टीस, पीड़ा और विवशता का सहज रूप में प्रस्फुटन हुआ है।[५] प्रिय की क्रूरता उनकी प्रणय-साधना को अधिक ऐकान्तिक बना देती है।

सूफी प्रेम-पद्धति में 'प्रेम की पीर' का आधिक्य और इश्कमजाजी से इश्क-हक़ीकी की प्राप्ति का विधान है। रीति-स्वच्छन्द कवियों के काव्य में प्रायः दोनों की झलक मिलती है। हृदय की लपेट के कारण इस प्रकार के चित्रण में सूफी प्रेम-दर्शन और भारतीय काव्य-दर्शन घुल-मिल सा गया है। 'बोधा' इसके अपवाद हैं। 'घनानन्द' के काव्य में प्रिय की तटस्थता और प्रेमी की 'प्रेम-पीर' चाह के गहरे रंग में भींग जाने पर उस पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है जहाँ जीवन और मृत्यु का संघर्ष चलता है।[६] लेकिन प्रेमी अपनी इश्कमज़ाजी की साधना से विरत नहीं होता, क्योंकि उसके हृदय में प्रियतम-मिलन की अटूट लालसा है। इसलिए वह अपने हृदय-रूपी दीपक में लालसा की बत्तियों को प्रेम-रूपी घी में भिगोकर जला देता है—'नेह सों भोय संजोय धरी हिय-दीप दसा जु भरी अति आरति।'[७] इश्कमज़ाजी में तो प्रायः सभी रीति-स्वच्छन्द कवि नख-शिख डूबे रहे, लेकिन इश्कमज़ाजी को इश्कहक़ीकी में पर्यवसित करने में केवल 'घनानन्द' और 'रसखान' ही खरे उतरे।

---

१. क. घनानँद ग्रं०, पृ० ६१, छं० १६१।
   ख. घना० कवित्त, पृ० १२८, सं० २०१७ वि०।
   ग. ठाकुर ठसक, पृ० १३।
२. घनआनँद ग्रं०, पृ० १०८, छं० ३३६।
३. वही, पृ० १२४, छं० ४०४।
४. लाला भगवानदीन : ठाकुर-ठसक, पृ० ४३।
५. आलम-केलि, पृ० ७६, छं० १८८।
६. घनाआनँद ग्रं०, पृ० ६४, छं० १६६।
७. वही : पृ० १४८।

इस धारा के सभी कवियों में 'घनानन्द' महाकापालिक हैं जो अपने ही अस्थि-अवशेषों पर समाधिस्थ होते हैं। 'आलम' की विडम्बना कितनी भयंकर है कि जहाँ-जहाँ उन्होंने प्रेम-केलि की, वहाँ-वहाँ की कंकड़ियाँ उन्हें चुननी पड़ीं। 'रसखान', मोहिनी के मन-भाव से आजीवन पीड़ित रहे। 'बोधा', सुभान की अस्वीकृति से कट जाते हैं तथा 'ठाकुर' के लिए सुजान सुनारिन की उपेक्षा असह्य हो जाती है। इस प्रकार सभी कवि अपने प्रिय द्वारा उपेक्षित होते हैं। प्रिय की यही उपेक्षा विषम-प्रेम-निरूपण में मुखरित हुई है।

सौन्दर्य-बोध :

सौन्दर्य, प्रेम का आलम्बन है, मूल स्रोत है। सौन्दर्य चाहे स्थूल हो या सूक्ष्म, बाह्य हो या आन्तरिक, शारीरिक हो या मानसिक प्रेमानुभूतियों को उद्दीप्त करने में सदैव सहायक होता है। स्वच्छन्द कवियों ने आन्तरिक अनुभूतियों से प्रेरित होकर प्रिय के रूप-सौन्दर्य का बड़ा ही हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। उनका प्रिय लौकिक भी है और अलौकिक भी। दोनों ही दशाओं में आसक्ति की प्रबलता के कारण प्रिय का बाह्य सौन्दर्य-चित्र, आन्तरिक सौन्दर्य-चित्र से मिलकर दिव्य हो उठा है। "जहाँ प्रेम कृष्ण, राधा और गोपियों जैसे दिव्य आलम्बनों के प्रति है वहाँ आसक्ति और सौन्दर्य-निष्ठा का कहना ही क्या ? पग-पग पर आत्मोत्सर्ग की भावना का दर्शन होता है।"[१]

रीति-स्वच्छन्द कवियों की कविताओं में गहरी व्यक्तिनिष्ठता है जो उनकी प्रेम कहानियों को बहुत-कुछ सत्य सिद्ध करती है। इन कवियों ने रूपांकन में प्रिय के स्थूल अप्रधान अंगों की अपेक्षा उसके तरल सौन्दर्य पर अधिक ध्यान दिया है।[२] नख-शिख परम्परा के पुराने चित्रों एवं उनके धुंधले रंगों के प्रति न उनके मन में किसी प्रकार का चाव था और न उनको फिर से सुसज्जित करने की ललक।

परिवेश एवं युग-चेतना के परिवर्तन के साथ ही भावाभिव्यक्ति में भी परिवर्तन होता है। यही कारण है कि रीतिमुक्त कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि 'देव', 'बिहारी' की सौन्दर्य-दृष्टि से बहुत-कुछ भिन्न है। इसका मूल कारण यह है कि 'घनानन्द' तक आते-आते रीतियुगीन सौन्दर्य चित्तवृत्तियों का अन्त हो रहा था। काव्य-रूढ़ियों से ग्रस्त रीति-काव्य के अपकर्ष की रेखाएँ शनैः-शनैः अधिक स्पष्ट होने लगी थीं। अब मर्मी सौन्दर्य-चेतना की गहराइयों के प्रति अत्यधिक सजग थे। स्वच्छन्द कवियों ने एक नये परिवेश में सौन्दर्य-तत्वों को संगठित करने का प्रयास किया। ऐन्द्रिय-

१. डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा : रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० १३०, संस्करण १९६७ ई०।

२. घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ५८५, छं० २।

तामूलक चेतना से ऊबे हुए इनके मानस ने फिर से सौन्दर्य को झाँक कर देखा और उसके लिए अपने काव्य में एक नयी भावभूमि प्रस्तुत की।

स्वच्छन्द कवियों को प्रिय का लावण्य-रूप अधिक प्रिय था। उन्होंने प्रिय की लज्जायुक्त चितवन, रसपूर्ण वार्तालाप, हँसी तथा भंगिमा का अत्यन्त मनमोहक चित्रण किया।[1]

नख-शिख रूप-चित्रण की प्रवृत्ति इन कवियों की नहीं थी फिर भी शरीर के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य को इन कवियों ने बड़ी ही पैनी दृष्टि से देखा और चित्रित किया है। नेत्रों की चंचलता, कटाक्ष, मधुरता, रससिक्तता और मोहकता के प्रति इन कवियों में तीव्र आकर्षण दिखाई देता है।[2]

रीति-स्वच्छन्द कवियों की रुचि नारी-सौन्दर्य का समग्र चित्र प्रस्तुत करने में विशेष रमी है। ये शरीर के विविध अंगों का संश्लिष्ट रूप-विधान करके नारी का समग्र बिम्ब-चित्र प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं।[3]

प्रकृति-चत्रण :

भारतीय साहित्य में प्रकृति के उन्मुक्त एवं भावपरक चित्रण के प्रति जैसी अनुरक्ति और लगन वाल्मीकि, भवभूति आदि कवियों में दिखाई देती है, वैसी परवर्ती संस्कृत वाङ्मय में देखने को नहीं मिलती। शनैः-शनैः प्रकृति-विभूतियों को काव्य-रूढ़ियों के कटघरे में बन्द कर उसके प्रति अत्यन्त अनुदारता का परिचय दिया जाने लगा। वीरगाथा काल से लेकर रीतिकाल तक प्रकृति के रम्य चित्रण का प्रायः अभाव ही है। तुलसी-साहित्य में प्रकृति, भक्ति चेतना से अधिक संग्रस्त रही और रीतिकाल में शृंगारिक रूढ़ियों के कारण सजीव रूप में प्रस्तुत न हो सकी।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने प्रकृति के परम्परागत (उद्दीपन रूप) रूप से किसी सीमा तक अपने को पृथक् रखने की चेष्टा की। प्रकृति को सजीव व्यक्तित्व प्रदान करने तथा मानवीय क्रिया-व्यापार से किंचित् अलग रखकर देखने का भी प्रयत्न किया है। यद्यपि कहीं-कहीं प्रकृति संवेदना और भावना की परिचायिका के रूप में भी प्रस्तुत हुई है, परन्तु उसे युग-चेतना का आग्रह ही कहा जायेगा।

प्रकृति का आलम्बन रूप :

स्वच्छन्दतावादी कवियों में 'द्विजदेव' को छोड़कर अन्य कवियों के काव्य में प्रकृति का स्वतंत्र निरीक्षण अत्यल्प हुआ है। 'घनानन्द' के काव्य में भी प्रकृति के

१. घनआनंद ग्रं०, पृ० ५८५, छं० १, प्रकीर्णक।

२. वही, पृ० १८, छं० ५२।

३. (अ) आलम-केलि, पृ० ५, छन्द ११, सं० १९७९ वि०।
(ब) रसखानि ग्रन्था०, पृ० ४८, सं० २०२१ वि०।

प्रस्तुत रूप का चित्रण अत्यन्त क्षीण है। 'ब्रजस्वरूप' शीर्षक रचना में उन्होंने ब्रजभूमि की विविध प्राकृतिक छटाओं का स्वतन्त्र चित्रण करने का लघु किन्तु स्तुत्य प्रयास किया है।[१] उनकी 'सरस वसंत' शीर्षक रचना में भी प्रकृति का आलम्बन रूप-चित्रण बड़ा ही सरस बन पड़ा है।[२]

'द्विजदेव' ने प्रकृति का आलम्बन रूप में बहुत ही सरस तथा मधुर चित्रण किया है। उनके काव्य में वसन्त तथा वर्षाऋतु से सम्बन्धित चित्रों में प्रकृति का आलम्बन रूप निखर उठा है। कवि वसन्तागमन पर कुंजों में प्रसूनों के खिलने से उत्पन्न प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध है। सर्वत्र सजीवता, नवीनता तथा रंगीनियों के संचार से उसका हृदय उद्वेलित हो उठा है। इस मनमोहक परिवेश से यह संकेत पाकर कि ऋतुराज वसन्त का आगमन हो गया है, कवि की वाणी से संगीत का स्वर फूट पड़ता है।[३]

इसी प्रकार वर्षाऋतु के आगमन पर पवन के प्रचण्ड वेग के प्रभाव से गतिमान बादलों के झुण्ड-के-झुण्ड इधर-उधर दौड़ने तथा मूसलाधार वृष्टि करने की शोभा को देखकर कवि का मन आनन्दातिरेक से भर उठता है, लेकिन वह उस शोभा को विरहिणी के अश्रुपूरित नेत्रों से न देखकर तटस्थ भाव से देखता तथा व्यंजित करता है।[४]

'आलम' ने 'जमुना कुंज' तथा 'चन्द्रकलंक' में एवं 'ठाकुर' ने 'पावस वर्णन' में प्रकृति के स्वतन्त्र निरीक्षण का अल्प प्रयास किया है। लेकिन प्रकृति-रूप-चित्रण विषयक उनके छन्दों की कोई-न-कोई पंक्ति उद्दीपन विभाव से संग्रस्त अवश्य है। वस्तुतः 'घनानन्द' तथा 'द्विजदेव' को छोड़कर कोई भी अन्य रीतिमुक्त कवि प्रकृति को आलम्बन रूप में चित्रित करने में सफल नहीं हो सका है।

प्रकृति का उद्दीपन रूप :

प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण रस-संचार के लिए किया जाता है। इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण के दो स्वरूप दिखाई देते हैं—संयोगावस्था में प्रकृति का आह्लादक रूप प्रकट कर प्रेमियों की प्रेम-भावना को उद्दीपन करना और वियोगावस्था में प्रकृति को निर्मम दिखाकर प्रेमिका की दुःख-दग्धता का चित्र उपस्थित

---

१. घनआनँद ग्रन्था०, पृ० २८८, छन्द ४७, ५०, ६३, ६८।

२. वही : (सरस वसन्त), पृ० २२२, छन्द ७, ८।

३. श्रृंगारलतिका, पृ० १६-१७।

४. श्रृंगार बत्तीसी, छन्द २१।

करना। रीतिमुक्त कवियों के काव्य में प्रकृति-चित्रण के ये दोनों ही स्वरूप दिखाई देते हैं।[1]

रीतिमुक्त कवियों ने प्रकृति का उद्दीपन-रूप चित्रित करते समय अपनी दृष्टि बाह्य स्थूल सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य के निरीक्षण पर रखी है। प्रियतम का दर्शन न होने पर 'आलम' की प्रिया बेचैन हो जाती है और उसके मन में यही विचार बार-बार आता है कि क्या प्रियतम के प्रदेश में प्राकृतिक उपमान प्रकट नहीं होते ? अपने विचारों को साकार करते हुए कवि प्राकृतिक उपादानों के संयोजन से विरहोद्दीप्ति की इस स्थिति का बड़ा ही हृदयस्पर्शी कल्पना-प्रवण चित्र उपस्थित करता है।[2] 'ठाकुर' ने उद्दीपन विभाव के रूप में वसन्त और वर्षा दो ऋतुओं का चित्रण किया है।[3] 'बोधा' ने प्रायः प्रकृति को उद्दीपन रूप में ही ग्रहण किया है। उन्होंने पावस को विरहिणी के अश्रुपूरित नेत्रों से लिपट कर देखा है।[4] 'द्विजदेव' का उद्दीपन वर्णन अत्यन्त भावात्मक है।[5]

प्रकृति मानव की चिर-सहचरी रही है। मानव, प्रकृति में अपने भावों को प्रतिबिम्बित करके देखता है। सुख में प्रातःकालीन ओस-कण हमें मोती के दाने के समान सुन्दर प्रतीत होते हैं लेकिन वही दुःख के समय आँसू के बूँद बन टपकने लगते हैं। इसी प्रकार विरहिणी अपने भावों के अनुकूल प्रकृति को सुख-दुःख भोगी समझती है। "चपला मानो विरहिणी के विरहाग्नि से जलकर ही जला करती है। पपीहा भी वियोगी के पुकार में पी-पी की रट लगाये रहता है। पवन, वियोगी की अस्थिरता के कारण ही चंचल होकर मारा-मारा फिरता है। बादल भी विरही के दुःख से ही दुःखी होकर आँसू बहाया करते हैं।"[6]

प्रकृति : पृष्ठभूमि के रूप में :

प्रायः प्रबन्ध काव्यों में प्रकृति-चित्रण की यह शैली अपनायी जाती है, लेकिन रीतिमुक्त कवियों ने अपने मुक्तकों में भी प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किया है। 'द्विजदेव' के काव्य में प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में अत्यन्त सरस एवं प्रभावशाली

---

१. (क) मानमयंक, पृ० ११२।
   (ख) घनआनँद ग्रं०, पृ० ८७, छन्द २६६।
२. आलम-केलि, पृ० ४।
३. ठाकुर-ठसक, पृ० २१, छन्द ६१।
४. बोधा ग्रन्थावली (विरहवारीश,) पृ० २०५।
५. शृंगार बत्तीसी, छन्द १२।
६. घनआनँद ग्रं०, पृ० ७४, छन्द २२६।

ढंग से चित्रित किया गया है।[1] अत्यल्प ही सही प्रायः सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में प्रकृति पृष्ठभूमि के रूप में आयी है।[2]

प्रकृति का चेतन रूप :

वियोग की चरमावस्था में व्यक्ति चेतन-अचेतन का भेद भूलकर समस्त प्रकृति को अपने ही रंग में रँगा हुआ देखता है। इसी भाव को आधार मानकर संस्कृत साहित्य में प्रकृति को दूत अथवा दूती के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति को संदेह-वाहक रूप में चित्रित करने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। कालिदास ने 'मेघदूत' में बादल को दूत-रूप में चित्रित किया है। जायसी ने नागमती विरह-वर्णन में काग और भौंरे को प्रियतम के सन्देश-वाहक रूप में प्रस्तुत किया है।

रीतिमुक्त कवि घनानन्द भी किसी से पीछे नहीं हैं। उन्होंने भी पवन को सन्देशवाहक बनाकर 'सुजान' के पास भेजा है क्योंकि इसमें गति होती है और वह चतुर्दिक् भ्रमण करता रहता है। वह समदर्शी और जगत् का प्राणतत्त्व है। विरह-व्यथा का सन्देशवाहक पवन के समान और कौन हो सकता है?[3]

'घनानन्द' ने केवल पवन को ही नहीं बादल को भी दूत बनाकर भेजा है। बादल के द्वारा कवि ने और कोई सन्देश न भेजकर केवल अपने आँसुओं को ही भेजना उचित समझा है क्योंकि सन्देश उन आँसुओं में ही तो भरा है।[4]

काव्य-शिल्प :

अलङ्कार :

संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने काव्यशास्त्र के छह भेद किये हैं—(१) भरत मुनि का रस सम्प्रदाय, (२) दण्डी और भामह का अलङ्कार सम्प्रदाय, (३) वामन का रीति सम्प्रदाय, (४) कुन्तक का वक्रोक्ति सम्प्रदाय, (५) आनन्दवर्द्धन का ध्वनि सम्प्रदाय, (६) क्षेमेन्द्र का औचित्य सम्प्रदाय। हिन्दी के आचार्यों ने केवल रस और अलङ्कार सम्प्रदायों पर दृष्टिपात किया है। इन दोनों (रस, अलङ्कार) सम्प्रदायों में भी केवल रस सम्प्रदाय का ही प्राधान्य है। हिन्दी का कोई भी कवि कोरा अलंकार-

---

१. (क) शृंगार बत्तीसी, छन्द ३, संस्करण १८८५ ई०।
   (ख) वही, छन्द ४।
२. (क) सं० लाला भगवानदीन : आलम-केलि, पृ० १०३, सं० १९७९ वि०।
   (ख) सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र : बोधा ग्रंथावली, पृ० ४२, सं० २०३१ वि०।
   (ग) वही : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० २८८, सं० २००९ वि०।
३. वही, पृ० ८४, छन्द २६९।
४. वही, पृ० १०८, छन्द ३३९।

वादी नहीं है। जिन कवियों ने अलंकार ग्रन्थ लिखे भी हैं, उनकी अलंकारवादिता केवल उनके लक्षण ग्रंथों तक ही सीमित है।

'मतिराम' का 'ललित ललाम' अलंकार ग्रन्थ है और 'रसराज' रस ग्रन्थ। 'रसराज' 'ललित ललाम' से सरस एवं श्रेष्ठ ग्रन्थ है। यदि 'मतिराम' को अलंकार-वादिता का हठ होता तो 'रसराज' के छन्दों में भी अलंकार की प्रधानता होती। हिन्दी के सबसे बड़े अलंकारवादी कवि 'केशवदास' माने जाते हैं। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की है कि 'भूषन बिन न बिराजई, कविता बनिता मित्त।' उनकी अलंकार-वादिता 'कविप्रिया' तथा 'रामचन्द्रिका' में दिखाई देती है। उनका उद्देश्य कथा कहना कम और चमत्कारपूर्ण ढंग से अपनी बात कहना अधिक था। अलंकारवादी होते हुए भी 'केशवदास' 'रसिक प्रिया' में अधिक सरस हो गये हैं।[1]

इस समस्त ऊहापोह का तात्पर्य यह है कि हिन्दी का रीतिकालीन साहित्य रसवादी है, अलंकारवादी नहीं। फिर जो स्वच्छन्द कवि हैं, उनके अलंकारवादी होने का प्रश्न ही नहीं उठता। किसी भी विषय को प्रेषणीय एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कवि जब अप्रस्तुतों का विधान करता है तो अलंकार स्वतः ही आ जाते हैं। प्रायः जो अलंकार हृदय से स्वतः प्रस्फुटित होते हैं वे ही काव्य का सौन्दर्य-वर्द्धन करते हैं। जहाँ कविता कामिनी पर बलपूर्वक अलंकार लादे जाते हैं वस्तुतः वे बाधक ही सिद्ध होते हैं, लेकिन कुछ अलंकार ऐसे भी होते हैं जो दैनिक जीवन में व्यवहृत होते हैं। ये अलङ्कार सादृश्यमूलक हैं। इनसे कोई कवि बच नहीं सकता।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग किया है। 'यमक', अर्थालंकारों में परिसंख्या, और उभयालंकारों में 'श्लेष' प्रयत्नसाध्य अलंकार हैं। सामान्यतः स्वच्छन्दतावादी कवियों ने इनसे बचने का प्रयत्न किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास ही एक ऐसा अलंकार है जो काव्य-भाषा को मधुर बनाने में सक्षम है। हिन्दी भाषा इतनी अनुप्रासमयी है कि कोई भी कवि इससे बच नहीं सकता। फिर भी स्वच्छन्दतावादी कवियों में ऐसी पंक्तियाँ शायद ही मिलें जिनमें एक ही अनुप्रास का निर्वाह आदि से अन्त तक करने का प्रयास किया गया हो, जबकि रीतिमार्गी कवियों के काव्य में अनुप्रास का निर्वाह बड़ी सतर्कता से किया गया है।[2]

स्वच्छन्दतावादी कवि 'घनानन्द' का वैशिष्ट्य विरोधाभास अलंकार में देखा जा सकता है। विरोधाभास के जितने सुष्ठु एवं श्रेष्ठ उदाहरण 'घनानन्द' के काव्य में मिलते हैं, अन्यत्र दुर्लभ हैं। वास्तव में विरोधाभास 'घनानन्द' की पहचान है।

१. रसिक प्रिया, पृ० १११, सं० २०१५ वि०।
२. (क) पद्माकर : जगद्विनोद, पृ० ८६, सं० २०१५ वि०।
(ख) वही, पृ० २६।

"'आँखें प्रिय-दर्शन की प्यास से भरी हैं, किन्तु विरोधी बात यह है कि वे बरसती भी हैं।"[१] इसी प्रकार 'झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित-कचाई पाक्यौ'[२] में परस्पर दो विरोधी बातों का समन्वय है। इतना ही नहीं पवन से आग लगने की बात तो ठीक है, किन्तु 'घनानन्द' ने पानी से आग लगते हुए देखा है।[३] इसी प्रकार लोकोक्ति 'ठाकुर' की पहचान बन गयी है। लोकोक्ति अलंकार को 'ठाकुर' ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर अत्यन्त सुन्दर ढङ्ग से अपनाया है।[४] हिन्दी में लोकोक्ति अलंकार का प्रयोग करने वाला इतना समर्थ कोई कवि नहीं हुआ।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने अपने काव्य-शिल्प को प्रभावी बनाने के लिए अप्रस्तुत-योजना का यत्र-तत्र सहारा लिया है, जिससे सादृश्यमूलक अलङ्कार उनके काव्य में स्वतः ही आ गये हैं। यद्यपि अन्य रीतिमुक्त कवियों के काव्य में भी अप्रस्तुत-योजना का दर्शन हो जाता है,[५] तथापि गूढ़ भावों को संवेद्य बनाने में 'घनानन्द' के अप्रस्तुत अप्रतिम हैं, जिसे पढ़कर रसज्ञ भाव-तन्मय हो झूमने लगता है।[६]

छन्द-विधान :

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने अनेक प्रकार के छंदों का व्यापक प्रयोग किया है। इसमें तीन मुख्य हैं—कवित्त, सवैया और दोहा। कवित्त, सवैया नये छंद हैं और दोहा परम्परागत, जो अपभ्रंश काल से ही प्रयुक्त होता आ रहा है। कवित्त का विकास धीरे-धीरे पदों के माध्यम से हुआ है, लेकिन इसके उत्स को लेकर विद्वानों में मतभेद है। डॉ० पुत्तूलाल ने इसका सम्बन्ध वैदिक अनुष्टुप से जोड़ा है।[७] 'पंत' ने इसे 'हिन्दी का औरसजात नहीं, पोष्य पुत्र'[८] माना है। डॉ० नगेन्द्र के विचार से इसका प्रयोग भाटों ने दरबारों में तत्काल ही प्रशस्ति बनाकर सुनाने के लिए प्रारम्भ किया।[९] इन विचारकों के विचार से इतना तो स्पष्ट है कि कवित्त

१. घनआनँद ग्रं०, पृ० ६६, छं० २१२।
२. वही, पृ० ६८।
३. वही, पृ० १०८, छं० ३३८।
४. (अ) ठाकुर-ठसक, पृ० ३८, छं० १५२।
   (ब) वही, पृ० ३६, छं० १५५।
५. वही, पृ० १७, छं० ६८।
६. घनआनँद ग्रन्थावली, सु० हि०, छं० २३८।
७. डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना, पृ० १६०, सं० २०१४ वि०।
८. सुमित्रानन्दन 'पंत' : पल्लव (प्रवेश), पृ० २६, संस्करण १६७७ ई०।
९. डॉ० नगेन्द्र : देव और उनकी कविता, पृ० २५२, संस्करण १६६० ई०।

का उत्स लोक-साहित्य है। काव्य-ग्रन्थ में इसने अपना प्रथम सुनिश्चित रूप 'रसिक प्रिया' (सन् १६४८ ई०) में प्राप्त किया।

सवैया के संबंध में विद्वानों का विचार है कि मौखिक लोक-साहित्य में इसका प्रयोग तेरहवीं शताब्दी विक्रमी में होने लगा था, किन्तु हिन्दी काव्य में उसका विधिवत् प्रयोग दरबारी कविता के द्वितीय उत्थान के साथ अकबर के शासन-काल में ही प्रारम्भ हुआ।[1] वस्तुतः सवैया 'सवाया' बोलने से सवैया कहलाया।

रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा में अपनी मधुरता के कारण सवैया बहुत लोकप्रिय हुआ। 'उसके मांसल प्रणय के मादक स्पर्श से यह और भी कोमल कलात्मक बन गया।'[2] वास्तव में सवैये की सम्पूर्ण संभावनाओं का कलात्मक विकास रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा में ही हुआ।

कवित्त मुक्तक वर्णिक छन्द है जिसमें गण और मात्रा का विधान नहीं होता। इसके दो रूप हैं—रूप घनाक्षरी और मनहरण घनाक्षरी। कवित्त के इन दोनों ही रूपों का रीति-स्वच्छन्द काव्य में पूर्ण विकास हुआ है। सवैया पूर्ण नियमित छन्द है जो गणाश्रित होता है। रीति-स्वच्छन्द काव्य में इसके विविध रूप-दुर्मिल, सुन्दरी, मत्तगयन्द, किरीट, अरसात, मदिरा, मुक्तहरा, सुमुखी, गंगाधर, सर्वगामी आदि पर्याप्त लोकप्रिय हुए हैं।

उपर्युक्त वर्णिक छन्दों के अतिरिक्त मात्रिक छन्दों को भी रीति-स्वच्छन्द काव्य में स्थान मिला है। 'आलम', 'घनानन्द' और 'बोधा' ने मात्रिक छन्दों का सफल प्रयोग किया है। 'घनानन्द' के छन्दों में विविधता है। उन्होंने कवित्त और सवैया जैसे वर्णिक छन्दों के सफल प्रयोग के अतिरिक्त 'पदावली' में एक हजार से भी अधिक पदों की रचना की है। उनके द्वारा छोटे-छोटे वर्णनात्मक काव्यों में दोहा, चौपाई, छप्पय, ताटंक, निसानी, सोरठा, सुमेरु आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। 'वियोग वेलि' में 'घनानन्द' ने फारसी ढंग का बिल्कुल नवीन छन्द अपनाया है। 'बोधा' और 'रसखान' के काव्यों में भी कहीं-कहीं दोहा, सोरठा, अरल्ल आदि मात्रिक छन्दों का प्रयोग मिलता है।

स्वच्छन्द कवियों ने छन्दों का विधान प्रायः नियमबद्ध ढंग से नहीं किया है। उन्होंने छन्दों के बन्धन को कहीं-न-कहीं तोड़ा अवश्य है जो उनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचायक है। उदाहरण के लिए बरवै छन्द में रचित 'घनानन्द' के काव्य की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

---

१. डॉ० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' : उद्धव शतक (प्राक्कथन), पृ० ६५।
२. आचार्य भानु : छन्द प्रभाकर, पृ० २१५।

कूक न मारु कोइलिया, करि-करि तेह। (१३, ७, जगणान्त)
लागि जात बिरहिनि के दूबरि देह। [१] (१०, ७, तगणान्त)

कवि ने यहाँ द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में मात्रा-विधान का पालन किया है और चरणान्त में जगण और तगण का भी विधान है, किन्तु प्रथम और तृतीय चरण में मात्रा-विधान का उल्लंघन किया गया है।

भाषा :

रीतिमुक्त कवियों की भाषा प्रसाद गुण युक्त ब्रजभाषा है। यद्यपि आन्तरिक अनुभूतियों के चितेरा होने के कारण इन कवियों का ध्यान भाषा की सजावट पर नहीं था, तथापि इनकी भाषा बहुत ही मधुर तथा सुष्ठु है। उनके काव्य में भाषा का सप्रयास संयोजन न होने पर भी वक्रता तथा भंगिमा अपने आप आ गयी है। पग-पग पर भाषा की प्रौढ़ता, मनोहरता, सरसता, सरलता, चित्रात्मकता, लाक्षणिकता, लोकोक्ति तथा मुहावरे अपने स्थान से ही आभा विकीर्ण करते हैं। इन कवियों की अनेक सुन्दर उक्तियाँ लोकोक्तियों के समान दिखाई देती हैं। उन्हें भाषा के नाड़ी विज्ञान का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने कहीं भी भाषा के भद्दे स्वरूप को ग्रहण नहीं किया। उनकी भाषा में निजत्व की झलक है, जिसे समझने के लिए हृदय-रूपी आँखों की आवश्यकता पड़ती है—'समुझै कविता घनआनँद की हिय आँखिन प्रेम की पीर तकी।'[२]

रीतिकालीन ब्रजभाषा लम्बे समय तक व्यवहृत होने के कारण रूढ़ हो गयी थी। बँधी-बँधाई लीक पर जोड़ी गयी उपमाएँ एकरसता के कारण कालान्तर में प्रवाहहीन हो गयी थीं। 'ठाकुर' ने इस काव्यगत जड़ता पर खीझ और पीड़ा के साथ मार्मिक प्रहार किया है।[३]

रीतिबद्ध कवियों ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को अंग-भंग करके काव्य में व्यवहृत किया है। पूर्वी तथा अवधी के पदावली के स्वरूप को इन कवियों ने ऐसा विकृत कर दिया है कि ब्रजभाषा का व्याकरण प्रस्तुत करने वाले कवि भी उसका

---

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रंथावली, पृ० १६७।

२. वही : पृ० ३।

३. सीखि लीन्हों मीन मृग कंजन कमल नैन,
सीखि लीन्हों जस औ' प्रताप को कहानो है।
सीखि लीन्हों कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामनि,
सीखि लीन्हों मेरु औ' कुबेर गिरआनो है।
—सम्पा० चन्द्रशेखर मिश्र : ठाकुर, पृ० ४, छं० १२, सं० २०३

भेद नहीं कर पाते। लेकिन स्वच्छन्द कवियों ने अपनी भाषा में कहीं भी ऐसी विकृति नहीं आने दी। उन्होंने न तो शब्दों का अंग-भंग किया और न ही प्रयोगों को बिगाड़ा। 'रसखान' और 'घनानंद' ने तो ब्रजभाषा का ऐसा स्वरूप प्रस्तुत किया है कि उसके आधार पर ब्रजभाषा का पुष्ट व्याकरण तैयार किया जा सकता है। वास्तव में ब्रज-भाषा उस समय काव्य-भाषा थी और काव्य-भाषा में विस्तार अपेक्षित होता है। इसी कारण उसमें कई भाषाओं के शब्दों को मिला लिया गया।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने ब्रजभाषा के साहित्यिक स्वरूप की अपेक्षा लोक-प्रचलित स्वरूप को अधिक महत्त्व प्रदान किया। उन्होंने झराँ, बनाय, औपटाय और कहीं-कहीं 'अन' उपसर्ग लगाकर अनमीच; अनपहिचान, अनमोह जैसे नये ढंग के शब्द बनाये। ब्रजभाषा को व्यवस्थित करने में स्वच्छन्द कवियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'ठाकुर' ने लोकोक्तियों द्वारा, 'घनानन्द' ने लाक्षणिकता, मुहावरे तथा व्याकरण की शुद्धि द्वारा, 'रसखान' ने मुहावरों द्वारा ब्रजभाषा के संशोधन, संवर्द्धन एवं विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रकार इन कवियों ने अभिव्यक्ति के ऐसे मार्ग ढूँढ़ निकाले जिस पर पहले किसी कवि ने दृष्टिपात तक नहीं किया था।

शब्दकोश :

तत्सम शब्द :

स्वच्छन्द कवियों ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का व्यापक प्रयोग किया है। प्रेम की गंभीर व्यंजना के लिए इन कवियों ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का आश्रय लिया है। यथा : अंतर, अलक, अधिक, अधीन, अनंग, अनीति, रति, भुवन, अल्प, चन्द्रिका, आगत, कंटक, बिम्ब, अंगराग, अष्टसिद्धि, मण्डन, नन्दन, पंकज, कलंक, कायर, कूप, प्रीति, पोष, बंग, व्याधि, अनुराग, अनुकूल, अरुण, अलि, आनन, उदर, उन्नत, कंठ, कपोत, मास, मीन, मुख, शिर, अभिमान, अवतार, कामधेनु, किशोरी, कृपाण, कौतुक, कटाक्ष, कमल, प्रणव, प्रेम, ललित, स्वाति, सेवक, हेम, मृदुल, युद्ध, चिन्तामणि, तीक्ष्ण, दामिनी आदि।

अर्द्ध तत्सम शब्द :

स्वच्छन्द कवियों ने ब्रजभाषा के अनुकूल तत्सम शब्दों में परिवर्तन भी किया है। इसलिए ये शब्द अपनी जातीय विशिष्टता को बनाये रखकर नये सन्दर्भों के अनुकूल ढल गये हैं। अकुलानि, अंचयो, अनीत, अनूप, ओजनि, कंज, कुमोद, गह्वर, दहनो, दुति, धुनि, परजंक, प्रलै, प्रान, पासनि, बस, बियोग, उनमादी, कंद्रप, कलेश, ततकाल, दरश, घनंतर, नग्र, निबाह, परबीन, परमान, स्वरन, हरषाय, बेदन, मित्त, मंथन, अंगनान, अजस, अनूप, अभिलाख, आंकुस, दीपत, दोस, धीरज, नातो, निर-धार, निसी, नैन, परमेसर, परबीनन, प्रवेस, प्रान, बान, बेनी, बेस, मौन, माखन, मानिक, मुकता, बिसराम, बिसत्रास, श्रोण, संकर, संयोग, सनेही आदि।

तद्भव शब्द :

शास्त्रन, बचनामृत, सबिसेह, सृति, स्मृतिहि, परोजन, जूह, अगुवार, गस्यौ, गाँठ, किसान, अचिरज, आँखिन, आगिहि, हाथन, तीखी, दियरा, पायनि, पीठि, लच्छिन, ललाई, साकरे, खइया, पातन, पाँव, दीह, पंगत, बीसवा, भखन, लोगन, लोनी, सुबरन, सुमिरत, सेज, अँखियाँ, अखती, आँस, तीखी, निकाम, पिआरी, फागुन, बिथा, बिजुरी, मानुष, लाखन, सिगार, सुसुर, खेत, डीठी आदि।

राजस्थानी भाषा के शब्द :

अधरां, अलमां, कोई, कूड, केडे, कैया, झुम्याई, थाके, पगड़े, बेढयाँ, बूके, मांधे, मनसां, मुने, मेलो, म्हारी, म्हांसी, म्हानैं, राजिंदा, रूड़ा, संघली, सूं आदि।

पंजाबी भाषा के शब्द :

निसानी, कदी, कधी, आन, काधा, साहिबा, कूटिये, बाजे, फेर, आवीं, कदी-कदी, किथाई, किवां, कुडियां, कोल, गभरू, गुमाणी, घुंडी, जीउणा-जागणा, निभानियां, प्यारियां, बाण, बडभागणा, मुखड़ा, पिहाड़े, साहिबी आदि।

अरबी भाषा के शब्द :

अवकल, अजूब, अरज, अनाहक, आसिक, इलम, इसक, सबाब, हुकम, नजर, बेवाकिफी, मुकाम, मौज, मुजरा, मुलाकात, रजा, साहिब, सिफत, सुलतान, हक्क, हकीकी, हकीम, हजूर, हद, हजरत, ज्वाब, बेमालूम, खौफ, कौल, काजी, खजाना, गुलाम, जालिम, जाहिर, तजबीज, हलाल, अतर आदि।

फारसी भाषा के शब्द :

खुसामति, रङ्गरेजा, नमक हरामी, नेगी, बदी, नेजन, फिराद, मुरगा, बजार, अंदाज, गरदन, गुनाह, चीज, जहान, नमक, दगा, मीरजादे, अदा, खुदा, खुशी, फकीर, फना, बिरादर, मस्ताना, जर्द, जङ्ग, अलमस्ती, जरद, जहर, जिगर, जान, दराज, दिल पसंद, दुसाल, पाक, पानुस, बेदरदी, बेपरवाही आदि।

मुहावरा :

रीति-स्वच्छन्द काव्य में मुहावरों तथा कहावतों की भव्य छटा देखने को मिलती है। कथ्य और शिल्प के इस नूतन प्रयोग को न तो शुद्ध भारतीय कहा जा सकता है और न अभारतीय। मुस्लिम सम्पर्क के पूर्व संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य में लौकिक-प्रेम का प्रचुर चित्रण हो चुका था। मुस्लिम सम्पर्क से फारसी साहित्य और सूफी प्रेम-साधना में अन्तर्निहित अतिशयता तथा जुगुप्सापरक प्रेम-व्यापारों को मध्यकालीन साहित्य में ग्रहण किया गया। फलस्वरूप दो विभिन्न संस्कृतियों और उनके काव्य-दर्शन के सम्मिलन से जिस जीवन-दृष्टि का आविर्भाव हुआ उसने हिन्दी काव्य के कथ्य और शिल्प दोनों को प्रभावित किया। रीति-स्वच्छन्द काव्य में

'प्रेमभाव की महत्ता और उसकी तीव्रता का प्रतिपादन'[१] इसी नवीन जीवन-दृष्टि का परिणाम है।

रीति-स्वच्छन्द काव्य में प्रेम-विह्वलता, कसक, टीस और वेदना-विवृत्ति की अनेक रूपों में व्यंजना हुई है। इन कवियों के मुहावरे भी प्रायः प्रेमपरक आन्तरिक द्वन्द्व, मौन-व्यथा और गहन-विषाद का सम्प्रेषण करते हैं। इनके मुहावरे शिल्पगत सिद्धियों के साथ जीवन-दर्शन को भी उद्घाटित करते चलते हैं। रीतिबद्ध पंक्ति-बद्धता से अलग हट कर इन्होंने मुहावरों में शुद्ध आत्मानुभूति की निश्छल अभिव्यक्ति की है। प्रायः सभी स्वच्छन्द कवियों के मुहावरे किसी-न-किसी रूप में जीवनगत संवेदना से युक्त हैं। यथा :—

'हाथों से चाँद छिपाना', 'पीले पड़ना', 'आँख से आँख लड़ाना', 'नाच नचाना', 'पेड़ परना'[२], 'अनसुनी करना', 'अनदेखी करना', 'आँखें लगना', 'आँख मिलाना', 'आँखें दिखाना', 'कान खोलना', 'कनौड़े पड़ना', 'गाल बजाना', 'गुण-गान', 'घात लगाना', 'चसका पड़ना', 'चैन पाना', 'छाती पकना', 'तारे गिनना', 'दिल की जानना', 'दिल चुराना', 'द्वार पड़ना', 'पंथ निहारना', 'पत्थर दिल होना', 'पराए हाथ बिकना', 'भाग जगना', 'सिर धुनना', 'लगन लगाना', 'राह देखना' आदि[३] 'अङ्क भरना', 'आँख कसना', 'आँख चुराना', 'आँखें परखना', 'काम बनाना', 'जीभ चलाना', 'दाँत बजाना', 'दिल की खोजना', 'दिल में न लाना', 'नीकी लगना', 'नैन जुड़ना', 'रङ्ग छाना', 'सिर चढ़ना', 'सिर फोड़ना', 'हाथ न आना' आदि[४] 'उंगली उठाना', 'कलई खुलना', 'कसाले पड़ना', 'कान देना', 'चैन न पाना', 'छाती कसकना', 'जाल पड़ना', 'ढोल पीटना', 'दिल में लगना', 'नजर मरोड़ना', 'पाँव पर पत्थर मारना', 'बीज बोना', 'रार ठानना', 'लाज धोना', 'लाले पड़ना', 'वारे होना', 'हँसी होना', 'मन बसना' आदि।[५]

---

१. रामधारी सिंह 'दिनकर' : संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४३४, संस्करण १९६२ ई०।

२. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली, पृ० ६५।

३. वही : घनआनंद ग्रन्थावली, पृ० ७४, ६०, ७८, १६, ६१, ४६५, ८३, ३१, ४०, ८६, १३५, २६, २१, ३८, ४२, ४८, १८, ५, १८, ८५, ३८१, ४६।

४. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : बोधा ग्रन्थावली, पृ० १३३, २/१०, १३३, ४/४, ३/४, १/२०, १४३, १३७, ३/४, १/१०, ६१, १३८, १/७, २/५, ५/४।

५. लाला भगवानदीन : ठाकुर-ठसक, पृ० ३७, ३८, १७, १६, ४०, ४०, ३८, ८, ३१, २०, १७, १८, १६, १८, ४०, ५३, १५, ४३, १५, १६, १७, ३६।

लोकोक्ति :

प्रत्येक मुहावरा किसी प्रसंग की निरपेक्ष उपज है जबकि प्रत्येक लोकोक्ति एक प्रसंग सापेक्ष उपलब्धि है। वस्तुतः लोकोक्ति मुहावरों की प्रतिक्रिया है और मुहावरे इसकी परिणति हैं। अतः प्रसंग सापेक्षता के कारण लोकोक्तियों अथवा कहावतों में अर्थ व्यंजना सीमित होती है।[१] स्वच्छन्द कवियों ने लोकोक्तियों में अपने विविध प्रणय-व्यापारों को रूपायित किया है। उनकी लोकोक्तियाँ प्रेम की विषमता, विश्वासघात, अनुत्तरता, प्रेम की कृपणता, तीखी टीस, विकल्पहीनता, आत्म-स्वीकृति, विडम्बना, पागलपन आदि की विशद व्यंजना करती हैं। यथा :—

(१) 'पूरब पुन्यनि तें चितई जिन, ये अँखियाँ मुसकानि भरी जू।'[२]
(२) 'काननि दै अँगुरी रहिबो जबहीं मुरली धुनि मंद बजे है।'[३]
(३) 'कब आय हौ औसर जानि सुजान बहीर लौ बैस तो जाति लदी।'[४]
(४) 'चलि आई सदा रस रीति यहै, किधों मों निरमोही को मोह नयो।'[५]
(५) 'कहा कछु चंदहिं चकोरन की कमी है।'[६]
(६) 'अबला कौन वश करी योगी काके मीत।'[७]
(७) 'राजन के दरबार में चुगलन को इतबार।'[८]
(८) 'मग हेरत धूँधरे नैन भये रसना रटि वा गुन गावन की।

× × × ×

मनभावन आवन सावन में कहि औधि भई डग बावन की।'[९]
(९) 'या जग में फिर जीबो कहा जब आँगुरी लोग उठावन लागो।'[१०]
(१०) 'अपने अटके सुन एरी भटू निज सौत के मायके जइयत है।'[११]
(११) 'गरब गरूरी को रखैया एक राम है।'[१२]
(१२) 'तौलो फल पावै निज करनी करे को यों।'[१३]
(१३) 'अधिरात भई हरि आये नहीं हमें ऊमर को सहिया करिगै।[१४]
(१४) 'हमै बात कहै को प्रयोजन कर बुनिने मैं न बीन बजाइबे में।'[१५]
(१५) 'खेत की कहे तें खरियान की समझतीं।'[१६]

---

१. डॉ० मनोहरलाल गौड़ : घनआनँद और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० १३३, सं० २०१५ वि०।
२-३-४. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली, पृ०७७, ५३, सं०२०२१ वि०।
५-६. घनआनंद ग्रन्थावली, पृ० ७५, १०७।
७-८. बोधा ग्रन्थावली, पृ० ५३, ४०।
९. रसखानि ग्रन्थावली, पृ० ११४।
१०-१६. ठाकुर-ठसक, पृ० ३७, ३९, ७, ३२, ४०, ४३, ४३।

चित्रात्मकता :

चित्रात्मकता भाषा का एक विशेष गुण है। जिस कवि में वर्ण्य-वस्तु को समझने तथा उसका सूक्ष्म निरीक्षण कर प्रस्तुत करने की जितनी ही अधिक क्षमता होगी वह कवि उतनी ही कुशलता से चित्रों को प्रस्तुत करने में समर्थ होगा। यह विशेषता प्रायः सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों में दिखाई देती है। इन कवियों का वर्ण्य-विषय प्रेम था। अतः उनके बिम्ब-चित्र भी प्रायः उसी से सम्बन्धित हैं।[१]

लाक्षणिकता :

अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए कवियों ने तीन शब्द-शक्तियों को प्रयुक्त किया है—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। जिस शब्द-शक्ति के द्वारा अर्थ का संकेत मिलता है, उसे अभिधा शब्द-शक्ति कहते हैं। यह शब्द-शक्ति लक्षणा और व्यंजना के मूल में प्रायः किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहती है। लक्षणा-शब्द-शक्ति का प्रयोग कवि वहाँ करता है, जहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा लक्ष्यार्थ प्रधान होता है।

लक्षणा-शब्द-शक्ति का प्रयोग साहित्य में बहुत कम हुआ है। शास्त्रकारों ने इस शक्ति को निकृष्ट समझ कर इसकी उपेक्षा की है। रीतिबद्ध काव्य में अभिधा-शब्द-शक्ति को प्रमुख स्थान दिया गया है। लक्षणा और व्यंजना का प्रयोग नहीं के बराबर है। "विभिन्न शब्द-शक्तियों का जैसा सहज एवं सुखात्मक प्रयोग स्वच्छन्द काव्यधारा के कवियों की रचनाओं में मिलता है, वैसा रीतिबद्ध धारा के कवियों की रचनाओं में नहीं, क्योंकि उसमें न तो प्रणय का पीड़न है और न ही विशुद्ध अनुभूति का स्पर्श।"[२]

'घनानन्द' ने कथ्य में प्रभविष्णुता लाने के लिए सर्वप्रथम लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग किया। "लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने उसके भीतर बहुत कम पैर बढ़ाया। एक घनानन्द ही ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई।"[३] अन्य स्वच्छन्द कवियों ने भी लक्षणा शब्द शक्ति को अपनाया है, लेकिन घनानन्द की भाँति विस्तार और गहराई उनमें नहीं है।

---

१. (क) घना० ग्रं०, पृ० ११३, छं० ३६०।
   (ख) आलम-केलि, पृ० ५, छं० ११।
   (ग) बोधा ग्रं०, पृ० ७२।
   (घ) मान मयंक, पृ० ८७।

२. डॉ० चन्द्रशेखर : रीतिमुक्त कविता : मुक्त रचना विधान, पृ० १२६, संस्करण १६७६ ई०।

३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २३३, सं० २०३५ वि०।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने लक्षणा का प्रयोग शास्त्रीय उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए नहीं किया, वरन् अपनी आन्तरिक वेदना से संवलित मनःस्थितियों को प्रभावशाली ढङ्ग से अभिव्यक्त करने के लिए किया। यहाँ पर स्वच्छन्द कवियों की लाक्षणिक प्रयोग-दृष्टि दो रूपों में विवेच्य है—शब्दाश्रित तथा अर्थाश्रित।

शब्दाश्रित लक्षणा :

लक्षणा के ऐसे प्रयोग कहीं पर किसी क्रिया-विशेष का संकेत करते हैं तो कहीं पर मन की किसी विशेष अवस्था को समाहित किये रहते हैं। सामान्य रूप से सभी स्वच्छन्द कवियों ने शब्दाश्रित लक्षणा का प्रयोग किया है। यथा :

(क) 'लोल लता ललित ललामताई लतिका की,
लाल लालची के लाई लव अवलोक की।'[१]

(ख) 'हाँसी में हार हरयो रसखानि जू, जो कहूँ नेकु तगा टुटि जैहैं।
एक ही मोती के मोल लला सिगरे ब्रज हाटहीं हाट बिकैहैं।'[२]

(ग) 'तब हार पहार से लागत हैं अब आनि के बीच पहार परे।'[३]

(घ) 'उगलत बात बनैन साँप छछूंदर की कथा।'[४]

(ङ) 'याही दुख दाहन सरीर छीजियतु है।'[५]

(च) 'आग-सी धँधाती ताती लपटैं सिराय गई।'[६]

(छ) 'तू जो कहै सखि लोनो सरूप, सो मों अँखियाँनि में लोनी गई लगि।'[७]

अर्थाश्रित लक्षणा :

इस प्रकार की लक्षणाएँ किसी शब्द पर आश्रित न होकर वाक्य की समग्रता में विस्तार पाती हैं। इनमें अर्थगाम्भीर्य एवं अर्थगौरव की सृष्टि की सहज क्षमता है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

(क) 'अंतर उदेग-दाह आँखिन प्रवाह-आँसू,
देखि अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोयबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबो हूँ
खोय खोय आप ही में चेटक-लहनि है।'[८]

(ख) 'यह प्रेम को पंथ कराल महा तलवार की धार पै धावनो है।'[९]

(ग) 'सरोज रहें निसिबासर फूले सुभान सुभायन में।'[१०]

---

१. लाला भगवानदीन : आलम-केलि, पृ० ५३।
२. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : रसखानि ग्रन्थावली, पृ० १२६।
३. वही : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० १३, छं० ३६।
४. वही : बोधा ग्रन्थावली, पृ० २३।
५. लाला भगवानदीन : ठाकुर-ठसक, पृ० ५६।
६. वही : पृ० १०७।
७. द्विजदेव : शृंगार लतिका, पृ० ३८।
८. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ६३।
९. वही : बोधा ग्रन्थावली, पृ० १९।
१०. लाला भगवानदीन : ठाकुर-ठसक, पृ० ६।

अध्याय ५

आधुनिक (द्विवेदीयुगीन) स्वच्छन्द काव्य-प्रवृत्तियाँ

प्रेम-निरूपण :

प्रेम एक गत्यात्मक भावना है। इस सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक भावना में जहाँ एक ओर मिलन-विरह की द्विधात्मक गति है, वहीं दूसरी ओर इसमें ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रक्रिया भी अन्तर्भुक्त है। अपने विकास-क्रम में वैयक्तिक प्रेम, विश्व-प्रेम की ओर अग्रसर होता है जो अन्ततोगत्वा अनन्त सत्ता के प्रेम में पर्यवसित हो जाता है। वस्तुतः प्रेम-प्रक्रिया का विकास स्थूल से सूक्ष्म की ओर, लौकिक से अलौकिक की ओर होता है। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में प्रेम का यही ऊर्ध्वगामी स्वरूप विद्यमान है।

प्रेम-निरूपण की दृष्टि से हिन्दी काव्य-परम्परा पर्याप्त समृद्ध है और इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी में प्रेम की अनेकरूपता का जैसा विकास और सम्वर्द्धन उत्तरोत्तर होता रहा, वह अप्रतिम है। प्रेम-तत्त्व न्यूनाधिक रूप में हिन्दी के प्रारम्भिक काल से ही दिखाई देता है। यों तो वीरगाथा-काल की कृतियों में वीरोल्लास तथा उमंग की प्रधानता है, किन्तु इस काल में भी प्रेम, वीरता का साध्य बनकर परोक्ष रूप में उपस्थित रहा। इस काल की कृतियों में वीरता के साथ शृंगारिक छटा के अच्छे चित्र प्राप्त होते हैं। विद्यापति की पदावली में राधा-कृष्ण 'भक्ति के नहीं शृंगार के देवता थे।'[1] भक्तिकाल में कृष्णभक्ति-शाखा तथा प्रेममार्गी शाखाओं में प्रेम की प्रधानता तो थी ही, रामभक्ति शाखा तथा कबीर के रहस्यवाद में भी माधुर्य की सुन्दर सृष्टि हुई। इस काल के काव्य में प्रेम के तात्त्विक स्वरूप की साधना हुई है तथा प्रेम अपने सम्पूर्ण समारोह के साथ परोक्ष सत्ता की ओर मुड़ गया है। भक्तिकाल के विपरीत रीतिकाल में प्रेम के क्षेत्र में ही प्रेम का पतन हुआ और उसमें सांसारिक और पार्थिव आकर्षण की दूषित गन्ध आ गयी।[2] लेकिन इसी काल में कवियों का एक वर्ग भी काव्य-साधना में लीन था, जो स्वभावतः निस्संग था। इनकी प्रेम-साधना देह-बोधों में नहीं भटकी, उसकी प्रकृति ऊर्ध्वमुखी थी। इन कवियों ने प्रेम के प्राणतत्त्व 'स्वच्छन्दता' को पूर्ण जागरूकता से पहचाना। भारतेन्दु-युग में आकर कविगण प्रेम के रागात्मक संस्कार की ओर झुकने लगे।

---

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : बिहारी, पृ० २२।
२. डॉ० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७६०।

आधुनिक काल में प्रेम-निरूपण कई वीथियों से होकर प्रवाहित हुआ है। कहीं पर यह राष्ट्रीयता का अभिन्न अंग बनकर आया है तो कहीं पर प्राकृतिक सौन्दर्य के रसोद्रेक के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। कहीं पर आध्यात्मिक चेतना से सम्पृक्त होकर प्रकट हुआ है और कहीं पर स्वाभाविक स्थूल अथवा सूक्ष्म रंग-बिरंगे रूप में मुखरित हुआ है। "इस युग में मानव-प्रेम एक नवीन महिमा से मण्डित हुआ और वह जीवन की एक पवित्र निधि अथवा तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया।"[१] लौकिक-प्रेम की पवित्रता तथा महत्ता हिन्दी काव्य में पहली बार दिखाई पड़ी। कवियों ने उज्ज्वल मानवीय प्रेम का अनेक प्रकार से गुणगान करके उसमें लोकोत्तर पावनता की प्रतिष्ठा की।[२]

पं० श्रीधर पाठक नीरस ज्ञानियों की तरह प्रेम को सारहीन न मानकर सारे संसार को प्रेममय मानते हैं।[३] पं० रामनरेश त्रिपाठी के काव्य ग्रंथ 'पथिक', 'मिलन', स्वप्न' में प्रेम, राष्ट्रीयता का अभिन्न अंग बनकर प्रकट हुआ है। 'पथिक' में पथिक और उसकी पत्नी का तथा 'मिलन' में युवक और विजया का दाम्पत्य-प्रेम, देश-प्रेम की छाया में विकसित होता हुआ अपने साध्य को प्राप्त करता है। यह 'स्वकीया नायिका के प्रति मर्यादित दाम्पत्य-प्रेम है जो भोग से प्रारम्भ होकर, किसी लोकहित की महत् प्रेरणा से, कर्म क्षेत्र की विविध भूमियों को पार करता हुआ अन्त में विश्व-प्रेम या मानव-प्रेम के सुदूर और धूमिल क्षितिज में लीन हो जाता है।'[४] स्पष्ट है कि कवि प्रेम के वासनात्मक स्वरूप को न चाहकर जीवनोत्सर्ग की अमर प्रेरणा देने वाले प्रेम के उदात्त स्वरूप पर मुग्ध है।[५]

पं० मुकुटधर पाण्डेय ने प्रेम को सम्पूर्ण सृष्टि में परिव्याप्त देखा और उसकी श्रेष्ठता को पहचानकर उसे अलभ्य कहा।[६] ठा० गोपालशरण सिंह प्रेम को सृष्टि का प्राणतत्त्व, जीवन का सारतत्त्व और विश्व सौन्दर्य का शृंगार मानते हुए उसके

---

१. डॉ० श्रीकृष्ण लाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ६४, संस्करण १९४२ ई०।

२. डॉ० खण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० २५४, संस्करण २०१५ वि०।

३. 'प्रेममय है सारा संसार।
प्रेमहि का सारा प्रसार, मत कह इसे असार।' —भारत-गीत, पृ० ६८।

४. डॉ० खण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० २५४।

५. 'सच्चा प्रेम वही है जिसकी तृप्ति आत्मबल पर हो निर्भर।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है, करो प्रेम पर प्राण निछावर।'—स्वप्न, पृ० ६५।

६. पूजा-फूल, पृ० ६५, प्र० सं० १९१६ ई०।

माहात्म्य का गुणगान करते हैं ।[1] 'भक्त' जी प्रेम को ईश्वर, भक्ति और शक्ति का पर्याय मानते हुए उसकी सार्वभौमिक अन्तर्भुक्तता पर मुग्ध हैं ।[2] 'प्रसाद' ने प्रेम को सर्वोत्तम साधना के रूप में देखा है, जिसका साधना-पथ कंटकाकीर्ण है और साध्य असीम आनन्द से परिपूर्ण, लेकिन इस साध्य की प्राप्ति के लिए आत्मोत्सर्ग, निर्भोग समर्पण और स्वार्थ-त्याग अपरिहार्य है ।[3]

प्रेम में मिलन-विरह की द्विधा अन्तर्भुक्त रहती है । स्वच्छन्द कवियों ने मिलन की अपेक्षा विरह को अधिक महत्त्व प्रदान किया है । वियोग उनके प्रेम-कथा का प्राण बन गया है । पं० रामनरेश त्रिपाठी ने संयोग और वियोग की दशाओं में प्रेम की स्थिति पर विचार करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि विरह, प्रेम की जागृत अवस्था है और मिलन सुप्तावस्था, क्योंकि मिलन में मधुर प्रेम के अन्त होने का भय निहित है जबकि विरह, प्रेम-चिन्तन में निखार लाता है ।[4] लेकिन यही वियोगजन्य पीड़ा जब चिरस्थायी बन जाती है तो प्रेमी को जीवन-जगत् का प्रत्येक उपादान और उसका क्रिया-व्यापार करुणा और वेदना में आप्लावित दिखाई देने लगता है ।[5] यह सही है कि स्वच्छन्द कवियों की रचनाओं में वेदना का स्वर मुखर है लेकिन उनकी प्रेम-पीड़ा दुःखमूलक न होकर स्वच्छन्द आनन्द की जननी है ।[6]

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने कहीं-कहीं पर परम्परागत प्रेम का तरल एवं रूप की रीझ से उत्पन्न प्रेम का बहुरंगी चित्र भी खींचा है । यद्यपि ये लौकिक प्रेम के स्थूल चित्र हैं लेकिन प्रेम के पावन स्पर्श, निर्भोग समर्पण एवं अभिव्यंजना-कौशल के प्रभाव से ये चित्र परम्परागत प्रेम-चित्रणों से सर्वथा भिन्न हो गये हैं ।[7]

स्वच्छन्द कवियों का प्रेम प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों के साथ लिपटकर भी प्रकट हुआ है । प्रकृति के विभिन्न उपादान उन्हें मानवी प्रभाव-व्यापारों को समान रूप से सम्पन्न करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं । ऐसे स्थल पर प्रेम का आलम्बन सौन्दर्य भी मनुष्यवत् रसोद्रेक की सृष्टि करता है । 'निराला' की 'जुही की कली'

---

१. ठा० गोपालशरण सिंह : आधुनिक कवि, पृ० २६ ।
२. सरस-सुमन, पृ० ११, संस्करण १६२५ ई० ।
३. प्रेम-पथिक, पृ० १६ ।
४. पथिक, पृ० १६, संस्करण १६७० ई० ।
५. ग्रन्थि, पृ० ४० ।
६. पं० रामनरेश त्रिपाठी : मिलन, पृ० २४ ।
७. (क) प्रसाद : झरना, पृ० ८० ।
   (ख) प्रसाद : आँसू, पृ० ३२ ।
   (ग) पंत : पल्लव (आँसू), पृ० ६८ ।

इस प्रकार के संयोग श्रृंगार की अनुपम रचना है। इस कृति में 'मलयानिल' और 'जुही की कली' नायक-नायिका की भाँति उन्मुक्त प्रणय-लीला का सम्पादन करके रति श्रृंगार की सृष्टि करते हैं।

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के प्रेम-चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता प्रेम को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देख कर उसके उदात्त स्वरूप को उद्घाटित करने में है। 'प्रेम-पथिक' में कवि 'प्रसाद' अपने प्रेम-विषयक व्यापक दृष्टिकोण का परिचय देते हुए वैयक्तिक प्रेम को विश्व-प्रेम और आध्यात्मिक प्रेम में उदात्तीकृत करने का संदेश देते हैं।

'प्रकृति मिला दो विश्व-प्रेम में, विश्व स्वयं ही ईश्वर है।'[१]

स्वच्छन्द कवि प्रेम को स्थूल से सूक्ष्म और सान्त से अनन्त की ओर विकसित होने वाला जीवन्त भाव मानते हैं। इस प्रकार के ऊर्ध्वमुखी प्रेम में द्वैत का भाव समाप्त हो जाता है और प्रिय को सारा विश्व प्रियतममय दिखाई देने लगता है।[२] "प्रेम यहाँ गतिशील और एक स्थान से चलकर निरन्तर बढ़ता ही जाता है और अन्त में विश्व-प्रेम तक पहुँच जाता है।"[३]

प्रेम स्वच्छन्द कवियों का साध्य है और साधन भी। वे एक ओर प्रेम की साधना करते हैं तो दूसरी ओर इसका सम्बल लेकर अन्य साध्यों की पूर्ति करते हैं। चाहे श्रीधर पाठक का देश-प्रेम हो या पं० रामनरेश त्रिपाठी का राष्ट्रीय चिन्तन, पृष्ठभूमि में प्रेम की पुष्ट जीवन-दृष्टि ही क्रियाशील है। पं० रामनरेश त्रिपाठी मानव-जीवन में प्रेम की महत्ता का गुणगान करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार गन्ध के बिना पुष्प और चाँदनी के बिना चन्द्र फीका लगता है उसी प्रकार प्रेम के बिना मनुष्य का जीवन निस्तेज हो जाता है। वस्तुतः प्रेम और स्वर्ग एक-दूसरे के पर्याय हैं, प्रेम ईश्वर का ही प्रतिरूप है।[४] वस्तुतः यह लोकिक प्रेम का ही उदात्त रूप है।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में मुक्त प्रेम का अनावृत रूप देखने को मिलता है। रीतिकालीन कवि अपनी प्रेमाभिव्यक्ति में राधा-कन्हाई की ओट लेते थे, लेकिन आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने सामन्ती नैतिकता का कठोर बन्धन होने पर भी शाश्वत श्रृंगारिक भावनाओं को बिना किसी लाग-लपेट के अभिव्यक्त किया।[५] इन कवियों

१. प्रसाद : प्रेम-पथिक, पृ० ३०, संस्करण १९७० वि०।

२. वही, पृ० २३।

३. डॉ० श्रीकृष्ण लाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ६८, संस्करण १९४२ ई०।

४. पं० रामनरेश त्रिपाठी : मिलन, पृ० २३, संस्करण १९८५ वि०।

५. 'सरल शैशव की सुखद सुधि-सी वही,
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी!' —पल्लव (उच्छ्वास), पृ० २३।

ने न तो पराये अथवा काल्पनिक प्रेम को अभिव्यक्ति दी और न तो प्रेम के परम्परागत स्वरूप को ग्रहण किया। इन आत्मचेता कवियों ने प्रेम को अपने निजी चश्मे से देखा। वे अपने प्रेम-काव्य के स्वयं नायक हैं। इसी कारण इनके प्रेम-चित्रण में आन्तरिकता, स्वाभाविकता एवं स्वच्छन्दता का मुक्त प्रसार संभव हो सका है।

सौन्दर्य-बोध :

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने जिस प्रकार प्रेम को व्यापक परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से देखा है उसी प्रकार प्रेम के आलम्बन सौन्दर्य को भी देखने का स्तुत्य प्रयास किया है। उनकी सौन्दर्य-विषयक दृष्टि-सीमा में मानव, प्रकृति और भावलोक के साथ ही शिल्प भी आ गया है। अंग्रेजी काव्य के प्रभाव और युग-बोध के अनुरूप ही उनका सौन्दर्य-चिन्तन भी व्यापक, सूक्ष्म और उदात्त हो गया है। रीतिबद्ध कवियों की दृष्टि केवल नारी के बाह्य सौन्दर्य तक ही जा सकी, रीति-स्वच्छन्द कवि नारी के आन्तरिक सौन्दर्य से आगे नहीं बढ़ सके, लेकिन आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के सौन्दर्य-चिन्तन ने नारी के साथ ही जीव-जगत् के अन्य उपादानों को भी समेट लिया है। इन कवियों ने स्थूल सौन्दर्य को भी नवीन भाव-चेतना के साथ देखा है साथ ही, बाह्य आवरण के भीतर झाँककर सूक्ष्म सौन्दर्य-तत्त्व का भी अनुसंधान किया है।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में निरूपित सौन्दर्य-भावना वस्तुतः स्वात्मवैशिष्ट्य पर अवलम्बित है। आत्मगत तरलता की स्पष्ट झलक हमें चेतना-सम्पन्न रचनाओं में देखने को मिलती है। स्वच्छन्द काव्य में स्थूल (शारीरिक) सौन्दर्य-चिन्तन की अपेक्षा सूक्ष्म (मानसिक) सौन्दर्य-चिन्तन का प्राधान्य है। "अब तक सौन्दर्य प्रायः व्यक्ति और पदार्थ का बाहरी गुण-धर्म ही समझा जाता रहा, किन्तु अब भावनाओं, आदर्शों तथा कोमल कल्पनाओं में भी उस रोमानी सौन्दर्य का अनुभव किया जाने लगा, जो अंतः संवेद्य है।"[१] सौन्दर्य-चिन्तन के क्षेत्र में इस क्रान्तिकारी परिवर्तन के पीछे पाश्चात्य रोमानी चेतना का प्रमुख हाथ है।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने उन्मुक्त स्वर में सौन्दर्य की बड़ी सजीव प्रतिमाएँ प्रस्तुत की हैं। नव-भाव-भरित इन कलाकारों ने सौन्दर्य के जिन आलम्बनों को चुना, वे आलम्बन बड़े ही हृदयग्राही एवं मर्मस्पर्शी हैं। सौन्दर्यानुभूति कराने में परम्परागत तथा नवीन उपमानों को समान रूप से ग्रहण किया गया है। परम्परागत उपमान नवीन भाव-चेतना का संस्कार लेकर आये हैं और नवीन उपमान सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति से सम्पृक्त होकर।

नारी इस सृष्टि की सुन्दरतम रचना है। परम्परावादी कवि नारी की देह-यष्टि की नाप-तौल कर उसके सौन्दर्य का अनुमान लगाया करते थे और नख-शिख-

१. डॉ० खण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य; पृ० २८७।

चित्रण द्वारा सौन्दर्य का खण्ड-चित्र प्रस्तुत किया करते थे। आधुनिक कवियों ने सौन्दर्याङ्कन के इस मापदण्ड को बदल डाला और काव्य में नारी-सौन्दर्य का समग्र चित्र प्रस्तुत किया। 'पंचवटी प्रसंग' में प्रसंगवश 'निराला' ने शूर्पणखा के मुख से स्वयं अपना ही शिख-नख-वर्णन कराया है, लेकिन कल्पना और भावों के संगुम्फन से परम्परागत शिख-नख-वर्णन से बहुत-कुछ भिन्न हो गया है। 'प्रसाद' ने 'आँसू' में लाक्षणिक भंगिमा और प्रतीकों के सहारे रूपसी प्रिय का मनोरम रूप-चित्र खींचा है। प्रिय का मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है। कवि को काली-काली लटों के बीच शोभायमान चन्द्रमुख ऐसा प्रतीत होता है जैसे फणियों के मुख पर हीरों की खान हो।[१] यौवन-मद की लालिमा से परिपूर्ण नीलम की प्याली जैसी मनमोहक काली आँखों की कमनीयता आकर वहाँ जैसे ही मिलती है, चन्द्रमुख की इस नव-विकसित लुभावनी छटा को देख कर कवि का मन मुग्ध हो उठता है। अब इस सौन्दर्य पर कवि मुग्ध ही नहीं, विस्मित भी है।[२] 'निराला' ने 'शेफालिका' में शेफाली के वासनात्मक सौन्दर्य का यौवनसुलभ चित्रांकन किया है लेकिन इस प्रकार के चित्रण स्वच्छन्द काव्य में बहुत ही कम हैं। 'श्याम तन, भर बँधा यौवन'[३] में 'निराला' बाह्य अनुशासन से तो मुक्त हो गये हैं लेकिन आन्तरिक अनुशासन से बँधे हैं। स्पष्ट है कि स्वच्छन्द कवियों ने नारी के प्रति हमारे सौन्दर्य-बोध का परिष्कार किया है। उन्होंने नारी-रूप पर तो नाक-भौं सिकोड़ी और न तो लिप्सागस्त हुए। वस्तुतः स्थूल रूप-चित्रण में भी इन कवियों का सौन्दर्य-चिन्तन प्रायः निर्भोग, निर्लिप्त और निष्काम है।

नारी-सौन्दर्य के सूक्ष्म चित्रांकन में इन कवियों ने कल्पना का प्रचुर सहारा लिया है। सौन्दर्य-भावना को स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाने एवं अप्रस्तुतों के सहारे नवीन सौन्दर्य-बोध का आभास कराने में ये सिद्धहस्त थे। परम्परागत काव्य की हाड़-मांस की स्थूल नारी स्वच्छन्द काव्य में सूक्ष्म और काल्पनिक होती गयी है।[४] इन कवियों की सौन्दर्य-चेतना प्रायः स्थूल आवरण के भीतर प्रवेश कर सूक्ष्म सौन्दर्य-तत्त्व के अनुसंधान में लीन है। आन्तरिक सौन्दर्य के बाह्य प्रक्षेपण में 'पंत' अग्रगण्य हैं। प्रकृति के अन्तरंग संसर्ग से उनका सौन्दर्य-बोध उदात्त हो उठा है। उनकी सौन्दर्य-दृष्टि स्थूल शारीरिकता से ऊपर उठकर सूक्ष्म सौन्दर्य-तत्त्व की खोज में

---

१. 'बाँधा था बिधु को किसने, इन काली जंजीरों से,
मणि वाले फणियों का मुख, क्यों भरा हुआ हीरों से।' —आँसू, पृ० २१।

२. 'काली आँखों में कितनी, यौवन के मद की लाली।
मानिक मदिरा से भर दी, किसने नीलम की प्याली।' —आँसू, पृ० २१।

३. 'निराला' : अनामिका (वह तोड़ती पत्थर), पृ० ७६।

४. पथिक, पृ० १७, संस्करण १९७० ई०।

तत्पर हुई है।[१] सौन्दर्य-चिन्तन में स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति प्रायः सभी स्वच्छन्द कवियों के काव्य में विद्यमान है।

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की सौन्दर्यानुभूति में यौवन की ताजगी और वसन्त-श्री की मादकता ही नहीं, अपितु ग्रीष्म की प्रचण्डता और घने अन्धकार की विभीषिका भी सामान्य रूप से विद्यमान है। उनके काव्य में रूपसी के साथ ही वैधव्य जीवन का सौन्दर्य भी स्थल-स्थल पर प्राप्त होता है।[२]

स्वच्छन्दतावादी काव्य की भावानुभूतियों और कल्पनाओं में भी रोमानी सौन्दर्य का दर्शन मिलता है। 'पंत' इसमें अग्रगण्य हैं। 'पंत' की सौन्दर्य-भावना अत्यन्त सरस और कोमल भावभूमि पर अवतरित है। उन्होंने वेदना जैसे संवेदनीय सूक्ष्म भाव तथा अश्रु जैसे साधारण उपादान में भी मनोरम सौन्दर्य की अनुभूति की है।[३]

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्राकृतिक सौन्दर्य का भी अत्यन्त बारीकी से निरीक्षण किया है। वे प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य पर तो मुग्ध हुए ही हैं उनके अन्तःकरण में व्याप्त अव्यक्त सौन्दर्य-तत्त्व को भी ढूँढ़ने में प्रवृत्त हुए हैं। 'प्रकृति का सौन्दर्य मानव के लिये उपादेय है और मानव-सौन्दर्य प्रकृति-सुलभ सौन्दर्य के अनुरूप।'[४] इसी आधार पर इन कवियों ने कुरूपता में भी सौन्दर्य की अनुभूति कर प्रकृति का मनोपयोगी चित्रण किया। चिर-यौवना प्रकृति की अतुल-राशि पर ये कवि इतने मुग्ध हुए हैं कि कृति के साथ-साथ कर्ता का भी साक्षात्कार करने को आतुर हैं।[५]

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने गोचर जगत् से परे परोक्ष सत्ता में व्याप्त चिर-सौन्दर्य के प्रति भी अपनी रहस्यमयी जिज्ञासा प्रकट की है। मुकुटधर पाण्डेय प्राची के अरुणोदय में चिर-सुन्दर के दिव्य-सौन्दर्य की कल्पना करते हैं।[६] 'प्रसाद' अचिर सौन्दर्य से परे परोक्ष सत्ता के चिर-सौन्दर्य को देखने का आग्रह करते हैं जिसकी

---

१. पल्लव, पृ० १५१।

२. परिमल (विधवा), पृ० ११६।

३. अ. ग्रन्थि, पृ० ४१।
   ब. ग्रन्थि, पृ० ४०।

४. डॉ० अम्बिकादत्त पाण्डेय : छायावादी काव्य में लोक मंगल की भावना, पृ० १२३, संस्करण १६७३ ई०।

५. पथिक, पृ० २३।

६. कविता-कौमुदी, पृ० ५५६।

झलक हमें प्राकृतिक उपादानों में मिलती है।[1] 'निराला' के विराट् चित्रों में सत्य और शिव के साथ सुन्दरम् की दिव्य छटा का दर्शन होता है।

निष्कर्षतः आधुनिक स्वच्छन्द कवियों का सौन्दर्य-चिन्तन अवयवी रूप-सौन्दर्य के उद्‌घाटन में प्रवृत्त न होकर समग्र सौन्दर्य के सूक्ष्म रूपायन में लीन था। स्थूल (शारीरिक) सौन्दर्य की अपेक्षा उन्होंने सूक्ष्म (मानसिक) सौन्दर्य के चित्रण को वरीयता दी। सौन्दर्य उनके काव्य में परम्परागत लिप्सात्मक स्तर से ऊँचा उठकर उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित हुआ। उनके सौन्दर्य-चित्रण ने पूर्वस्वीकृत नारी-सीमा से आगे बढ़कर जीव-जगत् के अन्य उपादानों को भी समेट लिया है। यहाँ तक कि नर-नरेतर जगत् की स्थूल सीमा से आगे बढ़कर उन्होंने भावनाओं और कोमल कल्पनाओं में भी रोमानी सौन्दर्य की प्रतिष्ठा की है। गोचर जगत् के परे परोक्ष सत्ता के रहस्यमय सौन्दर्य के प्रति भी उन्होंने जिज्ञासा प्रकट की। सौन्दर्याङ्कन में सर्वथा नवीन आलम्बनों का चयन कर, परम्परागत आलम्बनों को नये भाव-बोधों से सम्पृक्त कर तथा अभिव्यंजना की नवीन कलात्मक शैली अपनाकर इन स्वच्छन्द कलाकारों ने सौन्दर्य की बड़ी सजीव प्रतिमाएँ प्रस्तुत कीं। सौन्दर्यगत बारीकियों को देखने, परखने और चित्रित करने की दिशा में वे प्रवृत्त हुए और इसमें पूर्णतः सफल रहे। इस प्रकार आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने हिन्दी-काव्य में स्वीकृत परम्परागत सौन्दर्य-बोध की संकुचित सीमा को तोड़कर सामन्ती और नैतिकतापरस्त सौन्दर्य-बोध के मध्य एक नवीन स्वान्तः सुखाय, सर्वजन सुखाय सौन्दर्य-बोध की काव्य में प्रतिष्ठा की।

करुणा एवं वेदना :

हिन्दी काव्य-परम्परा में करुणा एवं वेदना की जितनी मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति भक्तिकाल में हुई है उतनी या उससे बढ़कर आधुनिक काल में ही देखने को मिलती है। भक्तिकाल में करुणा एवं वेदना, भक्ति-चेतना के साथ लिपटकर मुखरित हुई है और रीतिकाल में वेदना का प्रस्फुटन विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत अनेक अन्तर्दशाओं के रूप में हुआ है।

जीवन को काव्य में जितनी अधिक वरीयता आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने दी, उतनी ही अधिक वेदना एवं करुणा की मार्मिक अभिव्यक्ति भी हुई। इन कवियों का तद्‌विषयक दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में वेदना एवं करुणा का स्वर वस्तुतः प्रेम-प्रसूत है और उसकी मुख्यतः निम्नांकित चार दिशाएँ हैं—

---

१. प्रेम-पथिक, पृ० २४-२५।

(१) वैयक्तिक प्रेम-प्रसूत वेदना ।
(२) आध्यात्मिक प्रेम-प्रसूत वेदना ।
(३) देश-प्रेम-प्रसूत वेदना एवं करुणा ।
(४) मानवीय प्रेम-प्रसूत वेदना एवं करुणा ।

'प्रसाद' और 'पंत' के काव्य में वैयक्तिक प्रेम-प्रसूत वेदना का प्राधान्य है। उनके काव्य में "अतीत की मादक स्मृतियाँ विरह-पीड़ित हृदय को उद्वेलित करती रहती हैं। प्रेमी प्रेमोल्लास के क्षणों को याद कर एकान्त में न जाने कितनी सर्दाई और टकराती आहें भरा करता है।"[१] 'प्रसाद' के 'आँसू' में वेदना और करुणा की अतुल लहरियाँ उठती हुई दिखाई देती हैं।[२] उन्होंने वैयक्तिक पीड़ा को विश्व-पीड़ा का माध्यम बनाकर संवेदना के प्रसार का दिशा-बोध कराया है। कवि ने अपने वेदना दर्शन के आधार पर वैयक्तिक विषाद को विश्व-कल्याण में पर्यवसित कर दिया है।[३] 'पंत' तो विरह वेदना को काव्य का आदि स्रोत ही मानते हैं।[४] उनके काव्य में आद्यन्त प्रेम-प्रसूत वेदना की ही गूँज है। उन्हें सम्पूर्ण सृष्टि में वेदना का ही करुण उद्‌गार दृष्टिगोचर होता है।[५] 'निराला' की 'सरोज-स्मृति', 'प्रिय के प्रति' आदि कविताओं में वैयक्तिक प्रेम-प्रसूत वेदना का ही प्रसार है। मुकुटधर पाण्डेय तो अपनी जीवन-नौका को अश्रु-जल में ही तिराना चाहते हैं।[६] इन कवियों की रचनाओं में 'मानव जीवन की गम्भीर और सुकुमार वेदना निहित है।[७] 'वेदना से भी अधिक निर्भय तथा निष्कपट साम्राज्य है क्या स्वर्ग का ?'[८] और 'आह वेदने ! आ तुझको भी गा-गाकर जीवन दे दूँ—हृदय खोल के रो-रोकर।'[९] आदि पंक्तियाँ इस बात की साक्षी हैं कि इन कवियों ने वेदना का हृदय

---

१. डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० ११६, संस्करण १९४२ ई० ।
२. (क) आँसू, पृ० १४ ।
   (ख) वही, पृ० ११ ।
३. वही, पृ० ७९ ।
४. पल्लव, पृ० ६२ ।
५. ग्रन्थि, पृ० ४०, सं० २००९ वि० ।
६. सरस्वती, १९१७ ई० ।
७. डॉ० श्रीकृष्ण लाल : हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ११६, संस्करण १९४२ ई० ।
८. पंत : ग्रन्थि, पृ० ४६ ।
९. वही : वीणा, पृ० ७ ।

खोलकर स्वागत किया है। वेदना का ऐसा आग्रह तथा हर्षपूर्ण आह्वान हिन्दी काव्य के लिए सर्वथा नवीन है।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में वेदना और करुणा की अभिव्यक्ति आध्यात्मिक संदर्भों में भी व्यापक रूप से हुई है। पिछले शृंगारिक परिवेश में इस ढंग का प्रसार प्रायः नहीं हो सका था। ठा० गोपालशरण सिंह परोक्ष सत्ता के प्रेम में इतने अभिभूत हो जाते हैं कि उनकी विरह-वेदना का उच्छलित प्रवाह हृदय में न समा सकने के कारण आँखों में छलक आता है।[१] 'प्रसाद', 'पंत' और 'निराला' के काव्य में आध्यात्मिक प्रेम-प्रसूत वेदना का उद्‌गार प्रत्यक्ष न होकर संकेतात्मक है। इन कवियों ने प्रायः लौकिक वेदनानुभूति को ही आध्यात्मिक रङ्ग दिया है।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में वेदना और करुणा की मार्मिक अभिव्यक्ति देश की दीन-हीन दशा, परतंत्रता की पीड़ा, अन्याय, शोषण आदि राष्ट्रीय विडम्बनाओं के क्रोड़ में भी हुई है। 'मुकुटधर पाण्डेय' अपनी प्रसिद्ध कविता 'कुररी के प्रति' में परतंत्रता-प्रसूत वेदना को कुररी के माध्यम से व्यक्त करते हैं। वे कुररी से पूछते हैं—'बता कौन-सी व्यथा तुझे है, है किसका परिताप'[२] और फिर स्वयं 'या तुझको निज जन्मभूमि की सता रही है याद'[३] कहकर परतंत्र भारत के प्रति अपनी मूक व्यथा को प्रकट करते हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी के खण्ड काव्य 'मिलन' और 'पथिक' में वेदना एवं करुणा का प्रस्फुटन राष्ट्रीय चेतना के साथ लिपट कर हुआ है। वे प्रेम-वेदना-व्यथित हृदय से उत्पन्न आह को जगती-तल में नवजीवन का संचार करने वाली शक्ति मानते हैं और करुणाकलित प्रेमाश्रु को अमृत के समान कल्याणकारी।[४] भारतवासियों की दीन-हीन दशा पर उन्होंने इसी संवेदनासिक्त तथा करुणाकलित प्रेमाश्रु की मुक्त भाव से वृष्टि की है।

आधुनिक हिन्दी स्वच्छन्द काव्य में प्रथम बार मानवीय प्रेम-प्रसूत वेदना एवं करुणा का स्वाभाविक प्रसार हुआ है। 'निराला' इस क्षेत्र में अग्रगण्य हैं। सामाजिक कुरीतियों की उपज 'विधवा' और सामन्ती व्यवस्था का परिणाम 'भिखारी' को देखकर 'निराला' की हृदयस्पर्शी संवेदना एवं करुणा काव्य में फूट पड़ी है। 'विधवा' की करुणासिक्त आँखों को देखकर कवि का भावुक हृदय हाहाकार

---

१. माधवी, पृ० ११५।

२. मुकुटधर पाण्डेय : सं० पं० रामनरेश त्रिपाठी, कविता-कौमुदी, भाग २, पृ० ५६१।

३. वही, पृ० ५६१।

४. मिलन, पृ० २५।

कर उठता है।[1] 'भिक्षुक' के कार्य-व्यापार से उसका हृदय मर्माहत हो दो टूक हो जाता है।[2] वस्तुतः इन कवियों ने मानवी पीड़ा को अश्रुपूरित नेत्रों से देखा है तथा अपनी सम्पूर्ण संवेदना को सहज भाव से उड़ेल दिया है।

प्रकृति-चित्रण :

हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण की एक लम्बी परम्परा रही है। वेदकालीन साहित्य से लेकर आधुनिक काल की साहित्यिक काव्य-कृतियों तक में प्रकृति की विभूतियाँ इतनी घुल-मिल गयी हैं कि लगता है काव्य और प्रकृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। सत्य तो यह है कि कवि की कल्पना को प्रकृति एक प्रेरक तत्त्व के रूप में दिखाई पड़ती है। युग-चेतना के साथ-ही-साथ प्राकृतिक सौन्दर्य की निरीक्षण-पद्धतियाँ उत्तरोत्तर परिवर्तित होती रहीं जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण काव्य में भी लक्षित होता है। वीरगाथा काल में प्रकृति का वर्णन युद्ध की विभीषिकाओं के निरूपण में होता था और वही प्रकृति भक्तियुगीन साहित्य में धर्म और नैतिकता के पाश में बँध गयी। शृंगार-काल तक आते-आते प्रकृति विलासिता के उद्दीपन रूप में ग्रहण की जाने लगी। आधुनिक-युग के वैतालिकों ने प्रकृति को सर्वथा उन्मुक्त, स्पन्दनशील और चेतन व्यक्तित्व से युक्त करने की पूर्ण चेष्टा की। यही कारण है कि प्राचीन और नवीन प्रकृति-चित्रण का चित्रफलक सर्वथा भिन्न हो गया है।

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने एक ही साथ अनेक चित्रों को उभारने की अद्भुत क्षमता दिखाई है। इन कवियों ने यह प्रवृत्ति अंग्रेजी रोमाण्टिक काव्य से ग्रहण की है। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में ध्वनित वैयक्तिक अनुभूतियों में अप्रस्तुत विधान, प्रतीक-विधान, मानवीकरण आदि प्रवृत्तियाँ वस्तुतः अंग्रेजी काव्य से ही संक्रमित होकर आयी हैं। अंग्रेजी कवि 'शेली', 'कॉलरिज', 'वर्ड्सवर्थ' आदि से भाव तथा प्रभाव ग्रहण कर इन कवियों ने हिन्दी प्रकृति-चित्रण को समृद्ध किया है। इस प्रकार परम्परागत प्रकृति-चित्रण और अंग्रेजी काव्य से गृहीत प्रकृति-चित्रण की विधाओं को समन्वित कर इन प्रकृति-प्रेमी कवियों ने हिन्दी-काव्य में प्रथम बार प्रकृति को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में प्रतिष्ठित किया।

---

१. 'है करुणा-रस से पुलकित इसकी आँखें,
देखा तो भीगी मन-मधुकर की पाँखें,
मृदु रसावेश में निकला जो गुंजार,
यह और न था कुछ, बस हाहाकार।'

—परिमल, पृ० १२०।

२. 'वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता
पथ पर आता।'

—परिमल, पृ० १२५।

आलम्बन :

रीतिकाल में आलम्बन चित्रण का जो अकाल था उसे आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने दूर कर दिया। अब कवि रीति की संकीर्ण सीमाओं से निकल कर उन्मुक्त आकाश में विचरण करने लगा। प्रकृति का स्वतन्त्र निरीक्षण प्रायः हिन्दी के सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों ने किया है। इन कवियों ने ऋतु-वर्णन की प्राचीन परम्परा त्यागी, प्रकृति को शास्त्रीय शृंखलाओं से मुक्त किया तथा प्रकृति की पृथक् सत्ता को स्वीकार कर उसके सौन्दर्य का स्वतंत्र दर्शन किया। इनके लिए प्रकृति मानस-रंजन के साथ-साथ भाव-सर्जना की प्रेरक भी रही। श्रीधर पाठक अपने समकालीनों में प्रकृति को आलम्बन रूप में चित्रित करने में अग्रणी थे। उनकी कृति 'कश्मीर-सुषमा' में प्रकृति के स्वच्छन्द निरीक्षण से उत्पन्न रसोद्रेक छलका-सा पड़ता है। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' के प्रथम सर्ग में प्रकृति को मानवी आलम्बन का बड़ा ही भव्य रूप दिया है।[1] उनके काव्य में लौकिक प्रेम तथा राष्ट्र-प्रेम के साथ प्रकृति एवं उसके स्थूल क्रिया-व्यापारों के स्वच्छन्द चित्र भी उभरते चलते हैं।[2] 'पंत' तो मूलतः प्रकृति के ही कवि हैं। यद्यपि उनकी अन्तर्दृष्टि प्रकृति के बाह्य आवरण को भेदने में समर्थ थी तथापि उन्होंने प्रकृति के बाह्य सुकुमार रूप पर मुग्ध होकर यथेष्ट स्वतंत्र चित्रण भी किया है। पर्वतीय परिवेश का उन्हें अच्छा अनुभव था, जिसकी छटा उनके काव्य में विविध रूपों में चित्रित हुई है।[3] प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों के अनुकूल भाषा में नाद-सौन्दर्य की सृष्टि करने में 'निराला' बेजोड़ हैं। आलम्बन विभाव युक्त उनकी 'बादल राग' कविता में नाद-सौन्दर्य के साथ भाव और कल्पना का मणि-कांचन संयोग हुआ है।[4]

उद्दीपन :

आधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवियों को प्रकृति का परम्परागत उद्दीपन रूप ग्राह्य नहीं था। यदि उनके काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप कहीं दिखाई भी देता है तो नये परिधान में। पपीहा और कोयल विरहिणी के लिए चिरकाल से दुःखदायी माने गये हैं। उन्होंने इस युग में भी साथ नहीं छोड़ा है, लेकिन अब अपना दृष्टिकोण बदल दिया है। अब वे विरहिणी की पीड़ा को बढ़ाते नहीं, वरन् अपने क्रिया-व्यापार से पीड़ा के बीच भी क्षणिक सुख का संचार करते हैं।[5]

---

१. पथिक, पृ० १६।

२. वही, पृ० ३७।

३. पल्लव, पृ० ५५-५६।

४. परिमल, पृ० १६०।

५. पं० रामनरेश त्रिपाठी : पथिक, पृ० ५३, संस्करण १६७० ई०।

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के काव्य में उद्दीपन वर्णन के साथ-साथ आलम्बन वर्णन भी चलता रहता है। इस प्रकार के वर्णनों से उद्दीपनोद्देश्य की पूर्ति के साथ-साथ प्रकृति के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान भी हो जाया करता है। इससे स्पष्ट है कि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने उद्दीपन वर्णन की प्रायः उपेक्षा की है और यदि कहीं भावों के साथ बहकर वह आ भी गया है तो वैयक्तिक स्वच्छन्दता के परिधान में लिपटा हुआ सर्वथा नवीन लगता है।

हिन्दी के आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने प्रकृति को उद्दीपन-विभाव से जहाँ मुक्त किया है वहीं हिन्दी काव्य में प्रथम बार प्रकृति का वासनामय चित्र प्रस्तुत करने की नवीन परम्परा का सूत्रपात भी किया है। 'निराला' की 'जुही की कली' इस प्रकार की हिन्दी में प्रथम रचना है।

अप्रस्तुत :

आधुनिक हिन्दी-काव्य में परम्परागत उद्दीपन वर्णन तो तिरोहित हो गया, लेकिन इसी के साथ अप्रस्तुत-विधान की वेगवती धारा प्रवाहित होने लगी। इन कवियों ने परम्परागत उपमानों को प्रायः त्यागा है और आकार-साम्य के स्थान पर प्रभाव-साम्य को महत्त्व प्रदान कर अपनी स्वच्छन्दता का परिचय दिया है। उदाहरण के लिए 'पल्लव' की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

(१) 'इन्द्रधनु-सा आशा का सेतु
अनिल में अटका कभी अछोर,
कभी कुहरे-सी धूमिल घोर
दीखती भावी चारों ओर।'
—पल्लव, पृ० ६३।

(२) 'सिसकते हैं समुद्र-से मन
उमड़ते हैं नभ-से लोचन'
—पल्लव, पृ० ६७।

प्रथम छन्द में कवि ने आशा और इन्द्रधनुष का साम्य दिखाकर आशा को क्षणिक और समुद्र के रंगों के समान सुखद तथा निराधार व्यंज़ित किया है। द्वितीय छन्द में समुद्र और मन के साम्य में सिसकने की संगति नहीं है, वरन् सिसकने में वक्ष के स्पन्दन का भाव है। इसी प्रकार नभ और आँखों के साम्य में आँखों के सौन्दर्य की व्यंजना है। अन्य स्वच्छन्द कवियों ने भी प्रकृतिपरक नवीन अप्रस्तुतों के संयोजन में अपूर्व अभिव्यंजना-कौशल का परिचय दिया है। इस प्रकृति का प्रसार स्वच्छन्दतावाद के द्वितीय चरण में सबसे अधिक हुआ है।

प्रकृति-रहस्य :

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने एक रहस्यमयी सत्ता का आभास पाया और काव्य में अपनी रहस्यपरक स्वाभाविक जिज्ञासा प्रकट की। "इन कवियों की रहस्यात्मकता में स्वाभाविकता की झलक है, जो सहृदयों को सीधे आकर्षित करती

है, पर यह रहस्यात्मकता साम्प्रदायिक नहीं है, वरन् हमारे हृदय के भाव-चक्र में प्रकृत-परिधि के भीतर ही संचरण करने वाली है।"[१] स्वच्छन्द काव्य में चित्रित रहस्य-भावना बड़ी ही मधुर, स्वाभाविक तथा मर्मस्पर्शी है। भीम भयंकर काले मेघों के संघर्षण से उत्पन्न विद्युत् की कौंध में 'पंत' को रहस्यमयी परोक्ष सत्ता की दिव्य-शक्ति का दर्शन मिलता है जो उन्हें मूक संकेत भेजकर अपने अस्तित्व का आभास कराया करती है।[२] 'निराला' परमाणु की विस्मयकारी लीला पर मुग्ध हो एक दार्शनिक की भाँति उस भेद को जानने के लिए जिज्ञासु हैं जो परमाणु और सृष्टि-रचना के बीच विद्यमान है।[३] इसी प्रकार 'निराला' की कविता 'तुम और मैं' में अद्वैत-दर्शन का आधार लेकर प्रकृति-रहस्य की अनुपम सृष्टि की गयी है। 'प्रसाद' की 'झरना', 'खोलो द्वार', 'किरण', 'स्वप्न-लोक', 'दर्शन', आदि कविताएँ प्रकृति-रहस्य का मार्मिक उद्‌घाटन करती हैं। अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में भी प्रकृति-रहस्य का सुन्दर परिपाक हुआ है जिसका विस्तृत विवेचन यहाँ सम्भव नहीं।

प्रतीकीकरण :

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रभाव-साम्य के आधार पर प्रकृतिपरक प्रतीकों का पर्याप्त प्रयोग किया है। इन कवियों ने अपने हृद्‌गत भावों को मनोरम शब्द-चित्रों द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त किया है कि पाठक पढ़कर चकित रह जाता है। हाँ, इतना अवश्य है कि जिस कवि की अनुभूति जितनी गहरी है, उसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति उतनी ही उत्कृष्ट है। इन कवियों ने प्रकृति के विशाल प्रांगण से परम्परागत तथा सर्वथा नवीन प्रतीकों का चयन किया है। 'निराला' ने 'जुही की कली' को नववधू का प्रतीक बनाकर स्पर्श-लाज से शर्माई हुई नवोढ़ा नायिका के रूप में चित्रित किया है।[४] 'प्रसाद' के 'आँसू' में अनेकशः चित्र प्रतीकात्मक हैं।[५] इसी प्रकार 'पंत' तथा अन्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में भी अनेकशः प्रतीकात्मक उक्तियाँ देखी जा सकती हैं। प्रकृतिपरक प्रतीकों की योजना द्वारा काव्य में लाक्षणिक भंगिमा लाने की इन कवियों की विशिष्ट प्रवृत्ति रही है।

---

१. डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल : हिन्दी कविता में प्रकृति-चित्रण, पृ० ३०७, संस्करण १९५४ ई०।

२. पल्लव, पृ० ८५।

३. 'निराला' : परिमल (कण), पृ० १५७।

४. वही : परिमल (जुही की कली), पृ० १७१-७२।

५. 'झंझा झकोर गर्जन था, बिजली थी नीरदमाला,
पाकर इस शून्य हृदय को, सबने आ डेरा डाला।' —आँसू, पृ० १५।

मानवीकरण :

प्रकृति में मानवीय भावनाओं का आरोप ही मानवीकरण कहलाता है। मानवीकरण की यह प्रवृत्ति वैदिक-काल से ही देखी जा सकती है। वैदिक-काल में मेघ, वायु, अग्नि आदि को इन्द्र, मरुत, वरुण नामों से सम्बोधित करने की प्रवृत्ति वस्तुतः मानवीकरण की ही प्रवृत्ति है। आधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवियों ने इस प्रवृत्ति को अंग्रेजी काव्य से ग्रहण कर हृदयस्पर्शी बिम्बों की सृष्टि की है। स्वच्छन्द काव्य में निराकार को साकार, निर्गुण को सगुण, अरूप को सरूप, अमूर्त को मूर्त बनाकर प्रकृति के विविध क्रिया-व्यापारों की बड़ी ही सजीव झाँकी प्रस्तुत की गयी है।[1]

देश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता :

भारतेन्दु जी ने सन् १८५७ के पश्चात् जिस राष्ट्रीय-चेतना का आह्वान किया उस स्वर में उग्रता और आवेग का सर्वथा अभाव था। 'कहाँ करुणा-निधि केशव सोये', जैसे वाक्य की करुण छाया में राष्ट्रीय चेतना जैसे सो रही थी। उसे अँगड़ाइयाँ लेने का अवसर एक लम्बे समय के बाद मिला। आर्यसमाज के माध्यम से तत्कालीन हिन्दी के कवियों ने अपनी राष्ट्रीय चेतना को एक दिशा दी और उसे क्रियमाण बनाया। राष्ट्रीय-चेतना के प्रतिनिधि गायक 'मैथिलीशरण गुप्त' की 'भारत-भारती' में राष्ट्रीयता का उद्घोष प्रथम बार सुनाई पड़ा। स्वच्छन्दतावादी कवियों में 'श्रीधर पाठक' और 'रामनरेश त्रिपाठी' उसी परम्परा के सजग गायक हैं। राष्ट्रीयता का सर्वाङ्गीण विकास इन कवियों के काव्य-प्रणयन द्वारा जिस सीमा तक हुआ, उसकी तुलना अन्य राष्ट्रीय कवियों से प्रायः नहीं की जा सकती। देश-प्रेम से प्रेरित होकर श्रीधर पाठक ने कश्मीर और हिमालय की सुषमा का बड़ा ही भव्य तथा हृदयग्राही चित्र खींचा है। इन राष्ट्रीय विभूतियों से कवि का रागात्मक सम्बन्ध हो गया था, जो उनके काव्य में मुखर हो उठा है।[2]

भारतीय जनता को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने के लिए यह आवश्यक था कि उनके समक्ष देश की दुर्दशा का समग्र चित्र प्रस्तुत किया जाय। इस क्षेत्र में स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया। निश्चय ही तत्कालीन भारत में निर्मित होने वाले राष्ट्रीय गीतों में इन कलाकारों का स्थान अद्वितीय एवं अप्रतिम है। सत्य तो यह है कि इनकी रचनाओं में भारत की अतीत-कालीन विभूतियों का दिग्दर्शन कराने की प्रवृत्ति चाहे न्यून हीं हो, किन्तु उसमें

---

१. (क) कश्मीर-सुषमा, पृ० ६।
(ख) झरना (किरण), पृ० १४।
२. श्रीधर पाठक : भारत-गीत, पृ० ५८।

समाज के दीन-हीन तथा शोषित वर्ग का सच्चा एवं यथार्थ चित्रण बहुत ही अनावृत रूप में हमें देखने को मिलता है।[१]

देश की विपन्नता का मुख्य कारण आपसी फूट, मोह-ग्रस्तता, स्वार्थसिद्धि, विदेशियों की कूटनीति और नियति का विधान था। इन्हीं कारणों से जनता विवेक-शून्य होकर अपने ही सहयोगियों के साथ विश्वासघात करने में रंच-मात्र भी संकोच नहीं करती थी। इस भावना से विक्षुब्ध होकर 'निराला' ने 'शिवाजी को पत्र' नामक कविता में वर्तमान भारत की दुर्दशा का समग्र चित्र प्रस्तुत किया[२] तथा भारतीयों को जागृत अवस्था में लाने के लिए उद्‌बोधन गीतों की मार्मिक व्यंजना की।[३]

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने उद्‌बोधन गीतों द्वारा जहाँ अतीतकालीन विभूतियों की महानता का स्मरण कर भारतीयों के गिरते हुए मनोबल को सुदृढ़ सम्बल प्रदान किया,[४] वहीं तत्कालीन सामाजिक दशा का हृदय-विदारक चित्र उपस्थित कर उन्हें अपनी दुर्दशा से मुक्ति का उपाय ढूँढ़ने के लिए भी प्रोत्साहित किया है।[५] बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जनता में राष्ट्र पर से दासता का जुआ उतार फेंकने की एक प्रबल उमंग जागृत हो चुकी थी। गृहपथ, देश-भक्ति की अखंड-चेतना से परिव्याप्त हो रहा था और उसने इष्ट-सिद्धि के लिये क्रान्ति का सहारा लिया।[६] ऐसी स्थिति में उस समय का कवि जो युग और समाज का द्रष्टा और स्रष्टा होता है, परिस्थिति से मुख मोड़ कर नायिका की भाव-भंगियों में कैसे खो सकता था ? उसने भी जनता के स्वर-में-स्वर मिलाकर 'योग्य जन जीता है'[७] का नारा लगाया तथा अपनी रचनाओं द्वारा क्रान्ति का आह्वान किया।

इस प्रकार आधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवियों ने उद्‌बोधन गीतों,[८] परिस्थितियों के यथार्थ चित्रण एवं अतीत के गौरव गान द्वारा भारतीयों में चेतना की लहर पैदा कर दी। रीतिकाल में राष्ट्रीय-चेतना का प्रायः अभाव था। भूषण जैसे कवियों की राष्ट्रीयता बहुत-कुछ हिन्दू राष्ट्रीयता एवं हिन्दू संस्कृति के सर्वाङ्गीण विकास में

१. परिमल (भिक्षुक), पृ० १२५।
२. परिमल, पृ० २००-२०१।
३. परिमल, पृ० १८५।
४. ठा० गोपालशरण सिंह : माधवी, पृ० ७६।
५. रामनरेश त्रिपाठी : मिलन, पृ० ५०, सं० १९८५ वि०।
६. विद्यानाथ गुप्त : हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृ० २९२।
७. निराला : परिमल, पृ० १८९।
८. वही, पृ० १८८।

सन्निहित थी, किन्तु पुनरुत्थान काल में राष्ट्रीयता का स्वर पर्याप्त बदल गया और राष्ट्रीयता बहुत-कुछ साम्प्रदायिकता और जातीयता की संकीर्ण मनोवृत्ति से विमुक्त होकर मानवीय सुख-दुःखों के साथ सम्बद्ध हो गयी। राष्ट्रीयता के साथ मानवता की सम्बद्धता ने धर्मनिरपेक्षता को जन्म दिया। विभिन्न धर्मावलम्बियों के मुख्य राष्ट्रीय धारा से जुड़ने के कारण जिस राष्ट्रीय-चेतना का प्रादुर्भाव हुआ वह निश्चय ही अधिक बलशाली और प्रभावशाली सिद्ध हुई।

इस पुनरुत्थानवादी भावना के प्रभाव से हमारे देश में स्वाभाविक देश-प्रेम का उदय हुआ।[1] राष्ट्रीयता एवं देश-प्रेम के व्यापक दृष्टिकोण को प्रायः सभी स्वच्छन्द कवियों ने अपनाया है तथा ओजपूर्ण वाणी में उद्‌बोधन गीतों द्वारा भारतीयों की सुप्त धमनियों में नवीन रक्त का संचार कर देश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना को भरा है।[2]

काव्य-शिल्प :

"स्वच्छन्दतावादी कविता विषय-प्रधान न होकर व्यक्ति-प्रधान होती है। व्यक्तिगत भावना का उफान अपनी अभिव्यक्ति के लिए किसी प्रकार के बाह्य-अलंकरण की अपेक्षा नहीं रखता। जिस प्रकार स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति किसी देश, काल, व्यक्ति या साहित्य तक ही सीमित नहीं है, उसी प्रकार वैयक्तिक भावावेग की अभिव्यक्ति भी किसी विशिष्ट शैली का अनुकरण नहीं करती।"[3] आधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवियों का शिल्प व्यक्ति-प्रधान है। इसलिए इन कवियों ने अलंकार, रीति, वृत्ति आदि नियमों का निर्जीव रूप में पालन नहीं किया है। इनकी भावना अनायास ही अनुकूल शब्दावली में ढलती गयी है और अनुभूतिगत तीव्रता ही कवि की शैली के स्वरूप को निर्धारित करती गयी है।

स्वच्छन्दतावादी कवि अन्तर्मुखी होने के कारण संवेदनशील होता है। वह भावावेग के क्षणों में निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव बना देता है। उसकी यही प्रवृत्ति मानवीकरण कहलाती है। इसी प्रकार संवेदनशील कवि जब इन्द्रियातीत भावों को अपनी रागात्मक वृत्ति के रंग में रँगकर मूर्त रूप प्रदान करता है तो उसे हम बिम्ब-विधान कहते हैं। जब कवि भावुकतावश सीधे सरल शब्दों को सांकेतिक या लाक्षणिक भाषा में प्रस्तुत करता है तो वही प्रतीक बन जाता है।

सूक्ष्ममुखी होने के कारण प्रायः इन कवियों की सौन्दर्यप्रियता भी अमूर्त एवं अशरीरी है। वस्तुतः इन कवियों ने मूर्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त अप्रस्तुत-योजना

१. पं० श्रीधर पाठक : भारत-गीत, पृ० २६।
२. पं० रामनरेश त्रिपाठी, पथिक, पृ० ५०।
३. डॉ० अजब सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, पृ० ३४, संस्करण १९७५ ई०।

का प्राविधान किया है। इसके अतिरिक्त इनके काव्य में कहीं-कहीं ध्वन्यर्थक व्यंजना आदि अलंकारों के भी उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं लेकिन यह उनकी मूल प्रवृत्ति नहीं कही जा सकती। "अन्ततः अलंकार भाषा की बाह्य एवं आन्तरिक क्षमताओं का एक विशेष प्रकार का उपयोग है जिससे काव्य का कथ्य अधिक सम्प्रेष्य, प्रभावशाली एवं आकर्षक बन जाता है।"[१] यद्यपि आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में परम्परागत अलंकारों का स्थान अप्रस्तुत-योजना, बिम्ब-विधान, मानवीकरण तथा प्रतीकों ने ले लिया है तथापि परम्परागत उपमानों की रमणीयता एवं आकर्षण स्वच्छन्दतावादी कवियों के लिये सदैव बनी रही।

आधुनिक कवियों की नवीन उद्भावनाएँ परम्परागत उपमानों की रमणीयता को कम नहीं कर सकीं। हमारी सौन्दर्य वृत्ति जिन दृश्यों पर अनादिकाल से मुग्ध होती आयी है उसका आकर्षण कभी कम नहीं हो सकता। किसी पुष्कर विशेष का कोई एक कमल अपने दिन पूरे करके मुरझा जायेगा पर कवियों के मानस में कमलों ने अपने जिस रमणीय स्वरूप की प्रतिष्ठा कर ली है वह सदा डहडहा रहेगा।[२] कमल, खंजन, मीन, शुक, दाड़िम, अलि, कदली, केहरि, कोयल, मराल आदि उपमानों का प्रयोग अत्यन्त प्राचीनकाल से होता आ रहा है किन्तु सहृदय स्वच्छन्दतावादी कवि के लिए उसकी रमणीयता कम नहीं है।[३]

अप्रस्तुत-योजना :

काव्य में अप्रस्तुत-योजना का बहुत बड़ा महत्त्व है। इसके अन्तर्गत प्रायः सभी उपमामूलक अलंकार आ जाते हैं। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने अपने अन्तः-साक्ष्य के लिए ऐसी उपमाओं की खोज की है जो हृदयोदधि में उत्पन्न भाव-राशि को प्रकट करने में समर्थ एवं सशक्त हैं। इन कवियों ने परम्परागत उपमानों से भिन्न नये उपमानों का प्रयोग अपने काव्य में प्रचुरता से किया है। आलोच्य काल-खण्ड के अप्रस्तुत-योजना और पूर्ववर्ती अप्रस्तुत-योजना में नाममात्र का साम्य है, यद्यपि आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में भी साम्यमूलक अलंकारों के प्रचुर उदाहरण प्राप्त होते हैं और बालों को खंजन, प्रेमी को भ्रमर से उपमित किया गया है।

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, भाग—१, पृ० १८१, संस्करण १९५६ ई०।

२. डॉ० जगदीश नारायण त्रिपाठी : आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान, पृ० १३४-१३५।

३. (क) आँसू, पृ० २३।
 (ख) झरना, पृ० ८।
 (ग) मानसी, पृ० २१।

स्वच्छन्दतावादी काव्य में साम्यमूलक अलंकारों का स्थूल ढाँचा बहुत-कुछ सुरक्षित है किन्तु उसकी अन्तरात्मा के बदल जाने के कारण वह ढाँचा महत्त्वहीन हो गया है। स्वच्छन्द काव्य में यदि कहीं परम्परागत उपमानों का प्रयोग मिलता भी है तो नवीन अर्थबोध के साथ।[1] आँख के लिये खंजन, नलिन, मीन आदि उपमानों का प्रयोग हुआ है। ये सभी उपमान प्रायः बिम्बधर्मी हैं। स्पष्ट है कि यहाँ पर कवियों की दृष्टि रंग या आकार के स्थूल साम्य पर नहीं है वरन् समग्र प्रभाव को उभार कर अपनी अनुभूतियों को प्रभावी अभिव्यक्ति देना है।

स्वच्छन्दतावादी कवियों का सौन्दर्य-बोध एवं काव्य-चेतना प्रायः सूक्ष्म और नवीन है। इन कवियों ने प्रभाव-साम्य के आधार पर मूर्त उपमेय के लिए मूर्त अथवा अमूर्त उपमान और अमूर्त के लिए अमूर्त उपमान का प्रयोग किया है। 'द्विवेदी-युग में अप्रस्तुत-विधान का यह नयापन नवयुग की व्यक्तिवादी चेतना का द्योतक है।'[2]

स्वच्छन्दतावादी कवियों की भाववादी दृष्टि ने उन्हें सर्वथा अछूते उपमानों को उद्घाटित करने के लिए विवश किया। परिणामस्वरूप इन कवियों ने अधिकांश अछूते उपमानों की सृष्टि की। 'पंत' की 'छाया' शीर्षक कविता इस बात का प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करती है। इस रचना में प्रायः सभी उपमान नवीन हैं।[3] इन नवीन प्रयोगों से परम्परागत अप्रस्तुत-विधान की जड़ता समाप्त हो गयी और अलंकारों की सच्ची प्रभावशीलता उभरकर सामने आयी। 'प्रसाद' ने प्रिय के आने और जाने के मूर्त कार्य-व्यापार को अमूर्त अप्रस्तुतों के द्वारा इतने प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है कि उतने प्रभावशाली ढंग से मूर्त अप्रस्तुतों द्वारा उसे चित्रित नहीं किया जा सकता। यथा :—

> 'मादकता - से आये तुम, संज्ञा-से चले गये थे,
> हम व्याकुल पड़े बिलखते, थे उतरे हुए नशे से।'[4]

इन पंक्तियों में आकार, रूप या रंग का साम्य नहीं है बल्कि प्रिय के आगमन और गमन के प्रभाव का साम्य है जो बहुत ही सूक्ष्म एवं व्यंजक है। इस प्रकार के अप्रस्तुत कवि की सूक्ष्म कल्पना-शक्ति के द्योतक हैं। मानस-साक्षात्कार में मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत कितने समर्थ होते हैं, इसका प्रमाण 'पंत' जी की इन पंक्तियों में देखिए—

---

१. (क) आँसू, पृ० २३।
   (ख) परिमल, पृ० ७५।
   (ग) ग्रंथि, पृ० १८।
२. डॉ० हरदयाल : आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजन-शिल्प, पृ० २५८।
३. पल्लव, पृ० १०२।
४. जयशंकर प्रसाद, आँसू, पृ० ५६।

'गिरिवर के उर से उठ उठकर
उच्चाकांक्षाओं - से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर,
अनिमेष, अटल, कुछ चिन्ता पर।'[1]

हिमालय की चोटियों पर उठे हुए ऊँचे-ऊँचे वृक्ष सचमुच हिमालय के हृदय से उठी हुई उच्चाकांक्षाओं के समान प्रतीत होते हैं। इस अप्रस्तुत से मानस-पटल पर सौन्दर्य-चित्र अंकित होने के साथ-साथ द्रष्टा की मनोदशा का भी उद्घाटन हो जाता है।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने मानस-साक्षात्कार के लिए जिस प्रकार मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत का प्राविधान किया है उसी प्रकार अमूर्त अप्रस्तुत के लिए मूर्त का भी। यथा :

'सिसकते, अस्थिर मानस से बाल बादल-सा उठकर आज।
सरल अस्फुट उच्छ्वास! अपने छाया के पंखों में
(नीरव घोष भरे शंखों में)
मेरे आँसू गूँथ, फैल गंभीर मेघ-सा
आच्छादित कर ले सारा आकाश।'[2]

यहाँ पर अमूर्त प्रस्तुत उच्छ्वास के लिए मूर्त प्रस्तुत बाल बादल और गंभीर मेघों की योजना की गयी है।

'प्रसाद' ने 'विषाद' शीर्षक कविता में 'विषाद' जैसे अमूर्त भाव को मूर्त रूप में चित्रित किया है।[3] 'आँसू' में भी कवि ने इस अमूर्त भाव को अप्रस्तुतों के सहारे मूर्त रूप प्रदान किया है।[4]

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में कहीं-कहीं पर मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत-योजना का विधान किया गया है। स्वच्छन्द कवि 'पंत' ने 'आँसू' शीर्षक रचना में मरुत के मन्द प्रवाह से पर्वत शिखर पर उज्ज्वल बादलों को खण्डों में बिखर जाने के दृश्य को रूपकों द्वारा बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है।[5] 'निराला' ने 'पंचवटी-प्रसंग' में मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत की योजना करके पंचवटी की पृष्ठभूमि का रमणीय चित्र खींचा है।[6] जब कोई निर्झर पर्वत शिखा से नीचे गिरता है, तब

१. सुमित्रानन्दन पंत : पल्लव, पृ० ५६।
२. वही : पृ० ५३।
३. झरना, पृ० १७।
४. आँसू, पृ० ३०।
५. पल्लव, पृ० ६५।
६. परिमल, पृ० २३३।

भीषण घोष होता है। स्वप्न-सुख जब प्रस्तर-हृदय पर गर्व से आ पड़ा तो क्यों नहीं भीषण घोष करेगा। तभी तो 'पंत' ने उसे वज्र चक्रवात, भूकम्प और उत्पात सदृश कहा है—

'गर्व - सा गिर उच्च निर्झर स्रोत से,
स्वप्न - सुख मेरा शिलामय हृदय में,
घोष भीषण कर रहा है वज्र - सा—
वात - सा, भूकम्प - सा, उत्पात - सा।'[1]

यहाँ स्वप्न-सुख उपमेय अमूर्त है और उसके सभी उपमान भी अमूर्त हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने भी मूर्त के लिए मूर्त, मूर्त के लिए अमूर्त तथा अमूर्त के लिए अमूर्त उपमानों का प्रयोग किया है।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने विरोध-मूलक अप्रस्तुत-योजना की भी सृष्टि की है। 'प्रसाद' ने ज्वाला को शीतल कहा है।[2] 'निराला' ने 'तुम और मैं' शीर्षक कविता में बाहर से तो विरोध प्रकट किया है किन्तु अन्तरंग में एकता का ही प्राधान्य है। भाव-भाषा, विटप-छाया, प्राण-काया और ब्रह्म-माया में सम्बन्ध भिन्नता नहीं है।[3] 'पंत' के प्रेमी-नयन मन की बातों को इतने सुन्दर ढंग से प्रकट कर देते हैं कि वाणी द्वारा भी इतनी प्रभविष्णुता से उसे नहीं प्रकट किया जा सकता।[4]

प्रतीक-योजना :

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में प्रतीकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन कवियों ने सत्य को अधिक-से-अधिक प्रभविष्णु किन्तु संक्षिप्त रूप में व्यक्त करने के लिए प्रतीकों का सहारा लिया है। "काव्य में प्रतीकों का उद्देश्य केवल सजावट नहीं है, प्रत्युत वे काव्य के आधारभूत अंग हैं। सुन्दर लय के समान सौन्दर्यपूर्ण उपमान और प्रतीक कवि की सच्ची भावानुभूति के द्योतक हैं।"[5]

वस्तुतः स्थूल रूप से प्रतीक दो प्रकार के होते हैं—रूढ़ तथा नवीन। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने रूप गुण सादृश्य की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितना कि प्रभाव-साम्य पर तथापि इनका काव्य परम्परागत रूढ़ प्रतीकों से सर्वथा अछूता

१. सुमित्रानन्दन पंत : ग्रंथि, पृ० ४८।
२. आँसू, पृ० १०।
३. परिमल, पृ० ८०।
४. पल्लव, पृ० ५७।
५. डॉ० केशरी नारायण : आधुनिक काव्य-धारा, पृ० २१७।

नहीं है। प्रायः सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में थोड़ा-बहुत रूढ़ प्रतीक दृष्टिगत होते हैं।[1]

'प्रसाद' की प्रारम्भिक रचनाओं में—पपीहा, घन, चकोर, चन्द्रमा, सुमन, कंटक आदि रूढ़ प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। 'निराला' के काव्य में कली, शेर, स्यार, फूल, भँवर, नाव, पारावार, आदि, 'पंत' के काव्य में नयी कली, मोती, मिलिन्द, सिन्दूर, शूल आदि परम्परागत प्रतीकों की सुन्दर योजना की गयी है।

स्वच्छन्दतावादी कवियों की वृत्ति अभिनव कल्पना शक्ति द्वारा प्रभाव-साम्य के आधार पर नवीन प्रतीकों की सर्जना करने में विशेष रूप से रमी है। प्रभाव-साम्य की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि—"सिद्ध कवियों की दृष्टि ऐसे ही अप्रस्तुतों की ओर जाती है जो प्रस्तुत के समान ही सौन्दर्य, दीप्ति, कान्ति, कोमलता, प्रचण्डता, भीषणता, उग्रता, उदासी, अवसाद, खिन्नता इत्यादि की भावना जगाते हैं।"[2] यही प्रभाव-साम्य आगे चलकर प्रतीक-योजना का कार्य करता है। प्रतीक-योजना के माध्यम से ही कवि जड़-चेतन-प्रकृति के बीच सूक्ष्म सम्बन्ध-सूत्रों को देखने में समर्थ हुआ तथा प्रतीक के द्वारा ही कवि मानव-मानव के मध्य तथा मानव और प्रकृति के बीच सम्बन्ध-सूत्र जोड़ने का स्तुत्य कार्य कर सका।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का चुनाव विविध क्षेत्रों से किया, जिनमें प्रकृति का प्रमुख स्थान है।[3]

विशेषण विपर्यय (ट्रान्सफर्ड एपीथेट) :

जहाँ एक पदार्थ का विशेषण दूसरे पदार्थ के साथ नियोजित हो जाता है, वहाँ विशेषण विपर्यय होता है। यह एक प्रकार का अर्थालङ्कार है। तद्गुण भी इसी का सजातीय है, जिसमें एक वस्तु का गुण दूसरी निकट की वस्तु ग्रहण कर लेती है। विशेषण विपर्यय में वाच्यार्थ का बोध होने और सांकेतिक अर्थ की स्वी-

१. (क) श्रीधर पाठक : भारत-गीत, पृ० ३६।
   (ख) वही : पृ० ४२।
   (ग) ठा० गोपालशरण सिंह : माधवी, पृ० २८, २६।
   (घ) पं० रामनरेश त्रिपाठी : मानसी, पृ० २१।

२. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६७०।

३. भारत गीत, पृ० २०; कविता-कौमुदी (विश्वबोध), पृ० ५५६; पथिक, पृ० ७१; आँसू, पृ० २६, ३७, २६, ४०, ६; परिमल (गीत), पृ० ६६-१००; पल्लव (आँसू), पृ० ६७-६६।

कृति होने के कारण यह एक लाक्षणिक प्रयोग ही है किन्तु अंग्रेजी में यही विशेषण विपर्यय (ट्रान्सफर्ड एपीथेट) के नाम से प्रचलित है। समस्त आँग्ल अलङ्कार प्रायः लक्षणाश्रित ही हैं।[१] आधुनिक स्वच्छन्द कवियों में 'प्रसाद', 'पंत' और 'निराला' के काव्य में हमें विशेषण विपर्यय के पर्याप्त उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं—

'बता कहाँ अब वह वंशीवट
कहाँ गये नट नागर श्याम
चल चरणों का व्याकुल पनघट
कहाँ आज वह वृन्दाधाम'[२]

यहाँ पर 'व्याकुल पनघट' में विशेषण विपर्यय है। देखने पर व्याकुल विशेषण है और पनघट विशेष्य। भला पनघट क्या व्याकुल होगा? यह व्याकुल विशेषण उनके लिए प्रयुक्त है जो उस पनघट पर आते थे। गोपियाँ कृष्ण के दर्शन के लिए यमुना तट पर जल भरने आया करती थीं; तो गोपियाँ व्याकुल थीं न कि पनघट। व्याकुल विशेषण गोपियों से स्थानान्तरित होकर पनघट में लग गया है।

'अभिलाषाओं की करवट फिर सुप्त व्यथा का जगना'[३]

यहाँ पर 'करवट', 'अभिलाषा' और 'सुप्त व्यथा' में विशेषण विपर्यय है। अभिलाषाएँ करवट नहीं लेती वरन् आदमी करवट लेता है, व्यथाएँ सुप्त नहीं होतीं अपितु आदमी सुप्त होता है।

आह, यह मेरा गीला गान।
× × ×
अश्रु में जीता, सिसकता गान है।[४]

यहाँ पर 'गीला गान' और 'सिसकता गान' में विशेषण विपर्यय है क्योंकि गान कभी गीला नहीं होता और न अश्रु सिसकता ही है वरन् पीड़ाग्रस्त आदमी रोता तथा सिसकता है।

(१) 'वेदना के ही सुरीले हाथ से'[५]
(२) 'बच्चों के तुतले भय-सी।'[६]

---

१. डॉ० जगदीश नारायण त्रिपाठी : आधुनिक हिन्दी काव्य में अलङ्कार-विधान, पृ० २५, संस्करण १९६२ ई०।
२. निराला : परिमल, पृ० ४३।
३. जयशंकर प्रसाद : आँसू, पृ० ११।
४. सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव, पृ० ६१-६२।
५. वही ग्रंथि, पृ० ४६।
६. वही : पल्लव, पृ० १०२।

वेदना का स्वर सुरीला है, हाथ नहीं, 'भय' कभी तुतलाता नहीं, बालक तुतलाता है। यहाँ 'सुरीले हाथ' एवं 'तुतले भय' में विशेषण विपर्यय है।

ध्वन्यर्थक व्यंजना (अनोमोटोपिआ) :

यद्यपि इस अलङ्कार का प्रयोग हमें प्राचीन काव्यों में भी देखने को मिलता है जैसे 'कंकन किंकिणि नूपुर धुनि सुनि' में नूपुर की ध्वनि व्यंजित है, तथापि आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में यह प्रवृत्ति अंग्रेजी प्रभाव से गृहीत है। इसका प्रारम्भिक रूप हमें श्रीधर पाठक की कविता 'सांध्य अटन' में मिलता है।[१] पं० रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में भी ध्वन्यर्थक व्यंजना के दर्शन होते हैं।[२]

ध्वन्यर्थक व्यंजना का सबसे अधिक प्रयोग 'पंत' और 'निराला' ने किया है। अत्यल्प ही सही प्रायः सभी स्वच्छन्द कवियों के काव्य में हमें ध्वन्यर्थक शब्द प्राप्त होते हैं। यथा : कल-कल ध्वनि, हुंकार, प्रबल प्रभंजन,[३] मिलिन्दवृन्द, गुन गुन,[४] वारिधर उर-अम्बर,[५] मीठी तान, दिग्भ्रान्त, स्वच्छ गङ्ग की धार,[६] हाः हा ?[७] आदि शब्द। स्वच्छन्दतावादी कवियों में इस कला के मर्मी 'पंत' हैं। उन्होंने अनेक छोटे-छोटे नादानुकारी पदों की सृष्टि की है। यथा : रतमल, रणमल, टलमल, छलछल, कलमल, रलमल, कलकल, झरझर, मरमर आदि। 'निराला' की 'संध्या सुन्दरी' जब अम्बर से नीचे उतर कर चलने लगती है तो एक अव्यक्त शब्द 'चुप-चुप' की ध्वनि होती है।[८] 'निराला' की 'बादल-राग' और 'पंत' की 'बादल' शीर्षक कविताओं में ध्वन्यर्थक व्यंजना का प्रचुर प्रयोग मिलता है।[९]

मानवीकरण :

जब कवि भाव-विह्वल होकर निर्जीव वस्तुओं, उसके क्रिया-व्यापारों तथा मानव-मन के भावों को सजीव या चेतन रूप प्रदान करता है तो मानवीकरण

१. श्रीधर पाठक : भारत-गीत (सांध्य अटन), पृ० १०३-१०५।
२. 'क्षण में उमड़-घुमड़ गर्जन कर, घिर आये घनघोर।
बहा विषम विक्षिप्त प्रभंजन वृक्षों को झकझोर॥' —मिलन : पृ० १४।
३. जयशंकर 'प्रसाद' : महाराणा का महत्त्व, पृ० २, ४, ५।
४. ठा० गोपालशरण सिंह : माधवी, पृ० ४१।
५. वही : कादम्बिनी, पृ० २१, २६।
६. मुकुटधर पाण्डेय : कविता-कौमुदी (कुररी के प्रति), पृ० ५६१।
७. गुरुभक्त सिंह 'भक्त' : सरस-सुमन, पृ० २।
८. पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : परिमल (संध्या सुन्दरी), पृ० १२६।
९. (क) परिमल (बादल-राग), पृ० १६०।
(ख) पल्लव (बादल), पृ० १२७।

अलङ्कार कहलाता है। आधुनिक स्वछन्द काव्य में यह अत्यन्त लोकप्रिय अलङ्कार बन गया है। इसके अन्तर्गत कवियों ने प्रायः प्रकृति के विविध उपादानों, उसके कार्य-व्यापारों तथा मानव-मन के सूक्ष्म भावों को सजीव सत्ता प्रदान किया है।

'निराला' की 'संध्या सुन्दरी', 'शेफालिका', 'जुही की कली', 'बादलराग' और 'पंत' की 'बादल', 'छाया' आदि रचनाओं में प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों पर मानवीकरण अलंकार का प्रयोग अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया गया है। इसके अतिरिक्त इन कवियों ने मानव-मन के सूक्ष्म तथा निराकार भावों को भी मानवीकरण अलंकार के सहारे साकार रूप प्रदान किया है जिससे आँखों के समक्ष उन भावों का बिम्ब उपस्थित हो जाता है। यथा :

'यह हृदय समाधि बना है, रोती करुणा कोने में।' आँसू, पृ० १२।

× × ×

'भोले प्रेम ! क्या तुम हो बने, वेदना के विकल हाथों से ?।'

—ग्रंथि, पृ० ३८।

अन्य अलंकार :

यद्यपि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों पर पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र से प्रभावित होने के कारण पाश्चात्य अलंकार-योजना का पर्याप्त प्रभाव है तथापि भारतीय काव्य-शास्त्र में स्वीकृत अलंकारों के उदाहरण भी उनके काव्य में पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में रीतिकालीन विधा पर अलंकारों की खोज करना निरर्थक है क्योंकि उनके प्रायः सभी अलंकार स्वाभाविक ढंग से आये हुए हैं।

छन्द :

आधुनिक स्वच्छन्दतावाद का युग छन्द के क्षेत्र में महान् क्रांति का युग है किन्तु अधिकांश समालोचकों ने उसे भावात्मक दृष्टि से देखा है। सुमित्रानंदन पंत का कथन है कि "कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कंपन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है।"[1] अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन छन्द ही में बहने लगता है, उसमें एक प्रकार की सम्पूर्णता, स्वरैक्य और संयम आ जाता है।[2] छन्द वह वैखरी ध्वनि (मनोच्चरित ध्वनि) है जो प्रत्यक्षीकृत निरन्तर तरंग भंगिमा से आह्लाद के साथ भाव और अर्थ की अभिव्यंजना कर सके।[3]

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने अपने कवि-कर्म को खड़ीबोली में प्रारम्भ किया,

१. सुमित्रानन्दन 'पंत' : पल्लव (प्रवेश), पृ० ३३, संस्करण १९७७ ई०।
२. वही : पल्लव (प्रवेश), पृ० ३३।
३. डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना, पृ० २१, संस्करण १९५८ ई०।

जिसके लिये उन्हें अनुकूल छन्दों की आवश्यकता थी, जो वाक्य के प्रवाह में बाधक न हों, साथ ही, अनुकूल भावों को वहन करने में भी समर्थ हों। परम्परा से प्रचलित दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, सवैया.आदि छन्द खड़ीबोली कविता के भावों को वहन करने में प्रायः असमर्थ सिद्ध हुए। यद्यपि कुछ कवियों ने सवैया, दोहा, रोला, हरिगीतिका आदि छन्दों को नवीन भावों का वाहन बनाया, लेकिन ये छंद संकीर्ण सीमाओं में आबद्ध होने के कारण स्वच्छन्द प्रवाह का भार वहन न कर सके। कविगण पुराने छन्दों की एकरसता से ऊब कर नवीन भावों को वहन करने में समर्थ छन्दों के तलाश में जुट गये।

परम्परागत कवित्त, सवैया आदि छन्दों में खड़ीबोली की कविता लिखने की मुख्य समस्या "इस भाषा की दीर्घ क्रियाओं में दीर्घ मात्रा का विशेष होना"[१] थी। इसका समाधान उर्दू के ढंग पर यह निकाला गया कि 'दीर्घ मात्राओं को भी लघु करके पढ़ने की चाल रखी'[२] जाये। इसलिए भारतेन्दु-युग के अधिकांश कवियों ने उर्दू बहरों पर आधारित छन्दों में खड़ीबोली की कविताएँ लिखीं। इस दिशा में भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

भारतेन्दु-युग में नये छन्दों की खोज चैतन्य कवियों की दृष्टि बँगला के पयार छन्द की ओर गयी। इसका सर्वप्रथम प्रयोग भारतेन्दु जी ने किया। इसके अतिरिक्त इस युग के कवियों की दृष्टि लावनी, कजली, खयाल आदि लोकगीतों के छन्दों पर भी गयी। इस प्रकार के छंदगत प्रयोग नयी चेतना के संकेतक थे, जिसका पूर्णरूप से प्रस्फुटन द्विवेदी-युग में हुआ। परिणामस्वरूप हिन्दी कविता में छन्द प्रयोगों की एक समृद्ध परम्परा निर्मित हुई। 'हिन्दी कविता के लगभग हज़ार वर्षों के लम्बे इतिहास में छंद संबंधी जितने प्रयोग अन्तिम शताब्दी (बीसवीं श०) में हुए उतने कभी नहीं।'[३]

भारतेन्दु-युग के कवियों को यह अनुभूति हुई कि परम्परागत कवित्त, सवैया एवं उर्दू के बहर में खड़ीबोली का मूल रूप सुरक्षित नहीं रह सकता, इसलिए इन कवियों ने संस्कृत के गणवृत्तों का प्रयोग प्रारम्भ किया किन्तु संस्कृत के गणवृत्तों का प्रयोग हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ। दोनों में मौलिक अन्तर यह है कि संस्कृत का छन्द वर्णिक गणवृत्त है और हिन्दी का पूर्णतः मात्रिक। संस्कृत के

---

१. डॉ० हरदयाल : आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प, पृ० २६१, संस्करण १६३८ ई०।

२. प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ५३, संस्करण १६५७ ई०।

३. डॉ० नामवर सिंह : इतिहास और आलोचना, पृ० ६८, संस्करण १६५६ ई०।

गणवृत्तों एवं उसके अन्त्यानुप्रासहीन (अतुकान्त) प्रवृत्ति का विस्तृत प्रयोग 'हरिऔध' ने 'प्रिय प्रवास' में किया। इसके बाद अतुकान्त छन्द का द्वार खुल गया। मात्रिक छन्दों के आधार पर कविता को अतुकान्त रूप देने का असफल प्रयास भारतेन्दु-युग में अम्बिकादत्त व्यास ने किया था। इस असफलता के बाद भी कवियों ने अनुभव किया कि हिन्दी कविताओं में प्रगीति तत्त्व के स्वाभाविक विकास के लिए मात्रिक छन्द ही उपयुक्त हैं।

स्वच्छन्दतावादी कवि रामनरेश त्रिपाठी, 'प्रसाद' विशेषकर ठा० गोपालशरण सिंह ने रीतिकाल के प्रिय छन्द कविता और सवैया में खड़ीबोली के उच्चारण को सुरक्षित रखते हुए सफलतापूर्वक काव्य रचना की। श्रीधर पाठक ने भारतेन्दु-युग में प्रचलित 'लावनी' छन्द का प्रयोग 'एकान्तवासी योगी' तथा 'जगत सचाई सार' में किया। यह लावनी छन्द दो प्रकार का होता है—३० मात्राओं का और २२-२२ मात्राओं का।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अंग्रेजी के 'ब्लैंक वर्स' से अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त किया। मात्रिक छन्दों को अतुकान्त रूप देने का द्वितीय प्रयास 'प्रसाद' ने किया। १९१४ में 'प्रसाद' जी ने 'भरत' शीर्षक कविता को प्लवंग अतुकान्त छन्द में लिखा,[1] जिसे भूल से प्रकाशक ने अरिल्ल छन्द कहा है जो १४ मात्राओं का होता है, २१ मात्राओं का नहीं।[2] इसी छन्द में अतुकान्त रूप से 'प्रसाद' ने 'महाराणा का महत्त्व' नामक खण्ड-काव्य की रचना की। इसी छन्द में 'प्रसाद' ने 'करुणालय' नाम का गीति रूपक लिखा। सन् १९१४ में प्रकाशित 'प्रसाद' की रचना 'प्रेम पथिक' में अतुकान्त छन्द के प्रयोग का सबसे बड़ा प्रयास दिखाई दिया। श्रीधर पाठक ने स्रग्विणी (४ रगण) वृत्त के आधार पर (या अरुण मात्रिक छन्द के आधार पर) पदान्तर-प्रवाही अतुकान्त प्रयोग किया है।[3]

'पंत' जी ने 'ग्रंथि' में अतुकान्त पीयूषवर्षण छन्द का प्रयोग किया है। इस छन्द का आधार (ऽ।ऽऽ) सप्तक है। अतः छन्द की तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्रा

---

१. प्रसाद : भरत शीर्षक कविता, प्र० वर्ष १९१३, इन्दु (कला ४, खण्ड १, किरण १)।

२. आचार्य भानु : छन्द प्रभाकर, पृ० ४९।

३. 'प्रसव के काल की लालिमा में लसा
बाल-शशि व्योम की ओर था आ रहा।
सद्य-उत्फुल्ल-अरविन्द-निभ नील सुवि-
शाल नभ-वक्ष पर जा रहा था चढ़ा।'—भारत-गीत (सांध्य अटन), पृ० १०३।

अनिवार्यतः लघु रहती है। सप्तक की निरन्तर आवृत्ति पदान्तर में सहायक होती है, पर चरणान्त में सप्तक के स्थान पर पंचक ही रहता है।[१]

'प्रसाद' के विरह-काव्य 'आँसू' के छन्द को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोगों के अनुसार यह 'सखी' छन्द है।[२] कुछ लोगों के अनुसार यह 'मानव' छन्द है।[३] वस्तुतः सखी, मानव, मधुमालती, मनोरमा आदि कई छन्द चौदह मात्राओं के चरणों वाले हैं किन्तु उसकी लय चौदह मात्राओं के प्राचीन छन्दों से सर्वथा भिन्न है। इसलिए 'आँसू' का छन्द न 'सखी' छन्द है और न 'मानव'। यह एक नया ही छन्द है। वस्तुतः इस छन्द को जो नया नाम 'आँसू' दिया गया है वह उपयुक्त है।[४]

'प्रसाद' के बाद मात्रिक छन्दों का सबसे अधिक प्रयोग 'पंत' ने किया है। उनके काव्य में पीयूषवर्षण, रोला, सारस, सरसी, रूपमाला, सखी, पद्धिटिका आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। 'निराला' ने परम्परागत मात्रिक छन्दों का प्रयोग बहुत कम किया है। वीर, ताटंक, तमाल, रोला आदि परम्परागत मात्रिक छन्दों के टुकड़े गीतों एवं मुक्त छन्दों के बीच-बीच में मिलते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने परम्परागत छन्दों को प्रकारान्तर से अंततः जीवित रखा।

'पल्लव' की भूमिका में विविध छन्दों की भाव-प्रकृति पर विचार करते समय 'पंत' ने यह अनुभव किया कि रोला में बरसाती नाले-सा कलनाद है, राधिका में क्रीड़ाप्रियता तथा अरिल्ल में निर्झरिणी की स्वच्छन्दता है जो स्वच्छन्द काव्य के अनुकूल है। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने यह अनुभव किया कि स्वच्छन्द छन्दों में ही नवीन भावों को समेटने की क्षमता है क्योंकि 'स्वच्छन्द छन्द ध्वनि अथवा लय पर चलता है।'[५] पर वास्तव में यह लय प्रवाह से अधिक लय-निपात पर ध्यान रखता है—

> 'शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु, सरल, कमनीय,
> बालिका ही थी वह भी।'[६]

यहाँ अंग्रेजी के प्रभाव से द्वितीय चरण में वाणी को विश्राम देकर प्रथम चरण को प्रभावशाली बनाया गया है।

---

१. ग्रंथि, पृ० ४३।
२. डॉ० नामवर सिंह : इतिहास और आलोचना, पृ० ७६, संस्करण १६५७ ई०।
३. डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना, पृ० २५३-५४, संस्करण १६५८ ई०।
४. डॉ० हरदयाल : आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना-शिल्प, पृ० ३०२।
५. सुमित्रानन्दन पंत : पल्लव (प्रवेश), पृ० ४३, संस्करण १६७७ ई०।
६. वही : (उच्छ्वास), पृ० ५४।

'इसी स्वच्छन्द भाव की तर्कसंगत परिणति मुक्त छन्द है।'[1] 'निराला' 'मुक्त छन्द' के आदि प्रणेता हैं। 'स्वच्छन्द छंद' तथा 'मुक्त छंद' दोनों का आधार लय है किन्तु 'स्वच्छन्द छंद' में लय-प्रवाह आलम्बन मात्र है और लय-निपात, प्रधान जब कि 'मुक्त छंद' का लय-प्रवाह सर्वस्व है। लय ही 'मुक्त छंद' का प्राण तत्त्व है। इस छंद में भाव तथा भाषा का सामंजस्य पूर्ण रूप से निभाया जा सकता है। 'स्वच्छन्द छंद', 'छंद:शास्त्र' के कुछ नियमों को मानता है जबकि 'मुक्त छंद' छंद:शास्त्र का रंचमात्र भी अनुगमन नहीं करता। भाव-संबद्धता ही उसका अनिवार्य तत्त्व है।

घनाक्षरी की लय को अपनाकर 'निराला' ने सर्वप्रथम 'जुही की कली' में मुक्त छंद का प्रयोग किया।[2] तदनन्तर 'जागो फिर एक बार', 'पंचवटी-प्रसंग', 'प्रेयसी' आदि रचनाओं में इसी छंद का प्रयोग हुआ। 'प्रसाद' ने 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'छाया' आदि रचनाओं में 'मुक्त छंद' का प्रयोग करके अपना समर्थन दिया, लेकिन 'पंत' ने मुक्त छंद पद्धति को पसन्द नहीं किया और 'स्वच्छन्द छंद' को ही अपने काव्य का आधार बना रखा।

'निराला' ने छंद के क्षेत्र में क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का परिचय दिया है। उन्होंने अकेले जितने अधिक छंदों का प्रयोग किया, उतना कोई कवि नहीं कर सका। उन्होंने 'मुक्त छंद' में अनेक लयों पर आधारित रचनाएँ कीं। यथा :

'वह आता —
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।'[3]

इस कविता की प्रथम पंक्ति में ४ वर्ण हैं जब कि दूसरे में २० वर्ण। इस छंद में रबर की तरह लोच और केचुये की तरह फैलने-सिकुड़ने की क्षमता है। इसी कारण आलोचकों ने इनके 'मुक्त छंद' को 'रबर छंद' अथवा 'केचुवा छंद' कहा। 'निराला' ने 'मुक्त छंद' को भी कहीं-कहीं तुकान्त रूप देकर नवीन छंद-पथ का अन्वेषण किया है।[4]

---

१. डॉ० नामवर सिंह : छायावाद (खुल गये छंद के बंध), पृ० १२६, संस्करण १९६८ ई०।

२. पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : परिमल (जुही की कली), पृ० १७१।

३. निराला : परिमल (भिक्षुक), पृ० १२५।

४. 'अल्पदिन हुए,
भक्तों ने राम-कृष्ण के चरण छुए।
जगी साधना
जन-जन में भारत की नवाराधना।'—अनामिका (सेवा प्रारम्भ), पृ० १७०।

'प्रसाद', 'पंत' और 'निराला' ने प्रगीतों के लिए अनेक नये छंदों का विधान किया। 'निराला' ने लोकगीतों की ध्वनि पर 'अनामिका' की 'अपराजिता' कविता लिखी। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भक्तिकाल में प्रचलित पदशैली को भी अपने काव्य में अपनाया। यथा :

'अमा को करिये सुन्दर राका।

× × × ×

प्रबल प्रभंजन मलय-मरुत हो फहरे प्रेम-पताका।'[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वच्छन्द कवियों ने जहाँ छंद के एकरूपता को नकारा तथा शास्त्रीयता के कठोर बन्धनों को तोड़ा, वहीं मध्ययुग में प्रचलित छंदों को काट-छाँट कर उसे नये भावों को वहन करने योग्य बनाया, क्योंकि "प्रत्येक भाव की अपनी लय होती है, उसका अपना संगीत होता है, इसलिए हर छंद, हर भाव का वाहन नहीं हो सकता।"[2] स्वच्छन्दतावादी कवियों ने लोक छंदों को पुनर्जीवित किया तथा तुकान्त, अतुकान्त और स्वच्छन्द छंद का अभिनव विधान किया। 'मुक्त छंदों' में नयी लय तथा प्रवाह की सर्जना कर स्वच्छन्द भाव का उसे वाहक बनाया।

आधुनिक युग भाव-स्वच्छन्दता के साथ ही छंदगत विविधता का युग था। छंदों के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रयोग इसी युग में हुए। वस्तुतः इस युग में काव्य-रचना के क्षेत्र में छंदों को निम्नांकित रूपों में ग्रहण किया गया—

१. संस्कृत के गणवृत्तों तथा मात्रिक छंदों के आधार पर गृहीत द्रुतविलम्बित, शार्दूलविक्रीड़ित, मंदाक्रांता, मालिनी, शिखरिणी, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि।
२. हिन्दी के पुराने छंदों जैसे—कवित्त, सवैया, रोला, आँसू, राधिका, अरिल्ल आदि का ग्रहण।
३. उर्दू के बहरों का प्रयोग।
४. लोकगृहीत छंदों का प्रयोग-लावनी, कजली आदि।
५. बँगला के पयार छंद का प्रयोग।
६. अंग्रेजी के अतुकान्त (ब्लैंक वर्स) के प्रभाव से अतुकान्त छंदों का प्रयोग तथा छंदों के चरणों में स्वर-निपात का संयोजन।
७. तुकान्त-अतुकान्त स्वच्छन्द छंद का प्रयोग।

---

१. 'प्रसाद' : झरना, पृ० ८१।
२. डॉ० नामवर सिंह : इतिहास और आलोचना, पृ० ७२, संस्करण १९५६ ई०।

भाषा :

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने अपने काव्य में मुख्य रूप से ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली दो भाषाओं का प्रयोग किया है क्योंकि १९वीं शताब्दी तक यह निर्णय नहीं हो पाया था कि खड़ीबोली ही मुख्य रूप से काव्य-भाषा होगी। इसी कारण इन कवियों ने द्विविधाग्रस्त होकर दोनों भाषाओं को अपने काव्य का अंग बनाया। आधुनिक स्वच्छन्दतावाद के अग्रज श्रीधर पाठक इसी द्विधा के परिणामस्वरूप 'एकान्तवासी योगी' तथा 'जगत सचाई सार' जैसी खड़ीबोली की सफल रचना करने के बाद भी 'ऊजड़ ग्राम' तथा 'कश्मीर सुषमा' को ब्रजभाषा में लिखा। 'प्रसाद' की रचना 'प्रेम-पथिक' का मूल रूप ब्रजभाषा में था जिसका खड़ीबोली में अनुवाद कर पुनः प्रस्तुत किया गया। 'चित्राधार' के अन्तिम दो खण्डों की रचनाएँ अब भी ब्रजभाषा में हैं। प्रायः सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों ने ब्रजी, संस्कृत, उर्दू आदि भाषाओं तथा स्थानीय बोलियों के शब्दों को ग्रहण किया। यथा : भेस, अठिलाती, बूढ़, दुखारी, जतन, असवारी, मेड़, धरली, सिवार, गलबहियाँ, फोग, मतीरा, भ्रूण, उड़ीक आदि देशज शब्द उनकी रचनाओं में आये हुए हैं, जिसका मूल स्रोत ब्रजभाषा के अतिरिक्त बैसवाड़ी, अवधी, बुन्देली, राजस्थानी आदि तक फैला हुआ है।

स्वच्छन्द कवियों को अपने भावों के उन्मुक्त प्रवाह के लिए दिगन्तव्यापी आकाश की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति ब्रजभाषा की सँकरी गलियों में सम्भव नहीं थी। "ब्रजभाषा कविता का प्रवाह तरंगिणी की भाँति न था, वरन् एक सीमित सरोवर के तुल्य था, जिसका जल अब गँदला हो चला था और उसमें सेवार की दुर्गन्ध आ रही थी।"[१]

बीसवीं शताब्दी तक कविता की भाषा खड़ीबोली हो गयी। परिणामस्वरूप खड़ीबोली का सर्वतोन्मुखी विकास हुआ। अन्य भारतीय भाषाओं तथा बोलचाल के शब्दों को तो खड़ीबोली में ग्रहण किया ही गया, साथ ही, अंग्रेजी के अनेक शब्दों के अनुवाद से नवीन शब्दों की सर्जना कर उसे अपना लिया गया। यथा : 'डिवाइन' के लिये 'स्वर्गिक' 'इनोसेण्ट' के लिए 'अनजान', 'रिपलिंग' के लिये 'रलमल', "आइसी लिप्स' के लिये 'हिम अधर', 'अण्डर लाइण्ड' के लिये 'रेखांकित' आदि।

आधुनिक स्वच्छन्दतावाद का प्रथम चरण प्रयोगवादी था, जिसमें खड़ीबोली अपना उपयुक्त पथ ढूंढ़ने में व्यस्त रही। स्वच्छन्दतावाद के द्वितीय चरण में आकर भाषा का स्वरूप परिष्कृत हो गया। भाषा में संस्कृत के तत्सम एवं ध्वनिव्यंजक शब्दों की बहुलता हो गयी। इन कवियों ने भावों एवं विषयों के अनुकूल अनेक नये

१. सुमित्रानन्दन 'पंत' : पल्लव, पृ० ८४, संस्करण १९७७ ई०।

शब्दों की सर्जना की। यथा : 'स्वप्निल', 'तन्द्रिल', 'पांशुल' तथा 'फेनिल' (प्रसाद), तनिमा, प्रभापूर्ण, तमस्तूर्य, शिरस्त्रय तथा यामिनी गंधा (निराला), कलहासिनी, प्रकाशिनि, नभवासिनि, ऐंचीला, उर्ध्वङ्ग तथा ग्रामिक (पंत)। इसका परिणाम यह हुआ कि खड़ीबोली की कविता कोमल कलेवर धारण कर आकर्षक बन गयी। अर्थभेद के अनुसार शब्दों का चयन करते समय इन कवियों का ध्यान लय पर अधिक था।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने संस्कृत एवं हिन्दी कोश का मंथन कर अनेक ध्वन्यर्थक शब्दों को खोज निकाला, तत्कालीन भाषा को माँजकर उसे युग-चेतना के अनुकूल नवीन भाव-बोध को वहन करने योग्य बनाया तथा शब्दों को नाटकीय ढंग से प्रयुक्त कर भाषा में चित्रात्मकता उत्पन्न की। फलतः भाषा इतनी कलात्मक हो गयी कि इन कवियों की आन्तरिक अनुभूतियों के संकेत पर थिरकने लगी। 'कविता की भाषा का केन्द्रीय तत्त्व भावचित्रों अथवा बिम्बों का विधान है।'[1] यह बात स्वच्छन्दतावादी काव्य के लिये पूर्णतः सत्य सिद्ध हुई।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने खड़ीबोली को कर्णप्रिय एवं मधुर बनाने के लिये स्थल-स्थल पर ब्रजभाषा के शब्दों को भी ग्रहण किया है।

स्वच्छन्दतावादी चरमोत्कर्ष के कवि 'प्रसाद', 'पंत', 'निराला' के काव्य में भाषा इतनी भावपूरित हो गयी है कि पर्याप्त मस्तिष्क-मन्थन करने के बाद ही अर्थ-बोध सम्भव हो पाता है। इन कवियों ने कविता के लिए मानदंड प्रस्तुत करते हुए चित्रमयी भाषा की आवश्यकता पर बल दिया,[2] जिसमें भाव और भाषा के सामंजस्य से चित्रराग की सृष्टि एवं नाद-सौन्दर्य की उत्पत्ति हो।[3]

स्वच्छन्दतावादी काव्य-भाषा तत्सम बहुल है, किन्तु उसमें अनेक अन्य भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हैं। ब्रजभाषा तथा स्थानीय बोलियों के शब्द लक-लक,

---

१. रामस्वरूप चतुर्वेदी : भाषा और संवेदना, पृ० १६, संस्करण १९६४ ई०।

२. (क) 'कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है, इसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों, सेव की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर छलक पड़े।'—पल्लव की भूमिका, पृ० ३०।

(ख) 'भाव और भाषा का सामंजस्य, उसका स्वरैक्य ही चित्रराग है।' —वही, पृ० ३०।

३. 'जहाँ भाव और भाषा में मैत्री अथवा ऐक्य नहीं रहता, वहाँ स्वरों के पावस में केवल शब्दों के बटु समुदाय ही, दादुरों की तरह, इधर-उधर कूदते, फुदकते तथा सामध्वनि करते सुनाई देते हैं।'—वही, पृ० ३१।

निपट, निठुराई, हेर, घोरे, ठौर, निठुर, काजर, कजरारे, धुआरे, लाज, भौंर, परवार, चितचोर, छलिया, हौले, पाँति, करतार, माना, मरम, बिछलना, बूड़ना, विछोह, दूज, रोआं, परना, उमह, हिय, बैन, लोल, अधियारी, अमोल, उसास, ठोस, कसक, कोना, गगरी, चितेरा, छाँह, धूल, नित, निबाह, परछाईं, पहरा, फूक, बयार, बाती, बलकले, बेदी, रंगरेली, सपने, मिसरी, हठीला आदि, उर्दू के शब्द-नशा, दिवानी, दाग, प्याले, बेहोशी, अरमान, खारे, खुमार, तूफान, दलदल, खून, परदा, बुलबुल, राह, साकी, रकाब, सिर्फ, गो आदि, बँगला के शब्द-सकाल, कांदला, मेला तथा अंग्रेजी के शब्द-लेडी, रूम, मिस्टर आदि स्वच्छन्दतावादी काव्य में तत्सम संस्कृत शब्दावली के बीच-बीच में संगुम्फित मिलते हैं।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपनी आन्तरिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्तियों का सबसे अधिक प्रयोग किया है। इनकी काव्य-भाषा की चित्रात्मकता शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग पर निर्भर है। 'प्रसाद', 'पंत,' 'निराला' के काव्य में लक्षणा-व्यंजना की बहुलता है। वैसे तो प्रायः सभी स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में सप्रयास लाक्षणिक प्रयोग ढूंढ़े जा सकते हैं, लेकिन इसका प्रचुर प्रयोग 'प्रसाद', 'पंत', 'निराला' में दृष्टिगत होता है।

'प्रसाद' ने 'आँसू' में अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो अपने वाच्यार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ के द्योतक हैं। "शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग जल का"[१] में ज्वाला का तात्पर्य आग से नहीं है, आग तो इसका वाच्यार्थ है। यहाँ पर हृदय को व्यथित करने वाली वेदना को ज्वाला कहा गया है। इसी प्रकार "घिर आतीं प्रलय घटाएँ कुटिया पर आकर मेरी"[२] में प्रलय घटाएँ तथा कुटिया दोनों के लक्ष्यार्थ से ही वास्तविक अर्थ का ग्रहण होता है। प्रलय घटा का तात्पर्य मानसिक उथल-पुथल से है। इसी प्रकार के अनेक लाक्षणिक उदाहरण 'आँसू' में प्राप्त होते हैं।

अंग्रेजी काव्य से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण 'पंत' के लाक्षणिक प्रयोग प्रायः चमत्कारपूर्ण हो गये हैं। "मर्म पीड़ा का हास"[३] में 'हास' का अर्थ लक्षण-लक्षणा द्वारा वृद्धि या विकास प्रतीत होता है लेकिन जब यह ध्यान आता है कि कवि ने सारा संबोधन अपने मन के लिए किया है तो पुनः सारी पदावली का उपादान-लक्षणा द्वारा इस प्रकार लक्ष्यार्थ लेना पड़ता है—हे बढ़ी हुई मर्मपीड़ा वाले मन।[४] इस प्रकार के अनेक उदाहरण पंत के काव्य में प्राप्व होते हैं।

---

१. जयशंकर 'प्रसाद' : आँसू, पृ० १० ।
२. वही : पृ० १६ ।
३. सुमित्रानंदन 'पंत' : पल्लव, पृ० ६१ ।
४. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६४२ ।

'निराला' के काव्य में लाक्षणिक प्रयोगों की एक पूरी श्रृंखला ही दिखाई पड़ती है। 'जुही की कली' में कली और पवन के प्रणय-व्यापार का सारोपा एवं साध्यवसाना लक्षणा द्वारा सारगर्भित चित्र प्रस्तुत किया गया है।

वस्तुतः लक्षणा शब्द शक्ति स्वच्छन्द काव्य का प्राण तत्त्व है किन्तु व्यंजना के विविध रूपों के उदाहरण भी इन कवियों के काव्य में प्राप्त होते हैं। मुहावरों का प्रयोग आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में विरल है। यदि वे कहीं दिखाई भी देते हैं तो भाषा के बदल जाने के कारण अत्यन्त क्षीण प्रतीत होते हैं।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने शब्दों को पहचान कर तथा उनकी शक्ति का अनुमान कर अपने काव्य में प्रयुक्त किया। उन्होंने शब्दों के विशिष्ट प्रयोगों द्वारा भाषा के भावाभिव्यंजक शक्ति को उल्लेखनीय रूप से बढ़ाया है। शब्दों की मित-व्ययिता और भावाधिक्य द्वारा इन कवियों ने जो काव्य का मानदण्ड प्रस्तुत किया है वह चिरकाल तक स्थायी रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

अध्याय ६

तुलनात्मक अनुशीलन

(जीवन-दृष्टि एवं काव्य-सृजन में सामंजस्य)

काव्य-सृजन में जीवन के कुछ विशिष्ट क्षण होते हैं, जिनसे काव्य के रचयिता को असाधारण प्रेरणा मिलती है। जीवन की सम-विषम परिस्थितियाँ काव्य-सृजन में बहुत अंशों तक और बहुत गहराई के साथ कवि एवं कलाकार को काव्य-रचना के समय सक्रिय रखती हैं। काव्य की साधना के मूल में जीवन के अन्तः एवं बाह्य संघर्ष, प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही रूपों में कवि की कल्पना-शक्ति को स्पंदित करते हैं, गति देते हैं और नूतन अभिव्यक्ति की प्रेरणा प्रदान करते हैं। यही नहीं, भाव-भंगिमा के अनेक आयामों को प्रस्तुत करते हैं।

रीतिमुक्त कवियों में से अधिकांश ने अपनी काव्यमयी अभिव्यक्ति का मार्ग बहुत-कुछ दरबारों से अलग रहकर प्रशस्त किया। ये कवि दरबारी परिवेश में रहकर भी काव्य-सृजन के क्षेत्र में परिवेशीय प्रभाव से बहुत-कुछ मुक्त थे। 'घनानन्द', 'बोधा' के जीवन-प्रवाह से इस बात का पूर्ण साक्ष्य प्राप्त होता है कि उनके काव्य को अधिक प्रभविष्णुता उनके स्वच्छन्द दृष्टिकोण के कारण मिली। 'घनानन्द' का दरबारी जीवन उनकी कटु अनुभूतियों का उत्स है। दरबार से प्रताड़ित और अपमानित उनके जीवन को वृन्दावन के पवित्र रेणुतत्त्व के संस्पर्श से अपूर्व शान्ति मिली और दरबार की सारी चमक-दमक और चाक-चिक्य के स्थान पर भावनाओं में सहजता और सरलता का समावेश स्वतः हो गया। 'घनानन्द' के समान ही अपने स्वच्छन्द दृष्टिकोण के कारण 'बोधा' भी दरबारी परिवेश के साथ अपना सामंजस्य स्थापित नहीं कर सके और उनकी अन्तःप्रेरणा जिस मार्ग की ओर ले गयी, उसी पर चलकर वे अपने काव्य-सृजन में प्रवृत्त हुए। 'द्विजदेव' स्वयं राजा थे, लेकिन राजप्रासाद का का चाक-चिक्य उन्हें उतना नहीं लुभा सका, जितना प्रकृति का उन्मुक्त प्रांगण।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार इन कवियों की जीवन-दृष्टि स्वच्छन्द थी उसी प्रकार उनके काव्य-सृजन का पथ भी स्वच्छन्द था। रीति-स्वच्छन्द कवि दरबारी परिवेश से प्रायः अप्रभावित रहकर स्वच्छन्द काव्य-रचना में प्रवृत्त तथा काव्यगत कथ्य के प्रति कृतसंकल्प दिखाई देता है, अपने समय के आचार्यों की शास्त्रीय पद्धतियों को तोड़ने का उपक्रम करता है और रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकार, औचित्य आदि सम्प्रदायगत बन्धनों से अपने को मुक्त रखने का प्रयत्न करता है।

जिस प्रकार रीतिमुक्त कवियों के सामने दरबारी परिवेश और परम्पराओं का बन्धन था, उसी प्रकार द्विवेदी-युग में आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के सामने भी 'द्विवेदी' जी की इतिवृत्तात्मकता एवं नैतिकता, देश की परतन्त्रता तथा सामाजिक साहित्यिक रूढ़ियों, परम्पराओं के अवरोध विद्यमान थे। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने द्विवेदीयुगीन समस्त बन्धनों का परित्याग कर ऐसे काव्य-पथ का अनुसरण किया, जो प्रकृत्या स्वच्छन्द था। द्विवेदी-युग में भाषा, छन्द-योजना तथा विषय-चयन के क्षेत्र में स्वच्छन्दता के प्रतिरोधी शास्त्रीय तत्त्व दीवार बनकर खड़े थे, जिनको द्विवेदी जी जैसे साहित्यिक महारथी का पूर्ण संरक्षण प्राप्त था। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने इस बन्धनमय परिवेश से दूर हटकर स्वच्छन्द परिवेश में काव्य का सृजन किया।

रीतिमुक्त कवियों के समान ही आधुनिक स्वच्छन्द काव्य-धारा के काव्य-मर्मज्ञों की भी जीवन-धारा एवं काव्य-सृजन के मध्य सामंजस्य देखने को मिलता है। स्वयं 'प्रसाद' जी में उनके जीवन-संघर्ष की अनेक स्थितियों का आभास मिलता है। उनका पारिवारिक जीवन वस्तुतः उनके कष्टमय क्षणों की समष्टि है। 'आँसू' से 'कामायनी' तक उनकी मार्मिक पीड़ा और जीवन की जटिलताओं का बड़ा ही मधुमय और भावात्मक विश्लेषण हुआ है। 'निराला' जी का सारा जीवन कटुता से ही भरा था। असमय में बेटी सरोज की मृत्यु, पत्नी का देहावसान और सामाजिक जीवन की अनेकशः कठिनाइयों ने उनके काव्य-सृजन को वास्तविक प्रेरणा प्रदान की। यही नहीं, उनका कवि-हृदय क्रान्तिमूलक चेतना के लिए आकुल हो उठा। जिस प्रकार 'बोधा' का अपमानित, दण्डित मानस 'विरह-वारीश' जैसी रचना की अभिव्यक्ति के लिए उद्विग्न हो उठा, उसी प्रकार 'निराला' जैसे अर्थ-पीड़ित कवि का मानस विक्षिप्त होने के साथ-साथ विद्रोह के स्फुलिंग से समस्त सामाजिक रूढ़ियों, मान्यताओं और समाज की अर्थ-व्यवस्था एवं पूँजीवादी नीतियों को भस्मीभूत करने के लिए सजग हो उठा। पं० रामनरेश त्रिपाठी का भी जीवन पारिवारिक उथल-पुथल एवं विसंगतियों से भरा था। लम्बे-लम्बे प्रवासों से प्राप्त सम-विषम राष्ट्रीय अनुभवों एवं दाम्पत्य-प्रेम में समरसता के अभाव ने राष्ट्रीय-प्रेम की छाया में दाम्पत्य-प्रेम की अभिव्यंजना के लिए उन्हें प्रेरित किया। प्रकृति की गोद में जन्मे तथा प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में पनपे 'पंत' को स्वच्छन्दता विरासत में मिली। फलस्वरूप उनका प्रकृति-प्रेम काव्य में अनन्त प्रसार पा सका। इसी प्रकार अन्य कवियों की भी काव्य-दृष्टि, उनकी जीवन-दृष्टि से प्रभावित थी।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवियों की जीवन-धारा एवं काव्य-सृजन के बीच अद्भुत सामञ्जस्य है।

प्रेम-निरूपण :

साहित्यकार की काव्य-सर्जना प्रायः युग-चेतना सापेक्ष होती है। रीतिकालीन परिवेश शृंगारिक था और द्विवेदीयुगीन शृंगारिक वर्जना एवं नैतिक आग्रह का। दोनों में नैसर्गिक प्रेम की अधोगति थी। लेकिन रीतिकालीन शृंगारिक कुरूपता एवं द्विवेदीयुगीन शृंगारिक वर्जना के मध्य भी हिन्दी में ऐसे स्वच्छन्द कवियों की प्रेम-धारा अविरल प्रवाहित होती रही, जिन्होंने अपने काव्य में शृंगार को न तो अनि-यंत्रित किया और न ही वर्जित। प्रेम के इन मध्यमार्गी कवियों ने लौकिक जीवन में प्रेम के महत्त्व को तो अंगीकार किया, लेकिन कुरूपता का पंकिल धोकर। जीवन और साहित्य दोनों में इनका लौकिक प्रेम आदर्शोन्मुख था। इन कालखण्डों की युग-चेतना सर्वथा भिन्न थी, लेकिन लगता है इन स्वच्छन्द कवियों की आस्था एवं दृष्टिकोण में यत्किञ्चित् साम्य था, जिससे इनके प्रेम-निरूपण एवं प्रेम के उदात्तीकरण में रूपात्मक अथवा भावात्मक स्थल कहीं मिल जाते हैं, कहीं बिछुड़ जाते हैं, कहीं टकरा जाते हैं तो कहीं छोड़ कर आगे बढ़ जाते हैं। अनुभूति की गहराई में अन्तर होने के कारण किसी कवि में प्रेम-निरूपण की बड़ी उदात्त कल्पना मिलती है, तो किसी में प्रेममूलक कल्पना सिमट कर रह जाती है।

रीतिमुक्ति कवियों के काव्यानुशीलन से स्पष्ट पता चलता है कि 'बोधा', 'ठाकुर' और 'आलम' की प्रेम-साधना का स्वरूप 'रसखान' और 'घनानन्द' से भिन्न था। 'बोधा', 'ठाकुर' और 'आलम' प्रेम की पीर से प्रभावित अवश्य हुए, किन्तु भक्ति-चेतना का आग्रह अधिक न होने के कारण उनकी प्रेमाभिव्यंजना लौकिकता की गहराई और विस्तार में तो प्रशंसनीय है, लेकिन 'घनानन्द' तथा 'रसखान' के समान वह आध्यात्मिक धरातल तक नहीं पहुँच पाती। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों में श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय, गुरुभक्त सिंह 'भक्त' का प्रेमी रूप उतना मुखर नहीं है जितना 'प्रसाद', 'पंत' और 'निराला' का। 'प्रसाद' तथा 'पंत' के लौकिक प्रेम में समान रूप से पीड़ा की गहराई है लेकिन 'प्रसाद' के प्रेम में जहाँ मधुचर्या का प्राधान्य है वहीं 'पंत' के प्रेम की विशेषता उसके शैशव सरलता में है। रामनरेश त्रिपाठी तथा 'निराला' का प्रेम गार्हस्थिक है, लेकिन त्रिपाठी जी के प्रेम में जहाँ सौम्यता है वहीं 'निराला' के प्रेम में उद्दाम आवेग। न्यूनाधिक रूप से आध्यात्मिक संस्पर्श तो इस काल के सभी स्वच्छन्द कवियों के काव्य में विद्यमान है। इन तथ्यों को दृष्टि में रखकर ही दोनों कालखण्डों के प्रेम-धरातल का, उसके उदात्त स्वरूप का तथा साम्य-वैषम्य का सम्यक्-सापेक्ष विवेचन किया जा रहा है।

मानव-जीवन की एक मूल वृत्ति काम है और काम ही का व्यक्त रूप प्रेम है। काव्यानुशीलन से यह बात स्पष्ट है कि आलोच्य कालखण्डों के प्रायः सभी स्वच्छन्द

कवि प्रेम-पिपासु रहे हैं, भले ही उनके प्रेम-काव्य का आलम्बन जीव, जगत् या परोक्ष सत्ता का एक अथवा एक से अधिक अंग रहा हो। रीतिमुक्त कवि नारी-प्रेम में नख-शिख अनुरक्त थे और निराशा की स्थिति में वे ईश्वरोन्मुख हुए। उनके काव्य में नारी-प्रेम की केन्द्रीय भूमिका है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों में 'प्रसाद' और 'पंत' रीतिमुक्तों की भाँति ही असफल प्रेमी थे और निराशा की स्थिति में वे प्रकृति तथा परोक्ष सत्ता की ओर उन्मुख हुए हैं। अन्य कवियों को भी नारी-प्रेम ने किसी-न-किसी रूप में प्रभावित अवश्य किया है, भले ही वैयक्तिक अनुभूतियों तथा युग-चेतना के प्रभाव से इनका प्रेम नारी-क्रोड़ से विकसित होकर प्रकृति व देश-प्रेम में विलीन हो गया हो। इनके काव्य में नारी-प्रेम कहीं मूक है, कहीं मुखर तथा नारी कहीं केन्द्र में है तो कहीं पार्श्व में, कुल मिलाकर नारी-प्रेम का यहाँ प्राधान्य है, भले ही उसकी भूमिका कहीं पर नायिका की हो तो कहीं पर सहनायिका की, खल-नायिका तो वह कहीं है ही नहीं।

तात्त्विक रूप :

लौकिक प्रेम में सच्चे प्रेमी साधक को समाज की प्रवंचना और प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है जिससे वह अवसाद-खिन्न हो उठता है। रीतिमुक्त कवि इसके भुक्तभोगी थे। उन्हें प्रेम-पथ की कठिनाई, कोमलता और सूक्ष्मता का अनुभव था। 'बोधा' की वाणी में हमें प्रेम-पथ में आड़े आने वाली बाधाओं की गूंज सुनाई देती है—

(१) 'अति छीन मृनाल के तारहु तें तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल है जू तलवार की धार पै धावनो है।'

—बोधा ग्रन्थावली, पृ० १।

लौकिक प्रेम के साधक 'प्रसाद' को भी इन सामाजिक बाधाओं का आभास है। प्रेम-पथ की भूल-भुलैया में संचित कवि का खट्टा-मीठा अनुभव इस प्रकार मुखर हो उठा है—

'पथिक ! की राह अनोखी, भूल-भूलकर चलना है
घनी छाँह है जो ऊपर तो नीचे काँटे बिछे हुए।'

—प्रेम-पथिक, पृ० १६।

प्रेम करना जितना सरल है, निर्वाह उतना ही कठिन। जीवन में सर्वस्व न्यौछावर कर देने पर भी उसको निभा ले जाना दुष्कर है। 'प्रीति करै में लगै है कहा, करिकै इक और निबाहिबो वाको'[१] 'नेह करे का जात सब कोऊ सबसों करै, अरे

१. ठाकुर ठसक, पृ० ६।

कठिन यह बात करिबो और निबहिबो।'[1] में रीतिमुक्त कवि 'ठाकुर' और 'बोधा' निर्वाह सम्बन्धी उसी कठिनाई की ओर संकेत करते हैं। 'श्रीधर पाठक' की वाणी में भी हमें वही गूँज सुनाई देती है—'प्रीति निबाहन कठिन है प्यारी या जग माँहि।'[2]

रीतिमुक्त कवियों ने सच्चे प्रेमी साधक के रूप में प्रेम-मार्ग की अनेकशः कठिनाइयों का भी अनुभव किया था और देखा था कि प्रेम की साधना अतिशय कठिन है, सूक्ष्म है। इसी की झलक हमें 'श्रीधर पाठक' की रचनाओं में देखने को मिलती है। लगता है 'रसखान' की प्रेम-चेतना प्रकारान्तर से पाठक जी की रचनाओं में छिपी हुई है। 'रसखान' के दोहे का प्रतिबिम्ब 'श्रीधर पाठक' के 'मनोविनोद' में इस प्रकार देखने को मिलता है—

'अति सूछम कोमल अतिहि, अति पतरो अतिदूर।
प्रेम कठिन सब तें सदा, नित इक रस भरपूर॥

—रसखानि ग्रं०, पृ० १०६।

'प्रेम नेम साधन कठिन करयौ कौन पै जाय।
उनही सों कछु निभि सकै लेत जिन्हें अपनाय॥'

—मनोविनोद, पृ० १३६।

सच्चे प्रेम में प्रतिदान की आकांक्षा का परित्याग तथा स्वार्थ व कामना का हवन अनिवार्य है। जब 'आलम' यह कहते हैं कि 'जानत नेह पतंग' तो इसमें से निःस्वार्थ प्रतिदान-रहित आत्मोत्सर्ग की ही प्रतिध्वनि निकलती है। प्रेम-साधना में आत्मोत्सर्ग का सन्देश 'प्रसाद' भी इसी प्रकार देते हैं—

'इसका है सिद्धान्त-मिटा देना अस्तित्व सभी अपना।'

—प्रेम-पथिक, पृ० १७।

प्रेम में कपट और चालाकी के लिए कोई स्थान नहीं। इस रास्ते पर स्वच्छन्दतापूर्वक वही चल सकता है जिसका मन सच्चा हो, हृदय कपट-रहित हो—

'अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलै तजि आपुनि पै, झझके कपटी जे निसाक नहीं।'

—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ८६।

समान रूप से प्रेम का आदर्शीकरण आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में भी हुआ है। प्रेम एक निश्छल-निष्कपट वृत्ति है। कपट एवं स्वार्थ के परित्याग से ही इसके पवित्र स्वरूप का दर्शन मिल सकता है—

१. बोधा ग्रंथावली (विरह-वारीश), पृ० १२६, संस्करण २०३१ वि०।
२. श्रीधर पाठक : मनोविनोद, पृ० १३८।

'प्रेम पवित्र पदार्थ न इसमें कहीं कपट की छाया हो ।'

—प्रेम-पथिक, पृ० १६ ।

इन स्वच्छन्द कवियों के काव्य में लौकिक प्रेम का प्रायः आदर्शोन्मुख रूप व्यंजित है। उनका लौकिक प्रेम उदात्त धरातल पर विकसित होता हुआ ईश्वरोन्मुख हुआ है। 'रसखान' के 'आनँद अनुभव होत नहिं, बिना प्रेम जग जान'[1] तथा 'प्रसाद' के 'प्रकृति मिला दो विश्व-प्रेम'[2] में हमें प्रेम के इसी विश्वव्यापी स्वरूप की झाँकी मिलती है। 'रसखान' के ही 'जु पै प्रेम जान्यौ नहीं, कहा कियो रसखान'[3] में प्रेम की जो गूँज है उसकी प्रतिध्वनि हमें आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में भी सुनाई देती है—

'और प्रेम, करुणा, गंगा-यमुना की धारा बही नहीं,
कौन कहेगा उसे महान् ? न मरु में उसमें अन्तर है।'

—प्रसाद : प्रेम-पथिक, पृ० २२ ।

'गंध-विहीन फूल है जैसे, चन्द्र चन्द्रिका-हीन ।
योंही फीका है मनुष्य का, जीवन प्रेम-विहीन ।'

—पं० रामनरेश त्रिपाठी : मिलन, पृ० २३ ।

प्रेम ही इन कवियों का प्रणव रूप है। इनका लौकिक प्रेम ऊर्ध्वमुखी होता हुआ उस ऊँचाई को छू लेता है जहाँ प्रेम और ईश्वर एक-दूसरे के पर्याय बन जाते हैं। 'प्रेम हरी को रूप है त्यों हरि प्रेम-स्वरूप ।'[4] में 'रसखान' में प्रेम को ईश्वर का प्रतिरूप मानकर उसके जिस महिमा-मण्डित स्वरूप की चर्चा की है, कालान्तर में प्रेम के उसी प्रणव रूप की झलक हमें आधुनिक कवियों के काव्य में भी देखने को मिलती है—

'क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है जहाँ कि सबको समता है'

—प्रेम-पथिक, पृ० १६ ।

'ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है, प्रेम हृदय आलोक ।'

—मिलन : पृ० २३ ।

इस प्रकार प्रेमतत्त्व-निरूपण में जो रूप-साम्य देखने को मिलता है वह इस तथ्य का पुष्ट प्रमाण है कि रीतिमुक्त कवियों की प्रेम-चेतना प्रकारांतर से आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के काव्य में छिपी हुई है।

---

१. रसखानि ग्रन्थावली, पृ० १०८ ।
२. प्रेम-पथिक, पृ० २४ ।
३. रसखानि ग्रन्थावली, पृ० १०६ ।
४. रसखानि ग्रन्थावली : पृ० ११० ।

प्रेम के सैद्धान्तिक पक्ष में किये गये इस तुलनात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि दोनों कालखण्डों के कवियों ने प्रेम का प्रायः आदर्शीकरण किया है। उनका प्रेमादर्श समान था, प्रेम के प्रति उनकी दृष्टि समान थी। जिन कवियों ने प्रेमतत्त्व निरूपण द्वारा अपना काव्यादर्श व्यक्त नहीं किया है उनके काव्म में भी चित्रित प्रेम-प्रसंगों से इसी प्रेमादर्श की पुष्टि होती है। कुछ अपवाद अवश्य हैं जो संख्या में तो नगण्य हैं ही, मूल प्रवृत्ति को भी व्यक्त नहीं करते।

आदर्श रूप :

अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध स्वच्छन्दतावादी कवि 'वर्ड्सवर्थ' ने कविता को विगत भावों का सावकाश स्मरण कहा है। जीवन में जिन भावानुभूतियों ने हमें बहुत अधिक प्रभावित किया है, एकान्त में, शान्त मनःस्थिति में पुनः स्मरण कर सुन्दर-तम शब्दों में अभिव्यक्त कर देना कविता है। 'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है'[१] 'वियोगी होगा पहला कवि'[२] उद्‌गारों द्वारा पंत ने प्रकारान्तर से यही बात दुहराई है। वे भावानुभूतियाँ चिरन्तन हैं जो बार-बार हमारे मानस-चक्षुओं के सामने आती रहती हैं। इसमें स्मृति का अद्‌भुत योग होता है। 'घनानन्द' और 'प्रसाद' के काव्य में समान रूप से स्मृति का यह रूप देखा जा सकता है जिसमें भूत-काल की बात 'तब' और वर्तमान काल की बात 'अब' के सहारे कही गयी है।

तब ऐसा समय था जब प्रिया के छवि-रूपी पानिप को नेत्रों के प्यालों से पीते हुए जीवित थे, अब स्थिति बदल गयी है। लोचन-चषक प्रिया के छवि-पानिप से रिक्त हो गये हैं और सोच में जले जा रहे हैं। यह स्थिति तो है लोचनों की। अब प्राणों की स्थिति देखिए। ये प्राण संयोग के दिनों में परम तुष्ट थे और उस तोष के द्वारा हृदय का पोषण हुआ करता था। अब वही प्राण दुःख से भर उठे हैं, बिलला उठे हैं। संयोग के दिनों में हम अपने वक्षों के बीच हार भी गवारा नहीं करते थे क्योंकि उस समय हार ही पहाड़ के समान लगते थे। अब सचमुच हमारे बीच पहाड़ आ खड़ा हुआ है जिससे हम एक-दूसरे से मिल नहीं पाते। सुजान के अभाव में सारे सुख साज के समान टल गये हैं।[३]

---

१. पल्लव (प्रवेश), पृ० ३३।

२. पल्लव (आँसू), पृ० ६२।

३. 'तब तो छबि पीवत जीवत है अब सोचन लोचन जात जरे।
हिय-पोष के तोष जु प्रान पले बिललात सु यों दुख-दोष भरे।
घनआनँद प्यारे सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे।
तब हार पहार से लागत है अब आनि के बीच पहार परे।'
—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० १३।

यही बात 'प्रसाद' जी के 'आँसू' में दिखाई देती है। 'तब' अर्थात् संयोग के दिनों में प्रिय का दर्शन मनोविनोद की सामग्री थी और यह सामग्री अत्यन्त मादक तथा मोहमयी थी। अब प्रिय का वह दर्शन दुर्लभ हो गया है। उसका स्मरण ही हृदय को हिला देता है। सुख समाप्त हो गया है। मन में कोई उमङ्ग जैसे रह ही नहीं गयी है। साँस लेना भी जैसे बेगार-सा लगता है। यह हृदय अब मन बहलाने वाली क्रीड़ाओं की समाधि बन गया है और निरीह करुणा उस समाधि पर आँसू बहा रही है।[1] दोनों कवियों में स्मृति का यह अद्भुत साम्य है। भाव-साम्य तो एक है लेकिन अभिव्यंजना-प्रणाली युग के अनुकूल अलग-अलग।

कभी 'घनानन्द' और 'रसखान' ने प्रेम के लौकिक धरातल पर स्थित होकर प्रेमिका की प्रतीक्षा बड़ी व्याकुलता और बेचैनी से की थी। उनकी आँखें प्रियतमा के पथ की ओर साँझ से लेकर सुबह तक पूरी रात निरन्तर देखते-देखते थकती नहीं थीं। सारी रात आकाश के तारों को गिनने में बीत जाती थी।[2] प्रेम-साधना में मन:स्थिति की यह समानता आधुनिक काव्य-कर्ताओं में भी देखने को मिल जाती है। कविवर 'प्रसाद' ने प्रियतमा की प्रतीक्षा में आकाश के तारों को गिनते हुए यह अनुभव किया था कि कोमल पखुंड़ियों के तकिये पर मधुमालतियाँ सो रही हैं लेकिन कवि का प्रेमी मन प्रतीक्षा की कटुता का गरल-पान करते हुए आकाश के तारों को गिना करता है।[3] इस प्रकार यहाँ दोनों की कविताओं में जहाँ प्रेम-साधना का स्वरूप बहुत-कुछ समान है, वहीं दोनों के वैयक्तिक जीवन के परिवेश का भी प्रभाव स्पष्ट है। 'प्रसाद' भावुक चिन्तक थे, भक्त नहीं। 'घनानन्द' भावुक चिन्तक और भक्त दोनों थे। 'घनानन्द' और 'रसखान' के समान ही 'प्रसाद' और 'पंत' की प्रेम-साधना उनके विरक्त जीवन की, उनकी आत्मा के व्याकुल पुकार की सजीव झाँकी है। अन्तर केवल आध्यात्मिक गहराई का है।

---

१. 'मादक थी मोहमयी थी, मन बहलाने की क्रीड़ा
अब हृदय हिला देती है, वह मधुर प्रेम की पीड़ा।
सुख आहत शान्त उमंगें, बेगार साँस ढोने में
यह हृदय समाधि बना है, रोती करुणा कोने में।'

—आँसू, पृ० १२।

२. 'भोर तें साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति।'

—घनआनँद ग्रन्थावली (प्रेमपत्रिका), पृ० २११।

३. 'मधु मालतियाँ सोती हैं, कोमल उपधान सहारे
मैं व्यर्थ प्रतीक्षा लेकर, गिनता अम्बर के तारे।।'

—आँसू, पृ० ३६।

'घनानन्द' और 'रसखान' के काव्य में स्मृतिजन्य वेदना के अनेकशः चित्र हैं। प्रकारान्तर से 'प्रसाद' और 'पंत' के काव्य में भी इस प्रकार के चित्र उपलब्ध होते हैं। 'ग्रंथि' की नायिका का ग्रंथि-बन्धन अन्यत्र हो जाने पर 'पंत' ने आह भरी तो 'उच्छ्वास' की पंक्तियाँ फूट पड़ीं और जब रो पड़े तो 'आँसू' की लड़ियाँ काव्य में पिरो उठीं। 'प्रसाद' ने तो स्मृति में रोते-रोते 'आँसू' खण्डकाव्य ही लिख डाला। ये सभी काव्य स्मृतिजन्य वेदना के अनेकशः चित्रों से भरे पड़े हैं। वेदना-प्रकाशन के रूप में अन्तर हो सकता है लेकिन उसकी आत्मा व उत्स एक ही है।

वियोगावस्था में प्रिया के उन्मुक्त कार्य-व्यापार एक-एक करके चलचित्र के समान मानस-पटल पर उभरने लगते हैं। उसकी हँसी, मुस्कराहट, चाल-ढाल, बात-चीत, व्यवहार आदि के संश्लिष्ट चित्र अन्तश्चक्षु से देख जब प्रिय भाव-विभोर हो उसका रसास्वादन करने लगता है, स्मृतियाँ उसे विस्मृति के जगत् में पहुँचाकर बेसुध कर देती हैं। अर्थात् स्मृतियों की मादक गंध में वह सांगोपांग डूब जाता है—

'आनँदनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की
सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करति है।'

—घनआनँद ग्रन्थावली (प्रकीर्णक), पृ० ५८६।

'तुम्हारी सुधि की सुरभित साँस
डुबा देती है मुझे सदेह।'

—पल्लव (स्मृति), पृ० १२८।

'रसखान' की रचनाओं में प्रेम, कवि की रूप-चेतना के भीतर ही दबा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने भक्त जीवन् के पूर्व उन्होंने जिस सौन्दर्य को देखा था उस सौन्दर्य की परिष्कृत प्रतिमूर्ति राधा और कृष्ण की मूर्ति में उन्हें दिखाई दी। राधा और कृष्ण की अनेकशः भङ्गिमाओं, मुद्राओं और चेष्टाओं के अङ्कन में उनके मानस की उदात्त वृत्तियाँ हृदय से फूटकर बिखर पड़ी हैं। आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र को गोपियों ने चितचोर कहा है, माखनचोर तो वे हैं ही। 'रसखान' की एक गोपी कहती है कि रसखानि सुजान (कृष्ण) ने मेरी ओर देखा और पश्यतो-हर (देखते ही चुरा लेनेवाला स्वर्णकार) के समान मेरे मन-रूपी माणिक्य को चुरा ले गये। फल यह हुआ है कि अब मैं बेमन की हो गयी हूँ और जब मेरे पास मन रह ही नहीं गया तो क्या करूँ। मैं बड़े फेर में पड़ गयी हूँ।[1]

'प्रसाद' ने स्पष्ट शब्दों में प्रिय को चोर तो नहीं बनाया है, लेकिन जो देखते-देखते पल भर में जीवन के अन्तस्तल से सारे सुखों को लेकर धीरे से खिसक

१. 'मो मन मानिक लै गयौ; चितै चोर नँदनंद,
अब बेमन मैं क्या करौं, परी फेर के फंद।' —रसखानि ग्रं०, पृ० १४८।

जाय वह चोर नहीं है तो क्या है ? अब रही बात सुख की, तो सुख कोई बाहरी पदार्थ नहीं, वह मन का ही तो है। जिस मन में वह सारा सुख समाया हुआ था, उस मन को ही तो प्रिय ले गया। उस मन के लिए आँसू बहाने के अतिरिक्त और चारा ही क्या रह गया ?[1] वियोगावस्था में जब प्रिय के मिलने की कोई संभावना न हो तो किंकर्तव्यविमूढ़ता और रुदन की स्थिति का पैदा हो जाना स्वाभाविक है।

प्रणय रूप :

नगण्य ही सही, प्रेम का घोर शृंगारिक रूप भी हमें इन कालखण्डों की कविताओं में प्राप्त होता है। 'बोधा' 'इश्कमजाजी' और 'इश्कहकीकी' की केवल माला ही जपते रहे जब कि लौकिक प्रेम में वे नखशिख डूबे हुए थे। उनकी कविताओं में प्रणय का उद्दाम वेग परिलक्षित होता है। प्रेम और कामिनी सम्बन्धी उनकी कामुक दृष्टि का एक नमूना देखिए—

'उन्नत उरोजन में दृगन सरोजन में,
भौंहन के ओजन में मन्द मुसक्यान में।
रसना दसन हूँ में, कंचुकी कसनहूँ में,
अंजन रसनहूँ में बेनी सुखदान में।
अमृत बसत है······ ··   ।'—बोधा ग्रन्थावली, पृ० १२४।

'प्रसाद' में मधुचर्या और 'पंत' में शैशव सरलता के रूप में प्रणय का प्रस्फुटन हुआ है, जिससे उसमें प्रणय-आवेग के स्थान पर प्रणय-सौम्यता है। 'निराला' की रचनाओं में कुछ कविताएँ ऐसी हैं जिसमें प्रणय का उद्दाम वेग दिखाई देता है। 'शेफालिका' को पूर्ण युवती का रूप प्रदान करते हुए कवि उसके वासनापूर्ण व्यापारों का इस प्रकार चित्रण करता है—

'बंद कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन-उभार ने
पल्लव-पर्यङ्क पर सोती शेफालिके।'
—परिमल (शेफालिका), पृ १७५।

प्रणव रूप :

वैयक्तिक लौकिक प्रेम को विश्व-प्रेम में और अन्ततोगत्वा अलौकिक प्रेम में पर्यवसित करने की प्रवृत्ति दोनों युगों में प्रकारान्तर से दिखाई देती है। रीतिमुक्तों

१. 'इतना सुख ले पल भर में
जीवन के अन्तस्तल से
तुम खिसक गये धीरे से
रोते अब प्राण विकल-से।'   —आँसू, पृ० ४७।

में 'घनानन्द', 'रसखान' तथा 'आलम' ने राधा-कृष्ण का सूत्र पकड़कर लौकिक प्रेम व अलौकिक प्रेम को एकसूत्र में पिरोया है। उनके काव्य में वर्णित राधा-कृष्ण के प्रति प्रेम, समाज-प्रेम व विश्व-प्रेम की भावना उत्पन्न करता है। 'घनानन्द' के विचार से संसार में जो बहुत सारा प्रेम उफनता, उमड़ता दिखाई दे रहा है, वह राधा-कृष्ण के अलौकिक प्रेम का ही लौकिक प्रकाश है। उन्हीं के अविकल प्रेम के एक कण से सृष्टि में प्रेम का ज्वार आया है।[1] प्रकारान्तर से पं० 'रामनरेश त्रिपाठी' ने भी लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम का सम्बन्ध-सूत्र जोड़ा है। प्रकृति के क्रिया-व्यापारों में परोक्ष सत्ता (प्रियतम) का प्रतिबिम्ब देखकर उनका प्रेमी हृदय मुग्ध हो उठता है और उसे सचराचर संसार में अलौकिक सत्ता के प्रेम का ही प्रसार लक्षित होता है।[2] फलस्वरूप प्रेमी को सम्पूर्ण विश्व प्रेममय प्रतीत होता है। इस प्रकार कवि का अलौकिक प्रेम, मानव-प्रेम व विश्व-प्रेम में पर्यवसित हो जाता है—

"जन-जन में प्रेमी को दिखती है प्रियतम की कान्ति।"[3]

निष्कर्ष रूप में आलोच्य काल-खण्डों के प्रेमतत्त्व-निरूपण व प्रेम-चित्रण में निम्नांकित रूप-साम्य व भाव-साम्य दृष्टिगोचर होता है—

(१) आलोच्य कालखण्डों के स्वच्छन्द काव्य में प्रेम-चिन्तन के दो पक्ष हैं—प्रथम में प्रेम के सैद्धान्तिक स्वरूप का निरूपण हुआ है और द्वितीय में प्रेम के व्यावहारिक स्वरूप का चित्रण। प्रेम के व्यावहारिक पक्ष की मुख्यतः तीन दिशाएँ हैं—

(अ) प्रथम में मांसल अथवा स्थूल लौकिक प्रेम का छायांकन हुआ है। उसमें प्रेम का प्रणय रूप चित्रित है। इस प्रकार की कविताओं द्वारा कवियों ने अपनी अतृप्त वासना एवं कुंठित प्रणय-चेतना की तुष्टि की है। ऐसी कविताएँ मात्रा में नगण्य हैं और इन कवियों की मूल प्रवृत्ति को प्रायः इंगित नहीं करतीं।

---

१. 'प्रेम को पयोदधि अपार हेरि के बिचार,
बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आये हैं।
ताकी कोऊ तरल तरङ्ग-सङ्ग छूट्यो कन,
पूरि लोकलोकनि उमड़ि उफनायो है।
× × ×
ताहि एकरस ह्वै बिबस अवगाहें दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हें हेरें सरसायो हैं॥' —घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ३८।

२. 'प्रेम भरे अधखुले दृगों से शशि को देख सहास,
प्रेमी समझ मुग्ध होता है प्रियतम हास-विलास।' —मिलन, पृ० २५।

३. पं रामनरेश त्रिपाठी : वही, पृ० २५।

(ब) द्वितीय में लौकिक (इश्कमजाज़ी) के व्याज से अलौकिक प्रेम (इश्कहकीकी) का प्रस्फुटन हुआ है। इसमें प्रेम का प्रणव रूप चित्रित है। आध्यात्मिक प्रेम को मुखरित करने वाली कविताएँ संख्या में तो पर्याप्त हैं लेकिन इस प्रकार का प्रेम भी इन स्वच्छन्द कवियों का साध्य नहीं, वरन् लौकिक प्रेम पर रहस्य का झीना आवरण डालने, उदात्त प्रेम को अभिव्यंजित करने व भग्न हृदय के घाव को भरने का साधन मात्र है।

(स) तृतीय में आभ्यन्तरिक अथवा अनुभूत्यात्मक प्रेम का प्रक्षेपण हुआ है। लौकिक प्रेम को उदात्त भावभूमि पर अभिव्यंजित कर प्रेम के नैसर्गिक स्वरूप का उद्घाटन तथा उसका पुनर्स्थापन ही इन स्वच्छन्द कवियों का मूल अभिप्रेत है। यही कारण है कि रीतियुगीन वासनात्मक चित्रों की अनेकशः निर्जीव, आवृत्तियों के क्षार जल में प्रेम-सौन्दर्य के चित्र जिस प्रकार विकृत हो गये, वैसी विकृति और चित्रों की विद्रूपता (कुरूपता) न तो रीतिमुक्त कवियों में देखने को मिलती है और न आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के काव्य में। वैयक्तिक जीवन एवं काव्य दोनों में प्रेम के आदर्श स्वरूप को प्रस्तुत करना इनका प्रकृत साध्य था।

२—आलोच्य कालखण्डों के कवियों ने पराये प्रेम अथवा उधार के प्रेम को अभिव्यंजित न करके प्रायः स्वप्रेम को ही अनुरेखित करने का साहस दिखाया है। वे अपने प्रेम-काव्य के स्वयं नायक हैं। रीतिमुक्तों ने जहाँ राधा-कृष्ण के प्रेम को चित्रित किया है, उसकी ओट में अपने ही प्रेम को वाणी दी है। इस प्रकार इन कवियों ने अपनी प्रेमानुभूति को चाहे आत्मकथात्मक शैली में मुखरित किया हो, चाहे राधा-कन्हाई की ओट लेकर, निःसन्देह दोनों ही दशाओं में उनकी स्वानुभूति को ही अभिव्यक्ति मिली है।

३—दोनों कालखण्डों के कवि प्रायः निस्संग हैं, जिससे इनकी रचनाओं में प्रेम का सहज स्वाभाविक विकास हुआ है। प्रेम इनके काव्य में हृदय का व्यापार बना है न कि बुद्धि का व्यवसाय। यही कारण है कि इनकी प्रेमाभिव्यंजना में पवित्रता है, नैसर्गिकता है। कुछ अपवादों को छोड़कर प्रेम इनके काव्य में भोग का पर्याय नहीं बना है, उसका प्रायः उदात्त स्वरूप ही काव्य में गृहीत है। जहाँ प्रेम का तात्त्विक निरूपण हुआ है वहाँ वह साधनात्मक है और जहाँ प्रेमाभिव्यंजन है, वहाँ वह अनुभूत्यात्मक है, मानसिकता से सम्पृक्त है।

४—इन कवियों की प्रेम-भावना नारी-क्रोड़ में उद्भूत व विकसित होकर ईश्वरीय अथवा प्रकृति एवं देश-प्रेम की ओर झुक गयी है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों में विश्व-प्रेम की एक मध्यगा कड़ी भी जुड़ी हुई दिखाई देती है। 'बोधा' को

छोड़ कर प्रायः सभी कवियों की प्रेम-भावना अपने विकास-क्रम में लौकिक-प्रेम से अलौकिक प्रेम की ओर उन्मुख दिखाई देती है।

५—इनका नारी-प्रेम कहीं मूक है, कहीं मुखर। इनके प्रेम-काव्य में नारी कहीं केन्द्र में है कहीं पार्श्व में। कुल मिलाकर यहाँ नारी-प्रेम की ही प्रधानता है। नारी-चरित्र का आदर्शीकरण उनके स्वच्छन्द काव्य की उल्लेखनीय विशेषता है। इन प्रेम-पिपासुओं ने सतीत्व के स्थान पर नारीत्व को महत्त्व प्रदान किया है जिससे वे घोर शृंगारिकता और कठोर नैतिकता के बीच सन्तुलन स्थापित करने में सहज समर्थ हो सके हैं।

६—दोनों कालखण्डों के प्रेम-चित्रों में हृदय की लपेट, भावावेग का उच्छल प्रवाह एवं कल्पना का समाहार प्रायः सर्वत्र है। संयोगपरक चित्र भी इनके प्रभाव से गँदले होने से बहुत-कुछ बच गये हैं। जहाँ इनका अभाव है वहीं पर प्रेम-चित्र विकृत हुए हैं, लेकिन ऐसे स्थल नगण्य हैं।

७—इन कवियों का मूल वक्तव्य प्रेम है चाहे उसका आलम्बन नारी हो अथवा नरेतर जगत् का कोई अन्य उपादान। उनके काव्य का सम्पूर्ण ढाँचा ही प्रेम की नींव पर खड़ा है, प्रेम-तन्तुओं के ताने-बाने से बुना है।

८—दोनों कालखण्डों के प्रेम-काव्य में प्रेम-वैषम्य एवं निगूढ़ वेदना-विवृत्ति का हमें दर्शन मिलता है, जिसे भुक्तभोगी ही समझ सकता है। ये कवि अपनी विरह-वेदना को बिखेरने के बजाय घुट-घुट कर पीने के पक्षधर थे, इसी से वह दूसरों के लिये अगम्य हो उठी है।

९—दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द काव्य में प्रेम का नैसर्गिक प्रवाह समान रूप से दृष्टिगोचर होता है। निर्भोग प्रेम (प्लैटोनिक लव) तथा मुक्त प्रेम का दोनों में प्राधान्य है। प्रेम का प्रसार प्रायः प्रणय-प्रेरित न होकर सौन्दर्य-प्रेरित है।

सौन्दर्य-बोध :

विषय-निरूपण की दृष्टि से डॉ० खण्डेलवाल ने सौन्दर्य को चार रूपों में विभाजित किया है—मानवीय, प्राकृतिक, वस्तुगत और कलागत। साहित्य की सीमा में अभिकल्पित समस्त सौन्दर्य इन भेदों में समाहित किये जा सकते हैं। इस शोध-प्रबन्ध में प्राकृतिक और कलागत सौन्दर्य पर विचार अलग से किया जायेगा। यहाँ सौन्दर्य के प्रथम रूप मानवीय सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य में दोनों कालखण्डों की स्वच्छन्द रचनाओं में समान तत्त्वों का अन्वेषण किया जा रहा है।

मानवीय सौन्दर्य के दो पक्ष हैं—शारीरिक तथा मानसिक। शारीरिक बाह्य स्थूल सौन्दर्य है जिसे हम रूप कहते हैं। यह सौन्दर्य का दृश्य और व्यक्त पक्ष है। मानसिक सौन्दर्य अपार्थिव होता है जिसकी सत्ता बाह्य जगत् में न होकर आन्तरिक

भावना में होती है । 'यही जीवन का विकास है, स्थायी आसक्ति है ।'[1] यह वस्तु-निष्ठ न होकर व्यक्तिनिष्ठ होता है ।

सौन्दर्य, प्रेम का आलम्बन है । जो प्रिय होता है, द्रष्टा को अनिवार्यतः उसमें सौन्दर्य की अनुभूति होती है और जिसे देखकर सौन्दर्य की अनुभूति होती है उससे द्रष्टा का स्वतः रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवि प्रायः प्रेम और सौन्दर्य के कवि रहे हैं । इन कवियों ने अपने आलम्बनों को सौन्दर्यपूरित नेत्रों से देखा तथा सहज भाव से उनका, उनसे रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो गया जिससे उनके काव्य में अनुभूतिजन्य प्रेम और सौन्दर्य का मणि-कांचन संयोग हुआ है ।

सामान्यतः स्वच्छन्दतावादी कवि वस्तुगत सौन्दर्य को भी अपने ही आन्तरिक सौन्दर्य से रँगकर देखता है और इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति के साथ ही सौन्दर्य-सर्जन की समन्वित प्रक्रिया को जन्म देता है । यद्यपि प्रत्येक कवि की सौन्दर्य-चेतना विशिष्ट होती है तथापि युग-चेतना का प्रभाव उस पर न्यूनाधिक रूप से अवश्य पड़ता है । सौन्दर्यानुभूति में दृष्टि-साम्य का यही आधार है । स्वच्छन्द कवियों में पुरुष-सौन्दर्य के अनुरेखन की प्रवृत्ति प्रायः नगण्य थी । इनका मन नारी के रूप और अन्तःशील के प्रक्षेपण में खूब रमा है ।

बाह्य सौन्दर्य-चित्रण (रूप) :

आलोच्य अवधि के कवियों ने नखशिख-परम्परा पर सौन्दर्य-चित्रण न करके नारी के अंग-प्रत्यंग पर स्वतन्त्र तथा अक्रमबद्ध उक्तियाँ लिखने में ही रुचि दिखाई है । रीति और रति से प्रभावित होते हुए भी इन कवियों का शारीरिक सौन्दर्य-चित्र प्रायः अमांसल तथा निर्भोग समपर्ण से युक्त रहा । इन चित्रों में मांसलता की अपेक्षा सहज मधुरिमा का प्राधान्य है । इन कवियों में एक-एक अंग के सौन्दर्य को अलग-अलग चित्रित करने की प्रवृत्ति प्रायः नहीं रही । अवयवी सौन्दर्य-चित्र भी अक्रमबद्ध स्फुट तथा स्वतन्त्र हैं और परम्परा से प्रभावित होते हुए भी नखशिख-परम्परा से दूर हैं । इनकी कविताओं में नारी-सौन्दर्य का समग्र चित्र उभरता है और उसका प्रभाव मिले-जुले रूप में दृष्टिगोचर होता है । इसके दो कारण हैं—प्रथम आत्मप्रसार की प्रबल आकांक्षा के कारण अन्तर्दृष्टि में परिवर्तन, द्वितीय हृद्‌गत प्रेम का आधिक्य ।

दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवियों ने नारी-सौन्दर्य का विशद चित्रांकन किया है । केश, मुख, नेत्र, बरौनी, कपोल, दाँत, कान आदि के बाह्य सौन्दर्य-चित्रों में भी एक आन्तरिक सौन्दर्य-चेतना का दर्शन होता है । ये चित्र अंगों के माप-तौल से शिथिल नहीं हुए हैं वरन् उदात्त सौन्दर्य-दृष्टि के प्रभाव से उनमें सजीवता आ गयी

१. डॉ० रांगेय राघव : हिन्दी कविता में प्रेम और श्रृंगार, पृ० ८८ ।

है। 'घनानन्द' कृत 'सुजानहित'; 'आलम' कृत 'आलम-केलि'; 'ठाकुर' कृत 'ठाकुर ठसक' आदि में नायिकाओं के सौन्दर्य-चित्र पर नखशिख-परम्परा का प्रभाव परिलक्षित होता है। लेकिन ये चित्र आन्तरिक सौन्दर्य के प्रभाव से परम्परागत नहीं प्रतीत होते। 'प्रसाद' कृत 'आँसू' में उभरे नायिका के सौन्दर्य-चित्र नखशिख-परम्परा से प्रभावित होते हुए भी परम्परागत न होकर ध्वन्यात्मक सौन्दर्य से मण्डित हैं।[1]

'निराला' ने 'पंचवटी' प्रसंग में प्रसंगवश शूर्पणखा के मुख से संक्षिप्त किन्तु समग्र नखशिख-वर्णन कराया है लेकिन गतिशीलता, व्यापकता तथा कलात्मक भंगिमा के प्रभाव से यह नखशिख-चित्रण परम्परागत नखशिख-वर्णन से सर्वथा भिन्न हो गया है। कवि ने 'योजन गंध-पुष्प जैसा प्यारा यह मुखमंडल-फैलते पराग दिङ्मंडल आमोदित कर खिंच आते भौंरे प्यारे' में रूप, रस और गंध की सृष्टि कर मुखमंडल की शोभा को व्यापक बना दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों युगों के काव्य में जो अवयवी सौन्दर्य-चित्र अनुरेखित हैं, वे आन्तरिक सौन्दर्य के प्रभाव से प्रायः परम्परामुक्त हैं।

मानव-मन का रहस्योद्घाटन करने वाली आँखों का सौन्दर्य-चित्रण दोनों कालों में हुआ है। रीति-स्वच्छन्द कवियों ने नयन को जहाँ परम्परागत उपमानों जैसे—मीन, कमल, खंजन, कुरंग आदि से सजाया है, वहीं आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के काव्य में भी ये उपमान, अत्यल्प ही सही, गृहीत अवश्य हैं। रीतिमुक्त कवियों ने नेत्रों के सौन्दर्य-चित्रण में प्रायः परम्परागत उपमानों को ही ग्रहण किया है तथा उन्हीं को नारी-नयन के समक्ष लज्जित होते हुए चित्रित किया है। 'घनानन्द' को सुजान के नेत्रों की चपलता के समक्ष मीन, कमल, खंजन आदि परम्परागत उपमान फीके जान पड़ते हैं। ऐसे सुन्दर तथा चंचल नयन के कटाक्ष में हृदय-विदीर्ण करने की तीक्ष्णता का उन्हें आभास होता है।[2] 'प्रसाद' को भी नीले कमल के समान नेत्रों में चंचलता और मादकता की अनुभूति होती है।[3] उन्होंने आँखों को 'मदिरा भरी नीलम की प्याली'[4] के रूप में अंकित किया है तथा पुतली की चंचलता के

---

१. जयशंकर 'प्रसाद' : आँसू, पृ० २३-२४, संस्करण २०२५ वि०।

२. 'मीन-कंज-खंजन-कुरंग-मान-भंग करैं,
सींचे घनआनँद खुले सकोच सों मढ़े।
पैने नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
घाती बड़े काती लिये छाती पै रहैं चढ़ै॥'—घनआनँद ग्रं०, सु० हि०, पृ० १८।

३. 'ये बंकिम भ्रू, युगल कुटिल कुन्तक घने,
नील नलिन से नेत्र, चपल मद से भरे',—झरना : पृ० ८।

४. 'काली आँखों में कितनी, यौवन के मद की लाली
मानिक मदिरा से भर दी, किसने नीलम की प्याली।'—आँसू : पृ० २१।

लिए 'तिर रही अतृप्ति-जलधि में नीलम की नाव निराली'[1] लिखकर अपनी कल्पना प्रवणता का परिचय दिया है।

नारी कटाक्ष से पुरुष के घायल होने की बात अतीत काल से स्वीकृत है। 'ठाकुर' के विचार से तलवार, बरछी और वज्र के चोट से आदमी बच सकता है, सर्पदंश, विष-पान और मृत्यु से भी एक बार जीवन की रक्षा हो सकती है परन्तु कटाक्षों से घायल हुआ व्यक्ति बच नहीं सकता—'न जियै इन नैन कटाक्ष को मारो।'[2] ठाकुर गोपालशरण सिंह भी नारी-नयन के कटाक्ष में विषैले बाण, भौंह में कमान की कल्पना करते हैं—'दृग हैं विषैले बाण भौंहें हैं कमान बंक।'[3] दोनों काल-खण्डों से भाव-साम्य पर आधारित मानिनी नायिका के 'भ्रू' और 'नेत्र' के स्वरूप के एक-एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत हैं—

'दृग-शर साध कर तान भ्रू-कमान बंक' —माधवी, पृ० २८।

'भौंहनि चढ़ाई के रिसाई नैन नाई रहो' —आलम-केलि, पृ० १२।

नेत्रों के समान ही शरीर के अन्य अंग-प्रत्यंगों के चित्रण भी दोनों कालखण्डों में हुए हैं। अन्तर केवल इतना है कि रीतिमुक्त कवियों ने अंग-शोभा चित्रण में जहाँ प्रायः परम्परागत उपमानों को ही ग्रहण किया है, वहाँ आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने परम्परागत उपमानों के साथ ही सर्वथा नवीन उपमानों की भी सर्जना की है। 'श्रीधर पाठक' ने अधर को बिम्बाफल के रूप में अंकित किया है, तो 'प्रसाद' ने अलकों की तुलना साँपों और सर्पिणियों[4] से की है। 'प्रसाद' ने दाँतों के लिए 'विद्रुम सीपी सम्पुट में मोती के दाने कैसे'[5] लिखकर रूपकातिशयोक्ति द्वारा एक अभिनव सौन्दर्य की सृष्टि की है। 'पंत' को नारी के कंठ स्वर में 'बाँसुरी की मधुर ध्वनि और उसकी पावनता में वृन्दाधाम की झलक मिलती है।'[6] 'निराला' परम्परावादी स्वर में ग्रीवा की तुलना कपोत-कंठ से करते हुए कहते हैं—'देख यह कपोत-कंठ छूट जाता धैर्य ऋषि-मुनियों का।'[7] इस प्रकार आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने बाह्य

---

१. प्रसाद : आँसू, पृ० २२।
२. सं० लाला भगवानदीन : ठा० ठ०, पृ० ९।
३. ठा० गोपालशरण सिंह : माधवी, पृ० ६०।
४. 'बाँधा था विधु को किसने, इन काली जंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से ?'—आँसू, पृ० २१।
५. आँसू : पृ० २३।
६. 'तुम्हारे स्वर का वेणु विलास
हृदय का वृन्दा धाम।' —पल्लव (स्मृति), पृ० १२०।
७. परिमल, पृ० २४८।

सौन्दर्य-चित्रण को हृदयस्पर्शी बनाने के लिये जहाँ सर्वथा नवीन उपमाओं की सृष्टि की है, वहीं परम्परागत उपमानों को भी नवीन सन्दर्भों में ग्रहण किया है।

रूप-सौन्दर्य चित्रण में 'घनानन्द' ने भी कहीं-कहीं परम्परागत उपमानों का परित्याग किया है। उदाहरण के लिए—सौन्दर्य से इतराती हुई सुजान की नासिका के चढ़े रहने, ग्रीवा के गर्व से तने रहने, अधरों के गुलाल से भरे रहने तथा मुख-मण्डल के आम्रफल के समान रससिक्त रहने की कल्पना सर्वथा नवीन तथा कवि की रागलिप्सा का परिचायक है। वस्तुतः रूप-सौन्दर्य-चित्रण में 'घनानन्द' रीतिमुक्तों में अनूठे हैं। इनके रूप-सौन्दर्य-चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता है आसक्ति एवं आत्मनिष्ठता का सौन्दर्य-चिन्तन के साथ मणि-कांचन संयोग। उसमें जो नवीनता है, ताजगी है, सूक्ष्मता है, स्वच्छन्दता और नवीन भावनाओं का योग है वह सौन्दर्य-चित्रण की इसी आत्मपरक दृष्टि के कारण। रूप-सौन्दर्य-चित्रण में वे आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के सर्वाधिक निकट हैं। अन्तर्मुखी होने के कारण दोनों युगों के स्वच्छन्द कवियों को एक नवीन अन्तर्दृष्टि मिल गयी थी जिसके सहारे वे अन्तःसौन्दर्य को टटोलने में तो समर्थ हुए ही हैं बाह्य सौन्दर्य को भी आन्तरिक रंग में रँगकर उन्होंने देखा है जिससे रूप-सौन्दर्य के साथ उनका हृदय भी लिपटा हुआ जान पड़ता है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवियों की रुचि सौन्दर्य के समग्र चित्रांकन में रमी है। रीतिमुक्त 'घनानन्द' के काव्य में अवयवी सौन्दर्य के रमणीय चित्र उपलब्ध हैं। इस युग के अन्तःस्वच्छन्द कवियों की भी प्रायः यही प्रवृत्ति रही है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के काव्य में भी अवयवी चित्र यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। दोनों कालखण्ड की रचनाओं में नारी के अवयवी रूप-रंग के सामूहिक प्रभाव तथा व्यक्तित्व को अंकित करने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है। इन कवियों के अवयवी चित्रण से नारी का जो चित्र नेत्रों के समक्ष उपस्थित होता है उसमें प्रायः अनुभूतिजन्य मादकता की प्रचुरता दिखाई देती है। 'पंत' उसके अपवाद हैं। 'पंत' को नारी-तन में प्रायः कोमलता एवं शीतलता की अनुभूति होती है। 'पन्त' ने इस छवि को अभिनव कल्पनाओं द्वारा मनमोहक बनाया है।

इस प्रकार नारी-सौन्दर्य का जो स्थूल चित्र आलोच्य कवियों के काव्य में उभरता है, उसके समक्ष मेनका, रति, रम्भा, घृताची आदि अप्सराओं का सौन्दर्य श्रीहीन दिखाई देता है—

> 'कहि कवि 'आलम' न रम्भा हू न रति हू में,
> मेनका घृताची ऐसी रूप की अपार है।' —आलम-केलि, छन्द, ८४।
> 'रति रम्भा-छवि जाय छिपि लखि तेरी मुख-चन्द।'
> —मनोविनोद (प्रेमायतन), पृ० १४४।

आलोच्य कालखण्डों के सौन्दर्य-चित्रण में एक अन्य समानता यह रही है कि इन कवियों ने नायिका या नारी के प्रेम-चित्रों के साथ ही प्रायः प्रसंगवश सौन्दर्य-चित्रण किया है। यद्यपि कतिपय कवियों ने सौन्दर्य-वर्णन के लक्ष्य से भी कुछ कविताएँ लिखी हैं लेकिन वे परिमाण में नगण्य हैं। दोनों युग के आत्मचेता कवियों की प्रणय-भावना में भावावेग की प्रधानता रही है और जिस प्रणय-सम्बन्ध में भावावेग की प्रधानता हो वहाँ स्थूल अंगों को महत्त्व मिलना असम्भव है। इसी कारण इनकी दृष्टि प्रमुख रूप से आन्तरिक सौन्दर्य के अनुरेखन में ही लिप्त रही।

आन्तरिक सौन्दर्य-चित्रण : शील एवं चरित्र :

आलोच्य कालखण्डों के स्वच्छन्द कवियों ने स्थूल सौन्दर्य-चित्रण के साथ ही सूक्ष्म सौन्दर्य को भी पूर्ण तन्मयता के साथ प्रतिबिम्बित करने का प्रयास किया है। नारी के बाह्य सौन्दर्य से ये कवि रीझे अवश्य हैं, लेकिन आत्मनिष्ठता की विशिष्टता के कारण ये बाह्य के भीतर झाँक कर आन्तरिक सौन्दर्य का अवलोकन करने में अधिक जिज्ञासु रहे हैं। दोनों युग के स्वच्छन्द कवि अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा नखशिख-प्रणाली की यान्त्रिकता से मुक्त होकर अपने सौन्दर्य-बोध को भावना-पूर्ण दिशा में मोड़ सकने में सफल हुए हैं। प्रेम-विषयक उदात्त दृष्टिकोण ने इन स्वच्छन्द कवियों को ऐसी सूक्ष्म सौन्दर्य-दृष्टि प्रदान की, कि वे नारी-सौन्दर्य को चटकीले रंगों के स्थान पर सूक्ष्म रेखाओं में अनुरेखित करने में समर्थ हो सके। स्थूल सौन्दर्य पर इनकी दृष्टि अधिक देर तक नहीं जम सकी और वे पूर्ण तन्मयता के साथ सूक्ष्म सौन्दर्याङ्कन की ओर झुक गये और वहीं जम गये।

सौन्दर्य-सम्बन्धी धारणा में बदलाव आया तथा स्वच्छन्द कवियों का ध्यान भाव-सौन्दर्य की ओर गया। इन कवियों ने अपनी कलात्मक दृष्टि के साथ जिस गहराई का परिचय दिया है वह रसज्ञ के मानस में रसानुभूति को उद्‌बुद्ध करने में सक्षम है। नायिका के उमड़ते हुए स्थूल सौन्दर्य के रूपायन में इन कवियों ने जिस सूक्ष्मता का परिचय दिया है, देखते ही बनता है—

१. 'रूप की उझिल आछे आनन पै नई-नई
तैसी तरुनई तेह-ओपी अरुनई है।'—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ३१।

२. 'लावण्य-शैल राई-सा जिस पर वारी बलिहारी,
उस कमनीयता कला की सुषमा थी प्यारी-प्यारी।' —आँसू, पृ० २०।

इन स्वच्छन्दतावादी कवियों का काव्य-प्रवाह सदैव स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर बढ़ता गया है। नायिकाओं के मुद्रा-निरूपण में ऐसी सूक्ष्म दृष्टि का विनियोग देख दृष्टि चौंधिया जाती है—

१. 'निसद्यौस खरी उर-माँझ अरी, छवि रंग-भरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यों चख ढोरि रहे, ढरिगो हिय ढारनि बाहनि की।'
—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ८३।

२. प्रतिमा में सजीवता-सी बस गयी सुछवि आँखों में
थी एक लकीर हृदय में जो अलग रही लाखों में।' —आँसू, पृ० २०।

लज्जा जैसे सूक्ष्म अन्तःसौन्दर्य को सरस एवं मधुर भाव-भंगिमा के साथ चित्रित करने में इन कवियों ने दक्षता दिखाई है। भाव-साम्य पर आधारित लज्जानुभूति की निम्नांकित पंक्तियों को देखिए, जिसमें प्रिय की अकुलाती पलकें लज्जा के भार से उठ नहीं पातीं और जब उठती हैं तो भेद-भरे चितवन के साथ ही प्रिय का दर्शन भी करती हैं—

१. 'लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी'—घनआनँद ग्रंथावली, पृ०५८५।
२. 'लाज-निशा-वश बोल-मिलिन्द, नहीं मुख-पंकज से कढ़ पाये।'
—माधवी, पृ० १२२।

वास्तव में स्वच्छन्द काव्य-शैली की रचनाओं में सौन्दर्य की सूक्ष्म अभिव्यक्ति उसी प्रकार की गयी है जैसे मोती के भीतर छाया की तरलता हो। सौन्दर्य-बोध का यह विधान बहुत-कुछ 'घनानन्द' और 'प्रसाद' की रचनाओं में प्राप्त होता है।

नायिका के अंगों में व्याप्त लावण्य की एक मधुर अनुभूति नायक के अन्तर को गुदगुदा देती है। फलतः उसके आन्तरिक-सौन्दर्य के संस्पर्श से नायिका का समग्र सौन्दर्य दिव्य आभा से सजीव हो उठता है—

१. 'झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छकै दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि में छवि-फूलनि की बरषा उर-ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अँग-अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै॥'
—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ५८५।

२. 'परिरम्भ कुम्भ की मदिरा
निश्वास मलय के झोंके
मुख-चन्द्र चाँदनी जल से
मैं उठता था मुँह धोके'—आँसू, पृ० २७।

यहाँ 'प्रसाद' की उक्ति 'मुख-चन्द्र चाँदनी जल से मैं उठता था मुँह धोके' में सौन्दर्य की तरलता उसी प्रकार झलकें मारती है जैसे 'घनानन्द' की उक्ति 'अँग-अंग तरंग उठै दुति की' में नारी की सुकुमारता के साथ ही सौन्दर्य की प्रभविष्णुता और उसकी सजीवता का स्पष्ट संकेत मिलता है।

रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने सौन्दर्यानुभूति के रेखांकन में जैसी आत्मीयता और निष्ठा का परिचय दिया है वैसी ही निष्ठा आधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवियों में भी देखने को मिलती है। सौन्दर्य की तरलता, दीप्ति और उसकी प्रभविष्णुता के अनेक चित्र अपने आप में सर्वथा नूतन और अप्रतिम हैं। उदाहरण के लिए 'प्रसाद' के 'आँसू' की यह रचना चाक्षुष-बिम्ब का एक उत्कृष्ट नमूना है—

'कामना-सिन्धु लहराता
छवि पूरनिमा थी छाई
रतनाकर बनी चमकती
मेरे शशि की परछाईं।'—आँसू, पृ० ३३।

सौन्दर्य को रूपायित करने का कुछ ऐसा ही प्रयास 'घनानन्द' के काव्य में भी लक्षित होता है—

'माधुरी गहर उठै लहर-लुनाई जहाँ,
कहाँ लौं अनूप रूप-पानिप बिचारियै' —घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ५०।

प्रिय के चन्द्रमुखी सौन्दर्य को देखकर कवि 'प्रसाद' के मन में कामना का सिन्धु लहराने लगता है। ऐसा लगता है कि उस सौन्दर्य के प्रभाव से रत्न-दीप्ति की वृष्टि हो रही है। 'घनानन्द' की पंक्तियों में जहाँ अंगों से सौन्दर्य-लहरियाँ उठती हैं वहीं हृदय की गहरी माधुरी के मिल जाने से उसका खारापन समाप्त हो जाता है।

'आँसू' में 'प्रसाद' जी ने सौन्दर्य-निरूपण में कहीं-कहीं अपनी भाव-तन्मयता के साथ अभिव्यक्ति की असाधारण प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया है। एक छन्द में उन्होंने नारी के नैसर्गिक सुन्दरता के साथ उसमें व्याप्त शिशु जैसी पवित्रता की छलक का मनोहारी चित्रण किया है। रीतिमुक्त कवियों में 'घनानन्द' के कई छन्द देखने को मिले हैं, जिसमें नैसर्गिक सौन्दर्य की छलकन और उमड़ाव का संवेदनात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है—

'जिसमें इतराती फिरती नारी-निसर्ग-सुन्दरता
छलकी पड़ती हो जिसमें शिशु की उर्मिल निर्मलता।'—आँसू पृ० ६८।

'एरी मेरी सहज लड़ीली अरबीली सुनि,
तेरो अंग-संग लहैं लाड़ौ लड़कात है।
रूप-मद-छाके तें गँवेली गरबीली ग्वारि
तोहि ताकें रूपो उमगनि उमदात है।'

—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० २६, छन्द ८१।

रीतिमुक्त कवि 'आलम' के सौन्दर्य-बोध में और आधुनिक युग के प्रसिद्ध कवि ठा० 'गोपालशरण सिंह' की सौन्दर्यानुभूति में बहुत-कुछ दृष्टि-साम्य है।

यद्यपि 'प्रसाद' की भाँति उनके सौन्दर्य-बोध में तरलता नहीं मिलती तथापि सौन्दर्य-चित्रों की नवीनता और उसे मादक रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता निःसन्देह सराहनीय है। नायिका के सौन्दर्य को 'आलम' ने इस प्रकार रूपायित किया है कि जैसे उसके अंगदीप्ति में मोती के समान ज्योत्स्ना मूर्तिमान हो उठी हो—

'अंग नई जोति लै बरंगना विचित्र एक,
आँगन में अंगना अनंग की-सी ठाढ़ी है।
उजरई की उज्यारी, गोरे जन सेत सारी,
मोतिन की ज्योति सों जुन्हैया मानों बाढ़ी है।'—आलम-केलि, पृ० २८।

ठा० 'गोपालशरण सिंह' ने प्रकृति की विभूतियों को बड़ी गहराई के साथ देखा है और कलियों, लताओं, बादल, चन्द्र आदि के सहज क्रिया-कलापों को नारी के अंगों में बड़े ही कौशल के साथ विन्यस्त किया है। सौन्दर्य-चित्रण की इस कुशलता को देख हम सहसा यह भूल जाते हैं कि यह नायिका का चित्र है या प्रकृति की किसी रम्यस्थली का। प्रकारान्तर से यहाँ भी नायिका के सौन्दर्य में मोती जैसी दीप्ति का आभास मिलता है—

'तुझको विलोक लाज-वश झुकती है लता,
कुंज-कलियों के मुँह बन्द हो-हो जाते हैं।
तेरी तन-ज्योति से लजाई दामिनी को देख,
वारिधर अम्बर में उसको छिपाते हैं।' —माधवी, पृ० ६७।

निष्कर्ष रूप में आलोच्य कालखण्डों के स्वच्छन्द कवियों की सौन्दर्यानुभूति में निम्नांकित साम्य दृष्टिगत होता है—

१. दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवि सौन्दर्य के पुजारी रहे हैं। प्रारम्भ में वे बाह्य सौन्दर्य से प्रभावित हुए हैं लेकिन रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाने के बाद उनकी दृष्टि बाह्य आवरण के अन्तर्वेधन में समर्थ हो गयी और वे अन्तःसौन्दर्य को टटोलने में तन्मय हुए।

२. दोनों कालखण्डों के कवियों ने बाह्य सौन्दर्य से अधिक अन्तः सौन्दर्य को महत्त्व प्रदान किया है। उनकी सौन्दर्य-चेतना स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ती गयी है।

३. दोनों कालखण्डों के कवियों को नारी-सौन्दर्य ने सर्वाधिक लुभाया है लेकिन उन्होंने नारी के मांसल-सौन्दर्य का प्रायः अनुरेखन नहीं किया, यदि किया भी है तो उसमें शृंगारिक कुरूपता नहीं है। उनका मन देह-यष्टि की अवयवी नाप-जोख की अपेक्षा समग्र सौन्दर्य के रूपायन में अधिक रमा है।

४. दोनों कालखण्डों के कवियों ने सौन्दर्य को लीक से हट कर देखा है। नखशिख-

वर्णन में उनकी अभिरुचि नहीं है। उनकी सौन्दर्यानुभूति प्रायः मानसिक है न कि स्थूल शारीरिक।

५. इन कवियों ने सौन्दर्य को भोग का अवलम्बन न मानकर अनुभूति का उपादान माना है। इसी कारण उनके काव्य में सौन्दर्य का प्रायः उदात्त स्वरूप ही चित्रित है।

६. नैसर्गिक और तरल सौन्दर्य के प्रति एकान्त एवं निर्भोग समर्पण दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द काव्य की एकनिष्ठ विशेषता है।

७. रूप-सौन्दर्य और अन्तःशील के समुचित समन्वय तथा सौन्दर्य के ऊर्ध्वमुखी स्वरूप से दोनों कालखण्डों का स्वच्छन्द काव्य मण्डित है।

८. रूप-सौन्दर्य के अनुरेखन में इन स्वच्छन्द कवियों ने न तो नाक-भौं सिकोड़ा है और न उसे अनियंत्रित किया है। सौन्दर्य की यहाँ भोग और वर्जना के बीच एक स्वतंत्र सत्ता है।

९. दोनों कालखण्डों के आत्मचेता कवि समन्वयकारी तथा उदारचेता भी रहे हैं। उनकी काव्य-चेतना अनिर्वचनीय सौन्दर्य के स्थूल एवं सूक्ष्म, भौतिक एवं आध्यात्मिक, बाह्य एवं आभ्यन्तरिक पक्षों को स्वाभाविक रूप से समेट कर चली है।

प्रकृति-चित्रण :

काव्यशास्त्र के अनुसार कविता में प्रकृति मुख्यतः दो रूपों में आती है। पहले में प्रकृति कवि का साध्य अथवा उसके भावों का आलम्बन बनती है और दूसरे में वह कवि का साधन अथवा उसके भावों का उद्दीपन बनती है। रीतिमुक्तों के काव्य में यद्यपि प्रकृति का दोनों रूप लक्षित है लेकिन रचना-राशि की दृष्टि से आलम्बन रूप अत्यन्त सीमित है। काव्य में प्रकृति को न तो स्वतंत्र विषय का दर्जा मिला है और न स्वतंत्र चिन्तन का। उसे काव्य में प्रायः मानवीय कार्यों की पृष्ठभूमि के रूप में, परम्परागत रूप चित्रण में अथवा विरहोद्दीप्ति के लिए प्रस्तुत किया गया है। इस काल में 'द्विजदेव' ही एक ऐसे कवि हैं जिनका प्रकृति-अनुराग उल्लेखनीय है और वे इस क्षेत्र में अपने समकालीनों से बहुत आगे निकल गये हैं। उन्होंने प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों का तटस्थ भाव से सूक्ष्म निरीक्षण किया है और सफलतापूर्वक भावकत्व के साथ अपने काव्य में उसका चित्रांकन किया है। इस सफलता के बाद भी कुल मिलाकर रीतिमुक्त काव्य में प्रकृति के उद्दीपन रूप की ही प्रधानता है। लेकिन उल्लेखनीय बात यह है कि इन चित्रणों में प्रकृति के साथ मानवीय भावनाओं के संस्पर्श की इतनी अनेकरूपता विद्यमान है कि उसे उद्दीपन की संकुचित शास्त्रीय परिभाषा में बाँधना कठिन है। भाव को आधार मानकर तदनुसार प्रकृति-चित्रण,

प्रकृति को आधार मानकर भाव-जगत् में उसकी प्रतिक्रिया का संवेदनात्मक चित्रण, प्रकृति पर मानव सम्बन्धों का आरोप, उपमानों के सहारे प्राकृतिक उपादानों का प्रस्तुतीकरण एवं कल्पना के योग से प्रकृति का अलौकिक रूप-विधान आदि ऐसे तत्त्व हैं, जिन्हें विशुद्ध उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नहीं समेटा जा सकता।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में प्रकृति विविध रूपों में गृहीत है साथ ही, उसका चिन्तन, चित्रण एक स्वतन्त्र विषय के रूप में भी हुआ है जिससे उसका स्थूल और सूक्ष्म, विराट् और कोमल, अनुरंजक और विस्मयकारी सभी प्रकार का रूप विविधता तथा विशदता के साथ उभर सका है। यहाँ बहुरंगी प्रकृति अपने समस्त स्थूल एवं सूक्ष्म क्रिया-व्यापारों के साथ स्वतन्त्र रूप में तो काव्य से आयी ही है, प्रेम-प्रसंगों, रूप-चित्रणों, मानवीय भावानुभूतियों एवं राष्ट्रीय चेतना के साथ भी लिपटी हुई है।

वस्तुस्थिति यह है कि सूक्ष्मता, कल्पनाशीलता, विविधता एवं रचना-राशि की दृष्टि से तो दोनों कालखण्डों के प्रकृति-चित्रण में समता का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है लेकिन रीतिमुक्त कवियों ने, अत्यल्प ही सही, प्रकृति के विविध क्षेत्रों को स्पर्श करने का जो प्रयास किया है, उसे आधुनिक स्वच्छन्द प्रकृति-चित्रण का पूर्वाभास कह सकते हैं। वस्तुतः रीतिमुक्तों का प्रकृति-चित्रण शैशव रूप में ही सही, प्रकृति के विविध रूपों को अपने में समेटे हुए है और इसी आधार पर समता का परीक्षण भी किया जा सकता है।

प्रकृति का परम्परागत रूप :

रीतिमुक्त काव्य में प्रकृति के परम्परागत रूपों जैसे ऋतु, नगर-प्रदेश, प्रभात-संध्या, नदी-तट आदि के वर्णन की जो परम्परा थी वह बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक चली आयी है। 'द्विजदेव' और 'ठाकुर' के काव्य में वसन्त और पावस ऋतुओं का वर्णन, 'घनानन्द' के काव्य में जमुना-यश, सरस-वसन्त और ब्रजस्वरूप वर्णन तथा 'आलम' के काव्य में पवन और जमुना-कुंज का वर्णन इस परंपरा के पुष्ट प्रमाण हैं। इन वर्णनों में प्रकृति प्रायः तीन रूपों में आयी है—प्रथम में प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण हुआ है, द्वितीय में ऐसी कविताएँ हैं, जिनके प्रत्येक छन्द की एक-दो पंक्तियाँ उद्दीपक और शेष स्वतन्त्र हैं, तृतीय में प्रकृति का उद्दीपक रूप चित्रित है। रीतिमुक्त काव्य में प्रकृति के उद्दीपन रूप की प्रधानता है।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में भी प्रकृति के इन परम्परागत रूपों का चित्रण हुआ है। 'श्रीधर पाठक' के काव्य में हेमन्त, वसन्त तथा संध्या वर्णन; 'गोपालशरण सिंह' के काव्य में ब्रजवर्णन; 'प्रसाद' के काव्य में पावस-प्रभात, वसन्त तथा वसन्त की वापसी; 'निराला' के काव्य में 'वासन्ती' तथा 'जमुना के प्रति' आदि ऐसी

रचनाएँ हैं जिनमें प्रकृति के विविध परम्परागत रूप नवीन भाव-बोध के साथ चित्रित हैं। इन चित्रणों में प्रकृति के वे तीनों रूप मिल जाते हैं जो रीतिमुक्तों के काव्य में प्रायः विद्यमान हैं, लेकिन उनकी तुलना में इन नवीन काव्य-चेतना संवलित कवियों के काव्य में प्रकृति के आलम्बन रूप की ही प्रधानता है।

उद्दीपन रूप :

रीतिमुक्त कवियों ने उद्दीपन रूप में प्रकृति का यथेष्ट चित्रण किया है। इन कवियों की आभ्यान्तरिकता प्रकृति पर इस प्रकार छाई हुई है कि लगता ही नहीं कि प्रकृति स्वयं स्पन्दित है। यहाँ प्रकृति अपने बारे में तो बहुत कम बताती है, लेकिन वियोगी की अन्तर्दशा का चित्र बखूबी उतारती है। वसन्त और पावस उद्दीपक ऋतुएँ हैं। ये दोनों ऋतुएँ एक ओर जहाँ अबलाओं की शृंगारिक भावनाओं को उद्दीप्त करती हैं वहीं विरहीजनों के लिए अत्यधिक दुःखदायी होती हैं। 'घनानन्द',[१] 'ठाकुर',[२] 'बोधा'[३] और 'द्विजदेव'[४] ने इन ऋतुओं में क्रियाशील प्रकृति के विविध उपादानों के व्याज से विरहोद्दीप्ति की स्व-काव्य में स्थल-स्थल पर सृष्टि की है।

अत्यल्प ही सही, आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने भी प्रकृति के ऋतु-सुलभ उद्दीपक रूप को नवीन भाव-भंगिमा के साथ ग्रहण किया है। प्रकृति क्रिया-व्यापारों के व्याज से अबलाओं को रिझाने में, उनकी शृंगारिक भावनाओं को उभारने में तथा विरही की विरह-व्यथा को उद्दीप्त करने में रीतिमुक्तों से ये अधिक पीछे नहीं है, वसन्त, पावस और कोयल की मादक कूक ने इन कवियों की भी शृंगारिक भावनाओं को झकझोरा है—

---

१. "कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री।
   कूकि-कूकि अबही करेजो किन कोरि लै।'—घ० ग्रं०, पृ० ८७।

२. 'बौरे रसालन की चढ़ि डारन कूकत क्वैलिया मौन गहै ना।
   सीतल मंद सुगन्धित बीर समीर लगे तन धीर धरै ना।'—ठा० ठ०।

३. 'बैठि रसालन के बन में अधराति कहूँ रन सों ललकारति।
   नाहक बैर परी विरहीन के कूक वियोग के लूकन जारति।'
   —बोधा ग्रं०, पृ० ७।

४. 'कूकि-कूकि कोकिल चलाइहैं अचूक चोट,
   पातकी पपीहा ये बिथा के गीत गाइहैं।'
   —शृंगारलतिका, पृ० १०६।

'नित जात पुलकि प्यारीन पास
आनँद प्रगटत निज-हिय-हुलास ,
पुनि करति केलि अबलान संग
विहरत पुजवत निज मन उमंग ।'

—मनोविनोद (वसन्त), पृ० ८२।

'वारि फुहार भरे बदरा, सोई सोहत कुंजर हैं मतवारे,
बीजुरी ज्योति ध्वजा फहरे, घन गर्जन शब्द सोई हैं नगारे,
रोर को घोर को ओर न छोर, नरेसन की-सी छटा छवि धारे,
कामिनि के मन को प्रिय पावस, आयो प्रिये, नव मोहिनि डारे।'

—मनोविनोद (वर्षा), पृ० ९३।

'हृदय के प्रणय कुंज में लीन
कूक कोकिल का मादक गान,
बहा जब तन मन बन्धन हीन
मधुरता से अपनी अनजान।'

—पल्लव (पल्लव), पृ० ५१।

आलम्बन-रूप :

आलम्बन-रूप में प्रकृति-चित्रण की दो प्रणालियाँ हैं—नामपरिगणनमूलक यथातथ्य चित्रण तथा संश्लिष्ट दृश्य-विधान। प्रकृति परिवेश का एक स्वतन्त्र चित्र प्रस्तुत है जिसमें 'घनानन्द' ने ब्रज प्रदेश का यथातथ्य वर्णन करने के लिए नाम-परिगणन प्रणाली का उपयोग किया है—

'जुहीं सुहीं सुख गुहीं खिली हैं। लता ललित तरु उमगि मिली है।
झूमि अँध्यारी दै घन घोरनि। ब्रज बोलै बन बारी मोरनि॥'

—घनआनँद ग्रं० (ब्रजस्वरूप), पृ० २८८।

वन प्रदेश में पक्षियों की चहचहाहट और पशुओं के स्वच्छन्द विहार को देखकर 'द्विजदेव' इस दृश्य का यथातथ्य चित्रण निम्न प्रकार से करते हैं—

'कोकिल, चकोर, मोर करत चहूँधा सोर,
केसरी - किसोर बन चारों ओर विहरत।'

——मान मयंक, पृ० ९७।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में भी नामपरिगणन-प्रणाली पर यथातथ्य चित्रण यथेष्ट रूप में हुआ है। वनप्रदेश में फूलों की शोभा का एक यथातथ्य चित्र देखिए, जो 'घनानन्द' के ब्रजस्वरूप-चित्रण के मेल में है—

'कहीं केतकी कुञ्ज-कदम्ब हैं झूलते।
हरश्रृंगार, अशोक कहीं हैं फूलते॥
जूही कहीं निहाल निवारी डाल है।
कहीं मोतिया मुकुलित माला माल है॥'

—मुकुटधर पाण्डेय, पूजा-फूल, पृ० ५६।

पं० 'रामनरेश त्रिपाठी' के खण्डकाव्य 'पथिक' में यथातथ्य प्रकृति-चित्रण की प्रचुरता है। एक चित्र देखिए, जिसमें कवि ने 'द्विजदेव' के समान ही प्रकृति-प्रांगण के विविध उपादानों को उठाकर एक ही स्थान पर रख दिया है—

'कमल, कलभ, हरि, कुण्ड, लता, गिरि, कम्ब, गुलाब, मुकुल का।
शशि, प्रवाल, दाड़िम, पिक, शुक, मृगकेतु, शुक्ति, अलि कुल का।
परम तुच्छ, जड़, खग-पशु का उपमेय तुम्हारा तन है।
प्रकृति सदा सुन्दरी, तुम्हारा यौवन अस्थिर धन है।'

—पथिक, पृ० २३।

प्रकृति-निरीक्षण से उत्पन्न आनन्दोद्रेक कभी-कभी कवि को इतना विभोर कर देता है कि वह एक चित्रकार की भाँति सारे दृश्य को एक साथ ही रेखांकित कर उसमें अपने भावों का रंग भर देना चाहता है। फलस्वरूप उस परिदृश्य का वह जो संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करता है उसमें बिम्ब ग्रहण की अद्भुत क्षमता होती है। रीतिमुक्तों में 'द्विजदेव' और आधुनिक स्वच्छन्द कवियों में 'प्रसाद', 'पंत' तथा 'निराला' के काव्य में हमें प्रकृति के ऐसे ही संश्लिष्ट चित्र प्राप्त होते हैं। उदाहरणस्वरूप दोनों कालखंडों से एक-एक चित्र प्रस्तुत है —

'चहकि चकोर उठे, सोर करि मोर उठे,
बोलि ठौर-ठौर उठे कोकिल सुहावने,
खिलि उठी एकै बार कलिका अपार, हलि-
हलि उठे मारुत सुगन्ध सरसावने।'

—श्रृंगारलतिका, पृ० ६।

'इंद्रधनु की सुनकर टंकार
उचक चपला के चंचल बाल,
दौड़ते थे गिरि के उस पार
देख उड़ते - विशिखों की धार,
मरुत जब उनको द्रुत चुमकार,
रोक देता था मेघासार।'

—पल्लव (आँसू), पृ० ६५।

अलंकृत-रूप :

प्रकृति-चित्रण में आलंकारिक शैली का प्रयोग आलोच्य कालखण्डों के स्वच्छन्द कवियों ने दो दृष्टियों से किया है—प्रथम प्रकृति के विविध क्रिया-व्यापारों में अन्तर्निहित सौन्दर्य की अतुल राशि को अनावृत करने के लिए, द्वितीय रूपक की सृष्टि के लिए। प्रथम प्रकार के चित्रण का नमूना देखिए जिसमें भेदकातिशयोक्ति व उपमा अलंकारों के सहारे प्राकृतिक सौन्दर्य को उरेहा गया है—

'औरै भाँति कोकिल चकोर ठौर-ठौर बोले,
औरै भाँति शबद पपीहन के बै गए।
औरै भाँति पल्लव लिए हैं वृन्द-वृन्द तरु,
औरै छवि-पुंज कुंज-कुंजन उनै गए।'

—श्रृंगारलतिका, पृ० १४।

'खिल उठी रोओं-सी तत्काल
पल्लवों की यह पुलकित डाल !'

—पल्लव (पल्लव), पृ० ५२।

'सुशीतलकारी शशि आया
सुधा की मनो बड़ी-सी बूँद।'

—झरना (दो बूँदें), पृ० ६।

द्वितीय प्रकार के चित्रणों द्वारा कवियों ने मानवीय रूप-सौन्दर्य को अंकित करने का प्रयास किया है। उद्दीपकत्व से सम्बद्ध प्रकृति के विविध उपादान समता-मूलक अलंकरण के आधार पर रूपकत्व की सृष्टि करते हैं। रूप-वर्णन के लिए दोनों काल के कवियों ने प्राकृतिक अवयव से साधन जुटाये हैं। रीतिमुक्त काव्य में उपमा अलंकार के सहारे रूपकत्व की सृष्टि का एक चित्र द्रष्टव्य है—

'बदन विलोकि साध सुधा की विवुध करैं,
कुमुदिनी फूली जानि कुमुद को बन्धु है,
चम्पा, सिंह, सारस, करिनि, कोकिला, कदलि,
बीजु, बिम्ब, लीने सब ही को मन बन्धु है
'आलम' सुकबि ऐसी कामिनी विचित्र रचि
और को जु रच्यो चाहै तू तौ विधि अन्धु है।'

—आलम-केलि, पृ० ३४।

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने रूपकत्व की सृष्टि के लिए प्रकृति का कोना-कोना छान मारा है। 'प्रसाद' का 'आँसू' इसका अक्षय भंडार है। नीचे कुछ उदा-

हरण प्रस्तुत हैं, जिनमें प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण के साथ-साथ प्राकृतिक उपादानों के सहारे रूप-चित्रण का भी सफल विधान किया गया है—

'चपला-सी है ग्रीवा हँसी से बढ़ी।
रूप जलधि में लोल लहरियाँ उठ रहीं।'

—झरना (रूप), पृ० ८।

'शशिमुख पर घूँघट डाले, अंचल में दीप छिपाए
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आए।'

—प्रसाद (आँसू), पृ० १६।

'मेरा पावस ऋतु-सा जीवन, मानस-सा उमड़ा अपार मन,
गहरे, धुँधले, धुले, साँवले, मेघों-से मेरे भरे नयन!'

—पल्लव (आँसू), पृ० ६२।

पृष्ठभूमि विधायक रूप :

मानवीय कार्यों की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का प्रयोग दोनों कालखण्डों में यथेष्ट रूप में हुआ है। 'संध्या' का चित्र देखिये, जो प्रणयिनी की मिलन-वेला को निकट लायी है—

'आई सीरी साँझ भीर गैया दौरी आई घर
बन घर पुर बीच पूरि धूरि धाई हैं।
आलम चहूँधा चढ़ि रूखनि चिरैयाँ बोलीं,
भूषन बने हैं बलि बेरौ बनि आई हैं।'

—आलम-केलि, पृ० १४।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य इस प्रकार के चित्रणों से भरा पड़ा है। 'प्रेम-पथिक' और 'ग्रंथि' में नायक-नायिकाओं के स्वच्छन्द प्रेम की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण किया गया है। 'पथिक' के प्रथम अध्याय में मानवी कार्यों और भावनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति को उपस्थित किया गया है। 'श्रीधर पाठक' के काव्य में वातावरण की सृष्टि के लिए संध्या का एक चित्र देखिए, जो कि कवि के सांध्य-अटन को सुखदायी बनाता है—

'विजन वन शान्त था
चित्त अभ्रान्त था
रजनि - आनन अधिक
हो रहा कान्त था
स्थान - उत्थान के साथ ही चन्द्र-मुख
भी समुज्ज्वल लगे था अधिकतर भला।'

—भारत-गीत, पृ० १०४।

मानवी कार्यों की पृष्ठभूमि के रूप में आलोच्य कालखण्डों से प्रकृति के गतिमय संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत हैं जिनमें प्रकृति सचेतन तथा सप्राण है—

'झुकि-झुकि झाँकति झरोखन तें कारी घटा,
चौहरे अटा पै विज्जु - छटा - सी जगति हैं।
'द्विजदेव' सुनि - सुनि सबद पपीहरा के
पुनि - पुनि आनँद - पियूष मैं पगति हैं।'

—शृंगार बत्तीसी, छंद ४।

'प्रतिक्षण नूतन वेश बनाकर रंग-बिरंग निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद-माला।
नीचे नील समुद्र मनोहर ऊपर नील गगन है।
घन पर बैठ बीच में विचरूँ यही चाहता मन है।'

—पथिक, पृ० १६।

चेतन-रूप :

पवनदूत और मेघदूत की हिन्दी में एक सुन्दर परम्परा रही है जो बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक चली आयी है। रीतिमुक्त 'घनानन्द' ने सन्देश-प्रेषण के लिए पवन और मेघ को चेतन व्यक्तित्व प्रस्तुत किया है। उनके काव्य में 'पवन' का चेतन रूप द्रष्टव्य है, जिसके व्याज से कवि रूपसी सुजान के पैरों की धूलि पाने का उपक्रम करता है—

'एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, बारी
तो सो और कौन, मन ढरकौहीं बानि दै।
× × ×
बिरह-बिथाहि मूरि, आँखिन में राखौ पूरि,
धूरि तिनि पायनि की हाहा ! नेकु आनि दै।'

—घनआनँद ग्रं० (सु० हि०), पृ० ८४।

आधुनिक कवियों में गुरुभक्त सिंह 'भक्त' ने भी पवन को चेतन सत्ता दी है—

'क्या तू जाता है छिप-छिपकर, सुमन सुगंध चुराने को,
क्या तू जाता है खेतों में, लोट-पोट सो जाने को।'

—सरस-सुमन (पवन), पृ० २।

इसी प्रकार 'घनानन्द' बादल को चेतन सत्ता देकर सुजान के आँगन में अपने खारे आँसुओं को बरसा देने का अनुरोध करते हैं—

'परकाजहिं देह कौं धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ।

घनआनँद जीवन-दायक ह्वै कुछ मेरियो पीर हियैं परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मों अँसुवानि हूँ लै बरसौ।'

—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० १०८।

'पंत' ने भी 'बादल' का मानवीकरण करते हुए उसे मेघदूत के रूप में चित्रित किया है—

'सुरपति के हमही हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर,
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के प्रिय जीवनधर।'

—पंत : पल्लव (बादल), पृ० १२२।

यद्यपि पवन और बादल के चेतन व्यक्तित्व एवं मानवीकरण का प्रयास दोनों कालखण्डों में लक्षित हुआ है तथापि उनके बीच अन्तर स्पष्ट है। रीतिमुक्त काव्य में प्रकृति के ये उपकरण जहाँ नायक की विरहानुभूतियों के वाहन हैं, वहीं आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में वे कवि की तटस्थ कल्पना से अनुप्राणित हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि दोनों कालखण्डों में प्रकृति के आलम्बन उद्दीपन, चेतन आदि विविध रूपों में व्यंजित किये गये हैं। जहाँ तक समानता का प्रश्न है वह प्रायः प्रकृति के परम्परागत स्थूल रूप-चित्रणों तक ही सीमित है और वह भी रचना-राशि की दृष्टि से नहीं, केवल रूप तथा भाव-साम्य की दृष्टि से। रचना-राशि की दृष्टि से रीतिमुक्त कवि प्रकृति के उद्दीपन रूप-चित्रण में आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के समान हैं यद्यपि उनमें दृष्टि-भिन्नता है। यथातथ्य वर्णन, यथातथ्य चित्रण तथा सामान्यीकरण का जो रूप हमें रीतिमुक्त काव्य में देखने को मिलता है उसका स्थूल प्रवाह आधुनिक स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्रथम चरण तक बना हुआ है, लेकिन इसके द्वितीय चरण में विशिष्टीकरण प्रणाली को अपनाने से प्रकृति-चित्रण में अद्भुत सूक्ष्मता आ गयी है। रीतिमुक्तों में मात्र 'द्विजदेव' ही ऐसे कवि हैं जो प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों पर आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के समान एक सीमा तक भावकत्व की सृष्टि करने में सफल हुए हैं। रीतिमुक्त कवि जब भी प्राकृतिक सौन्दर्य से आकर्षित हुए हैं उनकी आत्मरति तटस्थ निरीक्षण में बाधक हुई है। युग-प्रभाव के कारण आधुनिक स्वच्छन्द कवि इस बाधा से प्रायः मुक्त रहे हैं जिससे वे प्रकृति का स्वतंत्र, स्वच्छन्द तथा विशद चित्रण करने में समर्थ हुए हैं।

काव्य-शिल्प :

शिल्प विषयक दृष्टिकोण :

शब्दावली में थोड़ा अन्तर होते हुए भी दोनों कालखण्डों के कवियों की

काव्य-धारणा में बहुत-कुछ समानता है। 'घनानन्द' के अनुसार "कविता हृदय की वस्तु है, हृदय से उत्पन्न होती है और कवि के व्यक्तित्व का अङ्ग है। वह मन और वाणी में मेल कराती है। उसकी निष्पत्ति हृदय की रीझ और पीड़ा से होती है, प्राणों की तृष्णा उसका अनिवार्य अङ्ग है जो उसे मर्मस्पर्शी बनाती है।"[१] काव्य के विषय में हृदय-पक्ष की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं—"हृदय-पक्ष ही काव्य का प्राणतत्त्व है। रीझ काव्य के क्षेत्र में पटरानी है और बुद्धि उसकी दासी मात्र।"[२] प्रायः सभी रीतिमुक्त कवियों का यही काव्यादर्श है, यद्यपि उन्होंने अपना काव्यादर्श व्यक्त न करके अपनी रचनाओं द्वारा प्रस्तुत किया है। उन्होंने काव्य-सृजन में भाव-सम्पत्ति, अनुभूति और आन्तरिकता को सर्वोपरि स्थान दिया है। "...रीतिमुक्त कर्ता की कविता अन्तःसंज्ञा (सबकान्सस स्टेट या अनकान्सस स्टेट) में लीन हो जाने पर आप-से-आप उद्भूत होती थी।"[३] प्राणों की तृषा (सुख-दुःखपूर्ण प्रेम-पिपासा) को उन्होंने कवि-कर्म का अनिवार्य अङ्ग माना है।

रीतिमुक्त काव्यादर्श के समान ही आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने कविता को हृदय का व्यापार माना है, बुद्धि का व्यायाम नहीं। पं० 'मुकुटधर पाण्डेय' के अनुसार कविता का उत्स बुद्धिगत तर्क-वितर्क से परे है।[४] 'प्रसाद' भी काव्य को आत्मा (आन्तरिक स्पन्दन) की मौलिक अनुभूति मानते हुए उस तर्क-वितर्क की सीमा से मुक्त श्रेयमयी प्रेय मानते हैं।[५] 'पंत' की दृष्टि में भावों का आन्तरिक स्पन्दन मन में न समा सकने के कारण अनायास ही काव्य में निःसृत हो उठता है अर्थात् भाव-विशेष के अतिरेक से जब लबालब (परिपूर्ण) भर जाता है तो ऐसे परिपूर्ण क्षणों में उसका सहज उच्छलन ही कविता के रूप में प्रवाहित होने लगता

---

१. 'तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्राननि प्यासे, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप चढ़ावत।
यौं घनआनँद छावत भावत जान-सजीवन-ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'

—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ७४-७५।

२. 'रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बावरी ह्वै करि दासी।'

—वही, पृ० १६।

३. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद (ग्रन्थावली), वाङ्मुख, पृ० १३।

४. "जहाँ विज्ञान का अन्त होता है, वहीं से कविता धीरे-धीरे आगे पैर बढ़ाती है।"

—'सरस्वती' दिसम्बर १६२१, पृ० ३३७।

५. "काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है।"

—प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १०।

है।[1] प्राणों में होने वाली समस्त आनुभूतिक गूँज गीतों में फूट पड़ती है।[2] महादेवी जी भी कविता का उत्स हृदय को ही मानती हैं।[3] आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने रीतिमुक्तों के समान ही स्वानुभूतिमयी वेदना की शाब्दिक अभिव्यक्ति को कविता की संज्ञा से अभिहित किया है। 'प्रसाद' ने 'आँसू' में स्वीकार किया है कि मन में संचित घनीभूत पीड़ा मानसिक द्वन्द्वावस्था के क्षणों में आँसू या काव्यधारा के रूप में स्वतः प्रवाहित होने लगती है।[4] 'पंत' भी कवि को वियोगी और कविता को वियोगजन्य आह से उपजा हुआ गीत मानते हैं।[5] महादेवी जी गीत को सुख-दुःख की भावातिरेकमयी अवस्था की अभिव्यक्ति मानती हैं।[6] जब रचयिता आत्मानुभूति को ही काव्य में मुखरित कर देता है तब कृति से उसका सहज ही तादात्म्य स्थापित हो जाता है जिससे कृति में उसके व्यक्तित्व की झलक स्वतः ही मिलने लगती है।

दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवियों ने बँधी-बँधाई परिपाटी पर काव्य-सृजन का विरोध किया, क्योंकि अनुभूतियों के स्वाभाविक प्रस्फुटन का उसमें मनोवांछित अवसर न था। रीतिमुक्तों ने केवल खजन, मीन, मृग की बार-बार आवृत्ति को कविता नहीं माना। इसी से "ठाकुर" ने काव्य-रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए कहा है कि "कविता केवल कुछ घिसे-पिटे शब्दों की जोड़-गाँठ का खेल नहीं

---

१. 'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।'

—पल्लव (प्रवेश), पृ० ३३।

२. 'कविता विश्व का अन्तर्मन संगीत है, उसके आनन्द का रोमहास है, उसमें हमारी सूक्ष्मतम दृष्टि का मर्म प्रकाश है।'

—पल्लव (प्रवेश), पृ० ४०।

३. 'वह (कविता) मनुष्य के हृदय से प्रवाहित हुई है।'

—रश्मि की भूमिका, पृ० १।

४. 'जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई॥'

—आँसू, पृ० १४।

५. 'वियोगी होगा पहिला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।'

—पल्लव (आँसू), पृ० ६२।

६. 'सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था-विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।'

—महादेवी वर्मा : यामा की भूमिका, पृ० ७।

है।''[१] निराला जब छंदों की छोटी तथा कंटकाकीर्ण राह को छोड़ने का कविता से आग्रह करते हैं तो उसमें भी काव्य-रूढ़ियों के परित्याग की ही अनुगूँज प्रकारान्तर से सुनाई देती है।[२]

रीतिमुक्त कवियों ने काव्य में भावावेग को प्रधानता देते हुए भावावेग की लपेट में आयी हुई आलंकारिकता और भंगिमा को ही स्वीकारा है। 'ठाकुर' ने कहा है कि काव्य में शब्द-चयन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि जैसे भाषा में मोती के दाने पिरोये गये हों। काव्य-सृजन में लय, छंद एवं शब्द-मैत्री का ध्यान रखना आवश्यक है। काव्य का विषय प्रेम-पथ अथवा हरिकथा होनी चाहिए, जिसकी शैली अनूठी हो। कविता में ऐसी चित्ताकर्षक शक्ति होनी चाहिए जिसे पढ़-सुन कर लोक के पंडितों और प्रवीणों का मन मुग्ध हो जाय।[३] 'घनानन्द' के काव्य-स्वरूप के सम्बन्ध में प्रशस्तिकार ब्रजनाथ की उक्ति है कि स्वाति के घनआनँद के बरसने पर छन्द बन्ध, रीति और सुक्ति-रूपी सीपी में रहने वाले सभी वर्ण मुक्ता के समान चमक उठे और हृदय की लपेट से उसमें अर्थ की विशिष्ट आभा भर गयी।[४] 'घनानन्द' के अनुसार कविता-रूपी दुलहिन, सलज्ज तरुणी अर्थात् अर्थगाम्भीर्य से युक्त होनी चाहिए—मृदु और मंजु पदार्थों अर्थात् शब्दों और अर्थों के अलंकरण द्वारा सजी हो। स्पष्ट है कि उनके काव्य की रसमयी साधना में शब्दों और अर्थों के अलंकरण का

१. 'सीखि लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीन्हों यश और प्रताप को कहानो है।
× × ×
डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।'
—ठा० ठ०, पृ० ४-५।

२. 'अर्धविकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिय, छोड़ कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह।
गजगामिनि वह पथ तेरा संकीर्ण, कण्टकाकीर्ण।'
—निराला : अनामिका (प्रगल्भ प्रेम), पृ० ३४।

३. 'मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ कथा हरिनाम की बात अनूठी बनाइ सुनावै॥
ठाकुर सो कवि भावत मोंहि जो राजसभा में बड़प्पन पावै।
पण्डित लोक-प्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त कहावै॥'
—ठा० ठ०, पृ० ५।

४. 'प्रगटे सुधन सुबरन-स्वाति-जल जेते,
बसे छन्द-बंद रीति झुकति-अधार हैं।' —घनआनँद ग्रं०, प्रशस्ति, पृ० ३।

महत्त्व तो है लेकिन वे साधन मात्र हैं, साध्य नहीं बनते।[१] जिस शब्द-मैत्री पर 'पंत' ने पर्याप्त बल दिया है, 'घनानन्द' के काव्य में उसकी एक झाँकी इस प्रकार है—
'दरसो परसो बरसो सरसो मन लै हू गए पै बसो मन ही।'[२]

'पंत' के अनुसार कविता में भी शब्द और अर्थ के अलंकरण भावाभिव्यक्ति के साधन मात्र हैं साध्य नहीं।[३] पुनश्च अलंकार केवल भावाभिव्यक्ति के वाहन मात्र हैं, कविता को सजाने के साधन नहीं।[४] 'पंत' ने भावानुसार भाषा और शब्द-मैत्री को काव्य का आवश्यक अंश माना।[५] 'निराला' ने भी भाषा को भावसापेक्ष तथा भावों की अनुगामिनी मानकर तदनुसार सरल तथा क्लिष्ट भाषा का विधान किया। 'प्रसाद' ने काव्य की रमणीयता के लिए मर्मस्पर्शी अनुभूति और कौशलपूर्ण अभिव्यक्ति की परस्पर संगति पर बल दिया है। कला-कौशल, शब्द-विन्यास आदि को वे अन्यानुभूति से पृथक् विशिष्ट सत्ता नहीं मानते। जो कुछ हम अनुभव करते हैं, वाणी उसी का रूप है जिसका विकास वर्णों में पूर्ण होता है।[६] पंत ने 'भाव और भाषा के सामंजस्य[७] तथा छंद और लय की परस्पर अभिन्नता'[८] को काव्य का

१. 'उर-मौन में मौन को घूँघट के दुरि बैठि विराजति बात बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सों सु लसै दुलसै रस-रूपमनी।'
—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ६२।
२. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० १३५।
३. "कविता में शब्द अथवा अर्थ की अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं, वे दोनों भाव की अभिव्यक्ति में डूब जाते हैं।" —पल्लव (प्रवेश), पृ० ३२।
४. "अलंकार केवल वाणी की सजावट नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं।" —पल्लव (प्रवेश), पृ० २१।
५. "जहाँ भाव और भाषा में मैत्री अथवा ऐक्य नहीं रहता वहाँ स्वरों के पावस में केवल शब्दों के 'वटु समुदाय' ही दादुरों की तरह इधर-उधर कूदते, फुदकते तथा सामध्वनि करते सुनाई देते हैं।" —वही : पृ० ३१।
६. "काव्य में आत्मा की जो मौलिक अनुभूति की प्रेरणा है वही सौन्दर्यमयी और संकल्पात्मक होने के कारण अपनी श्रेय स्थिति में रमणीय आकार में प्रकट होती है। वह आकार वर्णात्मक रचना-विन्यास में कौशलपूर्ण होने के कारण प्रेय भी होता है।"—प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १६, १७।
७. "कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों।" —पल्लव (प्रवेश), पृ० ३०।
"भाव और भाषा का सामंजस्य, उनका स्वरैक्य ही चित्रराग है। जैसे भाव ही भाषा में घनीभूत हो गये हों।" —वही, पृ० ३०।
८. "कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है।" —पल्लव (प्रवेश), पृ० ३३।

आवश्यक अंग बताया। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के विचारों से स्पष्ट है कि रीति-मुक्तों के समान इन कवियों ने भी भावानुभूति की अभिव्यक्ति को काव्य का प्रधान अंग माना है और शब्द, अर्थ, छंद, लय तथा भाव के परस्पर संगति द्वारा काव्य में रमणीयता एवं रसात्मकता लाने का विधान किया है।

उपर्युक्त विवेचन से दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवियों के काव्य-शिल्प विषयक दृष्टिकोण में निम्नांकित समानताओं का दर्शन होता है—

१. कविता हृदय का व्यापार है न कि बुद्धि का व्यायाम अर्थात् कविता बुद्धि निःसृत न होकर हृदय-निःसृत होती है।

२. कविता कवि के व्यक्तित्व का अभिन्न अङ्ग है।

३. मर्मस्पर्शी कविता के लिए कवि का प्रेम-पिपासु अथवा प्रेम-पीड़ित होना आवश्यक है।

४. आत्मानुभूति काव्य का प्रधान अङ्ग है। इसकी गहनता पर ही काव्य की रमणीयता व श्रेष्ठता निर्भर है।

५. अनुभूति और अभिव्यक्ति की परस्पर संगति, काव्य की मनोहरता व प्रेषणीयता के लिए अनिवार्य है।

६. काव्य में लय, छन्द, शब्द-मैत्री, भाषा और भाव के बीच परस्पर संगति आवश्यक है।

७. अलङ्कार काव्य की बाह्य सज्जा के लिए नहीं, भावावेगों को वहन करने के सहायक उपकरण हैं। भावावेगों की लपेट में आयी हुई आलङ्कारिकता ही सच्ची आलङ्कारिकता है। अलङ्करण साध्य नहीं, कविता के साधन मात्र हैं।

८. बँधी-बँधाई लीक और रूढ़ियाँ काव्य के विकास को अवरुद्ध करती हैं अतः काव्य में विकास के लिए इनका परित्याग तथा नवीनता का ग्रहण आवश्यक हैं।

अप्रस्तुत-योजना :

काव्य में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दो पक्ष होते हैं। जो दृष्टिगत होता है वह प्रस्तुत है और जो प्रस्तुत का ज्ञान कराने के लिये कल्पना के सहारे कवि लाकर रखता है वह अप्रस्तुत है। काव्य में अप्रस्तुत का विधान प्रस्तुत में रमणीयता, प्रभविष्णुता, भावात्मकता तथा रसज्ञ तक सम्प्रेषणीयता लाने के लिये किया जाता है। विद्वानों ने अप्रस्तुत के आधारभूत तीन भेद किये हैं—सादृश्यमूलक, साधर्म्यमूलक, प्रभाव-साम्य

मूलक। इसके अतिरिक्त वैषम्यमूलक अप्रस्तुतों के उदाहरण भी दोनों कालखण्डों में यत्र-तत्र प्राप्त हो जाते हैं।

सादृश्यमूलक :

रूप-साम्य पर आधारित अप्रस्तुत-योजना की सृष्टि दोनों कालखण्डों के कवियों ने किया है। परम्परागत रूढ़ उपमानों को इन कवियों ने कल्पना के बल पर सर्वथा नवीन रूप देकर प्रस्तुत किया है। यथा :

'झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि में छवि फूलन की बरषा उर-ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै कलकंठ बनी जलजावलि ह्वै।
अँग अङ्ग तरङ्ग उठै दुति की परिहै मनो रूप अबै धर च्वै।'[1]

इस छंद में नायिका के अङ्गों में व्याप्त सौन्दर्य का प्रक्षेपण कवि ने सादृश्य-मूलक अप्रस्तुत के आधार पर बड़ी कुशलता से किया है। यहाँ प्रयुक्त सभी उपमान सर्वथा नवीन एवं मौलिक हैं।

'मोती की लड़ियों से सुन्दर, झरते हैं झाग भरे निर्झर।'

—पल्लव, पृ० ८।

'मद भरे ये नलिन-नयन मलीन हैं,
अल्पजल में या विकल लघु मीन हैं।' —परिमल, पृ० ७१।

यहाँ निर्झर में उठते झाग और मोती की लड़ियों के सौन्दर्य में रूप-साम्य है। मोती की लड़ियों का प्रयोग उक्ति-वैचित्र्य की सृष्टि एवं सूक्ष्म अर्थव्यंजना के लिये किया गया है। 'नयन' के लिए 'नलिन' और 'मीन' जैसे परम्परामुक्त उपमानों को भी सन्देह अलङ्कार द्वारा एक सीमा तक रूढ़िमुक्त कर दिया गया है।

साधर्म्यमूलक :

दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने रूप-साम्य से अधिक धर्म-साम्य पर आधारित अप्रस्तुतों को ग्रहण किया है। नमूने के तौर पर दोनों काल-खण्डों से एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'नेह सों भोय सँजोय धरी हिय-दीप दसा जु भरी अति आरति।
रूप उज्यारे अजू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि ओर निहारति।
रावरी आरति बावरी लौं घनआनँद भूलि वियोग निवारति।
भावना-थार हुलास के हाथनि यौं हित-मूरति हेरि उतारति।'

—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० १४८।

1. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ५८५।

यहाँ पर अमूर्त भावों को व्यक्त करने के लिये जो उपमान प्रस्तुत किये गये हैं, वे सब मूर्त हैं। वस्तुतः इनमें रूप-साम्य न होकर धर्म-साम्य का कलात्मक प्रयास लक्षित है। यहाँ 'हृदय' के लिए 'दीपक', 'आर्त' के लिए 'वर्तिका', 'भावना' के लिए 'थाल', 'उल्लास' के लिए 'हाथ' और 'प्रेम' के लिए 'मूर्ति' जैसे उपमानों की सूक्ष्म, रमणीय एवं भावपूर्ण योजना की गयी है।

'छलकी पड़ती हो जिसमें
शिशु की उर्मिल निर्मलता' —आँसू, पृ० ६८।

'मन्द पवन के झोकों से लहराते काले बाल,
कवियों के मानस की मृदुल कल्पना के-से जाल'

—परिमल, पृ० ११५।

इस छन्द में शिशु की 'उर्मिल निर्मलता' में सादृश्य की अपेक्षा साधर्म्य की सफल व्यंजना हुई है तथा 'कवियों के मानस की मृदुल कल्पना के-से जाल' में काले बालों के लहराने की समता प्रदर्शित की गयी है।

प्रभाव-साम्यमूलक :

साधर्म्यमूलक अप्रस्तुत-योजना का अधिक सूक्ष्म रूप ही प्रभाव-साम्यमूलक अप्रस्तुत-योजना मानी जाती है। विद्वानों ने प्रभाव-साम्य और साधर्म्य में अधिक अन्तर नहीं माना है। 'शुक्ल जी ने सादृश्य और साधर्म्य के बीच प्रभाव-साम्य के छिपे रहने का संकेत किया है।'[1] प्रभाव-साम्य द्वारा कवि का लक्ष्य रूप अथवा गुण के स्थान पर सम्पूर्ण सारभूत प्रभाव को स्पष्ट कर संवेदनीय बनाना होता है। दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवियों ने प्रभाव-साम्य के आधार पर अप्रस्तुतों की रमणीय योजना करके अपने काव्य को प्रभविष्णु बनाया है। यथा :

'मूरति सिंगार की उजारी छवि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।
रति-रसना-सवाद पाँवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि-चूमि के कपोलन सों माँजिहौं।
जान प्रानप्यारे अङ्ग-अङ्ग-रुचि रंगनि में,
बोरि सब अङ्गनि अनंग-दुख माँजिहौं।
कब घनआनँद ढरौंहीं बानि देखें सुख,
सुधा-हेतु मन-घट दरकनि राँजिहौं।'

—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० १०५।

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४५४।

'चपला-सी है ग्रीवा हँसी से बढ़ी।
रूप-जलधि में लोल लहरियाँ उठ रहीं।
मुक्तामन हैं लिपटे कोमल कम्बु में
चंचल चितवन चमकीली है कर रही-
सृष्टि मात्र को, मानों पूरी स्वच्छता-
चीनांशुक बनकर लिपटी है अंग में।' —झरना, पृ० ८।

प्रथम छन्द में वियोग-विदीर्ण मन को टूटे हुए घड़े के रूप में प्रस्तुत कर समग्र रूप से संवेदनीय बनाया गया है। दूसरे छन्द में 'चपला-सी ग्रीवा' में उज्ज्वलता का सादृश्य कवि को अभीष्ट नहीं है, अपितु उसे हँसी से आगे बढ़ी हुई ग्रीवा का समग्र प्रभाव रूप-ज़लधि में उठती हुई लहरियों-सा जान पड़ता है। इसी प्रकार चंचल और निश्छल चितवन हृदय पर स्वच्छ चिनांशुक के समान प्रभाव डालती है। दोनों छन्दों में हृदय पर जो सारभूत प्रभाव पड़ता है वह अत्यन्त प्रभविष्णु है।

वैषम्यमूलक :

दोनों कालखण्डों के काव्य में वैषम्यमूलक अप्रस्तुतों का रमणीय संयोजन देखा जा सकता है—

'अन्तर उदेग-दाह आँखिन प्रवाह-आँसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोयँबो न जागिबो हो हँसिबो न रोयबो हू,
खोय-खोय आप ही में चेटक-लहनि है।'
—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ६३।

यहाँ 'जलने' और 'भीगने' में विरोधपूर्ण वैषम्य है।

'कठिन कंटक कुसुम के
अधिक कोमल गात से बिंध, किस तरह
अलग जग के वृंत से था हो गया।' —ग्रन्थि, पृ० २६।

'सरलता द्वारा कुटिलता का हरण', 'कुसुम के कोमल गात से कठिन कंटक के बिंधने' में कारण-कार्यगत वैषम्य है।

प्रतीक-योजना :

प्रतीक-योजना प्रायः अप्रस्तुत अथवा अप्रत्यक्ष कथन की एक सांकेतिक शैली है जिसके द्वारा कवि प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संवेदनाओं को अभिव्यक्त करता है तथा अपने मन की चिन्तन-प्रणाली को घनीभूत करता है। वास्तव में प्रतीक अपने सहज रूप में अमूर्त विचारों का स्थानापन्न न होकर किसी ऐसे सौन्दर्यविहीन अर्थ के मूर्ति-

करण का साधन है जिसकी अभिव्यक्ति किसी अन्य उपकरण से संभव नहीं हो सकती। दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने प्रिय के रूप, गुण की सूक्ष्म अभिव्यक्ति के लिए विविध प्रकार के प्रतीकों की रमणीय योजना की है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रिय के रूप-सौन्दर्य की सफल अभिव्यक्ति के लिए स्वगत प्रतीकों की सर्जना की गयी है, जिसमें इन आत्मचेता कवियों के व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिलती है। यथा :

'घनआनँद जीवन-रूप सुजान हो प्रान पपीहा-पनेई पढ़े।
दिसि चाहि दुहूँ पै अचंभो महा, कहिये कहा, सोच-प्रवाह बढ़े।
न कहूँ दरसौ, बरसौ बिष बारि सु ये अपराध-गढ़े न कढ़े।
कित कौं नित ही इत याहि दहौ जु रहौ चित ऊपर चोप चढ़े।'

—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० १०३।

'तिर रही अतृप्ति जलधि में
नीलम की नाव निराली।'

—आँसू, पृ० २२।

इसी प्रकार दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवियों ने प्रेम-व्यापार की एक-निष्ठता का प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण अत्यन्त कलात्मक ढङ्ग से किया है। चन्द्रमा और चकोर की प्रेम कहानी आदिकाल से हिन्दी-काव्य में स्वीकृत है। प्रकृति के ये दोनों उपादान इन आलोच्य कालखण्डों के काव्य में भी सच्चे प्रेम के उद्घाटन में सहायक हुए हैं। धर्मसाम्य पर आधारित निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'चंद चकोर की चाह करै, घनआनँद स्वाति पपीहा कों धावै।
त्यों त्रसरैनि के ऐन बसै रबि मीन पै दी ह्वै सागर आवै।'

—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ६५।

'है चन्द्र हृदय में बैठा, उस शीतल किरण सहारे।
सौन्दर्य सुधा बलिहारी, चुगता चकोर अंगारे॥'

—आँसू, पृ० ४३।

दोनों कालखण्डों के आलोच्य कवियों ने अपने विरह-विदग्ध हृद्गत भावों को अभिव्यक्ति देने के लिए भाव-साम्य पर आधारित प्राकृतिक उपकरणों का सहारा लिया है। यथा :

'विरहा रवि सों घट-व्योम तच्यौ बिजुरी-सी खिवै इक लौ छतियाँ।
हिय-सागर तें दृग-मेघ भरे उधरे बरसैं दिन औ रतियाँ।
घनआनँद जान अनोखी दसा, न लखौं दई कैसे लिखौं पतियाँ।
नित सावन डीठि सु बैठक मैं टपकैं बरुनी तिहि ओलतियाँ।'

—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ८८।

'स्पर्श हुआ उस लता लजीली से बिधुकर का,
विकमित हुआ प्रकाश किया निज दल मनहर का,
सौरभ विस्तृत हुआ मनोहर अवसर पाकर
म्लान वदन विकसाया इस रजनी में आकर।'

—कानन-कुसुम, पृ० ३४।

सौन्दर्य के प्रति दोनों कालखण्डों के कवियों की संवेदना अत्यन्त तीव्र थी। जहाँ कहीं भी इन कवियों ने रूप-चेतना को सूक्ष्म रूप देने का प्रयास किया है, वहीं प्रभाव-साम्य पर आधारित प्रतीकों की सृष्टि हुई है। यथा :

'चोप चाय दायनि सों अमित उपायनि सों,
ज्यों ही बने त्यों ही लगि प्रापति लहा करै।
मीन जलहीन लौं अधीन ह्वै आनँदघन,
जान प्यारी पायनि पै कब को हहा करै।
दई नई टेक तोहि टारें न टरत नेकौ,
हार्‌यो सब भाँति जो बिचारो सो कहा करै॥'

—घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० ६१।

'तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा स्नान,
तुम्हारी वाणी में कल्याणि! त्रिवेणी की लहरों का गान।'

—पल्लव, पृ० ६८।

लाक्षणिकता :

शब्दशक्तियों द्वारा कवि अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को हलका अथवा गहरा रंग देकर अभिव्यक्त करता है। काव्यशास्त्रियों ने प्रायः इसके तीन भेद माने हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। वाच्यार्थ से अतिरिक्त अर्थ को प्रतीतिगोचर बनाने वाले शब्द-व्यापार को व्यंजना कहते हैं। यह रसतत्त्व को आत्मसात् करने वाली वृत्ति है। मुख्यार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ की सिद्धि लक्षणा का प्रमुख व्यापार है। भावप्रवण अभिव्यक्ति में यदि रमणीयता लानी हो तो वाच्यार्थ प्रायः अशक्त सिद्ध होते हैं। ऐसी दशा में लक्षणा शब्दशक्ति का प्रयोग आवश्यक हो जाता है, जो प्रयोग-सामर्थ्य से वांछित अर्थ को अधिक प्रभविष्णुता के साथ व्यक्त कर देता है।

संवेदनशील कवि भावावेग में बहकर अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को वाणी दिया करते हैं। ऐसी दशा में भावप्रवण उक्तियों का जो प्रवाह प्रचण्ड वेग से काव्य में फूटता है उसे सँभालने की शक्ति लक्षणा शब्दशक्ति में ही है। दोनों कालखण्डों के कवि संवेदनशील, कल्पनाशील, भावप्रवण तथा प्रतिभा-सम्पन्न रहे हैं। यही

कारण है कि उन्होंने प्रयोग-सामर्थ्य के बल पर अर्थगौरव की सृष्टि के लिये लक्षणा शब्दशक्ति का सफलतापूर्वक व्यापक प्रयोग किया है।

लक्षणा के दो भेद हैं—रूढ़ि लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा। काव्यशास्त्र में प्रयोजनवती लक्षणा के भी दो भेद किये गये हैं—शुद्धा और गौणी। पुन: शुद्धा के चार भेद—उपादान लक्षणा, लक्षण लक्षणा, सारोपा तथा साध्यवसाना स्वीकार किये गये हैं। यद्यपि स्वच्छन्दतावादी कवियों ने लक्षणा का शास्त्रीय विवेचन तो नहीं किया है लेकिन इनके काव्य में लक्षणा के प्राय: सभी भेदोपभेद के उदाहरण मिल जाते हैं।

रूढ़ि लक्षणा :

रूढ़ि लक्षणा में कहावतों और मुहावरों के चमत्कार का प्रदर्शन होता है। इन कवियों ने वचन-भंगिमा एवं भावोत्कर्ष के लिए यथास्थल कहावतों और मुहावरों का सफल प्रयोग किया है। दोनों कालखण्डों से एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'जीभ सम्हारि न बोलत हो मुँह चाहत क्यों अब खायो थपेरे।
ज्यों-ज्यों करी कुछ कानि-कनौड़ त्यों मूड़ चढ़े बढ़े आवत नेरे॥'[१]

यहाँ 'जीभ सम्हार कर बोलना', 'थपेरे खाना', 'मूड़ चढ़ना' आदि मुहावरों के सफल प्रयोग द्वारा कवि ने लाक्षणिक भंगिमा की सृष्टि की है।

'फूलों की सेज पर सोये हो
काँटों की राह भी
आह भर पार की।'[२]

यहाँ 'फूलों की सेज पर सोये' मुहावरे का लक्ष्यार्थ है—'वैभव-विलास-पूर्ण जीवन व्यतीत करना'—इस लक्ष्यार्थ का ग्रहण ही रूढ़ है।

प्रयोजनवती लक्षणा :

प्रयोजनवती लक्षणा का प्रयोग किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए किया जाता है। दोनों कालखण्डों से गौणी और शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(अ) गौणी साध्यवसाना :

'मूरति सिंगार की उजारी छवि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।'[३]

---

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रंथावली (दानघटा), पृ० २५४।
२. निराला : परिमल (महाराज शिवाजी का पत्र), पृ० २०८।
३. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रन्थावली, पृ० १०५।

कवि सम्प्रदाय में श्रृंगार का रंग श्याम माना गया है और अंजन का रंग भी श्याम होता है, लेकिन वह यहाँ लुप्त है। दोनों उपमान गुण-साम्य पर आधारित हैं। अतः यहाँ गौणी साध्यवसाना लक्षणा है।

'विद्रुम सीपी सम्पुट में
मोती के दाने कैसे ?
है हंस न, शुक यह, फिर क्यों
चुगने को मुक्ता ऐसे ?'[1]

इस छन्द में 'विद्रुम सीपी सम्पुट' रक्तिम अधरों के लिए, 'मोती के दाने' दाँतों तथा 'शुक' नासिका के लिए प्रयुक्त है, लेकिन आरोप का विषय यहाँ लुप्त है, साथ ही, समस्त उपमानों का संयोजन गुण-साम्य पर आधारित है। अतः यहाँ भी गौणी साध्यवसाना है।

(ब) शुद्धा सारोपा :

'कब घनआनँद ढरौंहीं बानि देखें सुख ,
सुधा-हेतु मन-घट-दरकनि राँजिहौं ।'[2]

यहाँ मन और घट में किसी प्रकार का सादृश्य नहीं है, दृढ़तापूर्वक सादृश्य दिखाया गया है। मन तथा घट दोनों टूटते हैं, दोनों के मर्म समान हैं। अतः शुद्धा सारोपा है।

'किन्तु करुणार्क, प्रिय, झुलसाते ही रहे—
भर नहीं सके प्राण रूप-बिन्दु-दान से।'[3]

यहाँ प्रिय पर 'करुणार्क' तथा 'रूप' पर जलबिन्दु का आरोप किया गया है जिसमें किसी प्रकार का सादृश्य नहीं है। साथ ही, सूर्य और प्रिय तथा रूप और जल-बिन्दु दोनों के कर्म समान हैं—क्रमशः झुलसाना तथा प्राणदान करना। अतः शुद्धा सारोपा है।

गौणी सारोपा :

'छबि को सदन; मोद-मंडित बदन-चन्द ,
तृषित चखनि लाल ! कब धौं दिखायहौ ।'[4]

यहाँ 'बदन-चन्द' में गौणी लक्षणा है। मुख पर चन्द का गुण सादृश्य के कारण आरोप किया गया है। अतः गौणी सारोपा है।

१. प्रसाद : आँसू, पृ० २३।
२. घनआनँद ग्रंथावली, पृ० १०५।
३. निराला : अनामिका (प्रेयसी), पृ० ७।
४. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रंथावली, पृ० ५८५।

'उषा का था उर में आवास,
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों की साँस ।'[१]

यहाँ उषा, मुकुल, चाँदनी आदि उपमान किसी गुण या धर्म की ओर लाक्षणिक संकेत कर रहे हैं, जिनका आरोप क्रमश: उर, मुख तथा स्वभाव पर किया गया है । अत: गौणी सारोपा है ।

लक्षण-लक्षणा :

'लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी ,
लसति ललित लोल-चख-तिरछानि में ।'[२]

यहाँ 'लपेटी' शब्द लाक्षणिक है जिसका लक्ष्यार्थ है अलकों को उड़ाकर अस्तव्यस्त कर देना । यहाँ लक्षण लक्षणा है ।

'ऋषियों के गंभीर हृदय - सी
बच्चों से तुतले भय - सी ।'[३]

यहाँ 'भय' का लक्ष्यार्थ है, भय के कारण और 'तुतले भय' का लक्ष्यार्थ है, तुतलाते हुए व्यक्ति द्वारा व्यंजित भय । यहाँ भी लक्षण लक्षणा है ।

छन्द :

आधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य में वर्णिक छन्दों का प्रयोग रीति-स्वछन्द कवियों की अपेक्षा कम है लेकिन वर्णवृत्तों में कवित्त और सवैया छन्द की ओर इन कवियों की भी रुचि दृष्टिगत होती है । यथा :

कवित्त :

'बैननि संतोषे श्रौन, नासा घ्रान हू अघानी,
अति हूँ अनूप ओप रूप तोषै नैन द्वै ।
अधर मधुर परसत रसना सरस,
काम केलि मिलि सुख साँचे अंग-अंग छ्वै ।'

— आलम केलि, पृ० ४६ ।

'पुलकि उठे हैं रोम-रोम खड़े स्वागत को ,
जागत है नैन बरुनी पै छबि छाओ तो ।
मूरत तिहारी उर अन्तर खड़ी है तुम्हें ,
देखबे के हेतु ताहि मुख दरसाओ तो ।'

—चित्राधार, पृ० १७७ ।

---

१. पंत : पल्लव (आँसू), पृ० ६९ ।

२. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रंथावली, पृ० ५८५ ।

३. पंत : पल्लव, पृ० ६८ ।

सवैया :

'भई दीठि फिरै चल चंचल-सी यह रीति नहीं इनकी है नई।
नई देखि मनोहरता कतहूँ, थिरता इनमें नहिं पाई गई।
गई लाज सरूप सुधा चखि के इनकी न तबौ कुटिलाई गई।
गई खोजत ठौर-ही-ठौर तुम्हें अँखिया तब तो हरजाई भई।'

— चित्राधार, पृ० १८३।

'खेलत फाग लख्यो पिय प्यारी को ता सुख की उपमा केहि दीजै।
देखत ही बनि आवै भलें रसखानि कहा है जु वारने कीजै।
ज्यों-ज्यों छबीली कहै पिचकारी लै एक लई यह दूसरी लीजै।
त्यों-त्यों छबीलो छके छबि छाक सों हेरै हँसै न हटै खरो भीजै।'

—रसखानि ग्रन्थावली, पृ० ११४।

वर्णिक छन्द कवित्त और सवैया के अतिरिक्त श्रीधर पाठक ने 'मनोविनोद' में परम्परागत मात्रिक छन्द 'दोहा' का भी प्रयोग किया है। यथा :

'गूढ़ घाव तुम मम हिये, किये रूप गुन खानि।
तेरे चपल चरित्र सब, चुभे चित्त में आनि॥'

—मनोविनोद, पृ० ११।

'प्रेम-प्रेम सब कोऊ कहत प्रेम न जानत कोइ।
जो जन जानै प्रेम तौ मरै जगत क्यों रोइ॥'

—रसखानि ग्रन्थावली, पृ० १०७।

भाषा :

आधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवि 'पाठक' और 'प्रसाद' ने अपना कवि-कर्म ब्रजभाषा से ही प्रारम्भ किया था। इसके अतिरिक्त प्रायः सभी आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के काव्य में ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र प्राप्त होता है। संस्कृत के तत्सम शब्द तथा अरबी, फारसी और उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग दोनों कालखण्डों के कवियों ने किया है।

ब्रज प्रदेश में प्रचलित तद्भव तथा देशज शब्दों का प्रयोग 'प्रसाद' ने सबसे अधिक किया है। यथा :—सुचोखी, चेतो, अलस, मीजि, निवारि, ठाँव, हहराई, पसीजत, ठिठकी, चकचूर, टेरो, गोइयो, पाँति, परिपूरन, नेह, सखी, सजनि, तातो, ठौर, तातर आदि। संस्कृत के तत्सम शब्द जैसे—मीन, पंकज, प्राण, कुरंग, मलय, हृदय, अर्क, दिनेश आदि का प्रयोग दोनों कालखण्डों में हुआ है। अरबी, फारसी, उर्दू के शब्द भी दोनों कालखण्डों में प्रयुक्त हुए हैं। यथा :—मौजे, बिहाल, चैन, बाग, माफ, चूक, चोट, सिपारस, मजूर, नकल, खूब, जमान, जरूरत, अजब, नजर, साकी, प्याला आदि।

विभिन्नता :

भावप्रवणता एवं कल्पनाशीलता :

गहरे विषाद ने रीतियुगीन एवं आधुनिक स्वच्छन्द कवियों को अन्तर्मुखी, भावुक तथा अत्यधिक संवेदनशील बना दिया था। रीति-स्वच्छन्द कवि विरह-वेदना के घात-प्रतिघातों से जब कभी असह्य पीड़ा का अनुभव करते, हृदय की मार्मिक भावानुभूतियाँ घनीभूत होकर स्वतः काव्य में ढल जातीं। इसी से रीति-स्वच्छन्द काव्य में अनुभूति की तीव्रता और भावावेग की प्रबलता का अविरल प्रवाह आदि से अन्त तक बना हुआ है। यह बात अवश्य है कि इन कवियों के भावावेग का समग्र प्रकाशन प्रायः उनकी प्रिया से ही सम्बद्ध है, जिनके प्रति उनके हृदय में आजीवन एकनिष्ठ एकोन्मुख प्रेम था। अन्तःकरण की समस्त भावराशि को मुक्तभाव से काव्य में उड़ेल कर वे मानसिक तनाव से मुक्ति पा लिया करते थे। इसी कारण रीति-स्वच्छन्द काव्य में यद्यपि भावावेगमयी रचनाओं का प्राधान्य है, तथापि उसका प्रमुख क्षेत्र उनका स्वयं का प्रेम-व्यापार है।

जहाँ तक काव्य भावप्रवणता का प्रश्न है, आधुनिक स्वच्छन्द काव्य समान रूप से भावावेगमयी रचनाओं से परिपूर्ण है। अन्तर यही है कि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने भावात्मकता की सृष्टि के लिए नर-नरेतर जगत् का बृहत्तर क्षेत्र चुना है। इन कवियों ने प्रेम-निरूपण, सौन्दर्य-बोध, प्रकृति-चित्रण, राष्ट्रीय-चेतना, विश्व-प्रेम आदि विविध क्षेत्रों में अपनी भाव-प्रवणता को वाणी दी। विधवा, भिक्षुक, मजदूरनी जैसे उपेक्षित आलम्बनों के प्रति भी उनके हृदय में भावावेग उमड़ पड़ा है। यही नहीं, प्रकृति के अन्तःस्पन्दन, देश की दयनीय दशा तथा सामाजिक विडम्बनाओं को देखकर उनका भावावेग काव्य में उसी वेग से फूट पड़ा है जिस प्रकार रीति-स्वच्छन्द कवियों ने मधुचर्या के क्षणों को वाणी देने में अपने हृदय की समस्त भावराशि को काव्य में उड़ेल डाला है। इस प्रकार इनके भावावेगपूर्ण आत्म-प्रकाशन का क्षेत्र रीति-स्वच्छन्द कवियों की तुलना में व्यापक है।

संवेदना, कल्पना को जागृत करती है और भावावेग कल्पना को उन्नत। भावावेग और कल्पना एक ही विकास-प्रक्रिया के दो भिन्न किन्तु पूरक अंग हैं। बिना एक के दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। कल्पना भी वही प्रभविष्णु होती है जो भाव-संवेद्य हो। जिस कल्पना में भावों की उपेक्षा की जाती है वह भोंड़ी हो जाती है। दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवि संवेदनशील तथा भावप्रवण थे। अतः कल्पना-प्रवण अन्तर्दृष्टि उन्हें नैसर्गिक रूप से मिली थी। लेकिन रीति-स्वच्छन्द

कवियों के लिए कल्पना गौण थी और भावाभिव्यक्ति प्रधान, जब कि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के लिए कल्पना उनके अन्तःव्यक्तित्व का अभिन्न अंग थी। यदि रीति-स्वच्छन्द कवियों को भावजीवी और आधुनिक स्वच्छन्द कवियों को कल्पना-जीवी कहा जाय तो अनुचित न होगा।

वस्तुतः रीतिकाल के अधिकांश कवियों की कल्पना आकर्षक तो है किन्तु उनके काल्पनिक चित्रों में चाकचिक्य और सजावट के अतिरिक्त अनुभूतिगत प्रवणता की कमी है। किसी सीमा तक रीति-स्वच्छन्द कवियों की कल्पना-शक्ति भावप्रेरित और हृदय की रागात्मिका वृत्ति से प्रेरित है। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य का तो समस्त व्यापार ही कल्पना का व्यापार है, जिसके लिए इन कवियों ने अत्यन्त रमणीय अप्रस्तुतों की सृष्टि की है। भावाभिव्यक्ति के विविध रूपों की कल्पना का संघटन फिर उन भावों को मूर्त रूप देने के लिए अप्रतिम अप्रस्तुतों का संयोजन जहाँ उनके काव्य में कथ्य की जटिलता उत्पन्न करता है वहीं बृहत्तर भावराशि की वृष्टि से उसे वह सरस एवं हृदयस्पर्शी बनाने में भी समर्थ हुआ है

रीति-स्वच्छन्द कवि केवल कल्पना का सम्बल लेकर काव्य-यात्रा में आगे बढ़े हैं जब कि कल्पना, आधुनिक स्वच्छन्द काव्य का प्राण-तत्त्व है। रीति-स्वच्छन्द कवियों की कल्पना जहाँ अन्तर्दृष्टि-विधायिनी है, वहीं आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में अन्तर्दृष्टि-विधायिनी और जीवन-शक्ति-दायिनी दोनों ही प्रकार की कल्पनाओं की रमणीय अभिव्यक्ति हुई है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने प्रायः अपने प्रेम-व्यापार की अनुभूति को रमणीय, मर्मस्पर्शी तथा सहृदय-संवेद्य बनाने के लिए कल्पना का सहारा लिया है। इस प्रकार उनकी कल्पना वर्तमानजीवी ही रही। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की कल्पना ने वर्तमान को तो रागभरी दृष्टि से देखा ही है, वैभवशाली अतीत और भविष्य के स्वर्ण-युग को भी आँखों के सामने साकार कर दिया है। इनकी कल्पना वस्तुतः चराचरव्यापिनी, व्योमविहारिणी, अतीतजीवी और स्वप्नजीवी है।

रीति-स्वच्छन्द कवि किसी वस्तु या घटना को देखकर उससे सम्बद्ध एक या दो अप्रस्तुतों को ही स्मरण कर सकने में समर्थ थे जब कि आधुनिक स्वच्छन्द कवि के मन में उसे देखकर अनेकानेक स्मृति-चित्र जग जाते हैं। 'बादल' को देखकर 'ठाकुर' ने केवल इतना ही कहा—

> 'बादर न होंय बहु भाँतिन के रेजा ये,
> असाढ़ रंगरेजा रंग सूखिबे को डारे हैं।'[1]

---

१. लाला भगवानदीन : ठाकुर-ठसक, पृ० २८।

लेकिन 'पंत' जी का वायवी 'बादल' कल्पनाओं का पुञ्ज है। वह अपना परिचय देते समय अनेकानेक स्मृति-चित्रों को रसज्ञ के सम्मुख प्रस्तुत कर देता है। बादल का परिचय स्वयं उसी के शब्दों में—

'धूम धुँआरे, काजर कारे, हम ही बिकरारे बादर,
मदन राज के बीर बहादुर पावस के उड़ते फणिधर।'[१]

और 'निराला' का 'बादल' कभी विप्लव का ताण्डव नृत्य करता है,[२] तो कभी उसकी सत्ता अश्रु और दुःख में प्रकट होती है।[३]

रीति-स्वच्छन्द कवियों की दृष्टि 'यमुना' का वर्णन करते समय अधिक-से-अधिक कृष्ण की केलि-क्रीड़ा अथवा यमुना की शोभा तक गयी है।[४] उसी यमुना को देख 'निराला' के मन में अतीत-सम्बद्ध स्मृतियों के अनेकानेक चित्र उभर पड़ते हैं और वे सहसा पूछ उठते हैं—'बता, बता, अपने अतीत के, क्या तू भी गाती है गान ?'[५]

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों का सम्पूर्ण प्रकृति-चित्रण प्रायः कल्पना का ही व्यापार है। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य के द्वितीय चरण में हमें कल्पना-वैभव और उसकी दिगन्तव्यापी उड़ान देखने को मिलती है। 'पंत' की 'पल्लव' काल की कविताओं में कल्पना की उड़ान देखी जा सकती है। कहीं-कहीं तो उनकी कल्पना इतनी दूरारूढ़ और भाव-विच्छिन्न हो गयी है कि वह कटी पतंग की भाँति सहृदय समाज में अग्राह्य हो जाती है।

कल्पना इन कवियों की दृष्टि में 'श्रेष्ठ' का पर्याय बन गयी है। 'पंत' 'बादल' को, 'विपुल कल्पना-से त्रिभुवन की'[६]; 'पल्लव' को, 'कल्पना के ये विह्वल

---

१. 'पंत' : पल्लव, पृ० १२७।

२. 'ऐ अट्ट पर छूट टूट पड़ने वाले उन्माद।
विश्व-विभव को लूट-लूट लड़ने वाले-अपवाद।'
—परिमल, पृ० १६२।

३. 'सिन्धु के अश्रु।
धरा के खिन्न दिवस के दाह !
विदाई के अनिमेष नयन !'—वही, पृ० १६२।

४. 'जमुना-जस बरन्यौ बिसद, निरवधि रस को मूल।
जुगल-केलि-अनुकूल है, बसिबौं जमुना-कूल।'
—घ० ग्रं०, पृ० १८५।

५. निराला : परिमल (जमुना के प्रति), पृ० ५६।

६. पंत : पल्लव (बादल राग), पृ० १२३।

बाल'[1]; नक्षत्र को, 'ऐ अनन्त की अगम कल्पना'[2] और अनंग को, 'प्रथम कल्पना कवि के मन में'[3] कह कर सम्बोधित करते हैं। 'निराला' ने रास्ते के फूल को 'ललित कल्पना—कोमल पद का, मैं था मनहर छन्द'[4] घुँघराले बालों को 'बाल कल्पना के-से पाले ''[5] और यहाँ तक कि कविता को ही कल्पना के कानन की रानी कहा। ''कल्पना'' शब्द की पुनरावृत्ति और काव्य में कल्पना-वैभव के प्रसार से स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावाद के चरमोत्कर्ष के कवियों के लिए कल्पना का महत्त्व सर्वोपरि था। इसके विपरीत रीति-स्वच्छन्द कवि भाव के धनी थे और कल्पना उनके लिये भावों की अनुगामिनी मात्र रही। रीति-स्वच्छन्द काव्य में कल्पना-विधान गौण है और जो कल्पनाएँ रूपायित भी हैं वे प्रायः सरल, बोधगम्य तथा भावानुगामिनी हैं। इसके विपरीत ''प्रसाद'', ''पंत'' और ''निराला'' के काव्य में कल्पनाओं का समाहार, उसका वैभव और उड़ान पदे-पदे लक्षित होता है और ये कल्पनाएँ दूरारूढ़, दर्बोध और प्रायः सूक्ष्म भावों से संवलित हैं साथ ही, इनका क्षेत्र भी अपेक्षाकृत विस्तृत है। लेकिन जहाँ कल्पनाओं की उड़ान अनियंत्रित हो गयी है, वहाँ वे भाव-विच्छिन्न हो निरीह भी बन गयी हैं। कल्पना ने ही आधुनिक स्वच्छन्द कवियों को रहस्य दर्शन के योग्य बनाया, असीम तथा अनन्त की सैर कराया और वह सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि प्रदान की, जिसके सहारे वे निराकार को साकार एवं अमूर्त को मूर्त करने में सहज समर्थ हो सके।

प्रेम-निरूपण :

प्रेम, सृष्टि का मूल कारण है, आनंद का आदि तत्त्व है। इसका स्वरूप स्वयं में तो अनिर्वचनीय है—''अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपम्'', लेकिन भावात्मक आधार-भूमि पर वह मूर्त, साकार रूप धारण कर समस्त सृष्टि में परिव्याप्त है। सार्वकालिक, सार्वभौमिक होने तथा तत्त्वतः वर्णनातीत होने के साथ ही प्राणिमात्र में इसका प्रकट रूप युग-सापेक्ष चेतना के प्रभाव से परिवर्तित, परिवर्द्धित एवं संशोधित होता रहा है। काव्य में उसका प्रवाह कभी नैसर्गिक प्रणय के रूप में तो कभी अधोगामिनी अथवा ऊर्ध्वगामिनी वृत्ति के साथ वासनात्मक अथवा उदात्त स्वरूप धारण कर सत्त्व-रज-तम के विभिन्न स्तरों में प्रकट होता रहा है। कालान्तर में युग की आकांक्षा के साथ प्रेम की व्यापक परिधि में मानवेतर जगत् भी समाहित हो गया। वस्तुतः ''प्रेम के स्वरूप की इयत्ता नहीं है। प्रेम की व्यापक परिधि में

---

१. पंत : (पल्लव), पृ० ५२।
२. वही : (नक्षत्र), पृ० ११४।
३. वही : (अनंग), पृ० ७८।
४. निराला : परिमल (रास्ते के फूल से), पृ० १४४।
५. निराला : अनामिका (उत्साह), पृ० ८२।

जगत् की सामान्य-से-सामान्य वस्तु से लेकर प्रकृति, देश, विश्व, मानव और ईश्वर सभी का समाहार है।"[१] अब यह कवि की काव्य-प्रतिभा तथा दृष्टि-व्यापकत्व पर निर्भर है कि वह कहाँ तक और किस गहराई तक पहुँच पाता है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों का प्रेम केवल मानव-भाव तक ही सीमित था लेकिन आधुनिक स्वच्छन्द कवियों का प्रेम भाव-क्षेत्र से सम्बन्धित या प्रेरित समस्त जड़-चेतन तथा विश्व के विविध क्रिया-व्यापारों को अपनी परिधि में समेट कर चला है। रीतिमुक्त काव्य की भाँति आधुनिक काव्य में भी 'प्रेम' कविता का मूल विषय रहा, लेकिन अपने परिष्कृत, परिवर्तित एवं विस्तृत रूप में। रीतिकालीन स्वच्छन्द कवियों का प्रेम सम्पूर्ण मानव-हृदय का एक अंश मात्र था जो प्रायः परकीया के प्रति उद्दाम आवेग के साथ प्रस्फुटित हुआ, जिसमें जीवन की स्वस्थ उज्ज्वल चेतना का अभाव था। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने इस धुँधली रात्रि के अवसान की सूचना देते हुए नव-जीवन के स्वर्ण-विहान का शंखनाद किया। फलस्वरूप काव्य-क्षेत्र में नयी-नयी भावभूमियाँ खुलती गयीं और अभिव्यक्ति के नये-नये मार्ग प्रशस्त होते गये। हृदय के रति-भाव का प्रवाह स्वकीया-परकीया की सीमा को तोड़ कर जीव-जगत् के अनेक विस्तृत क्षेत्रों में क्षितिज पर क्षितिज खोलता चला गया।

हमारे मन की एक गूढ़ वृत्ति है—रागात्मिका वृत्ति। यही वृत्ति बाह्य जगत् से मन का सम्बन्ध-सूत्र जोड़ती है। रीति-स्वच्छन्द कवियों की रागात्मिका वृत्ति बहुत-कुछ शृंगारिक परिवेश से प्रभावित होने के कारण नितान्त ऐकान्तिक होकर रह गयी है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों में यह वृत्ति चराचरव्यापिनी थी, फलतः इनकी अनुभूति उन्नत, व्यापक तथा उदात्त भावभूमि पर पूर्ण क्षमता के साथ मुखरित हुई। इनका प्रेम-विषयक दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है। ये अपने प्रेम को सम्पूर्ण विश्व में परिव्याप्त देखना चाहते हैं। रीतियुगीन स्वच्छन्द काव्य में प्रेम का यह स्वरूप अन्तर्धान है। उनकी रागात्मिका वृत्ति का क्षेत्र अत्यन्त संकुचित है। उनका प्रेम वस्तुतः प्रेमिका के क्रोड़ में ही सिमट कर रह गया है। 'घनानन्द', 'बोधा', 'ठाकुर', 'आलम', 'रसखान' आदि सभी कवियों ने घूम-फिर कर प्रेम की अनेक तरंगों को अपनी प्रेमिकाओं में ही सम्पिण्डित करने का कौशलपूर्ण प्रयास किया है। उनके प्रेम में वह सम्पूर्णता और व्यापकता कहाँ, जो 'प्रसाद' की इन पंक्तियों में है—"सद्यः स्नात हुआ मैं प्रेम सुतीर्थ में मन पवित्र उत्साहपूर्ण-सा हो गया"[२], लेकिन रीति-स्वच्छन्द कवियों के लौकिक प्रेम-व्यापार में गहराई है, और ऐसी गहराई जहाँ तक आधुनिक स्वच्छन्द कवि भी नहीं पहुँच सके। हाँ, यह अवश्य है

१. डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य (प्राक्कथन), डॉ० नगेन्द्र, पृ० ६, संस्करण १९५८ ई०।

२. 'प्रसाद' : झरना, पृ० ६।

कि व्यापकता का उसमें सर्वथा अभाव है। उनका प्रेम केवल उन्हीं के लिए था जब कि आधुनिक कवियों का प्रेम मानव-मानव का प्रेम है, सम्पूर्ण विश्व का प्रेम है। इसलिए उसका क्षेत्र भी व्यापक है।[1] इन संवेदनशील, भावुक और स्वप्नद्रष्टा कवियों की प्रेमदृष्टि और प्रेमानुभूति व्यष्टिगत न होकर समष्टिगत है।

रीति-स्वच्छन्द काव्य की भाँति ही आधुनिक स्वच्छन्द काव्य का प्रेम भी वासना से ही आरम्भ होता है, किन्तु उसकी परिसमाप्ति विश्व-प्रेम अथवा व्यापक मानव-प्रेम में होती है। भक्तिकालीन कठोर नैतिकता की लक्ष्मण-रेखा तथा रीति-कालीन रीति-चिन्तन की संकुचित सीमा को पार कर आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने प्रेम-चिन्तन में जो एक युगानुरूप नवीन स्फूर्ति, नवीन चेतना उत्पन्न की तथा उसे संवेद्य बनाकर युग के स्पन्दन से सम्पृक्त किया, वह स्तुत्य एवं श्लाघ्य है।

विश्व-प्रेम, देश-प्रेम की सीमाओं से परे प्राणिमात्र के प्रति अनुभव किया जाने वाला मानवीय प्रेम है। श्रीधर पाठक, पं० रामनरेश त्रिपाठी, ठा० गोपाल-शरण सिंह, 'पंत', 'निराला' आदि स्वच्छन्द कवियों के मुक्तकों एवं खण्डकाव्यों में मानवीय-प्रेम की मर्मस्पर्शिणी व्यंजना हुई है।[2] युग की बौद्धिकता की प्रेरणा से आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में अलौकिक देवता मानवीय भावभूमि पर उतार दिये गये और उनके चरित्र में लौकिक प्रेम की सुन्दर व्यंजना की गयी। वस्तुतः इस काल का ईश्वर वृन्दावन या अवध में कृष्ण और राम बनकर नहीं रह गया है। वह सर्वत्र व्यापक होकर नाना रूप-व्यापारों में दिखाई पड़ रहा है।[3] उल्लेखनीय बात यह है कि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने जहाँ अलौकिक राम और कृष्ण को लौकिक

---

१. (अ) 'प्रेममय है सारा संसार
प्रेमहि का सारा प्रसार है, मत कह इसे असार'

—भारत-गीत, पृ० ६०।

(ब) 'प्रकृति मिला दो विश्व प्रेम में, विश्व स्वयं ही ईश्वर है।'

—प्रेम-पथिक, पृ० ३०।

(स) 'कहाँ नहीं है स्नेह साँस-सा सबके उर में।'

—पल्लव, पृ० ५७।

२. (अ) 'अहा ! प्रेम का राज्य परम सुन्दर, अतिशय सुन्दर है।'

—पथिक, पृ० २०।

(ब) 'अखिल विश्व के प्राणाधार : अहे प्रेम जग जीवन सार।'
—ठा० गोपालशरण सिंह : आधुनिक कवि (हि० सा० सम्मेलन संग्रह), पृ० २६।

३. डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० २७३।

बना दिया है, वहीं अपने लौकिक प्रिय को अलौकिक जगत् में उठा ले गये हैं। 'राम की शक्ति पूजा' और 'पंचवटी प्रसंग' जैसी रचनाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। 'पंचवटी प्रसंग' में प्रणय-पीड़ित शूर्पणखा का चरित्र 'तुलसी' की शूर्पणखा से लौकिकता के अधिक निकट है। रीति-स्वच्छन्द काव्य में इस प्रकार के मानवीय-प्रेम का सर्वथा अभाव है। वहाँ प्रेम, मात्र स्वान्तः सुखाय बन कर रह गया है, जब कि आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में वह स्वान्तः सुखाय के साथ ही सर्वजन सुखाय बनकर प्रस्फुटित हुआ है।

रीति-स्वच्छन्द कवि चंचल बाला के बाल-जाल में ऐसा उलझा है कि वह अपने चतुर्दिक् मानवेतर जगत् को भूल बैठा, यदि उसे याद भी किया तो अपनी प्रेम-पीड़ा को उद्दीप्त करने के लिए। लेकिन आधुनिक कवि प्रकृति-प्रेम को नारी-प्रेम के लिए छोड़ने को तैयार नहीं।[1] उसका प्रेम-चिन्तन विकासमय है, उसकी प्रेमाभिव्यक्ति व्यष्टि से समष्टि की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर होती हुई अन्ततः अलौकिक स्पर्श से दिव्य हो उठी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने रीति-स्वच्छन्द काव्य से आगे बढ़कर परकीया-प्रेम के एकांगी वृत्त को तोड़ डाला और नैसर्गिक प्रेम का परिधि-विस्तार कर समस्त मानवीय-प्रेम को यहाँ तक कि मानवेतर जड़-चेतन तथा ईश्वर को भी उसके भीतर समेट लिया। प्रेम विषयक उनके व्यापक दृष्टिकोण के कारण ही यह सम्भव हो सका है।

रीतिमुक्त काव्य में प्रेमपीर, प्रेम की गहनता उसकी तलस्पर्शिता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई दिखाई देती है;[2] जब कि आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में प्रेम की व्यापकता तो पराकाष्ठा पर है, लेकिन आधुनिक कवि उस गहराई तक नहीं पहुँच सके हैं जहाँ तक रीति-स्वच्छन्द कवि पहुँचे थे। प्रेम शुद्ध आन्तरिक भावधारा है। रीति-स्वच्छन्द कवि अपनी प्रिया के प्रति मनसा-वाचा-कर्मणा पूर्ण

---

१. 'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?'—पल्लव, पृ० ८४।

२. 'पीर की भीर अधीर भई अँखियाँ दुखिया उमगीं झरना लौं।
रोकि रही उर-मेड़ बही इन टेक यही जु गही सु दही हौं।
भीजि बरें घिय-धार परें हिय आँसुनि यों पजरे बिरहा दौं।
आनँद के घन मीत सुजान ह्वै प्रीति मैं कीनी अनीति कहा गौं।'
—घ० ग्रं०, पृ० १५।

आस्था के साथ समर्पित रहे।[1] उनके प्रेम में एकनिष्ठता अपनी पराकाष्ठा पर थी। वे अपने प्रिय को देखने के बाद किसी अन्य आलम्बन पर प्रेमपूर्ण दृष्टिपात करना नहीं चाहते—"वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँड़ि तकै तन गोरो।"[2] इसके विपरीत आधुनिक स्वच्छन्द कवि अपने प्रिय को सम्पूर्ण सृष्टि में परिव्याप्त देखना चाहते हैं—

'मंजुल मयंक में मयंकमुखी आनन में, वैसी निष्कलंक कान्ति देती न दिखाई है।

× × × ×

जिसको विलोक फीकी शरद-जुन्हाई होती, वह मनभाई छवि किसको न भाई है।'[3]

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने या तो अपने लौकिक प्रिय से नितांत ऐकान्तिक प्रेम किया या राधा-कृष्ण के प्रेम-व्यापार में अपने लौकिक प्रिय के प्रेम का ही भावन किया। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के साथ ऐसा नहीं है। ये कविगण प्रेम को परिमित करने की वर्जना करते हुए उसके विश्वव्यापी प्रसार की आकांक्षा करते हैं- "किन्तु न परिमित करो प्रेम, सौहार्द, विश्वव्यापी कर दो।'[4] रीति-स्वच्छन्द कवि प्रेम को एक ही आलम्बन पर केन्द्रीभूत कर उसे आभा-मण्डित करना चाहते हैं जबकि आधुनिक स्वच्छन्द कवि प्रेम-प्रसूत आभा को जीवन-जगत् के कण-कण में बिखेरना चाहते हैं।

यद्यपि दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवियों का प्रेम रूपाकर्षण-जन्य वासना से प्रारम्भ होता है, लेकिन प्रथम के प्रेम का पर्यवसान भगवत् प्रेम में होता है, या प्रिया-मिलन में, जबकि दूसरे का पर्यवसान राष्ट्र-प्रेम या मानव-प्रेम में होता है। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य का प्रेम सर्वत्र वासना-जनित अपकर्ष से ऊपर उठता हुआ दिखाई देता है। प्रेम के आरम्भ और अन्त दो कूलों के बीच त्याग-भोग, आशा-निराशा की तरंगें उठती-गिरती दिखाई देती हैं, लेकिन अन्त में प्रेम विरहाग्नि में तपकर कंचन हो जाता है। 'मिलन', 'पथिक', 'प्रेम-पथिक' और 'ग्रंथि' में प्रेम का यही स्वरूप विद्यमान है।

---

१. (क) 'एक ही टेक, न दूसरी जानति, जीवन-प्रान सुजान लिये रुख।'

—घ० ग्रं०, पृ० ६१।

(ख) 'जिन आँखिन रूप-चिन्हारि भई तिनकी नित नींद ही जागनि है।'

—घ० ग्रं०, पृ० ६०।

२. लाला भगवानदीन : ठाकुर-ठसक, पृ० ३४।

३. ठा० गोपालशरण सिंह : माधवी, पृ० ४०।

४. 'प्रसाद' : प्रेम-पथिक, पृ० २४।

रीति-स्वच्छन्द कवियों की प्रेमिकाओं में प्रायः त्याग, सेवा और मानवीय-प्रेम का अभाव है जब कि आधुनिक काल की प्रेम-पात्रियाँ त्याग, सेवा और मानवीय-प्रेम की उच्च भावभूमि पर पहुँची हुई दिखाई देती हैं जैसा कि 'पथिक' और 'मिलन' में है। लेकिन इन कालखण्डों के प्रेम-पात्रियों के रुदन और विलाप को देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि यदि इस युग का परिवेश भी रीतिकाल की भाँति शृंगारिक होता, तो इन प्रेम-पात्रियों का झुकाव भोग की ओर ही होता, न कि विश्व-मानवतावाद की ओर। लेकिन युग-चेतना के प्रभाव से जब वे एक बार मानव-कल्याण के क्षेत्र में आ गयीं तो उन्होंने अपने त्याग, सेवा तथा साहस से, उज्ज्वल चरित्र और उदात्त प्रेमानुभूति से व्यष्टि को समष्टि में मिला दिया। रीतिमुक्त काव्य की नायिकाएँ प्रायः मूक हैं। यदि मुखर भी हुई हैं तो नायक के प्रेम-व्यापार की एक कड़ी बनकर। उस शृंगारिक परिवेश में इससे आगे बढ़ने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, क्योंकि इसके आगे का मार्ग तब तक प्रशस्त नहीं हो पाया था। नायिकाओं के समान ही इस युग के नायक भी नायिका-प्रेम से आगे नहीं बढ़ सके हैं। मुक्तकों में तो स्वयं कविगण ही अपने प्रेम-काव्य के नायक हैं, लेकिन प्रबन्ध काव्यों के नायक भी नायिकाओं के ही प्रेम में अन्तर्लीन दिखाई देते हैं।

आधुनिक युग में परिस्थिति बदल गयी। चारों ओर स्वातन्त्र्य संग्राम, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय-दमन, सतीत्व, नारीत्व और विवेक का ही पाठ पढ़ाया जाने लगा। इसका प्रभाव इन प्रेमी कवियों पर भी पड़ा। इसी कारण इस युग की पात्र-पात्रियाँ दोनों ही सजग दिखाई देते हैं। 'पथिक' का नायक प्रकृति-प्रेम की रोमाण्टिक भावना से प्रेरित होकर ही गृह त्याग कर देशोद्धार में अग्रसर होता है। इस युग के नैतिक वातावरण तथा युगादर्शों ने प्रणयप्रसूत कविता को बहुत दूर तक प्रभावित किया है।

दाम्पत्य प्रेम की झलक प्रायः दोनों युगों के काव्य में मिलती है, लेकिन दोनों में दृष्टिकोणगत भिन्नता है। रीतिमुक्त कवि 'आलम' निकाह के उपरान्त भी अपनी प्रिया की रसलोलुप-दृष्टि में उलझे रहे, जब कि पं० रामनरेश त्रिपाठी विवाहोपरान्त अपने प्रेम का आरम्भ तो दाम्पत्य प्रेम-भोग से करते हैं लेकिन आगे चलकर लोक-हित की महत् प्रेरणा से प्रेरित होकर कर्म-क्षेत्र की विविध बीथियों को पार करते हुए अन्त में विश्व-प्रेम या मानवीय-प्रेम में अपने वैयक्तिक प्रेम को पर्यवसित कर देते हैं।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण अन्तर जो आलोच्य कालखण्डों के प्रेम-निरूपण में दिखाई देता है वह यह है कि रीति-स्वच्छन्द काव्य में परकीया प्रेम, स्वकीया प्रेम और ईश्वरीय प्रेम के मध्य स्पष्ट विभाजन रेखा दृष्टिगोचर होती है, जब कि आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में लौकिक और अलौकिक प्रेम, ऐन्द्रिक और आत्मिक प्रेम स्वकीया और परकीया प्रेम जैसी भिन्न-भिन्न कोटियों के मध्य विभाजक रेखा पर्याप्त

अस्पष्ट एवं धुँधली है। इस युग में स्थूल और सूक्ष्म, लौकिक और अलौकिक जैसा भेद प्रायः समाप्त हो गया है।

रीतिमुक्त कवियों ने प्रिया-मिलन के लिए अपनी कविता में नदी-नाले लाँघना, गली में चक्कर लगाना, प्रेम का पिशाच लगना, मरने से कम की चर्चा न करना आदि कितनी ही अतिरंजनापूर्ण उक्तियों का समावेश किया है जो सूफी और फारसी काव्य से प्रेरित होकर आया है,[१] लेकिन आधुनिक काल में प्रायः ऐसी अतिरंजनापूर्ण उक्तियाँ देखने को नहीं मिलतीं। यद्यपि 'मरण' का चित्र कविवर 'प्रसाद' के काव्य में मिलता अवश्य है लेकिन वह अतिशयतारहित तथा अपने सहज स्वाभाविक रूप में।[२]

यद्यपि परम्परागत आग्रह के कारण प्रायः रीतिमुक्त कवियों ने राधा-कन्हाई सुमिरन की शरण ली है, किन्तु उनके प्रेम के आलंबन जग जाहिर हैं। वस्तुतः इन कवियों का यह दृष्टिकोण भक्त कवियों की दृष्टि का ही विशिष्ट परिविस्तार है। राधा-कन्हाई की ओट लेकर अथवा उन्हें माध्यम बनाकर जहाँ इन कवियों ने अपने उदात्त प्रेम-चिन्तन का परिचय दिया है; वहीं समाज के आक्रोश से अपने को बचाने का भरसक प्रयास भी किया है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने कहीं तो अपने प्रेम के आलम्बन का साहसपूर्वक रहस्योद्घाटन किया है लेकिन कहीं-कहीं अपने प्रेम पर रहस्य का झीना आवरण डालकर सामाजिक छींटाकशी से बचने का भी प्रयास किया है। 'उच्छ्वास' की सरल बालिका कोई आध्यात्मिक सत्ता नहीं है, और न उसके साथ व्यक्त हुआ प्रणय-सम्बन्ध कोई आध्यात्मिक भावना है। सीधे शब्दों में 'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।'[३] इसी प्रकार 'हम तुम जब हैं एक, लोग बकते फिरें'[४] में 'प्रसाद' की अपने प्रणय-सम्बन्ध के प्रति अनावृत अभिव्यक्ति लक्षित होती है। उनका 'आँसू' मानवीय प्रेम काव्य है लेकिन कवि ने सामाजिक भय से उसमें कहीं-कहीं

---

१. 'माधो विरह कंदला व्यापी, विरह ताप सकल तन तापी।
× × × ×
साँस लेत पंजर सब डोलहिं, छिन मो मरै सखी सब बोलहिं
रुधिर न रहो शरीर, पीत पत्र के बरन् जेउ।
डोलत गात अधीर, पौन तेज नहिं सहि सकै।'
—मा० का०, पृ०५८।

२. 'सुख आहत शान्त उमंगें बेगार साँस ढोने में
यह हृदय समाधि बना है रोती करुणा कोने में।' —आँसू, पृ० १२।

३. डॉ० नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ (छायावाद), पृ० १७; संस्करण १९६४ ई०।

४. 'प्रसाद' : कानन-कुसुम।

रहस्य का गहरा पुट दे दिया है। इस प्रकार आधुनिक कवियों ने प्रेम का सहज इजहार करके जिस साहस का परिचय दिया है वैसा साहस रीति-स्वच्छन्द कवि नहीं जुटा सके थे। आधुनिक कवियों ने अपने प्रेम को राधा-कृष्ण के साथ जोड़ने का प्रयास नहीं किया है। उनके प्रेम-पात्र लौकिक हैं और उन्हें रहस्य का झीना आवरण डालकर अलौकिक बनाने का प्रयास किया गया है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने अपने प्रेम-दर्शन का न तो प्रतिपादन किया और न तो किसी दर्शन का आधार ग्रहण कर अपनी प्रेमानुभूति का रूपायन। वे सच्चे प्रेमी थे। हृदय की तरंग पर, मन की उमंग पर थिरकते हुए सहज भाव से उन्होंने जो कुछ अनुभव किया उसे वाणी दे डाली। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में प्रेम के साथ दर्शन भी घुल-मिल गया है। इसी से वह प्रायः अस्पष्ट, अबूझ और रहस्यमय बन गया है। कहीं-कहीं तो यह समझना बड़ा कठिन हो जाता है कि उनके प्रेम का आलम्बन लौकिक है या अलौकिक। दोनों के बीच विभाजक-रेखा खींचना कठिन है।

रीति-स्वच्छन्द काव्य में 'प्रेम' यद्यपि रीतिबद्ध कवियों की विलासपरक वृत्ति से मुक्त हो उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित हो गया, लेकिन वह लौकिक धरातल पर नायिका के इर्द-गिर्द ही चक्कर लगाता रहा। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में प्रेम एक नवीन महिमा से मंडित हुआ और वह जीवन के गति-चक्र में एक अनिवार्य तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया। लौकिक प्रेम की शुचिता और व्यापकता पहली बार काव्य में दिखाई पड़ी। प्रेम की प्राणदायिनी रचनात्मक शक्ति को कवियों ने पहली बार पहचाना और उज्ज्वल मानवीय-प्रेम की बहुविधि व्यंजना करके उसे लोकोत्तर बना दिया—

> 'इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त-भवन में टिक रहना।
> किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।'[1]

रीति-स्वच्छन्द काव्य में 'राधा-कन्हाई' की ओट में जो लौकिक-प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है, उसमें तत्कालीन सामन्तीय व्यवस्था, भक्तिकालीन अतिशय भक्ति-चिन्तन और दर्शन का प्रभाव लक्षित होता है। कम-से-कम 'घनानंद' और 'रसखान' जैसे भावुक कवियों के लिए राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का चित्रण मात्र ऐन्द्रियता की तुष्टि के लिए नहीं था, वरन् इन प्रेमी भक्त कवियों की प्रेम-चेतना का धरातल अपेक्षाकृत अधिक उदात्त, भव्य और निष्कलुष था, जिसमें वासना की उष्ण गंध सहज रूप में तिरोहित हो गयी थी। यही नहीं, इन प्रेमी भक्त कवियों के काव्य में कहीं-कहीं दार्शनिक गम्भीरता और भक्ति-सुलभ आवेग भी मिलता है।

---

१. 'प्रसाद' : प्रेम-पथिक, पृ० १६।

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की प्रेमाभिव्यक्ति जहाँ एक ओर राष्ट्रीयता से जुड़ी हुई है वहीं दूसरी ओर बहिर्मुखी प्रवृत्तियों से हट कर अन्तर्मुखी होने की एक उत्कट अभिलाषा भी इनकी रचनाओं में विद्यमान है। इसी से इनकी रचनाओं में अध्यात्म और दर्शन की भी झलक यथास्थल मिलती है। 'प्रसाद', 'पंत', 'निराला' आदि की दार्शनिकतामूलक रचनाएँ हमारे कथन की साक्षी हैं। यों तो 'घनानन्द' आदि की रचनाओं में भी दार्शनिक जटिलता के कारण रहस्योन्मुखता का संकेत मिलता है, किन्तु इनका आलम्बन इतना स्पष्ट है कि उसे विशुद्ध रहस्यवादी कोटि में नहीं रखा जा सकता।[१] इसके विपरीत आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की दार्शनिक चेतना उतनी स्पष्ट नहीं है। आधुनिक कवि जिस दार्शनिक चेतना का संकेत करते हैं वह सहज सुग्राह्य नहीं है। अतः दार्शनिक अस्पष्टता स्थल-स्थल पर लक्षित होती है। इन कवियों की प्रेमाभिव्यक्ति के मूल में कोई स्पष्ट स्थूल लौकिक आलम्बन नहीं मालूम पड़ता।[२] अतः इनकी लौकिक प्रेमाभिव्यक्ति भी दार्शनिक धरातल पर अतिशय गूढ़ गम्भीर बन जाती है और इनका प्रेम तत्त्व बहुत-कुछ अध्यात्म और दार्शनिकता के प्रभाव से बोझिल हो जाता है।

सौन्दर्य-बोध :

भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों ने शुद्ध आध्यात्मिक तथा नितांत भौतिक दो दृष्टियों से सौन्दर्य पर विचार किया है। साहित्यिक दृष्टि से आत्मपरक और वस्तुपरक दोनों ही चिन्तन-प्रक्रियाएँ एकांगी तथा अपूर्ण हैं। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' और 'सत् चित् आनन्द' की आध्यात्मिक विचारधारा पर आधारित आत्मपरक भारतीय चिन्तन आश्रय (भाव) की ही एकान्त व्याख्या करता है और विज्ञान पर आधारित वस्तुपरक पाश्चात्य चिन्तन आलम्बन (विभाव) के मात्र बाह्य रूप, उपयोगिता आदि को ही स्पष्ट कर पाता है। ये दोनों ही चिन्तन-प्रक्रियाएँ अतिवादी हैं, क्योंकि सौन्दर्य न तो पूर्णतः आत्मपरक है और न पूर्णतः वस्तुपरक। दोनों के समन्वय में ही उसकी पूर्णता है। रसवादी कवि अन्तर्बाह्य दोनों को ही पूर्ण तन्मयता के साथ देखता तथा रसोद्रेक के स्फोट से आनंदित होता है। अतः काव्यगत सौन्दर्य कवि के मन के भीतर अनुभूत किया जाने वाला वह भाव है जिसमें आलम्बन के अन्तर्बाह्य समग्र सौन्दर्य का विलयन हो। इसका संबंध स्थूल या सूक्ष्म आलम्बन से

---

१. 'सखी कारी घटा बरसै बरसाने पै, गोरी घटा नंदगाँव में री।'

—ठाकुर-ठसक, पृ० १२।

२. 'शशिमुख पर घूँघट डाले अंचल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये।' —आँसू, पृ० १६।

प्रक्षिप्त सूक्ष्म भाव-तरंगों द्वारा द्रष्टा के मानस-पटल पर उभरे चित्र की आत्माभिव्यक्ति से है।[१]

साहित्यिक दृष्टि से सौन्दर्यानुभूति, रसानुभूति और काव्यानुभूति घनिष्टतम रूप से अन्तःसम्बद्ध हैं। सौन्दर्य रस-सर्जक है और रस-निष्पत्ति में ही काव्य की सार्थकता है। रसानुभूति में सहायक भाव और विभाव दोनों ही होते हैं। अतः आत्मपरक और वस्तुपरक दोनों चिन्तन-प्रक्रियाओं के समन्वय से ही काव्यपरक सौन्दर्य का सम्यक् विवेचन सम्भव है।[२] वस्तुतः सौन्दर्य-स्रष्टा कवि की दृष्टि न तो नितांत आत्मपरक होती है और न नितांत वस्तुपरक, उसमें अनिवार्यतः दोनों का मेल होता है। आलोच्य कालखण्डों के सौन्दर्य-पारखी स्वच्छन्द कवियों ने बाह्य (स्थूल) और आन्तरिक (सूक्ष्म) सौन्दर्य को आत्मरंजित करके देखा है, क्योंकि वैयक्तिक अभिव्यक्ति की आकांक्षा ने उनकी चिन्तन-प्रक्रिया को व्यक्तिनिष्ठ बना दिया था। उनके सौन्दर्य-बोध में जो भी विभिन्नता है वह मुख्यतः युग-चेतना के प्रभाव से अन्तर्दृष्टि के अन्तर के कारण है और गौणतः व्यक्तित्व, आस्था, जीवनानुभूति, काव्य-प्रतिभा और छायांकन-क्षमता के स्तर में असमानता के कारण।

जहाँ तक सौन्दर्य-बोध का प्रश्न है, रीति-स्वच्छन्द काव्य में वस्तुपरक चिन्तन प्रमुख था और आत्मपरक गौण, जब कि आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में स्थिति बदल गयी तथा आत्मपरक चिन्तन प्रमुख हो गया। इसके मूल में युग-चेतना का प्रभाव परिलक्षित होता है। रीतिवादी युग घोर शृंगारिक था। उसमें प्रेम और सौन्दर्य का अनावृत बाह्य स्थूल स्वरूप ही आनन्द का सामान्य आलम्बन था। रीति-स्वच्छन्द कवि यद्यपि आत्मचेता, अन्तर्मुखी और आत्मकेन्द्रित थे तथापि युग-चेतना का प्रभाव उन पर पड़े बिना नहीं रह सका। यही कारण है कि रीति-स्वच्छन्द कवियों ने स्थूल शृंगार की सृष्टि के लिए अपेक्षाकृत बाह्य सौन्दर्य का अनुरेखन अधिक किया। आधुनिक काल तक सामन्तीय अवशेष धूमिल हो चले और जन-मानस स्वातंत्र्य संग्राम के लिए मनसा-वाचा-कर्मणा अपने को तैयार करने लगा। नैतिक आग्रह और पुनर्जागरण की भावना ने सम्पूर्ण परिवेश को प्रभावित कर जन-मानस

---

१. 'सूक्ष्म या स्थूल जगत् में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है।'

—श्री हरिवंश सिंह शास्त्री : सौन्दर्य-विज्ञान, पृ० ५७, सं० १९९२ वि०।

२. 'सौन्दर्य संबंधी वही दृष्टिकोण साहित्यिक दृष्टि से उपयुक्त हो सकता है जो आश्रय (भाव) व आलम्बन (विभाव) दोनों का पूरा-पूरा महत्त्व स्वीकार करे, क्योंकि रसानुभूति के लिए ये दोनों ही पक्ष अनिवार्य हैं।'

—डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० १५५।

को देश-प्रेम-सम्बद्ध कर दिया। ऐसी दशा में स्थूल श्रृंगार की सृष्टि युग की आकांक्षा के प्रतिकूल थी। फलतः स्वच्छन्द कवियों ने अपने काव्य में स्थूल श्रृंगार की सृष्टि करके जहाँ एक ओर मानव-मन की शाश्वत श्रृंगारिक भावनाओं का यथोचित पोषण किया, वहीं उसे नैतिकता से सम्बद्ध कर युग की आकांक्षा की पूर्ति भी की। प्रेम के सूक्ष्म होने से उसके आलम्बनगत सौन्दर्य का स्वरूप भी सूक्ष्म हो गया।

रीति-स्वच्छन्द कवियों के सौन्दर्य-चिन्तन के पीछे कोई दार्शनिक विचारधारा नहीं परिलक्षित होती और न तो उन्होंने अपना कोई स्पष्ट सौन्दर्य-दर्शन व्यक्त किया। इसके विपरीत आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की सौन्दर्य-सृष्टि उनकी सौन्दर्य-विषयक विचारधारा से अनुप्राणित है। इन कवियों की सूक्ष्मान्वेषिणी दृष्टि ने अचिर सौन्दर्य से परे 'चिर सुन्दर' के उस उत्स को ढूँढ़ निकाला है जिसके प्रभाव से दृश्य जगत् का कण-कण सौन्दर्य-मण्डित है। इनकी दृष्टि में सौन्दर्य उस चिर सुन्दर दिव्य शिल्पी के हाथ का कला-कौशल है।[1] इसी कारण वे मानव-जीवन और प्रकृति में सौन्दर्य का विस्तार और उसका प्रभुत्व देख 'सुन्दरता' को समस्त श्री, ऐश्वर्य और मानव-कल्याण का केन्द्र मानते हैं।[2] इनकी दृष्टि में सौन्दर्य का पूर्ण साक्षात्कार होना ही ब्रह्म के सत् और शिव स्वरूप का साक्षात्कार है।[3]

दोनों कालखण्डों के कवियों ने परिष्कृत अन्तर्दृष्टि के साथ सौन्दर्य को देखा है, अन्दर-बाहर दोनों ओर पूर्ण-तन्मयता के साथ देखा है, लेकिन रीति-स्वच्छन्द कवियों की दृष्टि सीमित थी जब कि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की दृष्टि असीम। रीति-स्वच्छन्द कवियों की दृष्टि केवल मानवीय सौन्दर्य तक ही जा सकी, जब कि आधुनिक कवियों की सौन्दर्य-विषयक दृष्टि-सीमा में मानव के साथ ही प्रकृति, विश्व, भावलोक और शिल्प भी कैद हो गया है। प्रकृति के रमणीय दृश्यों को

---

१. (अ) 'उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्व-मात्र में छाई है।'
— प्रेम-पथिक, पृ० २४।

(ब) 'उस सौन्दर्य सुधासागर के कण हैं हम तुम दोनों ही।'
—प्रेम-पथिक, पृ० २५।

(स) मानवी या प्राकृतिक सुषमा सभी, दिव्य शिल्पी के कला कौशल सभी।'
—कानन-कुसुम, पृ० ४६।

२. 'अकेली सुन्दरता कल्याणि ! सकल ऐश्वर्यों की संधान।'
—पल्लव, पृ० ११२।

३. 'वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप, हृदय में बनता प्रणय अपार।
लोचनों में लावण्य अनूप, लोकसेवा में शिव अविकार।'
—पल्लव, पृ० १५०।

देखकर मानव-मन में स्वाभाविक रूप से जिज्ञासा और रहस्य-भावना का उदय होता है। आधुनिक स्वच्छन्द कवि प्राकृतिक सौन्दर्य को देख मुग्ध भी हुए हैं और अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा और रहस्य-भावना से रोमांचित भी—

'देख अतुल सौन्दर्य तुम्हारा मुग्ध हुआ मन मेरा।
जिसने तुम्हें रचा वह कैसा होगा चारु चितेरा।'[१]

दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द काव्य में पुरुष-सौन्दर्य का अंकन अत्यल्प हुआ है। रीति-स्वच्छन्द काव्य में पुरुष-सौन्दर्य के नाम पर केवल 'कृष्ण' और 'माधवानल' के सौन्दर्य का चित्रण मिलता है। रीतियुग के ये दोनों ही पात्र पौराणिक पुरुष थे, साथ ही, सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति और स्वच्छन्द प्रेमी थे। इन कवियों का ध्यान अभिजात संस्कार से मण्डित इन्हीं दो महापुरुषों के सौन्दर्य पर टिक कर रह गया। अतः पुरुष-सौन्दर्य चटकीले रंगों में काव्य में उपस्थित हुआ।[२] आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने सामान्य की ओर भी पग बढ़ाया। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' और 'मिलन' में जिन नायकों को चुना, वे साधारण समाज में जन्मे असाधारण गुण-सम्पन्न नवयुवक थे। कवि ने उनके चरित्रों को आन्तरिक सौन्दर्य से मण्डित किया।[३] ठा० गुरुभक्त सिंह 'भक्त' ने ग्रामीण युवक के रूप-सौन्दर्य का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर अपनी स्वच्छन्द रुचि का ही परिचय दिया।[४] इन रूप-चित्रणों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने पुरुष के शारीरिक सौन्दर्य को रूपायित करने में अपेक्षाकृत अधिक संयम और विवेक से काम

---

१. पं० रामनरेश त्रिपाठी : पथिक, पृ० २३।

२. 'अति चटकीलो लटक सों, मुकुट छबीलो माथ।
आनँदघन मुख-माधुरी रस बरसै इक साथ।
× × ×
भाल भौंह दृग नासिका, मृदुल कपोल सुठौन
साँवल छबि मधुमै अधर, देखि रहि सकै कौन।'
—घ० ग्रं०, पृ० २६६।

३. 'मनोभाव-भूषित मुख-मण्डल, सुन्दर अति गंभीर।
मुग्ध हुए मुनि देख युवक का गठित बलिष्ठ शरीर।'
—मिलन, पृ० ३७।

४. 'विहँसा युवक, तेज था मुख पर, था मजबूत गठीला।
घुँघराले काले बालों पर बँधा अँगोछा ढीला।
लोहे-सी जंघा के ऊपर कसी हुई थी धोती,
घनी शिखा करवट ले-लेकर गर्दन पर थी लोटी।'
—वन श्री, पृ० ६४।

लिया है। वस्तुतः आन्तरिक सौन्दर्य को प्रक्षेपित करने की ओर ही इनकी दृष्टि उन्मुख रही।

बाह्य सौन्दर्य एवं अंतःशील की दृष्टि से नारी इस सृष्टि की सर्वोत्तम रचना है। इसी से नारी सौन्दर्य ने रसवादी कवियों को सर्वाधिक लुभाया है। रीति-स्वच्छन्द काव्य में नारी-सौन्दर्य-चित्रण की नखशिख-परम्परा का दर्शन हमें अक्रमबद्ध रूप में मिलता है। किसी भी रीति-स्वच्छन्द कवि ने नारी का विधिवत् अथवा रीतिबद्ध नखशिख-परम्परा पर चित्रण नहीं किया है, फिर भी अवयवी चित्रण इन कवियों ने पूर्ण तन्मयता के साथ प्रचुरता से किया है। कुछ अपवादों को छोड़कर परम्परागत उपमानों से सुसज्जित ये सौन्दर्य-चित्र प्रायः मानसिकता के प्रभाव से गँदले होने से तो बच गये हैं, लेकिन सौन्दर्य-लिप्सा से मुक्त नहीं हो सके हैं। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की रुचि अवयवी चित्रण की ओर नहीं थी, नारी के बाह्य रूप-सौन्दर्य का दर्शन हमें उनके काव्य में यत्र-तत्र मिल जाता है, लेकिन प्रायः युग-चेतना सापेक्ष रूप में, नवीन भावबोध के साथ। 'घनानन्द' और 'आलम' की नायिकाओं के नेत्र जहाँ मीन-कंज-खंजन-कुरंग का मान भंग करके ही रह जाते हैं,[१] वहीं 'प्रसाद' जी की नायिका के नेत्रों की मदहोशी देखते ही बनती है, जिसमें आन्तरिक सौन्दर्य का रमणीय छलकाव सहज रूप में है।[२]

इसी प्रकार रीति-स्वच्छन्द कवि जिन भौंहों को कमान या कटारी समझते थे—'बरुनी कटीली भौंहें कुटिल कटारी-सी हैं।'[३] आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के लिए 'करुण भौंहों में था आकाश।'[४] इस प्रकार रीति-स्वच्छन्द काव्य के सौन्दर्य-बोध में, जहाँ स्थूल मांसलता की प्रधानता थी, वहीं आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने अपने काव्य में स्वस्थ, मांसल तथा भावात्मक सौन्दर्य की प्रतिष्ठा की। नारी-सौन्दर्य के चित्रण में भी आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने युग-रुचि को पहचानते हुए पर्याप्त संयम से काम लिया है। 'श्याम तन भर बँधा यौवन'[५] में 'निराला' आन्तरिक

१. (अ) 'मीन-कंज-खंजन-कुरंग-मन-भंग करै,
सीचे घनआनँद खुले संकोच सो मढ़े।' —घ० ग्रं०, पृ० १८।
(ब) 'मीन-मधुप मृग खंजन हारे, निरखत लोचन जुगल ढरारे।'
—मा० का०, पृ० १६।

२. 'काली आँखों में कितनी यौवन के मद की लाली।
मानिक मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली।'
—आँसू, पृ० २१।

३. लाला भगवानदीन : आलम-केलि, पृ० १४७।

४. 'पंत' : पल्लव, पृ० ६२।

५. 'निराला' : अनामिका (वह तोड़ती पत्थर), पृ० ७८।

अनुशासन से बँधे हुए हैं और 'बिन्दु में थी तुम सिन्धु अनंत—धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत'[१] में 'पंत' ने नारी के अन्त:शील को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। इस प्रकार दोनों कालखण्डों के सौन्दर्य-बोध में अन्तर स्पष्ट है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने नारी के रूप-चित्रण में भी अपने को प्रायः सौन्दर्य-लिप्सा से मुक्त रखा है, जब कि रीति-स्वच्छन्द कवि सौन्दर्य को रसलोलुप दृष्टि से देखने का लोभ संवरण नहीं कर सके हैं। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने रीतिकालीन कवियों की भाँति नारी-सौन्दर्य को न तो ललचाई दृष्टि से देखा है और न तो द्विवेदीयुगीन नैतिकतापरस्त कवियों की भाँति उसे देखकर नाक, भौं सिकोड़ा है। उनकी दृष्टि सतीत्व से अधिक नारीत्व पर रही है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने नारी के रूप-सौन्दर्य का प्रायः खण्ड-चित्र ही प्रस्तुत किया है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने सौन्दर्याङ्कन के इस मानदण्ड को बदल डाला और हिन्दी काव्य में प्रथम बार नारी-सौन्दर्य का समग्र चित्र प्रस्तुत किया। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि रीति-स्वच्छन्द कवियों ने रूप-सौन्दर्य के चित्रण में जिस हृदयस्पर्शिणी रमणीयता का परिचय दिया है उस तलस्पर्शिता को आधुनिक स्वच्छन्द कवि भी नहीं पहुँच सके। "घनानन्द" ने नारी के रूप-सौन्दर्य की ऐसी सजीव प्रतिमाएँ खड़ी कर दी हैं कि सौन्दर्य उसमें से टपका-सा पड़ता है।[२]

सौन्दर्य-चित्रण में रीति-स्वच्छन्द कवियों की दृष्टि आन्तरिक सौन्दर्य अथवा अन्त:शील की ओर बहुत ही कम गयी है, जब कि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की दृष्टि आन्तरिक सौन्दर्य पर अधिक रमी है। इस युग में आकर सौन्दर्य की खोज सादगी, सरलता, चरित्र, सौजन्य जैसे अन्त:शील के क्षेत्र में होने लगी। नारी-सौन्दर्य का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करने की होड़-सी लग गयी। पं० 'रामनरेश त्रिपाठी', 'प्रसाद', 'पंत', 'निराला' आदि ने नारी-सौन्दर्य के चित्रण में अपनी सूक्ष्म सौन्दर्य-चेतना का प्रगाढ़ परिचय दिया है। रीति-स्वच्छन्द काव्य की हाड़-मांस की स्थूल नारी आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में सूक्ष्म और काल्पनिक हो गयी।[३] रीति-स्वच्छन्द कवियों ने जहाँ अन्त:शील के अनुरेखन में अपनी लेखनी चलाई भी है वहाँ वे ऊपरी सतह को ही टटोलने में समर्थ हो सके। 'घनानन्द' की सरूपा नायिका

१. 'पंत' : पल्लव, पृ० ६६।

२. 'झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै॥
× × × ×
अँग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै घर च्वै।'

—घ० ग्रं०, पृ० ५८५।

३. "उसी समय कमनीय एक स्वर्गीय किरण-सी वामा,
कवि के स्वप्न समान विश्व के विस्मय-सी अभिरामा॥"

—पथिक, पृ० १७।

लाज से लिपटी हुई अपने चितवन से आन्तरिक भावों का संकेत मात्र देकर रह जाती है,[1] वहीं 'पंत' ने कल्पना के सहारे अपनी नायिका की लज्जा को वर्णों में उभार कर लज्जायुक्त मुख-मण्डल के समग्र प्रभाव को ऐन्द्रिय संवेद्य बनाकर अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया है।[2] अब नारी का सौन्दर्य मात्र भोग्या न रहा, उसमें जननी के सौम्य-स्निग्ध रूप का संचार हुआ।[3] कहने का तात्पर्य यह है कि इन कवियों की सौन्दर्य-चेतना व्यापक भावभूमि पर अवतरित है साथ ही, स्थूल आवरण के भीतर प्रवेश कर सूक्ष्म सौन्दर्य तत्त्व के अनुसन्धान में भी प्रायः लीन है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने प्रायः उन्हीं नारियों का रूप-चित्रण किया है जो अभिजातीय संस्कार से पली रूपसी थीं तथा जिनसे उन्होंने स्वयं प्रेम किया था अथवा जिनके सौन्दर्य में अपनी प्रेयसी की प्रतिकृति का अनुभव किया था। लेकिन आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की सौन्दर्यानुभूति में समाज की उपेक्षित तथा सामान्य नारियाँ भी समा गयी हैं। इनकी सौन्दर्यानुभूति में यौवन की ताजगी और वसन्त-श्री की मादकता ही नहीं है अपितु ग्रीष्म की प्रचण्डता और घने अन्धकार की विभीषिका भी सामान्य रूप से विद्यमान है। रूपसी के साथ-ही-साथ वैधव्य से पीड़ित नारियों के गुरु-गंभीर और शीतल सौन्दर्य का चित्र भी इनके काव्य में यत्र-तत्र प्राप्त होता है।[4] यही नहीं, युगों से उपेक्षित ग्रामीण युवती के रूप-सौन्दर्य की ओर भी इनकी दृष्टि गयी है।[5]

सौन्दर्य-चित्रण में रीति-स्वच्छन्द कवियों ने प्रायः परम्परागत उपमानों का सहारा लिया है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने परम्परागत उपमानों को तो ग्रहण

---

१. 'लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी
लसति ललित लोल-चख तिरछानि में।'
—घ० ग्रं, पृ० ५८५।

२. 'लाज की मादक सुरा-सी लालिमा फैल गालों में नवीन गुलाब से।
छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की अधखुले सस्मित गढ़ों से सीप से।
इन गढ़ों में रूप के आवर्त से, घूम-फिर कर, नाव से किसके नयन।
हैं नहीं डूबे, भगकर, अटककर, भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के।'
—ग्रंथि, पृ० १०।

३. "तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा-स्नान।" —पल्लव, पृ० ६८।

४. 'वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन।' —परिमल, पृ० ११६।

५. 'वह इठलाती आती ग्राम युवति, वह गजगति सर्प डगर पर।
सरकाती पट, खिसकाती लट, शरमाती झट,
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट।'—आधुनिक कवि 'पंत', पृ० ८७।

किया ही है साथ ही, उन्होंने अमूर्त के लिए मूर्त तथा मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुतों की सर्वथा नवीन योजना करके सौन्दर्यानुभूति को सूक्ष्म रूप देने का भी स्तुत्य प्रयास किया है। उपमा का स्थान अब अप्रस्तुतों ने ले लिया है। जिस प्रकार सौन्दर्य-चिन्तन सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता गया, उसी प्रकार उसकी अभिव्यक्ति भी सूक्ष्मतर होती गयी है।

वेदनानुभूति :

"विरह-वर्णन कवि-हृदय की सरसता तथा कवि-प्रतिभा की कसौटी है। विरहावस्था में ही वे भाव-तरंगें उठती हैं जिनका कोमल चित्रण, अत्यन्त मुक्त कल्पना, व्यापक जीवनानुभूति, भूतमात्र-व्यापी सहानुभूति तथा संयत-मृदुल तूलिका-कौशल वाले भाव-चित्रकार कवि ही कर सकते हैं।"[1] 'संयोग में प्रेमी की वृत्ति बहिर्मुख रहती है और वियोग में अन्तर्मुख।'[2] वियोगावस्था में प्रेमी विषाद, करुणा आदि दुःखमयी वृत्तियों को समेट कर अन्तर्मुख हो जाता है। इस अवस्था में प्रेम मानसिक धरातल पर अपने नैसर्गिक रूप में पूर्ण भावावेग के साथ प्रवाहित होता रहता है। इसी कारण प्रेम में निखार, दिव्यता और उदात्तता का दर्शन हमें विरह में ही मिलता है। चरमावस्था में पहुँचकर प्रेमी और प्रिय के बीच द्वैत का भेद समाप्त हो जाता है। यही विरह की पराकाष्ठा है।

आलोच्य कालखण्डों के स्वच्छन्द कवि संवेदनशील, भावुक तथा प्रतिभा-सम्पन्न थे। इसके अतिरिक्त अपने वैयक्तिक जीवन में वे प्रायः असफल प्रेमी भी थे, जिससे उनका वैयक्तिक जीवन वेदनापूर्ण हो गया था। फलतः उनके काव्य में हमें विरहजन्य प्रेम-पीड़ा की पराकाष्ठा का दर्शन होता है। प्रेम की इस पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति के लिए इन भावुक कवियों ने अपने काव्य में प्रेम-विषमता का नियोजन किया है। लेकिन प्रेम की पीर का जो मर्मस्पर्शी उद्गार रीति-स्वच्छन्द काव्य में है वह आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में कहाँ ?

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने अपनी विरह-भावना को तीन प्रकार से वाणी दी है—प्रथम सीधे आत्मकथात्मक शैली में, द्वितीय राधा-कृष्ण के माध्यम से और तृतीय काव्यगत पात्रों के माध्यम से। प्रथम और द्वितीय रूप मुक्तकों में तथा तृतीय रूप प्रबन्ध काव्यों में विद्यमान है। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में प्रथम और तृतीय दो रूपों का तो दर्शन होता है, लेकिन राधा-कृष्ण का स्थान अदृश्य परोक्ष सत्ता ने ले लिया है।

---

१. डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० २६१।

२. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घ० ग्रं० (वाङ्मुख), पृ० ३६।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने अपनी लौकिक विरह-भावना को अलौकिक विरह-भावना में परिणत करने का बलात् प्रयास न करके प्रायः इश्कमजाजी के माध्यम से इश्कहकीकी की साधना की है।[1] जहाँ राधा-कृष्ण के माध्यम से विरहानुभूति की अभिव्यक्ति की गयी है वहाँ पर भी उनकी लौकिक विरह-भावना ही लक्षित है। लौकिक प्रेम को अलौकिक बनाकर उस पर आवरण डालने का प्रयास प्रायः नहीं किया गया है। लेकिन आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने अपनी लौकिक विरह-भावना को अलौकिक बनाने में पर्याप्त कौशल दिखाया है,[2] यद्यपि लौकिक विरह-भावना का अनावृत रूप भी उनके काव्य में प्रचुरता से लक्षित है।

रीति-स्वच्छन्द कवि 'घनानन्द' के काव्य में संयोग में वियोग की कल्पना विलक्षण है।[3] सच्चे प्रेम में यदि संयोग क्षणिक हो और वियोग चिरस्थायी, तो प्रेमी के हृदय में इस प्रकार के मनोभाव का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। किन्तु संयोग में भी उसकी व्यथा से व्यथित होना विलक्षण प्रवृत्ति है। रीति-स्वच्छन्द कवि चिर-वियोग के अभ्यासी होने के कारण संयोग और वियोग की दोनों ही दशाओं में विरह-व्यथा से पीड़ित रहे हैं। यह प्रवृत्ति आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में भी विद्यमान है। लेकिन रीति-स्वच्छन्द कवि जहाँ वियोगावस्था में अनवरत व्यथित, पीड़ित और रुदन-ग्रस्त रहता है, वहीं आधुनिक स्वच्छन्द कवि जलन (वियोग) में मानसिक सुख-संतोष का अनुभव करता है। जलन (विरहाग्नि) में शीतलता (सुख-

---

१. 'इश्कहकीकी है फुरमाया। बिना मजाजी किसी न पाया।'

—बोधा ग्रं० (विरह वारीश), पृ० ५४।

२. (अ) 'चेतना लहर न उठेगी, जीवन समुद्र थिर होगा,
संध्या हो सर्ग प्रलय की, विच्छेद मिलन फिर होगा।'

—आँसू : पृ० ५६।

(ब) 'या किसी के प्रेम वंचित पलक की मूक जड़ता है? पवन में विचर कर
पूछती है जो सितारों से सतत-प्रिय! तुम्हारी नींद किसने छीन ली?'

—ग्रंथि, पृ० ४६।

३. (अ) 'अनोखी हिलग दैया! बिछुरे तौ मिल्यौ चाहै
मिलेहू में मारै जारै खरक बिछोह की।'

—घ० ग्रं०, पृ० ८६।

(ब) 'यह कैसो सँजोग न बूझि परै जु वियोग न क्यों हूँ बिछोहतु है।'

—घ० ग्रं०, पृ० ३४।

संतोष) का अनुभव करना प्रेम की पराकाष्ठा है, जहाँ पहुँचकर संयोग-वियोग, सुख-दुःख आदि का भेद समाप्त हो जाता है और जीवन में समरसता आ जाती है।[१]

रीतिमुक्त कवियों की वेदना नितान्त वैयक्तिक है, जिसकी विवृत्ति प्रिया के मिलन-विरह तक ही सीमित है। रीतिमुक्त कवि अपनी विरह की आग में स्वयं जलते हैं, अन्यों को न जलाकर स्वयं भस्म होते रहते हैं।[२] इस आन्तरिकता के कारण उनकी प्रेम-पीड़ा सार्वजनिक न होकर नितान्त ऐकान्तिक हो गयी है। यही नहीं, उनकी प्रेम-पीड़ा इतनी मर्मस्पर्शी एवं हृदय-विदारक है कि रसज्ञ पाठक आत्म-विस्मृत हुए बिना नहीं रह सकता। इस प्रेम-पीड़ा की सघनता को वही समझ सकता है जो स्वयं भुक्तभोगी हो।[३] इसके विपरीत आधुनिक स्वच्छन्द कवि इतना अहंवादी हो गया है कि वह अपनी विरह व्यथा को समस्त विश्व में परिव्याप्त देखना चाहता है। वह अपनी स्वयं की व्यथा से नर-नरेतर जगत् के समस्त उपादान को व्यथित होते देखता है। प्रकृति के उपादान रीतिमुक्त कवियों की नायक-नायिकाओं की विरह-व्यथा को प्रायः उद्दीप्त किया करते थे। केवल 'घनानन्द' के काव्य में एकाध स्थल पर प्राकृतिक उपादान विरही की विरह-व्यथा से स्वयं व्यथित दिखाई देते हैं— 'बूंद न परति मेरे जान जान प्यारी। तेरे, विरही कों हेरि मेघ आँसुनि झर्यो करै।'[४] लेकिन यह सामान्य प्रवृत्ति न होकर अपवाद ही है। आधुनिक स्वच्छन्द

---

१. (अ) 'आज मैं सब भाँति सुख सम्पन्न हूँ, वेदना के इस मनोरम विपिन में।'
—ग्रंथि, पृ० ५०।

(ब) 'विरह है अथवा यह वरदान।' —पल्लव, पृ० ६२।

(स) 'इस विकल वेदना को ले किसने सुख को ललकारा।
वह एक अबोध अकिंचन बेसुध चैतन्य हमारा।'—आँसू, पृ० ११।

(द) 'सुखद थी पीड़ा हृदय की क्रीड़ा
× × ×
वेदना मिलती, औषधी घुलती' —झरना, पृ० ७४।

२. 'पाती-मधि छाती-छत लिख न लिखाये जाहिं,
काती लै बिरह धाती कीने जैसे हाल हैं।
आँगुरी बहकि तहीं पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल-माल हैं।'.
—घ० ग्रं०, पृ० ६७।

३. 'पीर की भीर अधीर भई अँखियाँ दुखिया उमगीं झरना लौं।
रोकि रही उर-मेड़ बही इन टेक यही जु गही सु दही हौं।'
—घ० ग्रं०, पृ० १५।

४. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घ० ग्रं०, पृ० ७४।

कवियों की विरह-वेदना से प्रकृति के विविध उपादान स्वयं प्रभावित हुए हैं। इन आत्मचेता कवियों को प्रकृति के कण-कण में अपने ही ज्वलित हृदय की प्रतिच्छाया दिखाई पड़ती है।[1] प्रिय के दूर होने पर अथवा हृदय-शून्यता की स्थिति में उन्हें समस्त विश्व शून्यमय प्रतीत होता है।[2]

फारसी काव्य परम्परा से प्रभावित होने के कारण रीतिमुक्त विरह-काव्य में अतिरंजनापूर्ण तथा ऊहात्मक उक्तियों का दर्शन मिलता है। यद्यपि उसमें बिहारी की भाँति विरह-ताप की नाप-जोख नहीं है फिर भी ऊहात्मक उक्तियाँ पर्याप्त हैं। 'आलम' की यह पंक्ति—'छाती सो छुवाय दिया बाती आनि बारि ले'[3] ऊहात्मक भाव-व्यंजना की बोधक है।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में विरहानुभूति का स्वरूप बहुत-कुछ संयत तथा गम्भीर है। इनकी वेदना-विवृत्ति बहुत ही मार्मिक एवं हृदयस्पर्शिणी है तथा सहजता के धरातल पर इसकी प्रभविष्णुता प्रायः और भी बढ़ गयी है। उसमें हाय-हाय तथा आवेगात्मक उन्माद का वर्णन नगण्य है, लेकिन विरहानुभूति की मुखरता यत्र-तत्र-सर्वत्र है। इस प्रकार रीति-स्वच्छन्द काव्य में जहाँ विरह-व्यथा का प्रखर उन्माद मुखरित है वहीं आधुनिक स्वच्छन्द-काव्य में विरह की पीड़ा अपेक्षाकृत गम्भीर है। उसमें केवल मुखरता का आभास है। 'प्रसाद' जी का हृदय यद्यपि प्रेम-आहत होकर जलता है लेकिन उनके हृदय की ज्वाला शीतल है।[4] आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की वैयक्तिक वेदना वहीं मुखर है जहाँ आधुनिक जीवन की कटुता से उनकी उमंगें मर्माहत हो उठी हैं।

फारसी काव्य के प्रभाव से रीतिमुक्तों की विरहानुभूति में जुगुप्सापरक उक्तियों की भी प्रचुरता है। 'छिल-छिल कर छाले फोड़े मल-मल कर मृदुल चरण से'[5] तथा 'अरुण कलियों से कोमल घाव, कभी खुल पड़ते हैं असहाय'[6] आदि कुछ

---

१. 'वेदना कैसा करुण उद्गार है, वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह,
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में, तारकों में, व्योम में है वेदना।'
—ग्रंथि, पृ० ४१।

२. 'गिरि, कानन, जनपद, सरिताएँ, कितनी पड़ीं मार्ग के बीच,
हृदयोपम सूना आकाश दिखाई पड़ता था सर्वत्र।' —प्रेम-पथिक, पृ० १४।

३. लाला भगवानदीन : आलम-केलि, पृ० ९६।

४. 'शीतल ज्वाला जलती है ईंधन होता दृग-जल का
यह व्यर्थ साँस चल-चल कर करती है काम अनिल का।' —आँसू, पृ० १०।

५. 'प्रसाद' : आँसू, पृ० ११।

६. 'पंत' : पल्लव, पृ० ६२।

२४

गिनी-चुनी उक्तियों पर ही फारसी का प्रभाव लक्षित होता है। लेकिन इसे अपवाद ही समझना चाहिए। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में जुगुप्सापरक उक्तियाँ प्रायः नहीं मिलतीं।

रीति-स्वच्छन्द कवियों के काव्य में आत्म-केन्द्रीकरण का प्राधान्य है, इसके विपरीत आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में आत्म-प्रकाशन का। इस अन्तर के कारण पहले में जहाँ तलस्पर्शी गहराई है वहाँ दूसरे में अन्तरिक्षस्पर्शी व्यापकता। रीतिमुक्त कवि अपनी वेदना को अपने तक ही सीमित रखना चाहते हैं जब कि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की वैयक्तिक पीड़ा विश्व-पीड़ा बन गयी है। रीतिमुक्तों की वेदना ससीम है जब कि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की असीम, जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड समा गया है।

रीतिमुक्तों की वेदनानुभूति में आन्तरिकता का आग्रह प्रमुख है। उन्होंने अपनी प्रेम-पीर को सार्वजनिक नहीं बनाया, क्योंकि वे जानते थे कि विरह-व्यथा में कोई सहभागी नहीं बन सकता और न कोई ऐसी ओषधि बनी है जो प्रेम-रोग से मुक्ति दिला सके। अतः उन्हें इस रोग में तड़पना ही प्रिय लगा—

'औषद हितावै ताहि बेदन न भावै जाहि,
भीरि छाँड़ि बीर बैद परि मोहिं प्यारी है।'[१]

आधुनिक कवियों की वेदना-विवृत्ति में व्यथा के विश्वव्यापी प्रसार से प्रभावित आत्मतोष की भावना तथा सिद्धान्त-निरूपण का प्राधान्य है। जब कविवर 'पंत' लिखते हैं—'वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह',[२] 'किन्तु मैं सब भाँति सुख सम्पन्न हूँ वेदना के इस मनोहर विपिन में'[३] तो इससे वेदना के विश्वव्यापी प्रसार को देख आत्मतोष की भावना की ही अभिव्यक्ति होती है। रीति-स्वच्छन्द कवियों की वेदनानुभूति नितान्त ऐकान्तिक, चिरस्थायी, अविच्छिन्न तथा अविभाज्य है। जब पं० रामनरेश त्रिपाठी कहते हैं—'विरह प्रेम की जागृत गति है और सुषुप्ति मिलन है।'[४] तो उसमें सिद्धान्त-निरूपण की ही बात प्रमुख है जिससे वह हृदय पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ती, जब कि 'आलम' के छन्द में हृदय को तन्मय बना देने की अपूर्व क्षमता है।

रीतिमुक्त कवियों ने विरह-व्यथा का घनीभूत चित्रण किया है। उनके एक-एक छन्द में व्यथा के अनेक भाव व्यंजित हुए हैं, जो अत्यन्त गहन, गम्भीर हैं।

१. आलम-केलि, पृ० ५८।
२. ग्रंथि, पृ० ४१।
३. वही, पृ० ४७।
४. पं० रामनरेश त्रिपाठी : पथिक, पृ० १६।

यहाँ तक कि उनका विरही निराश्रयता, किंकर्तव्यविमूढ़ता तथा एकाकीपन से ऊब कर मौत तक की कामना करने लगता है। लेकिन आधुनिक कवि 'प्रसाद' को यह अनुभूति होती है कि प्रिय की विरह-व्यथा से वह अकेले ही व्यथित नहीं है अपितु सारा ब्रह्माण्ड व्यथित है क्योंकि उसकी वेदना व्याकुल होकर चौदहों भुवन में घूमकर देख आयी है कि कहीं भी सुख नहीं है। अन्त में कवि यह सोचने लगता है कि विश्राम (सुख) तो थक कर आँसुओं और उच्छ्वास में ही सोता है।[१] इस प्रकार कवि ने अपनी वैयक्तिक वेदना को चिर-दग्ध-दुःखी वसुधा के प्रति सहानुभूति में पर्यवसित कर दिया है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब व्यक्ति स्वयं अपने ही व्यथा से व्यथित हो तो उसे समस्त ब्रह्माण्ड व्यथासिक्त प्रतीत होता है। समरसता की इस स्थिति में संवेदनशील कवि का जागृत अहं मुखर हो ललकार उठता है—

'वेदने, ठहरो ! कलह, तुम न करो;
नहीं तो कर दूँगा निःशस्त्र ॥'[२]

एक ओर जहाँ आधुनिक स्वच्छन्द कवि वेदना से दो-दो हाथ करने को आतुर है वहीं वह वेदना को विश्व का आदि कारण और विश्व को वेदना का व्यक्त मनोरम रूप मानता है।[३] इतना ही नहीं, वेदना की सत्ता उसकी दृष्टि में स्वर्ग से भी बढ़कर निष्कलुष और निरापद है।[४] स्पष्ट है कि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने वेदना की अत्यन्त मर्मस्पर्शिणी व्यंजना करके अपनी संयत-मृदुल तूलिका-कौशल-सम्पन्न प्रतिभा और व्यापक दृष्टि-विधायिनी कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है।

प्रकृति-चित्रण :

आलोच्य कालखण्डों के स्वच्छन्द काव्य में युग के परिवेश के अनुसार प्रकृति-चित्रण प्रणाली में विभिन्नता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। रीति-स्वच्छन्द कवियों ने प्रायः प्रकृति को अपने प्रेम-व्यापार में सहायिका के रूप में प्रस्तुत किया तथा अपने प्रणय-व्यापार से सम्बद्ध करके उसे देखा है। केवल स्वच्छन्द-वृत्ति प्रेमी 'द्विजदेव' ही एकमात्र ऐसे दिखाई पड़ते हैं जो प्रकृति के निरीक्षण के लिए स्वच्छन्द

---

१. 'वेदना विकल फिर आई मेरी चौदहों भुवन में,
सुख कहीं न दिया दिखाई विश्राम कहाँ जीवन में।'—आँसू, पृ० ५३।

२. 'प्रसाद' : झरना, पृ० ७४।

३. 'वेदना के ही सुरीले हाथ से, है बना यह विश्व, इसका परम पद,
वेदना का ही मनोरम रूप है, वेदना का ही स्वतन्त्र विनोद है।'
—ग्रन्थि, पृ० ४६।

४. 'वेदना से भी अधिक निर्भय तथा निष्कपट साम्राज्य है क्या स्वर्ग का ?'
—ग्रन्थि, पृ० ४६।

दृष्टि के साथ बाहर निकले हैं। अपने 'वसन्त वर्णन' में उन्होंने शास्त्रीय दृष्टि से काम न लेकर आत्मदृष्टि से काम लिया है। 'विरह वारीश' में 'बोधा' का प्रकृति-वर्णन अर्द्धस्वच्छन्द वृत्तिबद्ध है। 'ठाकुर' ने बुन्देलखण्ड के आनन्दोल्लासमय जीवन का चित्र उपस्थित कर लोक-जीवन के समीप आने की कुछ चेष्टा की है। 'घनानन्द' ने भी कहीं-कहीं प्रकृति को उद्दीपन विभाव से मुक्त करके देखा है। लेकिन कुल मिलाकर यहाँ प्रकृति का आलम्बन रूप गौण है और उद्दीपन रूप प्रधान। प्रकृति यहाँ प्रायः प्रणय-व्यापार का एक अंग ही है, उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने प्रकृति को एक स्वतंत्र सत्ता प्रदान की है तथा स्वतन्त्र विषय के रूप में उसे अपना कर उसके नैसर्गिक सौन्दर्य और विविध क्रिया-व्यापारों का विशद चित्रण किया है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ('द्विजदेव' को छोड़कर) ने प्रकृति को प्रायः विरहिणी के अश्रुपूरित नेत्रों से देखा है, जब कि आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने प्रकृति-प्रसूत आनन्दोद्रेक से विह्वल होकर। यद्यपि निदर्शनार्थ 'घनानन्द' और प्रकृति-प्रेमी कवि 'पंत' दोनों ने 'बादल' का चित्रण किया है, पर दोनों के चित्रणों में पर्याप्त अन्तर है। 'घनानन्द' ने 'बादल' को विरहानुभूति से सम्बद्ध करके देखा है,[१] तो 'पंत' ने 'बादल' के समस्त क्रिया-व्यापारों को एक जिज्ञासु, संवेदनशील तटस्थ कलाकार के रूप में।[२] रीति-स्वच्छन्द काव्य में पपीहा, कोयल, चातक और समीर का, विरहिणी की विरह-व्यथा को उद्दीप्त करनेवाला दृष्टिकोण वही परम्परागत है।[३]

१. 'घनानन्द जीवन-दायक हौ कछु मेरियाँ पीर हियैं परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मों अँसुवानि हूँ लै बरसौ।'
—घ० ग्रं०, पृ० १०८।

२. सुमित्रानन्दन पंत' : पल्लव (बादल), पृ० १२२-२७।

३. (अ) 'कारी कूर कोकिला ! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि-कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै।
पैंड़े परे पापी ये कलापी निसद्यौस ज्यों ही,
चातक ! घातक त्यों ही तू हू कान फोरि लै।' —घ० ग्रं०, पृ० ८७।

(ब) 'बौरे रसालन की चढ़ि डारन कूकत क्वैलिया मौन गहै ना।
शीतल मन्द सुगन्धित बीर समीर लगै तन धीर रहै ना।'
—ठा० ठ०, पृ० २१।

(स) 'क्वैलिया तेरी कुठार-सी बानि लगै पर कौन को धीरज रैहै।'
—बोधा ग्रं०, पृ० ७।

(द) 'कूकि-कूकि कोकिल चलाइहैं अचूक चोट,
पातकी पपीहा ये बिथा के गीत गाइहैं।' —श्रृंगार लतिका, पृ० १०६।

प्रकृति के ये चेतन अंग आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में भी साथ नहीं छोड़े हैं लेकिन अब वे विरहिणी की पीड़ा को उद्दीप्त नहीं करते, वरन् रोमांचित करके उसके हृदय में क्षणिक सुख का संचार करते हैं ।[1]

रीति-स्वच्छन्द काव्य में प्रकृति वैयक्तिक रागानुभूति से बँधी हुई है । वह नायक-नायिका की विरहोद्दीप्ति में सहायक है, सौन्दर्य-चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम है । यद्यपि यहाँ प्रकृति कवि के अन्त:स्पर्श से सजीव एवं स्पंदित हुई है लेकिन प्राय: स्वतन्त्र आलम्बन बनने में असमर्थ ही रही है । रीति-स्वच्छन्द काव्य में प्रकृति कहीं-कहीं हृदय की भाव-व्यंजना में पूर्ण सहायक है और प्रतीक के रूप में भी गृहीत है जैसे—'सखी कारी घटा बरसै बरसाने पै, गोरी घटा नंदगाँव पै री ।'[2] लेकिन ऐसे स्थल नगण्य हैं । आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में प्रकृति व्यापक धरातल पर अवतरित है, उसके क्रिया-व्यापार व्यापक हैं ।

रीति-स्वच्छन्द कवियों में 'द्विजदेव' ने प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण कर प्रकृति-चित्रण के भावी रूप-विधान का संकेत दे दिया था । उद्दीपन विभाव से मुक्त उनका 'वसन्त वर्णन' परम्परागत विषय-सीमा से तो बद्ध है लेकिन उसका प्रस्तुतीकरण निर्लिप्त और रागानुराग से मुक्त है । निश्चय ही यह प्रयास स्तुत्य है, लेकिन यह अपने ढंग का एक अकेला बड़ा प्रयास है जिसे इस कालखण्ड की मुख्य प्रवृत्ति नहीं कह सकते । प्रमुख प्रवृत्ति तो उद्दीपन विभाव ही है । आधुनिक काव्यधारा के अन्तर्गत प्रकृति को आलम्बन तथा चेतन रूप में प्रस्तुत होने का पर्याप्त अवसर मिला । प्रकृति के यथातथ्य चित्रण का जो रीति-स्वच्छन्द काव्य में अकाल था, उसे आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने दूर कर दिया । रीति-स्वच्छन्द काव्य की निस्पन्द प्रकृति अब सचेतन हो गयी । वह कवियों को तड़पाने के स्थान पर रिझाने लगी । कविगण प्रकृति के रूप-व्यापारों को देखकर झूम उठे । कवियों ने प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों में मानवीय क्रिया-व्यापारों का आभास पाकर उसे अपना सहचरी बना लिया । अब तक जो प्रकृति जड़ थी, इन प्रतिभा-सम्पन्न कवियों की कोमल कल्पना का मादक स्पर्श पाकर सिहर उठी । उसने चलना-फिरना, थिरकना, रूप सँवारना, प्रणय-व्यापार करना और इतराना सीख लिया । अब वह संवेदनशील और मानवीय सुख-दु:ख की

---

१. 'देता है सूचना पपीहा, हवा किवाड़ बजाती,
तुमको आया समझ द्वार पर तुरत दौड़ मैं आती ।'

—पथिक, पृ० ५३ ।

२. लाला भगवानदीन : ठाकुर-ठसक, पृ० १२ ।

सहगामिनी हो गयी ।[१] वस्तुतः प्रकृति ने इन आत्मचेता कवियों की भाव-चेतना से तादात्म्य स्थापित कर लिया है । उन्होंने प्रकृति के प्रत्येक क्रिया-व्यापार को आत्मरंजित करके देखा । फलतः प्रकृति का विभावन-व्यापार कवि का आत्म-व्यापार बन गया । रीति-स्वच्छन्द कवियों में केवल 'घनानन्द' ने एक स्थान पर पवन को और एक स्थान पर बादल को चेतन व्यक्तित्व प्रदान किया है; लेकिन प्रकृति के वे दोनों ही उपादान उन स्थलों पर भी उद्दीपन के विभावन-व्यापार से मुक्त नहीं हो सके हैं । रीति-स्वच्छन्द काव्य में केवल 'द्विजदेव' का 'वसन्त' और 'वर्षा वर्णन' ही ऐसा है जिसमें प्रकृति के उपादान स्वयं स्पन्दित हैं । वसन्तागमन पर पुष्पों, लताओं और डालियों का झूमकर अपने ऋतुराज का स्वागत करना और वर्षा ऋतु में बिजली का झरोखों, अटारियों पर चढ़कर झाँकना कवि की स्वच्छन्द कल्पना का द्योतक है। लेकिन 'द्विजदेव' भी प्रकृति के स्थूल आलम्बन चित्रण से आगे नहीं बढ़ सके हैं। प्रकृति के नाटकीय व्यापारों, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध की सजीव अभिव्यक्ति में आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने जिस कल्पना-वैभव और भाव-सजगता का परिचय दिया है, वह अनुपम है । बहुरंगी प्रकृति को इतने भव्य और आकर्षक रूप में इन रोमाण्टिक कवियों ने हमारे सामने रखा कि उनकी सूक्ष्म रेखांकन क्षमता, बिम्ब-विधायक शक्ति और कल्पना-वैभव को देख विस्मत हुए बिना नहीं रहा जा सकता।

रीति-स्वच्छन्द काव्य में प्रकृति कवि की आन्तरिक भावनाओं और उसमें भी प्रायः उसकी रागात्मिका वृत्ति को ही उद्दीप्त करने में अन्तर्लीन है । रीतिमुक्त कवि की आभ्यन्तरिकता प्रकृति पर इस प्रकार छाई हुई है कि यह नहीं लगता कि प्रकृति स्वयं स्पन्दित है और उसमें अपनी गत्यात्मकता है बल्कि प्रकृति वियोगी की अन्तर्दशा का चित्र जिस खूबी से प्रस्तुत करती है, उस खूबी से अपनी दशा का

---

१. (अ) 'मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे'
—परिमल, पृ० १२६ ।

(ब) 'प्रतिक्षण नूतन वेश बनाकर रंग-बिरंग निराला
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद-माला ।' —पथिक, पृ० १६ ।

(स) 'प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति' —कश्मीर-सुषमा, पृ० ५ ।

(द) 'नायक ने चूमे कपोल, डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल ।'
—परिमल, पृ० १७२ ।

(य) 'मेखलाकार पर्वत अपार, अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार-बार, नीचे जल में निज महाकार ।'
—पल्लव, पृ० ५५-५६ ।

नहीं।[1] आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में आकर वही प्रकृति कवि की कोमल कल्पना का मादक स्पर्श पाकर स्वयं स्पन्दित हो गयी। प्रकृति ने अपने आह्लादक रूप से कवि को रिझाया, तो कवि ने अपनी भाव-प्रवणता एवं कल्पना-वैभव से प्रकृति को अनुप्राणित किया, उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की। इस प्रकार दोनों ने एक-दूसरे को उपकृत किया।

शिल्प :

भावावेग प्रधान काव्य के कथ्य और शिल्प दोनों में संवेदनशील कवि के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप अनिवार्यतः उभर आती है। दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवि भावप्रवण थे। इसी से उनके अभिव्यंजना-कौशल पर व्यक्ति वैशिष्ट्य की स्पष्ट छाप है। लेकिन आधुनिक स्वच्छन्द कवि अपने शिल्प के प्रति जितना सजग दिखाई देता है उतना रीति-स्वच्छन्द कवि नहीं। रीति-स्वच्छन्द कवियों में केवल 'घनानन्द' ही ऐसे हैं जो अपने शिल्प के प्रति पर्याप्त सचेत हैं। वैसे उन्होंने भी इसका प्रतिकार किया है—'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।' वास्तव में भावावेग में रीति-स्वच्छन्द कवियों की वाणी स्वयं ही अपना काव्य-पथ ढूँढ़ लेती थी। उनकी दृष्टि में भाव प्रमुख था और शिल्प-व्यापार गौण। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उनके काव्य में शिल्पगत सुष्ठुता का अभाव है। 'घनानन्द' की विरोधाश्रित भाषा-शैली, 'रसखान' की सरस-मधुर शैली और 'ठाकुर' की लोकोक्ति प्रधान शैली अपने आप में अनूठी है। फिर भी उनके शिल्प में जो भी वैशिष्ट्य है वह आभ्यंतरिक प्रेरणा तथा अन्तःस्पर्श के कारण। दूसरी ओर आधुनिक स्वच्छन्द कवि शिल्प के क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक सजग तथा प्रयोगशील रहे हैं। अप्रस्तुत, प्रतीक, बिम्ब, छन्द एवं शब्द संयोजन के क्षेत्र में इन कवियों ने अपनी गहरी सजगता, अपूर्व कुशलता एवं अद्भुत प्रयोग-क्षमता का परिचय दिया है।

अप्रस्तुत :

काव्य में अप्रस्तुतों की योजना हृदय के गूढ़ भावों को सुबोध, प्रभविष्णु तथा अन्तःसंवेद्य बनाने की दृष्टि से की जाती है। रीति-स्वच्छन्द कवि प्रायः उपमानों के सहारे प्रस्तुत व्यापार को रमणीय तथा बोधगम्य बनाया करते थे। इनमें 'घनानन्द' ही एक ऐसे कवि हैं जो अप्रस्तुतों के अनूठे संयोजन द्वारा प्रस्तुत-व्यापार को भावात्मक स्थिति तक पहुँचाने में समर्थ हुए हैं। अन्य रीति-स्वच्छन्द कवि प्रस्तुत-अप्रस्तुत व्यापार में रूप-साम्य से आगे प्रायः नहीं बढ़ सके हैं। इसके विपरीत आधुनिक स्वच्छन्द काव्य अप्रस्तुतों की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। इन कवियों की दृष्टि रूप, रंग, आकार के स्थूल-साम्य पर न होकर प्रायः प्रभाव-साम्य और धर्म-साम्य पर

१. डॉ० किशोरीलाल : घनानन्द : काव्य और आलोचना, पृ० ६२।

केन्द्रित है। सर्वथा अछूते उपमानों की सृष्टि करके इन कवियों ने परम्परागत अप्रस्तुत-विधान की जड़ता भंग कर दी। 'प्रसाद', 'पंत' और 'निराला' के काव्य में अप्रस्तुतों की रमणीय छटा देखते ही बनती है।

रीति-स्वच्छन्द काव्य का अप्रस्तुत-व्यापार अपेक्षाकृत बहुत सीमित है। उसमें जो अप्रस्तुत आये भी हैं उनकी प्रभविष्णुता उस तल को स्पर्श नहीं कर सकी है जहाँ तक आधुनिक स्वच्छन्द कवि दौड़ लगाये हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि रीति-स्वच्छन्द कवियों ने भावाभिव्यंजना के लिए प्रायः रूप-साम्य पर आधारित मूर्त अप्रस्तुतों का आधार ग्रहण किया है। इसके विपरीत आधुनिक स्वच्छन्द कवि 'प्रसाद', 'पंत' और 'निराला' ने धर्म-साम्य और प्रभाव-साम्य पर आधारित अमूर्त अप्रस्तुतों का संयोजन करके तलस्पर्शी भावात्मकता की सृष्टि की है।[1]

अप्रस्तुतों के आधार पर नारी-सौन्दर्य का अंकन दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द कवियों ने किया है लेकिन उनकी मर्मस्पर्शिता में पर्याप्त अन्तर है। रीति-स्वच्छन्द कवि जहाँ अप्रस्तुतों के सहारे प्रायः स्थूल सौन्दर्य को ही उभारने में समर्थ हो सके हैं वहीं आधुनिक स्वच्छन्द कवि नारी के समग्र सौन्दर्य को उभार कर अन्तःसंवेद्य बनाने में सफल हुए हैं। यथा :

'झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि में छबि-फूलन की बरषा उर-ऊपर जाति है ह्वै।'

—घ० ग्रं०, पृ० ५८५।

'सौन्दर्य सरोवर की वह एक तरंग

× × ×

भावमग्न कवि की वह एक मुखरता-वर्जित वाणी।'

—परिमल (बहू), पृ० १४७-४८।

उपर्युक्त दोनों छन्दों में सरूपा नारी के अंगों में व्याप्त सौन्दर्य की कल्पना की गयी है। प्रथम छंद में नायिका की मुस्कान की प्रतिबिम्बित दीप्ति से द्रष्टा के हृदय-प्रदेश पर पड़ने वाले प्रभाव को चित्रित करने के लिए 'फूलन की बरषा' अप्रस्तुत लाया गया है जो रूप-साम्य के आधार पर नायिका के बाह्य सौन्दर्य को ही व्यंजित करने में समर्थ है। द्वितीय छन्द में 'बहू' के समग्र सौन्दर्य (रूप और

१. (अ) 'मादकता से आये तुम, संज्ञा-से चले गये थे' —आँसू पृ० ३३।

(ब) 'गिरिवर के उर से उठ-उठकर, उच्चाकांक्षाओं-से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर, अनिमेष, अटल कुछ चिन्ता पर।'

—पल्लव, पृ० ५६।

(स) 'जड़े नयनों में स्वप्न खोल बहुरंगी पंख विहग-से।'—परिमल, पृ० १७३।

अन्तःशील) को चित्रित करने के लिए 'सौन्दर्य सरोवर की वह एक तरंग' और 'भाव-मग्न कवि की वह मुखरता वर्जित वाणी' अप्रस्तुत लाये गये हैं। इन दोनों अप्रस्तुतों के सहारे भारतीय बहू के द्युतिमान् रूप-सौन्दर्य और लाज-संकोच भरे अन्तःशील का जो बिम्ब मानस-पटल पर बनता है वह बहू के समग्र सौन्दर्य के साथ ही सांस्कृतिक परिवेश को भी उद्घाटित करने में समर्थ है।

प्रतीक :

प्रतीक कवि के व्यक्तित्व का अन्तःसाक्ष्य है। काव्य में इसकी योजना अभि-व्यंजना की एक सशक्त पद्धति है। संवेदनशील कवि प्रतीकों से आधार ग्रहण कर कम-से-कम शब्दों द्वारा अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को अनुरेखित करता है। इसका आधार सादृश्य या साधर्म्य नहीं, वरन् भावना जागृत करने की निहित शक्ति है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने मीन, मृग, खंजन, पपीहा, घन, चकोर, चन्द्रमा, कमल, कमान, भ्रमर, कली आदि परम्परागत प्रतीकों को रूढ़ अर्थ-बोध के साथ ग्रहण किया है जिसका विवेचन इसी आयाम के पूर्व खण्ड में किया जा चुका है। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में ये परम्परागत प्रतीक अपने पुराने अर्थ-बोध के साथ तो गृहीत हैं ही, सर्वथा नवीन भाव-बोध के साथ भी काव्य में ये प्रतीक जुड़े हैं। यथा :— 'पंत' ने भ्रमर को परम्परागत रूप में ग्रहण न कर ज्ञानी संगीतज्ञ के रूप में प्रतीक-बद्ध किया है[1] और चन्द्रमा 'निराला' के काव्य में शान्ति का प्रतीक है।[2] प्रणय-व्यापार के रुढ़िगत प्रतीक 'अली-कली' का स्थान अब 'सागर-सरिता' ने ले लिया है। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में इसी प्रकार अन्य रूढ़ प्रतीकों का भी नवीन अर्थ-बोध के साथ संस्कार किया गया है।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य सर्वथा अछूते प्रतीकों का अक्षय भण्डार है, लेकिन उसमें आये हुए अधिकांश प्रतीक कवि की मौलिक उद्भावना के साथ ही नितान्त वैयक्तिक हो गये हैं, क्योंकि एक ही प्रतीक भिन्न-भिन्न अर्थ-बोधों को लेकर काव्य में अवतरित हुआ है। जैसे 'समुद्र' ठा० गोपालशरण सिंह के काव्य में नायक (प्रेमी) का प्रतीक है[3] तो पं० रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में हृदय का,[4] और कहीं-कहीं

---

१. 'सिखा दो ना हे मधुप कुमारि ! मुझे भी अपने मीठे गान,
—पल्लव (मधुकरी), पृ० ७६।

२. 'चन्द्र-ज्योत्स्ना की केवल गात' —परिमल (गीत), पृ० ९९।

३. 'सिन्धु से सरिता का व्यवहार
× × ×
प्रकट करते हैं यही विचार
प्रेम है जीवन का आधार।' —कादम्बिनी, पृ० २१।

४. क्षुब्ध शीघ्र होने वाला है, दुर्गम महा समुद्र।' —मिलन, पृ० ५।

वह विस्तार के लिए भी प्रतीक रूप में गृहीत है। इस प्रकार उच्च भावों के वाहक होते हुए भी ये नूतन प्रतीक रूढ़ अर्थ ग्रहण नहीं कर सके हैं। 'पंत' के प्रकृतिपरक प्रतीकों की एक लम्बी शृंखला इस तथ्य की पुष्टि करती है।[1]

बिम्ब :

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने काव्य में अभिव्यंजना सौष्ठव लाने के लिए व्यंजना और लक्षणा शब्द-शक्तियों का व्यापक प्रयोग किया। यद्यपि उनके काव्य में यत्र-तत्र बिम्बों की रमणीय छटा देखने को मिल जाती है तथापि बिम्ब-योजना उनके काव्य-शिल्प की विशिष्ट प्रवृत्ति नहीं है। इसके विपरीत बिम्ब-विधान आधुनिक स्वच्छन्द काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। इन कवियों ने काव्य की रूप-सज्जा के लिए जितने भी उपकरणों का प्रयोग किया है, वे प्रायः सभी बिम्ब-धर्मी हैं।

यों तो दोनों कालखण्डों के स्वच्छन्द काव्य में बिम्बों की रमणीय सृष्टि हुई है लेकिन आधुनिक स्वच्छन्द काव्य के बिम्बात्मक अभिव्यक्ति की भावभूमि अपेक्षाकृत अधिक व्यापक तथा सूक्ष्म है। रीति-स्वच्छन्द काव्य में चाक्षुष बिम्बों की ही प्रधानता है यद्यपि कहीं-कहीं श्रावणिक बिम्ब भी आ गये हैं। दूसरी ओर आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में सभी प्रकार के ऐन्द्रिक बिम्ब, गत्वर बिम्ब और मानस संवेदनाओं से उद्बुद्ध सूक्ष्म-संवेदनात्मक बिम्ब प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। इतना ही नहीं, इन कवियों ने पौराणिक,[२] आदिम[३] एवं निजन्धारी[४] बिम्बों की भी सृष्टि की है जो रीति-स्वच्छन्द काव्य में प्रायः अप्राप्य हैं।

बिम्बों की गुणवत्ता कवि की बिम्ब-ग्रहण की क्षमता एवं उसकी सृजनात्मक शक्ति पर निर्भर है। रीति-स्वच्छन्द काव्य में बिम्बों का अभाव नहीं है, भले ही अपेक्षाकृत कम हों, लेकिन जहाँ तक गुणवत्ता का प्रश्न है केवल 'घनानन्द' के काव्य में ही वह विद्यमान है—'स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहै अमावस-अंक उज्यारी।'[५] रीति-स्वच्छन्द कवियों की बिम्ब-योजना प्रायः रूप-चित्रण-सम्बद्ध है,

१. 'करुण भौंहों में था आकाश, हास में शैशव का संसार,
उषा का था उर में आवास, चाँदनी का स्वभाव में भास।'—पल्लव, पृ० ६६।

२. 'कहो कौन हो दमयन्ती-सी, तुम तरु के नीचे सोई ?'
—पल्लव (छाया), पृ० १०१।

३. 'विहंगम-सा बैठा गिरि पर, सुहाता था विशाल अम्बर'
—पल्लव, पृ० ८२।

४. 'न छूना इसको न कुहुक शीला,
चंचले ! यह तो विमल विधि लीला।'
—झरना, पृ० ६५।

५. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : घनआनँद ग्रंथावली, पृ० ७७।

साथ ही, उसमें प्रायः केवल एक ही कार्य-व्यापार को प्रतिबिम्बित करने का प्रयास लक्षित है। इसके विपरीत आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने विविध क्षेत्रों से बिम्ब ग्रहण कर रमणीय संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया है।[1] आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में प्रक्षेपित बिम्ब अपेक्षाकृत अधिक ताजे, सूक्ष्म, जीवन-जगत् के अनेक क्षेत्रों से चयनित तथा बहुभावव्यंजक हैं।

छन्द :

रीति-स्वच्छन्द काव्य का सम्पूर्ण ढाँचा मुख्यत कवित्त, सवैया और दोहा छन्द-विधान पर खड़ा है, यद्यपि अरल्ल, चौपाई, छप्पय, ताटंक, बरवै, निसानी, सोरठा आदि छन्दों को भी अल्प रूप में अपनाया गया है। 'घनानन्द' और 'बोधा' ने इस दिशा में अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देते हुए उपर्युक्त सभी प्रकार के छन्दों पर अपना हाथ सफलतापूर्वक आजमाया। यहाँ तक कि 'घनानन्द' ने 'वियोग वेलि' फारसी ढंग पर और 'पदावली' पद-शैली के ढंग पर लिखा, जिसके कुछ पद गेय हैं। लेकिन मुख्य रूप से घनाक्षरी (कवित्त) और सवैया दो ही इस युग के सर्वप्रिय छन्द रहे हैं।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में पहली बार छन्द के क्षेत्र में यह एकरसता भंग हुई। छन्दों के क्षेत्र में जितना अधिक प्रयोग इस युग में हुआ, उतना हिन्दी साहित्य के पिछले लगभग एक हजार वर्ष के इतिहास में नहीं हुआ। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने प्रायः कवित्त, सवैया और दोहा छन्दों का बहिष्कार किया। केवल श्रीधर पाठक, ठा० गोपालशरण सिंह, गुरुभक्त सिंह 'भक्त' आदि ने अपनी प्रारंभिक रचनाओं में घनाक्षरी और सवैया छन्दों को प्रयोग के तौर पर खड़ीबोली में ढालकर प्रयुक्त किया, लेकिन यह अनुभव करके कि इन छन्दों में नवीन भावों को वहन करने की क्षमता नहीं है, उसे त्याग दिया।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य के अगुवा श्रीधर पाठक ने नवीन छन्दों की खोज में पहल की और अपनी रचना 'एकान्तवासी योगी' में लोक-कण्ठ-प्रसूत लावनी छन्द का प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि छन्दों का अक्षय कोश लोक-कण्ठ है। फिर तो छन्दों के क्षेत्र में प्रयोग की दिशा कवियों को मिल गयी और प्रतिभा सम्पन्न

---

१. (अ) 'सिन्धु-विहंग तरंग-पंख को फड़काकर प्रतिक्षण में
है निमग्न नित भूमि अंड सेवन में, रक्षण में।'
—पथिक, पृ० २६।

(ब) 'काली आँखों में कैसी यौवन के मद की लाली
मानिक मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली।'
—आँसू, पृ० २१।

प्रयोक्ता कवियों ने पुराने छन्दों को थोड़ा-बहुत फेर-बदल करके अनेक प्रकार के छंद गढ़ डाले। लय-प्रवाह को आधार मानकर स्वच्छन्द और मुक्त छन्दों की भी सर्जना की गयी। छन्दों का बन्धन 'निराला' की 'जुही की कली' रचना के साथ ही खुल गया जब कि उन्होंने घनाक्षरी के लय पर मुक्त छन्द में इस रचना को प्रस्तुत किया। छन्दों के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रयोग श्रीधर पाठक और छन्दोगुरु 'निराला' ने किया। पिछले आयामों में इस प्रकार के प्रयोगों की विशद चर्चा की जा चुकी है। यहाँ पर दोनों कालखण्डों की छंदगत प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर मौलिक अन्तर को देखने का प्रयास किया जा रहा है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने जहाँ घनाक्षरी, सवैया और दोहा छंदों को प्रमुखता देकर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं, वहाँ आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने छन्दों के क्षेत्र में इस एकरसता को भंग कर विविधता का परिचय दिया। यहाँ तक कि सदियों से उपेक्षित संस्कृत के गणवृत्तों तथा मात्रिक छन्दों के आधार-स्तम्भ द्रुतविलम्बित, शार्दूलविक्रीड़ित, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, शिखरिणी, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि तथा हिन्दी के सखी, राधिका, रोला, रूपमाला, पीयूषवर्षण आदि छन्दों को भी पुनर्जीवित किया गया। 'ग्रन्थि' राधिका छन्द में विरचित की गयी तो 'आँसू' सखी छन्द से मिलते-जुलते 'आँसू' छन्द में। 'रोला' में ऊजड ग्राम, 'परिवर्तन' आदि रचनाएँ लिखी गयीं। इसी प्रकार अन्य छन्दों में भी जोर आजमाइश की गयी। इस प्रकार छन्द-विधान के क्षेत्र में इन कवियों ने अपने व्यापक दृष्टिकोण का परिचय देते हुए काव्य-रचना का मार्ग प्रशस्त किया।

रीति-स्वच्छन्द कवितुकान्त छन्द विधान से बँधे रहे, साथ ही, काव्यशास्त्रीय पद्धति का भी प्रायः पालन किया। इसके विपरीत आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने तुकान्त-अतुकान्त दोनों प्रकार के छन्दों को काव्य-रचना का आधार बनाया। स्वच्छन्द छन्द तथा मुक्त छन्द रचना-विधान ने छन्द-विधान के क्षेत्र में क्रान्ति का बिगुल बजा दिया।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने छन्द-सृजन के आदि स्रोत लोक-कण्ठ की ओर प्रायः पग नहीं बढ़ाया। इसके विपरीत आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने लोक-प्रचलित छन्दों जैसे—लावनी, कजली, आल्हा आदि को भी अपने काव्य का कण्ठहार बनाया। 'पंत' के 'बादल' में और 'निराला' के 'नाचे उस पर श्यामा' में ३०, ३१ मात्राओं वाले छन्द कहीं लावनी के निकट हैं तो कहीं आल्हा के। 'पंत' की "छाया', 'बादल', 'अनंग' आदि रचनाएँ लावनी के समीप हैं और 'परिवर्तन' तथा 'नाचे उस पर श्यामा' आल्हा के।

रीति-स्वच्छन्द कवि हिन्दी के बाहर जाकर छन्द प्रयोग करने में प्रायः असमर्थ रहे। केवल 'घनानन्द' ने अपनी 'वियोग-वेलि' रचना को फारसी के ढंग

पर लिखा। इसके विपरीत आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने बंगला के पयार तथा उर्दू के बहरों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया। यहाँ तक कि श्रीधर पाठक ने अंग्रेजी के स्वरपात के समान सौन्दर्य का आधार ग्रहण कर अपनी 'सांध्य अटन' रचना प्रस्तुत की।

रीति-स्वच्छन्द काव्य में छन्द का विस्तार निश्चित चरणों में हुआ है जब कि आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में अनुच्छेद हैं। छंद का आधार अब लय-प्रवाह हो गया। स्वच्छन्द और मुक्त छन्दों ने भावों के स्वच्छन्द प्रकाशन के सामने उपस्थित होने वाले अवरोधों को हटा दिया, जिससे छन्द-चयन का मार्ग सरल हो गया। आज यही मुक्त छन्द कवियों के काव्य का कण्ठहार बना हुआ है।

भाषा :

रीति-स्वच्छन्द कवियों की भाषा प्रसाद गुण-सम्पन्न ब्रजभाषा है, जिसमें सरसता, प्रौढ़ता और लाक्षणिकता के साथ ही मुहावरों तथा लोकोक्तियों की रमणीय छटा देखने को मिलती है। इनकी कविताओं में ब्रजभाषा के शुद्ध साहित्यिक रूप और लोक प्रचलित रूप दोनों का अनूठा समन्वय हुआ है। सबसे बड़ी बात है निजत्व की, भाषा में व्यक्ति-वैशिष्ट्य की, जो इनकी रचनाओं में पदे-पदे विद्यमान है। विरोधाश्रित लाक्षणिक भाषा का चमत्कार दिखाने में 'घनानन्द' अद्वितीय हैं, दो टूक बात कहने में 'बोधा' अनूठे हैं; लोकोक्ति-गर्भित प्रवाहपूर्ण भाषा लिखने में 'ठाकुर' अपनी मिसाल नहीं रखते। वास्तव में इन कवियों ने भाषा को सप्रयास सजाने का उपक्रम तो नहीं किया, लेकिन ब्रजभाषा में अनेक प्रकार के प्रयोगों द्वारा उसे परिवर्द्धित, संशोधित और सप्राण बनाकर परम्परा की बँधी-बँधाई लीक की एकरसता को भंग कर दिया।

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की मुख्य भाषा शुद्ध साहित्यिक तथा बोलचाल की खड़ीबोली है। इस काव्यधारा के प्रथम चरण में काव्यभाषा, ब्रजभाषा और खड़ीबोली के बीच द्विधाग्रस्त थी। कविगण ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में रचनाएँ करते और उसकी गुणवत्ता पर विचार कर आगे का मार्ग ढूँढ़ने का प्रयास करते रहे। द्विधा की इस स्थिति में श्रीधर पाठक की 'ऊजड़ ग्राम', 'कश्मीर सुषमा', 'प्रसाद' की 'प्रेम-पथिक', 'चित्राधार' आदि रचनाएँ ब्रजभाषा में लिखी गयीं जब कि श्रीधर पाठक की 'एकान्तवासी योगी' और 'जगत सचाई सार' की अवतारणा इसके पूर्व ही खड़ीबोली में सफलतापूर्वक हो चुकी थी। लेकिन शीघ्र ही ब्रजभाषा का यह मोह भंग हुआ और कविगण खड़ीबोली के ऊबड़-खाबड़ पथ को स्वच्छ, सपाट बनाने में सफल हो गये। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने अपने भाषा-प्रयोगों द्वारा अल्पकाल में ही खड़ीबोली को आकर्षक, सक्षम और समृद्ध बना दिया।

स्वच्छन्दतावाद के द्वितीय चरण में आकर खड़ीबोली अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी और समृद्ध काव्य-रचना द्वारा महिम-मण्डित हो गयी।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने अपनी काव्यभाषा ब्रजभाषा में संस्कृत के तत्सम तथा अर्द्धतत्सम शब्दों, लोक-प्रचलित तद्भव शब्दों, राजस्थानी, पंजाबी के देशज शब्दों और अरबी-फारसी के विदेशी शब्दों को स्वच्छन्दतापूर्वक ग्रहण किया। इस प्रकार साहित्यिक ब्रजभाषा के प्रति उनका दृष्टिकोण लचीला तथा विस्तार की ओर सजग था। विकृत ब्रजभाषा के स्वरूप को इन कवियों ने पूर्णतया व्यवस्थित किया। अतः ब्रजभाषा के संशोधन, संवर्द्धन एवं विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय है।

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की काव्य-भाषा यद्यपि तत्सम बहुल है लेकिन उसमें अनेक भाषाओं के शब्दों को स्वच्छन्दतापूर्वक ग्रहण किया गया है। बोलचाल की ब्रजभाषा, संस्कृत के तत्सम, अर्द्धतत्सम शब्दों के साथ ही इन कवियों ने अरबी, फारसी, उर्दू, बँगला और अंग्रेजी के शब्दों को भी स्वतंत्रतापूर्वक ग्रहण करके अपने व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। इन कवियों ने शब्दों के विशिष्ट प्रयोगों द्वारा भाषा के अभिव्यंजक शक्ति को बढ़ाया; शब्दों की मितव्ययिता का महत्त्व प्रतिपादित किया ; संधि के आधार पर बड़े शब्दों को गढ़कर, अंग्रेजी के आधार पर नवीन शब्दों की सर्जना कर तथा सदियों से उपेक्षित शब्दों का पुनर्प्रयोग कर खड़ीबोली को समृद्ध किया। 'पंत' अद्भुत शब्दशिल्पी थे तो 'प्रसाद' पुराने शब्दों के प्रबल ग्राहक और 'निराला' का तो पूछना ही क्या ? उनके जैसा भाषा-प्रयोक्ता हिन्दी में कोई दूसरा हुआ ही नहीं।। भाषा को समृद्ध करने की दृष्टि से आधुनिक स्वच्छन्द कवि, रीतिमुक्तों से बहुत आगे रहे हैं।

मुहावरों तथा लोकोक्तियों की जैसी सुन्दर छटा रीति-स्वच्छन्द काव्य में देखने को मिलती है वैसी आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में नहीं। 'ठाकुर' ने लोकोक्तियों के रमणीय प्रयोगों द्वारा अपनी अलग ही पहचान बना ली है। 'घनानन्द' और 'रसखान' ने मुहावरों के प्रयोग में अद्वितीय कुशलता का परिचय दिया है। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में भी यद्यपि ढूँढ़ने से इने-गिने मुहावरे मिल जायेंगे, लेकिन काव्य में इनका प्रभाव अत्यन्त क्षीण है। काव्य में चित्रात्मकता लाने के लिए ये कवि लक्षणा-व्यंजना शब्द-शक्तियों पर ही निर्भर हैं।

— — —

नवीनता :

राष्ट्रीय-चेतना एवं देश-प्रेम :

राष्ट्रीय-चेतना एवं देश-प्रेम का विवेचन पिछले आयामों में सप्रसंग किया जा चुका है किन्तु यहाँ पर नवीनता के परिप्रेक्ष्य में इसका विवेचन अपरिहार्य है। भारत में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन है। 'यजुर्वेद' के दशम अध्याय में 'राष्ट्रं मे देहि'[1] कह कर 'राष्ट्र' के प्रति उत्कट लालसा प्रदर्शित की गयी है। आगे चलकर मध्ययुग में राष्ट्रीय भावना विलुप्त हो गयी। सामन्तीय व्यवस्था ने मानवीय मूल्यों को दबा दिया। फलस्वरूप विकसित हो रही राष्ट्रीय-भावना आडम्बरपूर्ण धर्म के कटघरे में बन्द हो गयी।

आधुनिक युग में 'राष्ट्र' के स्वरूप का विकास हुआ। अब 'राष्ट्र' अंग्रेजी के 'नेशन' शब्द के पर्याय रूप में प्रस्तुत हुआ। यद्यपि मातृभूमि-प्रेम तथा सामूहिकता की भावना मानव में आदिम काल से ही रही है लेकिन राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया आधुनिक युग की देन है।

राष्ट्रीय-चेतना की अभिव्यक्ति से तात्पर्य कवि की उन कृतियों के प्रणयन से है जो राष्ट्र-निर्माण के लिए जन-मानस में नव-चेतना का संचार करती हैं। कवि अपनी प्रतिभा द्वारा मानव-मन को स्पन्दित करने वाले भावों की सर्जना करता है। वह अपनी प्रतिभा की खराद पर तराश कर बाह्य स्थूल भावों को भी इतने सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत करता है कि उसकी अन्तःसंवेद्य तरंगें सीधे हृदय से टकराकर जन-मानस को झकझोर डालती हैं। मनुष्य, समाज और राष्ट्र एक ही विकास-प्रक्रिया के अविच्छिन्न अंग हैं। मनुष्य और समाज की चिन्तनधारा को मुख्य राष्ट्रीय धारा से जोड़ने वाली तथा राष्ट्रीय-भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाली कविताएँ निश्चय ही राष्ट्रीय-चेतना के निर्माण में सहायक होती हैं। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा पुनर्जागरण, एकता, विदेशी दासता से मुक्ति तथा अखण्ड भारत के निर्माण की आकांक्षा से भारतीय जन-मानस का जो संस्कार किया, वह प्रशंसनीय है।

भारतेन्दु-युग के कवियों की राष्ट्रीय-चेतना समाज तथा धर्म के साथ लिपट कर प्रस्फुटित हुई। इस युग के कवि पराधीनता के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस नहीं जुटा सके। द्विवेदी-युग के कवियों ने ओजस्वी वाणी में राष्ट्रीयता का अमर

---

१. वेद, दशमाऽध्याय, २, सरल हिन्दी भाष्य, वेद प्रतिष्ठान राजौरी गार्डन, नई दिल्ली, विशिष्ट संस्करण।

संदेश दिया तथा देशवासियों को बलिदान की राह पर सहर्ष आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। इन युगदर्शी कवियों ने इससे भी आगे बढ़ कर स्वतंत्रता-प्राप्ति के आह्वान तथा स्वतंत्र-भारत की भावी कल्पना से देशवासियों की चिन्तन-प्रक्रिया को उद्वेलित कर दिया। वस्तुतः राष्ट्रीय-चिन्तन की दृष्टि से द्विवेदी-युग हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग है।[१]

द्विवेदी-युग में धार्मिक कट्टरता, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच की भावना, आन्तरिक कलह तथा शोषण से भारतीय समाज जर्जर हो उठा था। भाग्यवाद ने सामाजिक क्रियाशीलता को पंगु बना दिया था। सामान्य भारतीयों में चिन्तन के व्यापक दृष्टिकोण का सर्वथा अभाव था। ऐसे समय में राष्ट्रीय-चिन्तन के लिए जन-जागृति आवश्यक थी। पुरुषों के साथ ही नारियों की आन्तरिक शक्ति को पहचान कर उसे राष्ट्र-निर्माण से सम्बद्ध करना समय की माँग थी। नारी-शक्ति को, उसकी सृजन-क्षमता को, उसकी सामाजिक सत्ता को पहली बार इन कवियों ने पहचाना और 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' के महान् सन्देश को पुनर्स्मरण किया। रीतिकाल की भोग्या नारी अब पूज्या हो गयी, 'देवि! माँ! सहचरि! प्राण!'[२] बन गयी। श्रीधर पाठक ने तत्कालीन नारी समाज में सरस्वती स्वरूपा नारी की प्रतिच्छाया आधुनिक नारी में देखने की चेष्टा की।[३] पं० रामनरेश त्रिपाठी ने प्रेम की पीठिका पर राष्ट्रीय-चेतना को उभार कर युवकों के साथ ही युवतियों को भी लोक-सेवा तथा मातृभूमि के उद्धार के लिए सर्वस्व समर्पण का सन्देश दिया।[४] इस प्रकार आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने नारी को गरिमा-मण्डित कर उसकी आन्तरिक शक्ति को राष्ट्रीय-चिन्तन की दिशा में मोड़ने का स्तुत्य प्रयास किया।

धर्म तथा विचारों में अनेकता होते हुए भी देश का प्रत्येक कार्य राष्ट्रीय क्षेत्र में एक है जिसके लिए जातीय जीवन की एकता आवश्यक है। पं० रामनरेश

---

१. 'सम्पूर्ण हिन्दी कविता में यदि किसी काल की कविता पूर्ण समाजदर्शी होने का धर्मपालन करती है तो द्विवेदी-काल की कविता... ... ... कवियों का एक हाथ समाज के हृदय पर है, कान उनके जनपथ पर उठने वाली ध्वनि के साथ है और हाथ में लेखनी है।'

—प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० १४२।

२. 'पंत' : पल्लव (नारी रूप), पृ० ११३।

३. 'अहो पूज्य भारत-महिला-गण, अहो आर्य-कुल-प्यारी
× × × ×
आर्य-जगत् में जननि पुनः निज जीवन ज्योति जगाओ।'

—भारत-गीत, पृ० ११३-१४।

४. मिलन, पृ० ६४।

त्रिपाठी ने जातीय एकता की भावना से प्रेरित होकर अनेकता में एकता का सन्देश दिया।[१] 'निराला' ने 'राम की शक्ति पूजा' में शक्ति की मौलिक कल्पना कर यह दिखाने का प्रयास किया कि न्याय का पक्ष दुर्बल होने पर भी आत्म-साधना द्वारा नवीन शक्ति अर्जित की जा सकती है।[२] इस प्रकार आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने जन-ध्वनि में स्व-ध्वनि को मिलाकर युग की आकांक्षा के अनुरूप राष्ट्रीय-चिन्तन को सशक्त वाणी दी है।

राग, मानव की संभवतः सर्वाधिक प्रबल वृत्ति है।[३] श्रद्धा संवलित राग ही भक्ति में परिणत हो जाता है।[४] इस प्रकार देश-भक्ति मूलतः राग का व्यापार है जिसका व्यक्त रूप है अपने देश के प्रति प्रेम। आधुनिक स्वच्छन्दतावादी काव्य में देश-प्रेम के अन्तर्गत प्रकृति-प्रेम, भौगोलिक विभूतियों का दैवीकरण, सांस्कृतिक परम्पराओं में आस्था तथा देशवासियों का कष्ट दूर करने का उत्साह व्यंजित है।

देश-प्रेमी अपने देश के पशु, पक्षी, लता, गुल्म, वन, पर्वत, वृक्ष, नदी, निर्झर सबको चाह-भरी दृष्टि से देखता है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने भारत-वासियों के हृदय में देश-प्रेम का भाव उत्पन्न करने के लिए प्राकृतिक उपादानों का प्रचुर उपयोग किया है। इस दिशा में सर्वप्रथम श्रीधर पाठक आगे बढ़े। 'भारत-गीत' में संगृहीत अनेक रचनाएँ ऐसी हैं जिनमें देश की प्राकृतिक विभूतियों के माध्यम से देश-प्रेम के संचार का कवि ने सफल प्रयोग किया है।[५] वैभव-सम्पन्न प्राकृतिक उपादानों के साथ ही इन कवियों ने परम्परा से उपेक्षित धनिया, मटर, गन्ना, चकवड़, इमिली, चना आदि पर भी रचनाएँ कीं। पं० मुकुटधर पाण्डेय ने फूलने वाले विविध पुष्पों तथा चहकने वाले विविध पक्षियों पर रचनाएँ करके अपने स्वाभाविक देश-प्रेम का परिचय दिया। उनकी रचना 'कुररी के प्रति', 'रजनी गंधा', 'सरोज', 'कोकिल', 'खंजन' आदि में देश-प्रेम की भावना मुखर है। डॉ०

१. स्वप्न, पृ० ६६।

२. 'निराला' : अनामिका (राम की शक्ति पूजा), पृ० १५६।

३. रवीन्द्रनाथ दरगन : छायावादी काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना, पृ० १२६।

४. 'श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।'

—चिन्तामणि भाग–१, पृ० ३२।

५. 'भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है
शुचि भाल पै हिमालय, चरणों पै सिन्धु-अंचल
उर पर विशाल-सरिता-सित-हीर-हार-चंचल'

—भारत-गीत, पृ० ५८।

गोपालशरण सिंह ने 'कादम्बिनी' और 'सुमना' में प्रकृति के अनेक आनुभूतिक चित्रों को प्रस्तुत करते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के प्राचीन भारतीय आदर्श का पुनर्स्मरण किया है।

'पंत', 'प्रसाद', 'निराला' का काव्य प्राकृतिक विभूतियों का अक्षय भण्डार है। 'प्रसाद' प्रकृति के व्याज से जन्मभूमि से प्रेम का सन्देश देते हैं।[१] 'पंत' स्वर्णिम भविष्य का स्वप्न देखते हैं[२] और 'निराला' 'बादल' के माध्यम से देश में आनन्द-रस की वृष्टि कराते हैं।[३]

आधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवियों ने देश-प्रेम के विविध आयामों को एक ही स्थान पर जुटाकर मातृभूमि के प्रति अपने उत्कट प्रेम का परिचय दिया है। श्रीधर पाठक ने 'हिन्द-वन्दना' शीर्षक कविता में सुन्दर मंत्रपूत गीत का सृजन करके जहाँ एक ओर मातृभूमि का भव्य रूप में दैवीकरण किया है वहीं उसमें भारत के शौर्य, शक्ति, वैभव, ज्ञान, धर्म, भक्ति के साथ उसकी स्वाधीनता को भी वाणी दी है।[४] विभिन्न समारोहों में गायी गयी उनकी प्रशस्तियों में भी अटूट देशानुराग की भावना निहित है। इन कवियों ने जन-जागरण के लिए अनेकशः उद्‌बोधन गीत लिखे।[५] 'निराला' के काव्यग्रन्थ 'परिमल' और 'अनामिका' में संगृहीत देश-प्रेम एवं राष्ट्रीय-भावना से सम्पृक्त रचनाएँ अपने आप में बेजोड़ हैं।[६]

---

१. 'ऊषा की पहली किरणों के साथ स्मरण करता हूँ मैं,
उस छोटे-से स्वच्छ नगर को जहाँ जन्म-भू थी मेरी।'
—प्रेम-पथिक, पृ० ७।

२. 'अलि ! क्या कहती है प्राची से, फिर होगा उज्ज्वल आकाश'
—पल्लव (स्वप्न), पृ० ६३।

३. 'अरे वर्ष के हर्ष !
बसर तू बरस-बरस रसधार !' —परिमल (बादल-राग), पृ० १६०।

४. श्रीधर पाठक : भारत-गीत (हिन्द-वन्दना), पृ० ३७-४१।

५. 'भारत, चेतहु नींद निवारो
बीती निशा उदित भए दिन-मनि, कबको भयो सकारो'
—भारत-गीत, पृ० ४४।

६. 'जागो फिर एक बार ! समर अमर कर प्राण,
× × ×
शेरों की माँद में आया है आज स्यार।'
—परिमल (जागो फिर एक बार), पृ० १८८।

मानव-जीवन की पूर्णता अर्थपुष्टि पर निर्भर है। निर्धनता की अग्नि में शमन होता हुआ भारतवासी जब रोटी, कपड़ा और मकान की चिन्ता में घुटता रहा तो उसके पास राष्ट्रीय-चिन्तन के लिए अवकाश कहाँ ? आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने भारतीय जनता में फैले दुःख-दारिद्र्य का हृदय-विदारक चित्र खींचा[१] और इस स्थिति के लिए उत्तरदायी विदेशी सत्ता को समूल उखाड़ फेंकने का जनता से आह्वान किया।[२] बिना स्वाधीनता के दुःख-दारिद्र्य से मुक्ति दिवा-स्वप्न थी। अतः इन कवियों ने ओजस्वी वाणी में क्रान्ति का शंखनाद किया।[३]

आधुनिक स्वच्छन्द कवि अतीत का आधार ग्रहण कर राष्ट्र की सोयी हुई चेतना को लौटा लाना चाहते थे। उनका विश्वास था कि देश का पुनर्जागरण, राष्ट्रीय मुक्ति और उत्थान के लिए आवश्यक है। तत्कालीन भारत की स्थिति दुःखद थी और कवियों की भावी राष्ट्र एवं समाज की कल्पना सुखद होते हुए भी अभी सिद्धि से कोसों दूर थी। इसी से 'निराला' और 'पंत' स्वर्णिम अतीत को स्मरण कर व्यग्र हो उठे।[४] इस छटपटाहट के होते हुए भी इन कवियों ने प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों से अनुप्राणित हो देश-प्रेम की भावना के प्रसार में जो योगदान दिया, वह चिरस्मरणीय रहेगा।

---

१. 'नरक-यंत्रणा से बढ़कर है छाया संकट घोर।
मानव-दल में मची हुई है त्राहि-त्राहि सब ओर।'

—मिलन, पृ० ५०।

२. 'दुखदायी शासन से अपनी सारी शक्ति हटा लो।
निज सुख-दुख का अपने ऊपर सारा भार सँभालो।
अपना शासन आप करो तुम यही शान्ति है, सुख है।
पराधीनता से बढ़ जग में नहीं दूसरा दुख है।'

—पथिक, पृ० ५०।

३. 'प्रजा रुष्ट है इस कुतंत्र से निश्चय होगी क्रान्ति।'

—मिलन, पृ० ४६।

४. (अ) 'जहाँ मिलन-शिंजन-मधुगुंजन युवक-युवति-जन मन हरता था,
× × × ×
आज उसी जीवन-वन में घन अन्धकार छाया रहता है।'

—अनामिका (अनुताप), पृ० ४८।

(ब) 'अये, विश्व का स्वर्ण स्वप्न, संसृति का प्रथम प्रभात,
कहाँ वह सत्य, वेद विख्यात।'

—पल्लव (परिवर्तन), पृ० १४०।

अतीत प्रेम :

आधुनिक स्वच्छन्द कवि त्रिकालदर्शी थे। वे एक साथ अतीतजीवी, वर्तमान-जीवी तथा भविष्यजीवी तीनों ही थे। उनका अतीतदर्शी होना वर्तमान के प्रति असन्तोष का ही परिणाम है। वर्तमान में उनकी अभिलाषाएँ, अकांक्षाएँ कुचल दी गयी थीं, उनकी अन्तरात्मा की पुकार नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह गयी थी। अतः वर्तमान से असन्तुष्ट होकर वे वैभवपूर्ण अतीत की ओर भागे और सुखद भविष्य की आशा से स्वप्नजीवी बने। इस धरती पर अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होते देख कल्पना के गरुड़ पंख पर बैठ वे आकाशचारी बने, जहाँ उन्होंने अपने स्वप्नों का महल खड़ा किया।

भारत का अतीत सर्वाङ्गीण सम्पन्नता तथा गौरवशाली सांस्कृतिक विभूतियों के लिए विख्यात है। अंग्रेजी शासन के प्रभाव से देश की सांस्कृतिक विभूतियाँ तथा बहुमूल्य पदार्थ अदृश्य होते जा रहे थे। भारत का मानचित्र बदरंग हो चला था। नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों की ह्रासोन्मुखी प्रवृत्ति, आर्थिक शोषण तथा पराधीनता की हीन भावना ने जन-जीवन को निराशा, भग्नाशा और पीड़ा से त्रस्त कर डाला था। संवेदनशील समाज-द्रष्टा कवि का अंतरंग इस स्थिति से तिलमिला उठा। भारतीय जन-मानस में नवचेतना का संचार करने के लिए, टूटे हुए मनोबल को पुनर्जीवित करने के लिए, आत्मगौरव की अनुभूति और राष्ट्रीय-चेतना का ज्ञान कराकर मन में तीव्र तड़प पैदा करने के लिए कविगण स्वर्णिम अतीत की ओर झुके। उन्होंने वैभवपूर्ण सांस्कृतिक धरोहरों की आकर्षक झाँकी प्रस्तुत कर समाज की भग्नाशा को पुनर्जीवित करने और अपने महत् कर्तव्यों के प्रति उसे सचेत करने का चिरस्मरणीय प्रयास किया।

'श्रीधर पाठक' ने भारत की भौगोलिक विभूतियों और उसकी महान् परम्परा तथा संस्कृति का गुणगान करते हुए जहाँ अपना अतीत-प्रेम व्यक्त किया,[१] वहीं भविष्य की मंगल-आशा के प्रति वे आस्थावान् भी हैं।[२]

'पं० रामनरेश त्रिपाठी' के काव्य में वर्तमान के प्रति असन्तोष का भाव ही मुखर है, लेकिन भविष्य की स्वर्णिम कल्पना पर तो उनके तीनों ही खण्डकाव्य

१. 'प्रेम का था यह आदि निवास। सभ्यता, विद्या का घर खास
प्राप्त था सब सुख बिना प्रयास। व्याप्त था विक्रम विभव विकास'

—भारत-गीत, पृ० ८६।

२. 'धृत वर्तमान-युत-भूत-भव-वर-विभूति-शत-कोटि-कर
बहु-भव्य-भेष-भूषा-भरित, जय-भविष्य-नव रूप-धर'

—वही, पृ० ८६।

आधारित हैं। भारत के स्वतन्त्र होने के दशाब्दियों पूर्व कवि ने अपनी उत्पाद्य कथा में स्वतन्त्रता-प्राप्ति का स्वप्न पिरो दिया था।[1] 'त्रिपाठी' जी का अतीत-प्रेम 'वह देश कौन-सा है ?' और 'आह्वान' शीर्षक रचनाओं में उद्दाम वेग से प्रकट हुआ है। कवि जातीय गौरव को स्मरण करते हुए देशवासियों से पूछता है—

'आदर्श नर जहाँ पर थे बाल-ब्रह्मचारी।
हनुमान, भीष्म, शंकर, वह देश कौन-सा है ?
विद्वान्, वीर, योगी, गुरु राजनीतिकों के।
श्रीकृष्ण थे जहाँ पर वह देश कौन-सा है ?'[2]

'प्रसाद' तो वस्तुतः अतीत-प्रवासी ही थे। भावुक कवि वैभवपूर्ण अतीत को स्मरण कर मर्माहत हो उठता है—

'शुभे अतीत कथाएं यद्यपि कष्ट हृदय को देती हैं।
तो भी वज्र-हृदय कर अपना, उनको तुम्हें सुनाता हूँ।'[3]

'पंत' प्रकृत्या स्वप्नजीवी थे। स्वर्णिम भविष्य की आशा-तरंगें उनके कोमल हृदय में स्पन्दित होती रहती थीं। कवि मंगलाशा के प्रति जहाँ जिज्ञासु है,[4] वहीं वह वर्तमान परिस्थिति की विभीषिका से घबड़ा कर स्वर्णिम अतीत को पुकार उठता है—

'कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन वह सुवर्ण का काल ?
राशि-राशि विकसित वसुधा का वह यौवन विस्तार ?'[5]

आधुनिक स्वच्छन्द कवि वर्तमान भारत की दयनीय दशा पर क्षोभ, दुःख तथा आक्रोश प्रकट करता हुआ मर्मस्पर्शी वाणी में अपनी व्यथा को व्यंजित करता है और प्राचीन भारतीय गौरवपूर्ण ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति एवं महापुरुषों के शौर्य का

---

१. 'हुआ स्वतन्त्र, सुसभ्य, सच्चरित, सच्चे देश निवासी।
घर-घर में सुख-शान्ति छा गई, रही कहीं न उदासी।
एक शुद्ध सच्चे प्रेमी ने आत्म-शक्ति साधन से।
मुक्त कर दिया एक देश को नरक-तुल्य शासन से।' —पथिक, पृ० ७३।

२. पं० रामनरेश त्रिपाठी : मानसी, सं० श्री गोपाल नेवटिया, पृ० ४५।

३. 'प्रसाद' : प्रेम-पथिक, पृ० ६।

४. 'अलि क्या कहती है प्राची से, फिर उज्ज्वल होगा आकाश
पर, मेरे तमपूर्ण हृदय में, कौन भरेगा प्रकृत प्रकाश।'
—पल्लव (स्वप्न), पृ० ६३।

५. 'पंत' : पल्लव (परिवर्तन), पृ० १४०।

गुणगान करते हुए भारतीयों के हृदय में नव-चेतना का संचार करता है।[१] 'निराला' की ओजस्वी वाणी 'जागो फिर एक बार', 'खण्डहर के प्रति', 'महाराज शिवा जी का पत्र', 'दिल्ली' आदि रचनाओं में गौरवपूर्ण अतीत के पुनर्स्मरण में लीन है। उनकी 'दिल्ली' शीर्षक रचना में स्वर्णिम अतीत की मनोरम झाँकी के साथ 'गीता' की कर्मयोग की गूँज भी मुखरित है।[२] इतना ही नहीं, स्वप्नदर्शी कवि वर्तमान से खीझ कर क्षितिज के उस पार एक सुखद लोक में चलने का आह्वान भी करता है—

'हमें जाना है जग के पार'[३]

इस प्रकार आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने अतीत के गौरवपूर्ण चलचित्रों को अपने काव्य-फलक पर प्रक्षेपित कर भारतीयों में नव-चेतना का संचार किया, उन नदियों, पर्वतों तथा अन्य विभूतियों की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया जो प्राचीन संस्कृति के प्रतीक हैं और जिनके साथ सहस्रों वर्षों की गौरव-गाथाएँ जुड़ी हुई हैं। युगाकांक्षा की पूर्ति में सहायक होने के कारण इन कवियों का अतीत-प्रेम निश्चय ही स्तुत्य है।

प्रकृति में रहस्य-दर्शन :

सर्वात्मवाद से प्रभावित होने के कारण आधुनिक स्वच्छन्द कवि प्रकृति के किसी भी रूप को लघु या निरपेक्ष नहीं मानता। उसे प्रकृति का प्रत्येक उपादान, उसका प्रत्येक क्रिया-व्यापार एक ही विराट् जीवन से स्पन्दित, तरंगित एवं संवेदित प्रतीत होता है। इसी आधार पर इन कवियों ने प्रकृति को चिन्मय सत्ता दी और उस पर मधुर अथवा कठोर व्यक्तित्व का आरोपण किया। प्रकृति में रहस्य-दर्शन और परोक्ष के प्रति जिज्ञासा का भी यही आधार है।

आधुनिक स्वच्छन्द कवि अन्तर्दृष्टि विधायिनी कल्पना-शक्ति द्वारा प्रकृति की अन्तःस्पन्दित सूक्ष्म तरंगों को भी पकड़ने में समर्थ हो सका। इस प्रकार की सूक्ष्म-दर्शी अन्तर्दृष्टि का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य में सर्वथा अभाव दिखाई देता है।

१. (क) माधवी, पृ० ७६। (ख) संचिता, पृ० १५६।

२. 'क्या वह यही देश है—
भीमार्जुन आदि का कीर्ति क्षेत्र,
× × ×
श्रीमुख से कृष्ण के सुना था जहाँ भारत ने
गीता-गीत-सिंहनाद—
मर्मवाणी जीवन-संग्राम की—
सार्थक समन्वय ज्ञान-कर्म-भक्ति-योग का ?
—अनामिका, पृ० ५८।

३. 'निराला' : परिमल (गीत), पृ० ९९।

मनुष्य और प्रकृति के बीच आदिकाल से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है लेकिन वह सम्बन्ध-सूत्र पहले स्थूल आधार पर ही जुड़ा था। मनुष्य प्रकृति के आह्लादक रूप को देखकर आनन्दित होता और भयानक से भयग्रस्त। आधुनिक विज्ञान ने प्रकृति का रहस्यभेदन कर मनुष्य के सामने उसका विराट् अस्तित्व, उसका गूढ़ मर्म खोल कर रख दिया। फलस्वरूप चिरपरिचित प्रकृति अब उसे सर्वथा अपरिचित, रहस्य-रजित तथा गूढ़ प्रतीत होने लगी। प्राचीन अंधविश्वास का स्थान जिज्ञासापूर्ण विवेक ने ले लिया। संवेदनशील कवि का मन परोक्ष के प्रति अनेकानेक जिज्ञासाओं से भर उठा। अपनी जिज्ञासा का समाहार पाने के लिए वह अपनी सूक्ष्म कल्पना-शक्ति द्वारा प्रकृति के गूढ़ रहस्यों में अदृश्य, अव्यक्त सत्ता के अस्तित्व की खोज करने लगा। प्रकृति में रहस्य-दर्शन की मौलिक प्रेरणा उसे कवीन्द्र रवीन्द्र की 'गीतांजलि' और अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों से मिली। प्रकृति में अन्तश्चेतना के दर्शन से रोमाण्टिक कवि 'वर्ड्सवर्थ' की चिन्तन-प्रक्रिया ने आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की जिज्ञासा को सर्वाधिक प्रभावित किया।

'स्वर्गीय वीणा' शीषर्क रचना में 'श्रीधर पाठक' की जिज्ञासा उस रहस्य को जानने में प्रकट हुई, जिसके दिव्य संगीत पर समस्त ब्रह्माण्ड नाच रहा है।[१] प्रकाश-तरंगों की चराचरव्यापी खोज में पं० रामनरेश त्रिपाठी की यही जिज्ञासा मुखरित है।[२] प्रेम और कुतूहल मिश्रित यही जिज्ञासा पं० मुकुटधर पाण्डेय की इन पंक्तियों में भी टपक रही है—

'लाली यह किसके अधरों की लख जिसे मलीन नक्षत्र-हीर।
× × × ×
किस सदयबन्धु के आँखों से है टपक रहा यह प्रेम-नीर।'[३]

जिस अखण्ड संगीत के रहस्य को जानने के लिए श्रीधर पाठक जिज्ञासु हैं, अन्ततः पं० रामनरेश त्रिपाठी ने उस संगीत का रहस्य जान ही लिया।[४]

---

१. 'भरे गगन में हैं जितने तारे हुए हैं मदमस्त गत पै सारे।
समस्त ब्रह्माण्ड भर को मानो दो उँगलियों पर नचा रही है।।
सुनो तो सुनने की शक्तिवालों सको तो जाकर के कुछ पता लो।
है कौन जोगन ये जो गगन में कि इतनी चुलबुल मचा रही है।।'
—मनोविनोद, पृ० १६४।

२. 'वह कौन-सी है छवि, खोजता जिसे है रवि!
प्रतिदिन भेज दल अमित किरन की।' —मानसी, पृ० ११।

३. कवि-भारती, पृ० २७६।

४. पं० रामनरेश त्रिपाठी : पथिक, पृ० ४३।

'प्रसाद-युग' में आकर प्रकृति-रहस्य का स्वरूप जिज्ञासा की पराकाष्ठा पर पहुँच गया। 'प्रसाद', 'पंत' और 'निराला' के काव्य में कुतूहल-मिश्रित जिज्ञासा स्थान-स्थान पर लक्षित होती है। ये कवि मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि थे और सौन्दर्य तथा स्वाभाविक रहस्य-भावना के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। मानव प्रकृति के रमणीय दृश्यों को देखकर अव्यक्त के प्रति जिज्ञासु हो, परम रमणीय की खोज करने लगता है। इसी भाव की अभिव्यक्ति इस युग के स्वच्छन्द काव्य में हुई है।

'प्रसाद' ने प्रेम और सौन्दर्य की मादक भावनाओं को दार्शनिक रूप में ग्रहण किया है। वेदना के भार से बोझिल कवि किसी अज्ञात विश्व में रहने वाले प्रियतम के अनुपम सौन्दर्य में रागरंजित किरण से जिज्ञासु हो पूछ बैठता है—

'किसी अज्ञात विश्व की विकल-वेदना-दूती-सी तुम कौन।'[1]

'वीणा' के कवि 'पंत' में यही जिज्ञासा शिशु-सुलभ सरलता के साथ प्रकट हुई। कवि विस्मय और कुतूहल-मिश्रित बाल-जिज्ञासा के साथ 'बाल-विहंगिनि' से पूछता है कि—

'प्रथम-रश्मि का आना रंगिणि।
तूने कैसे पहचाना।'[2]

'पल्लव' में नक्षत्रों से आता हुआ 'मौन निमंत्रण' भी उसी जिज्ञासा का विकसित रूप है, जिसमें 'नक्षत्रों' के माध्यम से 'न जाने कौन' कवि को अनवरत मौन निमन्त्रण देता रहता है—'न जाने नक्षत्रों से कौन निमन्त्रण देता मुझको मौन'[3] जब वह इस अज्ञात संकेत के उत्स को नहीं समझ पाता तो अन्ततः कह उठता है—'नहीं कह सकती तुम हो कौन ?'[4]

'निराला' का रहस्य अध्यात्म-सम्बद्ध है। उनकी रचना 'तुम और मैं' तथा 'कण' में अद्वैत-दर्शन के आधार पर परम तत्त्व को समझने की चेष्टा की गयी है। इस दार्शनिक चिन्तन के अतिरिक्त कवि ने अव्यक्त तत्त्व के साथ अपनी मधुमयी क्रीड़ा को भी हृदयस्पर्शी वाणी दी है।[5]

---

१. 'प्रसाद' : झरना (किरण), पृ० १४।
२. 'पंत' : वीणा, पृ० ८०।
३. 'वही' : पल्लव (मौन निमन्त्रण), पृ० ८५।
४. वही : पृ० ८७।
५. 'रूप की सजल प्रभा में आज, तुम्हारी नग्न कान्ति, नव लाज।
मिल गये एक प्रणय में प्राण, रुक गया प्रिय, तब मेरा गान॥'
—परिमल : पृ० ६५।

प्रकृति का मानवीकरण :

मानवीकरण आधुनिक स्वच्छन्द काव्य की अत्यन्त लोकप्रिय प्रवृत्ति है। इसे एक कला के रूप में यहाँ स्वीकृति तथा महत्ता मिली। प्रकृति में प्राण-प्रतिष्ठा का प्रमुख आधार मानवीकरण ही है। प्राय: सभी आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने इसे बड़े उत्साह से अपनाया है। यह प्रवृत्ति हिन्दी काव्य में पाश्चात्य साहित्य से संक्रमित होकर आयी है। द्विवेदी-युग के पूर्व हिन्दी काव्य में इस प्रवृत्ति का दर्शन नहीं मिलता। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में कवियों की व्यक्तिवादी आत्मरंजना एवं आत्म-प्रकाशन की सहज, सरल आलम्बन बन प्रकृति मानवीय क्रिया-व्यापारों को स्वयं सम्पादित करने लगी, जिससे इन कवियों की अतृप्त अभिलाषाओं का समाहार मिल सका। दूसरी ओर प्रकृति कल्पना-वैभव का व्योमव्यापी क्षितिज पाकर मानवीय भावनाओं की क्रीड़ास्थली बन गयी।

पं० श्रीधर पाठक ने 'कश्मीर सुषमा' में प्रकृति-सुन्दरी के अनेकशः कार्य-व्यापारों को मानवीय गुणों से सम्पन्न किया है।[१] पं० रामनरेश त्रिपाठी ने मिलन में प्रवाहशीला तरंगिणी के सौन्दर्य को रूप-गर्विता नारी के उच्छलित सौन्दर्य के रूप में देखा है।[२] ठाकुर गोपालशरण सिंह ने 'कादम्बिनी' में पवन और लतिका-लता के कार्य-व्यापार में प्रणय-व्यापार की अनुभूति की।[३] पं० मुकुटधर पाण्डेय ने विहगों के कल-कूजन में व्यंग्य-वचन का आभास पाया।[४]

'प्रसाद' 'वर्ड्सवर्थ' की भाँति सचेतन प्रकृति के क्रिया-व्यापार में मानवीय प्रेम के आदान-प्रदान की अनुभूति करते हैं।[५] 'भक्त' जी को पवन के चलने, कलियों

---

१. 'प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति भेस, छनिक छवि छिन-छिन धारति।'—कश्मीर सुषमा, पृ० ५।

२. 'रूप गर्विता तरंगिणी का था सब सुन्दर अंग।
छवि छलकी पड़ती थी मानो तट पर चढ़ी तरंग॥' —मिलन, पृ० २७।

३. 'खोल-खोल कर लतिका लता का अवगुंठन
बार-बार चूमा करता है, सुन्दर बदन पवन।'
—कादम्बिनी (अनन्त यौवन), पृ० २६।

४. 'विहगों ने भी मुझ पर छोड़ा
व्यंग्य वचन के बाण।' —कविता-कौमुदी (विश्वबोध), पृ० ५५६।

५. 'उषा का प्राची में आभास, सरोरुह का सर बीच विकास।
कौन परिचय था ? क्या सम्बन्ध···?
राग से अरुण घुला मकरंद मिला परिमल से जो सानन्द।
वही परिचय था, वह सम्बन्ध, प्रेम का मेरा तेरा छन्द॥'
झरना (परिचय), पृ० ५।

के हिलने और खिलने में मानवीय भाव-बोध का दर्शन होता है।[1] मानवीकरण की यह प्रवृत्ति 'निराला' की 'संध्या सुन्दरी', 'बादल राग', 'जमुना के प्रति', 'तरंगों के प्रति', 'जुही की कली', 'शेफालिका' आदि रचनाओं में अपने विकसित रूप में विद्यमान है। 'पंत' की 'छाया', 'बादल', 'मधुकरी', 'निर्झरी' आदि रचनाओं में प्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म भाव-बोध के साथ मानवीकृत है।

सर्वात्मवाद :

सर्वात्मवाद, स्वच्छन्दतावाद का दार्शनिक पहलू है। इसका मूल उत्स अद्वैत दर्शन है। सर्वात्मवाद की उदात्त दार्शनिक भावभूमि पर विचार करते हुए डॉ० जोशी ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है—"इस निखिल विश्व में एक ही प्राणधारा शाश्वत रूप में प्रवहमान है। इस दृष्टि से सूक्ष्मतम तत्त्व में भी उसी पूर्णता का समावेश है जो हमारे जीवन में है। विश्व के समस्त जीव उस महती सत्ता के ही विभिन्न स्वरूप हैं।"[2] उस चराचरव्यापी परमसत्ता के चराचर स्वरूप का दर्शन विकसित ज्ञानचक्षु से ही सम्भव है। संवेदनशील कवि इस महासत्य की अनुभूति के लिए कल्पना-वैभव का सहारा लेता है और अपनी करुण एवं वेदना की अन्तरंग भावना का परिविस्तार कर उसे व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करता है।

आधुनिक स्वच्छन्द कवि सर्वात्मवाद की अवधारणा से प्रभावित है। उसने ईश्वर के परम्परागत निरपेक्ष रूप को ग्रहण न कर उसे अनन्त सत्ता एवं महत् प्राण-शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। सृष्टि और जीवन दोनों ही अखण्ड सत्ताएँ हैं और जगत् के प्रत्येक अणु-परमाणु में एक ही प्राणधारा प्रवाहित है। सृष्टि का एक-एक उपकरण सूक्ष्म-से-सूक्ष्म कण परम तत्त्व की सत्ता और उसकी महानता को व्यक्त करते हैं।[3] यही नहीं, एक ही अखण्ड संगीत की शाश्वत ध्वनि सृष्टि के प्रत्येक अणु-परमाणु में गूँज रही है।[4] इस महासत्य की नियामक और उसमें निमग्न रहने वाली वही एक परम सत्ता है।

---

१. गुरुभक्त सिंह 'भक्त' : सरस-सुमन, पृ० २।

२. कृष्ण बल्लभ जोशी : नव्य हिन्दी समीक्षा, पृ० ६६।

३. 'एक-एक तृण बतलाता है जगदीश्वर की सत्ता।
व्यापक है लघु से लघु में भी उसकी विपुल महत्ता।'

—पथिक, पृ० ४३।

४. 'एक मधुर संगीत हो रहा है ब्रह्माण्ड-भवन में।
उसकी ही ध्वनि गूँज रही है अणु, परमाणु, गगन में।

—वही, पृ० ४३।

सर्वात्मवाद की अवधारणा से अनुप्राणित हो आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने एकता, समानता, समरसता और चराचरव्यापिनी प्रेम एवं सौन्दर्य भावना को अपने काव्य में वाणी दी। सर्वात्मवाद से अनुप्राणित हो 'प्रसाद' विश्व को ईश्वर का प्रतिरूप मानते हैं।[1] 'पंत' लोक-सेवा की भावना में ब्रह्म के सत्य स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं।[2] पं० रामनरेश त्रिपाठी प्रकृति-प्रेम से वंचित न करने की याचना करते हैं।[3] आधुनिक स्वच्छन्द कवि सर्वात्मवाद से कितना अधिक प्रभावित हुए हैं इसे 'पंत' की 'विश्वव्याप्ति', 'निराला' की 'कण' तथा पं० रामनरेश त्रिपाठी की 'अन्वेषण' शीर्षक रचनाओं में देखा जा सकता है जिसमें सर्वात्मवादी अद्वैत दर्शन काव्य में घुलमिल कर काव्य-रस बन गया है।[4]

सर्वात्मवाद से अनुप्राणित होकर ही आधुनिक स्वच्छन्द कवि रहस्य-दर्शन की ओर प्रवृत्त हुए और उसकी रहस्यानुभूति के आलम्बन बने प्रकृति के विविध उपादान एवं उनके नैसर्गिक क्रिया-व्यापार। आधुनिक विज्ञान ने प्रकृति के चेतन स्वरूप को अनावृत किया। कवियों ने उसके भीतर झाँककर देखा तो वे आनन्द से झूम उठे। उन्हें प्रकृति में एक अज्ञेय एवं अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति हुई। उनकी कल्पना, भावना एवं अनुभूति में फूल मुस्कराने लगे, लहर नृत्य करने लगी, सरिता इठलाने लगी। फलस्वरूप वे उस नियन्ता के अस्तित्व के प्रति आस्थावान् हो उठे जिसके नियंत्रण में समस्त ब्रह्माण्ड का नियमन हो रहा है।[5]

---

१. 'प्रकृति मिला दो विश्व-प्रेम में विश्व स्वयं ही ईश्वर है।'—प्रेम-पथिक, पृ० ३०।

२. 'वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप हृदय में बनता प्रणय अपार,
लोचनों में लावण्य अनूप, लोक सेवा में शिव अविकार।'—पल्लव, पृ० १५०।

३. 'करो न मुझको देवि! दयामयि! वंचित प्रकृति-प्रणय से।'
—पथिक, पृ० २५।

४. (क) 'तुम हो अखिल विश्व में या यह अखिल विश्व है तुममें।
अथवा अखिल विश्व तुम एक यद्यपि देख रहा हूँ तुममें भेद अनेक।'
—परिमल, पृ० १५७।

(ब) 'तू रूप है किरण में सौन्दर्य है सुमन में।
तू प्राण है पवन में विस्तार है गगन में॥'
—मानसी, संग्रहकर्त्ता श्री गोपाल नेवटिया, पृ० २।

५. (क) 'एक अनन्त शक्ति वसुधा का संचालन करती है।' —पथिक, पृ० ३५।

(ख) 'भरे गगन में हैं जितने तारे, हुए हैं मदमस्त गत पै सारे,
समस्त ब्रह्माण्ड भर को मानो, दो उँगलियों पर नचा रही है।'
—मनोविनोद, पृ० १६४।

सर्वात्मवादी चिन्तन-प्रक्रिया की छत्रच्छाया में मानव और प्रकृति के बीच रहस्यालोकित आदान-प्रदान हुआ। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने प्रकृति को आत्म-रंजित करके देखा और अनुभव किया कि परमसत्ता प्रकृति के माध्यम से अव्यक्त संकेतों द्वारा मानव का पथ-प्रदर्शन करती है। सर्वात्मवाद की इसी भावना से प्रेरित हो 'पंत' नक्षत्र को 'ऐ अनन्त की अगम कल्पना' कहकर सम्बोधित करते हैं और फिर उसी नक्षत्र में महती आत्मा का दर्शन पाकर पुकार उठते हैं—

'न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन।'[१]

इस प्रकार सर्वात्मवादी वेदान्त दर्शन आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में घुलमिल कर काव्य-रस बन गया है। मानव में ईश्वर-दर्शन ही सच्चा ईश्वर-दर्शन है, यह वेदान्त का स्वर है।[२] आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने इस दर्शन को समाज-सापेक्ष बनाकर मानवतावाद में पर्यवसित कर दिया है।

मानवतावाद :

मानवतावाद, सांस्कृतिक पुनरुत्थान युग का एक विशिष्ट चिन्तन है। जब मानव की शाश्वत प्रेम-भावना विवेकयुक्त होकर अन्य प्राणियों की आत्मानुभूति को अपने अन्तःकरण में अनुभव करने लगती है तब मानवतावाद का उदय होता है। इस प्रकार मानवतावाद, सर्वात्मवादी अद्वैत दर्शन का ही लौकिक प्रयोग है, जिसमें मानव-प्रेम नैतिक मूल्यों से बँधा रहता है।[३]

'मानव-प्रेम ही ईश्वर-प्रेम है, यह मानवतावाद का मूलमन्त्र है।'[४] यही बात प्रकारान्तर से 'प्रसाद' ने भी कहा है—'प्रकृति मिला दो विश्व-प्रेम में, विश्व स्वयं ही ईश्वर है।'[५] यह विश्व-प्रेम मानवीय प्रेम ही तो है। इसी मानवीय-प्रेम को आधुनिक स्वच्छन्द कवि ईश्वर का प्रतिबिम्ब मानते हैं।[६] अर्थात् मानव

---

१. 'पंत' : पल्लव (मौन-निमन्त्रण), पृ० ८५।
२. प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ५४, संस्करण १९५० ई०।
३. 'मानवतावाद शाश्वत सिद्धान्त है जो नैतिक मूल्यों को स्वीकार करता है।'
—डॉ० रवीन्द्रनाथ दरगन : छायावादी काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना, पृ० १३३, संस्करण १९७३ ई०
४. प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ५४।
५. 'प्रसाद' : प्रेम-पथिक, पृ० ३०।
६. (क) प्रेम राम है, राम प्रेम है, है वह सब में रमा हुआ।'
—सरस-सुमन, पृ० ११।
(ख) 'ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है, प्रेम हृदय आलोक।' —मिलन, पृ० २३।

से प्रेम करना ही ईश्वर से प्रेम करना है। आधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवियों ने परम्परागत पूजा, अर्चना, आराधना को युगाकांक्षा के अनुरूप मोड़ दिया है। उन्होंने प्राणिमात्र में परमसत्ता की अन्तर्भुक्ति का अनुभव कर मानवीय प्रेम को शक्ति, भक्ति और आराधना का आलम्बन बनाया।[1] इस शक्ति का मूल उत्स वह प्रभु है जिसकी महत् आत्मा की जन-जन, कण-कण में व्याप्ति है। मानव के पीड़ित होने का तात्पर्य उस परम आत्मा को पीड़ा-ग्रस्त होना है। अतः श्रीधर पाठक पृथ्वी पर हो रहे अत्याचार से व्यथित होकर मानवतावादी भावना से संवेदित हो, प्रभु से मुक्ति के लिए अभ्यर्थना करते हैं क्योंकि उन्हें विश्वास है कि मानव-मानव के पारस्परिक विद्वेष की आग से झुलसती हुई धरणी की उष्णता को वही शान्त कर सकता है।[2] कवि की इस प्रकार के मानवीय चिन्तन में प्रकारान्तर से गीता की ही गूंज है।[3]

'स्व' और 'पर' की सीमा पार कर जब कवि निर्लिप्त और निरपेक्ष भाव से सृष्टि को देखता है तो उसे जगत् के कण-कण में एक ही अव्यक्त सत्ता प्रतिभासित होती दिखाई देती है। चिन्तन की इस उदात्तावस्था पर पहुँचकर उसके हृदय में सामरस्य की भावना का उदय होता है और वह समस्त विश्व को, सम्पूर्ण मानव जाति को संवेदना-सम्पृक्त होकर देखने लगता है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों का मानवतावाद इसी चिन्तन-प्रक्रिया का परिणाम है। उनका अन्तर्मुखी चिन्तन ही बहिर्मुख होकर सारे विश्व में छा गया है। उनकी करुणा, वेदना तथा सुख-दुःख की अनुभूति समाज के सुख-दुःख बन गये हैं और समाज का सुख-दुःख उनकी करुणा एवं वेदनानुभूति की आधारभूमि। जब 'प्रसाद' और 'पंत' अपनी आन्तरिक वेदना से व्यथित होते हैं तो उन्हें सम्पूर्ण विश्व में, समस्त मानव समुदाय में वेदना का ही प्रसार दिखाई देता है।[4]

---

१. 'प्रेम शक्ति है, प्रेम भक्ति है, जग है इसमें रमा हुआ।'—सरस-सुमन, पृ० ११।

२. 'जब जब धरणि पै प्रभु ! ह्रास हुआ
थल-थल पाप का प्रबल गर्तित त्रास हुआ
जग, सुख वर्त्म से विमुख हो, दुख ग्रास हुआ
तब-तब तू हुआ उदय, दुर्नय-नाश हुआ।' —भारत-गीत, पृ० ६।

३. 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।' —श्रीमद्भगवद्गीता, पृ० ८४।७।

४. (अ) 'वेदना विकल फिर आई मेरी चौदहों भुवन में,
सुख कहीं न दिया दिखाई विश्राम कहाँ जीवन में।' —आँसू, पृ० ५३।

(ब) 'वेदना !—कैसा करुण उद्गार है।
वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह।' —ग्रंथि, पृ० ४०।

मानवतावाद का दूसरा पक्ष पर्याप्त सशक्त है। इसके अन्तर्गत आधुनिक स्वच्छन्दतावादी काव्य में सह-अस्तित्व, सहानुभूति एवं करुणा की भावना का मर्म-स्पर्शी रूपायन हुआ है। सर्वात्मवादी दर्शन के प्रभाव से कवि सर्वत्र उसी एक सत्-चित् का दर्शन करने लगा। फलतः उसके अतःकरण में संवेदना, करुणा एवं सहानु-भूति का ज्वार-सा उठने लगा, जो मानव-मानव के बीच सहिष्णुता, सह-अस्तित्व और समानता की भावना के प्रसार में सहायक सिद्ध हुआ। इस प्रकार आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने सर्वात्मवाद को काव्य में समाज-सापेक्ष मोड़ देकर उसे युगाकांक्षा के अनुरूप मानवतावाद में अन्तर्लीन कर दिया है। इन कवियों के काव्य में करुणा की एक ऐसी अन्तर्धारा प्रवाहित हुई है जो मावन-मानव को एकसूत्र में बाँधने में सहायक है।

'प्रसाद' स्वयं को मिटाकर भी जगत् के हित-सम्पादन के लिए कृत संकल्प हैं।[१] दीन-दुखियों तथा श्रमिकों की व्यथा को देख उनके हृदय की सम्पूर्ण करुणा छलक पड़ती है।[२] पं० रामनरेश त्रिपाठी साधु के माध्यम से भ्रमित तथा पथभ्रष्ट प्राणियों के सुख की कामना करते हुए विश्व में निःस्वार्थ प्रेम की ज्योति जलाने का सन्देश देते हैं।[३] 'पथिक' की नायिका प्राणि-मात्र के चिरन्तन सुख की कामना करती हुई अपने को सहर्ष बलिदान कर देती है।[४] इस प्रकार कवि देशवासियों तथा विश्व-मानव समाज के समक्ष त्याग और बलिदान की मानवीय भावना का आदर्श प्रस्तुत करता है जिससे विश्व उदात्त-प्रेम के आलोक से आलोकित हो, शाश्वत आनन्द का भोग कर सके, क्योंकि उसे पता है—'ईश्वर-भक्ति, लोक-सेवा है, एक अर्थ दो

---

१. 'हे करुणे ! सदा सुहागिन, मानवता सिर की रोली,

× × ×

निर्मल जगती को तेरा, मंगलमय मिले उजाला।' —आँसू, ६१-६३।

२. दीन दुखियों को देख आतुर अधीर अति,
करुण के साथ उनके भी कभी रोते चलो;
थके श्रमी जीवों के पसीने भरे सीने लग,
जीने को सफल करने के लिये सोते चलो।' —झरना (तुम), पृ० ५१।

३. 'सुखी रहो, निःस्वार्थ प्रेम की जग में ज्योति जगाओ।
भ्रम में भूले भटके भव को सुख की राह लगाओ॥' —पथिक, पृ० २६।

४. 'बड़े भाग्य से यह शुभ अवसर आज अचानक आया।
इस अनन्त सुख की सुधि करती आज तजूँगी काया॥' —पथिक, पृ० ५६।

नाम ।'[१] पं० रामनरेश त्रिपाठी के तीनों ही खण्डकाव्यों के उत्पाद्य कथानकों में मानवतावादी दर्शन का काव्यगत संयोजन बड़े ही स्वाभाविक रूप से अनेक स्थलों पर हुआ है । 'निराला' के काव्य-संग्रह 'परिमल' में संगृहीत 'विधवा', 'भिक्षुक', 'दीन' और 'अनामिका' में संगृहीत 'तोड़ती पत्थर' और 'कहाँ देश है' में कवि की करुणा एवं संवेदना का अजस्र स्रोत प्रबल वेग से फूट पड़ा है । 'पंचवटी-प्रसंग' में कवि राम के माध्यम से सेवा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहता है—

'सेवा से चित्त शुद्धि होती है ।
शुद्ध चित्तात्मा में जगता है प्रेमाकुंर ।'[२]

जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों, स्वार्थ और अज्ञान में घिरा मानव नवयुग के लिए अनुपयोगी सिद्ध हो रहा था । ऐसे समय में आधुनिक स्वच्छन्द कवि विश्व में नयी ज्योति के प्रसार की कामना करता है—'नव किरणों के तारों से जग की यह वीणा बाँधो,'[३] ताकि 'फिर नवल कमल-वन फूले ।'[४]

मिथक :

'मिथक' अंग्रेजी के 'मिथ' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है । भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने मिथक का प्रत्यक्ष विवेचन नहीं किया है । पाश्चात्य विचारकों ने 'मिथ' की परिकल्पना पर गहराई से विचार कर इसके प्रति अपना मोह और क्षोभ दोनों ही व्यक्त किया है । 'डेविड विडले', 'कैसिरेर', 'ब्लैकमर', 'काहलर', 'नीत्से', 'युंग' आदि अंग्रेजी विचारकों के अनुसार मिथक का रूप, कथात्मक; घटनाएँ, मानव-जीवन की प्रासंगिकता से युक्त अतिमानवीय; रचना-प्रक्रिया, सत्य-प्रतीति से सम्पृक्त कल्पना प्रधान; सृष्टि-क्षेत्र, आदिम मानव-समूह का समष्टि-मन तथा सत्ता, सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है जिसमें मानव और प्रकृति की अभेद-चेतना निहित है ।[५]

'मिथक' आदिम मानव की प्रकृति के साहचर्य से उद्दीप्त रागात्मक प्रतिक्रियाओं की साधारणीकृत कल्पनाप्रसूत बिम्बात्मक अभिव्यक्ति है । मिथक-सृजन में क्रियाशील रागात्मक प्रतिक्रियाएँ भाव-स्वरूपा होने के कारण अमूर्त होती हैं जिन्हें बोधगम्य बनाने के लिए आदिम मानव-समूह द्वारा इद्रियजन्य बोधों का उसी प्रकार सहारा लिया गया जिस प्रकार आज का विकसित मानव, सौन्दर्य को बोधगम्य बनाने के लिए स्वादेन्द्रिय बोधक शब्द 'लावण्य' का सहारा लेता है जब कि सौन्दर्य नमकीन

१. पं० रामनरेश त्रिपाठी : मिलन, पृ० १२ ।
२. 'निराला' : परिमल (पंचवटी-प्रसंग), पृ० २३९ ।
३. वही : (वासन्ती), पृ० ७३ ।
४. वही : पृ० ७४ ।
५. डॉ० नगेन्द्र : मिथक और साहित्य, पृ० ६-१३, संस्करण १९७८ ई० ।

नहीं होता। अन्तर्जगत् में अमूर्त भावों का सृजन तथा बिम्बात्मक भाषा में उसका बाह्य रूपायन ही मिथक है। "यह मूलतः आदिम-मानव के समष्टि-मन की सृष्टि है जिसमें चेतन की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधान्य रहता है।"[१] वास्तव में जब बिम्ब जातीय जीवन के विश्वास का अंग बनकर आते हैं तब वे ही मिथक बन जाते हैं।[२]

मिथक में समूह मानव-जीवन की अस्पष्ट आकांक्षाओं एवं भावानुभूतियों का प्रतीकात्मक रूपायन होता है। मिथक के कथापात्र तथा अन्य उपादान प्रतीकवत् अभिव्यक्ति करते हैं। वस्तुतः 'प्रतीकों का गुच्छ ही मिथ है।'[३] प्रतीकों में निहित रूढ़ियाँ किसी-न-किसी कथानक का संश्लिष्ट बिम्ब प्रस्तुत करती हैं।

मिथकीय कथाएँ काव्य न होकर काव्य-सृजन की उत्प्रेरक हैं, जिनका अस्तित्व विकसित भाषा के पूर्व ही मूर्त रूप ग्रहण कर चुका था। भाषा-वैज्ञानिकों की मान्यता है कि मानव-भाषा के आदिम रूप अनिवार्यतः मिथकीय थे। मिथक सत्यासत्य के बीच मानव-संस्कृति के आधारभूत अंग हैं जो जीवन की भौतिक सीमाओं को तोड़कर मानव-चेतना को परमतत्त्व की अनुभूति कराते हैं। आज के भौतिकवादी समाज में जब कि सांस्कृतिक मूल्य तेजी से टूट रहे हैं, मिथकीय कथाओं की प्रासंगिकता और भी बढ़ गयी है।

हिन्दी काव्य में आधुनिक काल के पूर्व मिथकीय प्रयोगों का प्रचलन नहीं था। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने प्रथम बार अपने प्रगीत मुक्तकों में मिथक को स्थान दिया। प्रगीत मुक्तकों में विभावन-व्यापार (मूर्त-विधान) की सत्ता निश्चित रूप से रहती है जिसके कारण मिथक-कथा की अन्तर्व्याप्ति का अवसर बना रहता है। आधुनिक हिन्दी स्वच्छन्द काव्य के प्रगीतों में मिथकों की रमणीय छटा देखने को मिलती है।

आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने अपने काव्य में रमणीयता लाने के लिए दो रूपों में मिथकीय प्रयोग किया है—प्रथम, किसी एक मिथक का आधार ग्रहण कर; द्वितीय, एक से अधिक मिथकों को एक स्थान पर संगुम्फित कर। श्रीधर पाठक ने अपनी 'व्योम वीणा'[४] रचना में प्रथम प्रकार के सरल मिथक का संयोजन किया है। पं मुकुटधर पाण्डेय के काव्य में एकाकी मिथक की एक सरल योजना द्रष्टव्य है—

१. डॉ० नगेन्द्र : मिथक और साहित्य, पृ० ७।
२. आनन्दमोहन उपाध्याय : 'काव्य में मिथ' शीर्षक निबन्ध, पृ० ५५, हिन्दुस्तानी त्रैमासिक, भाग—४३, अंक १, संस्करण १९८२ ई०, प्रकाशक हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।
३. वही, पृ० ५५।
४. श्रीधर पाठक : मनोविनोद (व्योम वीणा), पृ० १६४।

'नील गगन में इसकी क्या छबि छा रही,
श्वेत-गंग की धार उतर क्या आ रही।'[१]

भारतीय पुराण-विद्या में आकाश और पृथ्वी के प्रणय-व्यापार का मिथक प्रसिद्ध है। वस्तुतः यह एक सार्वभौम सृष्टि-मिथक है। आकाश से होने वाली वृष्टि से ही पृथ्वी उर्वरा होकर सस्यश्यामला बनती है। इस मिथक के आधार पर 'प्रसाद' ने 'झरना' में संगृहीत मुक्तक 'मिलन' में स्वर्ग (आकाश) को पुरुष रूप में तथा मेदिनी (पृथ्वी) को नारी रूप में चित्रित कर संयोग श्रृंगार की अनुपम सृष्टि की है।[२]

'पंत' की 'अनंग' शीर्षक कविता में एकाधिक जटिल मिथकों का रमणीय गुन्थन द्रष्टव्य है—

'कहाँ मेघ औ' हंस ? किन्तु तुम, भेज चुके संदेश अजान
तुड़ा मरालों से मन्दर धनु जुड़ा चुके तुम अगणित प्राण !

× × ×

हे त्रिलोकजित ! नव वसंत की, विकच पुष्प शोभा सुकुमार
सहम तुम्हारे मृदुल करो में, झुकी धनुष-सी है साभार।'[३]

इस छन्द में 'मेघदूत', 'नलोपाख्यान', 'नैषध महाकाव्य' तथा 'धनुष यज्ञ' के मिथक बीज रूप में संगुम्फित हैं। इसकी सांगोपांग व्याख्या के लिए अत्यन्त प्रबुद्ध भावयित्री प्रतिभा अपेक्षित है।

'निराला' के दीर्घ प्रगीत 'यमुना के प्रति' में अनेक मिथकों की सुन्दर योजना हुई है जिसमें मिथक-कथाएँ अन्तर्व्याप्त हैं। नीचे एक छन्द प्रस्तुत है जिसमें 'वंशीवट', 'नटनागर श्याम', 'यमुना के पनघट' तथा 'वृन्दावन' से सम्बद्ध कई मिथक कथाएँ बीज रूप में अन्तर्भुक्त हैं—

'बता, कहाँ अब वह वंशीवट ? कहाँ गये नटनागर श्याम ?
चल-चरणों का व्याकुल पनघट, कहाँ आज वह वृन्दाधाम ?'[४]

---

१. सम्पा० पं० रामनरेश त्रिपाठी : मुकटधर पाण्डेय, कविता-कौमुदी, भाग-२, पृ० ५६।
२. 'इस हमारे और प्रिय के मिलन से, स्वर्ग आकर मेदिनी से मिल रहा।'
—झरना, पृ० ४२।
३. 'पंत' : पल्लव (अनंग), पृ० ८१-८२।
४. 'निराला' : परिमल (यमुना के प्रति), पृ० ४३।

इसी प्रकार 'पंत' के 'पल्लव'[१] तथा 'निराला'[२] के 'परिमल' और 'अनामिका'[३] काव्य-संग्रहों में मिथकीय कथाओं का आधार ग्रहण कर अनेक रमणीय बिम्बों की अवतारणा की गयी है। जब समाज में नैतिक मूल्यों का तेजी से ह्रास हो रहा था, आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने मिथकीय कथाओं को अपने काव्य में पुनर्स्थापित कर जिस प्रासंगिकता का परिचय दिया, वह निश्चय ही प्रशंसनीय है। आज तो इनकी प्रासंगिकता और भी बढ़ गयी है।

प्रगीतात्मकता :

'प्रगीत' शब्द अंग्रेजी के 'लिरिक' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। हिन्दी में प्रगीत रचना-विधान युग-बोध के अनुरूप आधुनिक स्वच्छन्द काव्य के विकास के साथ ही आरम्भ हुआ। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों ने अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवि 'वर्ड्सवर्थ', 'शेली', 'कालरिज', 'कीट्स', 'बायरन' आदि प्रगीतकारों की रचनाओं से प्रेरणा ग्रहण कर हिन्दी में प्रगीतात्मक काव्य-विधा को अपनाया।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में गहन अनुभूति-संवलित प्रगीतों की रमणीय छटा देखने को मिलती है। इन प्रगीतों में आन्तरिकता, सूक्ष्म भाव-तन्मयता तथा संगीतात्मकता के साथ अनुभूति-विशेष के अखण्ड बिम्ब अवतरित हुए हैं। इसी को आचार्य नन्दुदलारे वाजपेयी ने 'निर्व्याज भावाभिव्यक्ति' कहा है, जिसमें संगीत के स्वरों की भाँति प्रगीत के शब्द भी कवि की भावनापूर्ण इकाइयों के परिचायक होते हैं।[४]

प्रगीत में छन्द-संगीत और भाव-संगीत का अविच्छिन्न योग रहता है। लय-प्रवाह इसका अनिवार्य अंग है। वास्तव में आत्मप्रकाशन की व्याकुलता जब चरमावस्था में पहुँच जाती है तो संवेदन-सम्पृक्त कवि-हृदय का घनीभूत भावावेग ही गीति के रूप में सहज भाव से फूट पड़ता है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की रचनाएँ इसी सहज भावाभिव्यक्ति की ओर संकेत करती हैं। इन रचनाओं में कवि का शुद्ध आत्मद्रव मिश्रित है। रीति-स्वच्छन्द कवियों की रचनाओं को प्रगीतों का दर्जा इसलिए नहीं मिला, क्योंकि उनमें संगीत की स्वर-लहरी का अभाव है।

प्रगीत न तो पद है, न गजल और न तो लोकगीत। उसकी रचना इनके सम्मिश्रण, अन्तरंग भावनाओं तथा सघन भावानुभूतियों के गुन्थन से होती है, जो प्रकृत्या गेय है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों के प्रगीतों में नवीन शब्दशिल्प, अमूर्त और सूक्ष्म अप्रस्तुत, चित्रमयता, प्रतीकात्मकता, चेतनीकरण, लक्षणा-व्यंजना, शब्दशक्ति विरोध-चमत्कार आदि का मुक्त प्रयोग हुआ है।

१. 'पंत' : पल्लव, पृ० ९०-१०१।
२. 'निराला' : परिमल, पृ० १२६।
३. वही : अनामिका, पृ० १६०-६१।
४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० १४९।

रूप-विधान की दृष्टि से प्रगीत के पाँच भेद हैं—(१) संबोध गीति (ओड), (२) गीति (सांग), (३) पत्रगीति (एपिसल), (४) शोकगीति (एलेजी) और (५) चतुर्दशपदी (सॉनेट)। आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में प्रगीतों के ये पाँचों ही रूप मिलते हैं। प्रगीत रचना के क्षेत्र में 'निराला' के समान दूसरा कोई प्रयोक्ता नहीं हुआ।

संबोध गीतियाँ प्रायः संबोध्य के रूप-वर्णन से प्रारम्भ होकर कल्पना और भावों के उत्कर्ष के साथ भाव-संवलित होकर आगे बढ़ती हैं। 'प्रसाद', 'पंत' और 'निराला' के काव्य में सम्बोध गीतियों के सर्वोत्तम उदाहरण प्राप्त होते हैं। 'निराला' की 'यमुना के प्रति', 'प्रपात के प्रति', 'प्रिय के प्रति', 'तरंगों के प्रति', 'जलद के प्रति' आदि रचनाएँ, 'प्रसाद' की 'खोलो-द्वार', दो बूँदें', 'वसन्त', 'किरण', 'वेदना ठहरो' आदि रचनाएँ तथा 'पंत' की 'अनंग', 'मधुकरी', 'छाया', 'परिवर्तन', 'शिशु' आदि रचनाएँ संबोध शैली में लिखी गयी हैं। 'पंत' की 'वीणा', 'माँ के प्रति' निवेदित प्रार्थनापरक प्रगीत हैं। उनकी 'ग्रंथि' एक दीर्घ प्रगीत है जिसमें प्रेम का यथार्थ स्वरूप अंकित है। 'पंत' की 'बादल' तथा गुरुभक्त सिंह 'भक्त' की 'ओस' शीर्षक रचनाएँ संबोध प्रगीति की अनुपम सृष्टि हैं। 'बादल' और 'ओस' अपनी कथा स्वयं कहते हैं। 'निराला' के कुछ संबोध प्रगीत भक्तिपरक भी हैं जिनमें हमें दो प्रकार की भावयित्री का दर्शन होता है। प्रथम में, आत्मा-परमात्मा एवं द्वितीय में, माया-विषयक विभिन्न जिज्ञासाएँ हैं। उनके 'तुम और मैं' दार्शनिक प्रगीत में अद्वैत-दर्शन का मर्मस्पर्शी समाहार हुआ है।[1]

'गीति प्रगीत' आधुनिक स्वच्छन्द कवियों की विशिष्ट उपलब्धि है। इन कवियों ने इसका विन्यास पद-गीत और गजल-गीत के सम्मिश्रण से किया है। इन पर लोकगीतों का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। प्रारम्भ में इन कवियों ने प्रगीतों की रचना में मध्यकालीन पद-गीतों का पर्याप्त अनुसरण किया।[2] बाद के प्रगीतों में प्राचीन पद-गीत के साथ ही लोकगीत (कजली, ठुमरी, दादरा, गजल आदि) का पर्याप्त उपयोग किया गया। श्रीधर पाठक का 'जय-जय प्यारा भारत देश' गीत लोकगीत की शैली पर आधारित है और उनका 'सुन्दर भारत' गीत गजल की लय पर रचा गया है, लेकिन इन दोनों का विन्यास प्रगीत का है। यथा :-'भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है।'[3] 'भारत-गीत' 'में संगृहीत 'प्यारा हिन्दुस्तान', 'स्वागत-

---

१. 'निराला' : परिमल (तुम और मैं), पृ० ८०-८२।

२. 'मृग-तृष्णा ने मुझे फँसाया।
नाहक तुमने मुझे अंध-सा इधर-उधर भटकाया।'—गोपालशरण सिंह : मृगतृष्णा, माधुरी, मार्च १९२५ ई०, पृ० १४५।

३. श्रीधर पाठक : भारत-गीत, पृ० ५८।

स्वागत' आदि रचनाएँ इसी गीति शैली पर आधारित हैं। 'परिमल' में संग्रहीत 'अधिवास', 'गीत', 'प्रभाती' आदि रचनाओं में गीति प्रगीत की रमणीय छटा देखने को मिलती है।[1]

'पत्र-गीति' का प्रचलन हिन्दी में अंग्रेजी के प्रभाव से हुआ है। 'निराला' की 'महाराज शिवाजी का पत्र' शीर्षक रचना पत्र-प्रगीत की अनुपम सृष्टि है। इस रचना में शिवाजी के मन में उठने वाले अन्तर्द्वन्द्व, उनके द्वारा राजा जयसिंह को दिये गये कल्पना-प्रवण प्रबोधन, अनुनय, प्रताड़न और चेतावनी के तर्कसंगत भाव-मोड़ अपनी प्रासंगिकता में अद्वितीय हैं। महाराजा शिवाजी, जयसिंह का आह्वान करते हुए कहते हैं—

'जयसिंह,
अगर हो शानदार

× × ×

आओ वीर, स्वागत है,
सादर बुलाता हूँ।'[2]

आधुनिक हिन्दी स्वच्छन्दतावाद में मात्र एक ही शोक गीति है 'सरोज-स्मृति'। यह 'निराला' का अत्यन्त प्रसिद्ध प्रगीत है। हिंन्दी में शोक-गीति लिखने की परम्परा नहीं रही है। 'सरोज-स्मृति' वस्तुतः अंग्रेजी काव्य के प्रभाव तथा कवि की मार्मिक अन्तर्वेदना का प्रतिफलन है।

हिन्दी में प्रथम चतुर्दशपदी लिखने का श्रेय पं० रूपनारायण पाण्डेय को है। 'प्रसाद' के 'आँसू' में पाँच युग्मकों के उपरान्त एक चतुष्पदी मिलती है। 'झरना' में संगृहीत 'स्वभाव' और 'दर्शन' शीर्षक कविताओं में चतुष्पदी का विधान किया गया है। 'निराला' की प्रशस्तियों और श्रद्धांजलियों में तथा 'प्रसाद' की 'संगीत' में चतुष्पदियों का नियोजन हुआ है।

———

१. 'अलि, घिर आये घन पावस के।
द्रुम समीर-कम्पित थर थर थर,
झरतीं धाराएँ झर झर झर,
जगती के प्राणों में स्मर शर
बेध गये, कसके——'

—परिमल (गीत), पृ० ६६।

२. 'निराला' : परिमल, पृ० २०६-१०।

सारांश

स्वच्छन्दतावाद, परम्परागत रूढ़ियों, रीति-नीतियों, आदर्शों एवं मूल्यों की जकड़बन्दियों से मुक्त एक ऐसी साहित्यिक धारा है जिसकी बाह्य प्रकृति विद्रोहपरक, रचनात्मक, समन्वयात्मक, उदार, लोकरंजक, विस्मयात्मक एवं किञ्चित् रहस्य-दर्शन की है तथा जिसके अन्तरंग में गहन अनुभूति, तीव्र संवेदना, भावावेश, साहसिकता, अहंवादिता, वैयक्तिकता, अतीत प्रेम, प्रकृति-अनुराग, परिष्कृत प्रेम-भावना, अनासक्त सौन्दर्य-बोध एवं नवोन्मेषिनी समृद्ध कल्पना का प्राधान्य है। स्वच्छन्दतावाद का काव्य में अवतरण जीवन के प्रति एक नूतन प्रतिस्थापना की रचनात्मक परिणति है, जिसकी प्राणधारा समसामयिक परिवेश से ऊर्जा ग्रहण करती है, अतीत के चलचित्रों से संवेदित होती है और जीवन की सघन अनुभूतियों से अनुप्राणित एवं जड़-चेतन की क्रिया-प्रक्रिया से स्पन्दित होती है।

छायावाद, स्वच्छन्दतावाद के चरम विकास की उपज है जिसका उद्‌भव और अवसान एक काल-विशेष के भीतर घटित हुआ। रहस्यवाद, सनातन और चिरन्तन है जिसका स्वरूप हिन्दी में विकासमय रहा है। आधुनिक काल में स्वच्छन्दतावाद छायावाद के समानान्तर कभी घुल-मिलकर कभी पृथक् रहते हुए प्रौढ़-से-प्रौढ़तर होता गया। छायावाद और रहस्यवाद दोनों में स्वच्छन्दतावाद का मौलिक स्वरूप विद्यमान है। वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद व्यापक शब्द है जिसमें छायावादी एवं रहस्य-वादी प्रवत्तियाँ अन्तर्भुक्त हैं।

हिन्दी-काव्य में स्वच्छन्दतावाद का अभ्युदय रीतिकाल में हुआ और चरम विकास आधुनिक काल में। रीतिकाल में उसका जो स्वरूप था, परिवेशीय भिन्नता एवं बाह्य प्रभावों के कारण आधुनिक काल में पर्याप्त परिवर्तित, परिवर्द्धित हो गया, तथापि उसकी मूल आत्मा आधुनिक स्वच्छन्द काव्य में भी सुरक्षित है। रीति-स्वच्छन्द कवि रसखान, घनानन्द, बोधा, ठाकुर, आलम तथा आधुनिक स्वच्छन्द कवि श्रीधर पाठक, पं० रामनरेश त्रिपाठी, गंगाशरण सिंह, मुकुटधर पाण्डेय, प्रसाद, पन्त, निराला आदि कविगण अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रायः निस्संग प्रेमी, अन्तर्मुखी और आत्मचेता थे। यही कारण है कि दोनों काव्यधाराओं का रचना-संसार सहज रूप से कायिक संवेदनाओं को समेटता हुआ मानसिक ऊँचाइयों को स्पर्श करता है।

रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा का मूल कथ्य प्रेम है जिसका प्रस्फुटन प्रायः परकीया प्रेम के क्रोड़ में मानसिक भावभूमि पर हुआ है। काव्य में स्वानुभव और भोगा हुआ जीवन ही मुखर है। लौकिक प्रेम के प्रति यहाँ प्रबल आसक्ति व्यंजित है लेकिन लौकिक प्रेम ऊर्ध्वमुखी होता हुआ अन्ततः अलौकिक प्रेम में विलीन हो

गया है। मुक्त प्रेम का उच्छल प्रवाह, मधुमय मानसिक प्रेम-व्यापार एवं गहन प्रेम की नितान्त वैयक्तिक पीड़ा इस काव्यधारा के प्राणतत्त्व हैं। प्रेम का संयोग पक्ष यहाँ गौण है। प्रायः स्वप्न संयोग, संयोग में वियोग की अनुभूति का उद्गार ही सुनाई देता है। उदात्त प्रेम के विविध पक्ष यहाँ पूर्ण समारोह के साथ उपस्थित हैं।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधारा का भी मूल कथ्य प्रेम है, लेकिन प्रेम का स्वरूप अपेक्षाकृत बहुत व्यापक है। यहाँ प्रेम-चिन्तन वैयक्तिक होते हुए भी सार्वभौमिक है, लौकिक होते हुए भी अलौकिक है। प्रेम की व्यापक पीठिका पर इस काव्यधारा के रचनाकारों ने नारी-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, विश्व-प्रेम, मानवीय एवं ईश्वरीय प्रेम का रमणीय समन्वय किया है। इनकी वैयक्तिक विरह-वेदना मानव-मात्र की सामान्य वेदना बन गयी है और उसका स्वरूप व्यष्टिगत न रहकर समष्टिगत हो गया है। आधुनिक स्वच्छन्द कवियों का उच्छलित प्रेम-प्रवाह हृदय के तटबंधों को तोड़कर समस्त वसुधा पर छा गया है।

रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा में प्रेम के समान ही सौन्दर्य भी परिष्कृत भावभूमि पर अवतरित है। रूप की रीझ का जीवन में प्राधान्य होने के कारण रीति-स्वच्छन्द कवि सौन्दर्य-लिप्सा से तो मुक्त नहीं हो सके हैं, लेकिन सौन्दर्य को उन्होंने प्रायः कुदृष्टि से नहीं देखा है। यद्यपि यहाँ स्थूल रूप-चित्रण का ही प्राधान्य है लेकिन न तो उसमें अवयवी नाप-जोख है और न नखशिख परम्परा पालन का आग्रह। इनके सौन्दर्य-बोध में आन्तरिकता, मानसिकता एवं स्वानुभूतिक संस्पर्श से जो एक दीप्ति आ गयी है उससे कलुषता का पंकिल स्वतः ही धुल गया है। यहाँ सौन्दर्य-बोध वस्तुतः रूप की रीझ से अनुप्राणित है, उसके पीछे कोई दार्शनिक आधार नहीं।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधारा में सौन्दर्य-बोध अपेक्षाकृत अधिक व्यापक तथा परिष्कृत है। उसकी सौन्दर्य-चेतना में नारी के साथ ही मानव, प्रकृति, विश्व, कल्पना, भावलोक तथा शिल्प सभी का समाहार हुआ है, जिससे सौन्दर्य यहाँ बहुरंगी हो गया है। इस काव्यधारा के कवियों की वृत्ति स्थूल रूप-सौन्दर्य की अपेक्षा अन्तःशील के अनुसंधान में अधिक रमी है। वस्तुतः समग्र सौन्दर्य का उद्घाटन यहाँ पूर्ण तन्मयता से हुआ है। सौन्दर्य-बोध आन्तरिक अनुशासन से बंधा तथा पुष्ट दार्शनिक विचारधारा से अनुप्राणित है। कवि सौन्दर्य-दर्शन के साथ-साथ सौन्दर्य-सर्जन भी करता चलता है।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने प्रकृति को प्रायः विरहिणी के अश्रुपूरित नेत्रों से देखा है। इसी से यहाँ प्रकृति का उद्दीपन रूप प्रधान है। हृदय की लपेट के कारण प्रकृति कहीं-कहीं भावों की वाहिका भी बनी है। कहीं-कहीं वह परिवेश का निर्माण करते तथा स्वतंत्र कार्य-व्यापार करते भी दिखाई देती है।

आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधारा में प्रकृति का वैभवयुक्त, उपेक्षित तथा सर्वथा अछूते उपादानों का स्वतन्त्र कार्य-व्यापार मुखर है। प्रकृति काव्य-रचना का एक स्वतंत्र विषय बन गयी है। प्रसाद, पन्त और निराला ने प्रकृति को निरपेक्ष चिन्मय सत्ता प्रदान की। बहुरंगी प्रकृति यहाँ स्वयं स्पन्दित है, कवि की कल्पना के विद्युत्-स्पर्श से तरंगित हो नाना रूप तथा कार्य-व्यापारों में लीन है। कवि प्रकृति में रहस्य-दर्शन तथा मानवीय भावनाओं का आरोपण करता है तो प्रकृति मानवीय क्रिया-व्यापारों का सम्पादन। यहाँ प्रकृति का समग्र कार्य-व्यापार संश्लिष्ट रूप में उपस्थित है। वह मानवीय कार्य-व्यापारों के साथ इस प्रकार लिपटी हुई है कि उसे अलगाना कठिन हो जाता है।

काव्य का जीवन-प्रवाह से जुड़ना किसी भी काव्यधारा की वास्तविक शक्ति है। कवि का सुख-दुःख, राग-विराग, हास-परिहास आदि जीवनगत व्यापार ही दोनों काव्यधाराओं में व्यंजित हैं और यही उसकी जीवनी शक्ति है। दोनों में भावावेगमयी रचनाओं का प्राधान्य है और भाव-प्रवाह बिना किसी लाग-लपेट के चिन्तन-प्रक्रिया से लिपटकर चला है।

रीति-स्वच्छन्द कवि 'स्व' के आगे नहीं बढ़ सका। आधुनिक स्वच्छन्द कवि की दृष्टि बहुत दूर तक गयी। उसकी चिन्तन-धारा में प्रकृति, मानव, विश्व आदि का समाहार तो हुआ ही, देश-प्रेम और राष्ट्रीय चेतना का सर्वथा नवीन उद्घोष भी सुनाई दिया। रीति-स्वच्छन्द कवि मात्र वर्तमानजीवी थे, इसके विपरीत आधुनिक स्वच्छन्द कवि त्रिकालदर्शी थे। वे एक साथ ही अतीतजीवी, वर्तमानजीवी तथा भविष्यजीवी तीनों थे। उनकी रचनाओं में अतीत के प्रति ललक, वर्तमान के प्रति असन्तोष तथा भविष्य के प्रति स्वर्णिम स्वप्न की झलक विद्यमान है। दोनों युगों का परिवेश भिन्न था, इसी से युग की माँग के अनुसार एक युग का कवि वर्तमानजीवी बना तो दूसरे युग का त्रिकालजीवी।

रीति-स्वच्छन्द कवियों ने काव्य-सृजन में भाव-जगत् को सर्वोच्च स्थान दिया और बुद्धिगत तर्कशृंखला की उपेक्षा की। इस काव्यधारा में 'घनानन्द' ही एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनके भाव-विलास और वाणी-विलास में पूर्ण सामंजस्य है। उनकी लाक्षणिक भंगिमा की सृष्टि अप्रतिम, विरोधाश्रित शैली अपूर्व; शब्द-विन्यास रमणीय और भाषा भावानुगामिनी है। 'रसखान' और 'आलम' की ललित मधुर, काव्य-शैली व्रजभाषा का श्रृंगार है। दो टूक बात कहने में 'बोधा' निराले हैं। 'ठाकुर' की लोकोक्तियों का हिन्दी काव्य-जगत् में कोई जवाब नहीं, जैसे वे काव्य-माला में मोती की भाँति पिरोई गयी हों। इन आत्मचेता कवियों ने हृदय की उमंग एवं मन की तरंग पर समस्त आन्तरिक भावराशि को काव्य में उड़ेल दिया, और

बाह्य जगत् को अन्तर्जगत् में विलीन कर काव्य-रस की सृष्टि की। सवैया और कवित्त में ब्रजभाषा का प्रौढ़तर रूप इस काव्यधारा में उभरा।

आधुनिक स्वच्छन्द कवि जिस प्रकार भाव-शिल्पी थे उसी प्रकार काव्य-शिल्पी भी थे। लाक्षणिक भंगिमा, अप्रस्तुत योजना, प्रतीक विधान, बिम्ब योजना तथा मिथकीय प्रयोगों ने प्रगीतात्मक गीति-रचना-विधान को अत्यन्त आकर्षक बना दिया। छन्द-विधान के क्षेत्र में अनेकशः क्रान्तिकारी प्रयोग किये गये। छन्दोगुरु 'निराला' के समान हिन्दी काव्य-जगत् में कोई दूसरा छन्द-प्रयोक्ता नहीं हुआ। 'पंत' ने स्वच्छन्द छन्द-विधान तथा 'निराला' ने मुक्त छन्द-विधान के साहसिक प्रयोगों द्वारा काव्य-सृजन का भावी मार्ग प्रशस्त किया। भाषा के क्षेत्र में भी अनेकानेक प्रयोग करके अर्थ-गौरव की सृष्टि की गयी। शब्द-चयन, शब्द-सृजन और शब्द-प्रयोगों की विविधता द्वारा कविता-कामिनी का श्रृंगार किया गया। अर्थ-गौरव की सृष्टि के लिये लक्षणा एवं व्यंजना शब्दशक्तियों का भरपूर उपयोग इस काव्यधारा में हुआ। ध्वनि, लय और प्रवाह के समन्वित प्रभाव से प्रगीतितत्त्व की सृष्टि करती हुई पंक्तियाँ पाठक के ऊपर अमिट प्रभाव छोड़ती हैं।

समवेत रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी की रीतियुगीन एवं आधुनिक स्वच्छन्द काव्यधाराओं का अंतरंग एवं बहिरंग दोनों ही रोमाण्टिक अन्तर्वृत्ति से अनुप्राणित अथवा उद्वेलित है और उसमें भी अंतरंग पर रोमाण्टिक अन्तर्वृत्ति का सर्वाधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी से दोनों काव्यधाराओं का यह पक्ष बहुत कुछ मेल में है। आधुनिक काल में आकर रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा में अंकुरित प्रवृत्तियों का स्वरूपगत विकास हुआ, साथ ही, कुछ सर्वथा नवीन प्रवृत्तियाँ भी पल्लवित हुईं। दोनों काव्यधाराओं के बीच प्रवृत्तिगत समता, विषमता तथा नवीनता की सृष्टि में कवियों की भावयित्री प्रतिभा के विविध स्तर, युग की माँग आदि के साथ-ही-साथ तत्कालीन परिवेश एवं बाह्य प्रभावों की भूमिका भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है।

———

पुस्तक-सूची

(क) मूल ग्रन्थ

ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशन वर्ष
१—अपरा	'निराला'	सं० २०२६ वि०
२—अनामिका	'निराला'	द्वि० सं० २००५ वि०
३—आलम-केलि	लाला भगवानदीन (सम्पा०)	सं० १९७९ वि०
४—आलमकृत-माधवा-नल-कामकन्दला	डॉ० रामकुमारी मिश्र	प्र० सं० १९८२ ई०
५—आँसू	जयशंकर 'प्रसाद'	सं० २०२५ वि०
६—ऊजड़ ग्राम	अनु० पं० श्रीधर पाठक	सन् १९२१ ई०
७—एकांतवासी	अनु० पं० श्रीधर पाठक	सन् १९०२ ई०
८—कादम्बिनी	ठा० गोपालशरण सिंह	प्र० सं० १९३७ ई०
९—कुसुम-कुंज	गुरुभक्त सिंह 'भक्त'	सन् १९२७ ई०
१०—ग्रंथि	सुमित्रानन्दन 'पंत'	द्वि० सं० २००९ वि०
११—घनआनँद ग्रन्थावली	सम्पा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र	प्र० सं० २००९ वि०
१२—घनआनँद-कवित्त	साहित्याचार्य चन्द्रशेखर	सं० २०१७ वि०
१३—झरना	जयशंकर 'प्रसाद'	तृ० सं० १९९१ वि०
१४—ठाकुर-ठसक	लाला भगवानदीन (सम्पा०)	सं० १९८३ वि०
१५—पल्लव	सुमित्रानंदन 'पंत'	सन् १९७७ ई०
१६—पथिक	रामनरेश त्रिपाठी	सं० १९७० वि०
१७—परिमल	'निराला'	सन् १९६९ ई०
१८—पूजा-फूल	मुकुटधर पाण्डेय	सन् १९१६ ई०
१९—प्रेम-पथिक	जयशंकर 'प्रसाद'	सं० १९८५ वि०
२०—बोधा ग्रन्थावली	सम्पा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र	प्र० सं० २०३१ वि०
२१—मनोविनोद	श्रीधर पाठक	सन् १९१७ ई०
२२—महाराणा का महत्त्व	जयशंकर 'प्रसाद'	सं० २०१९ वि०
२३—माधवी	गोपालशरण सिंह	सं० २०२७ वि०
२४—मानवी	गोपालशरण सिंह	सन् १९३८ ई०
२५—मानसी	पं० रामनरेश त्रिपाठी	सं० १९८४ वि०
२६—मिलन	पं० रामनरेश त्रिपाठी	सं० १९८५ वि०

२७—रसखानि ग्रन्थावली	सम्पा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र	सं० २०१६ वि०
२८—रसखान-रत्नावली	भवानीशंकर याज्ञिक	सं० २०२१ वि०
२९—वन-श्री	गुरुभक्त सिंह 'भक्त'	सन् १९४५ ई०
३०—वीणा	सुमित्रानंदन 'पंत'	प्र० सं० १९२७ ई०
३१—शृंगार-लतिका	द्विजदेव	सन् १८४० ई०
३२—शृंगार-बत्तीसी	द्विजदेव	तृ० सं० १८८५ ई०
३३—संचिता	गोपालशरण सिंह	सन् १९३९ ई०
३४—सरस-सुमन	गुरुभक्त सिंह 'भक्त'	प्र० सं० १९२५ ई०
३५—स्वप्न	पं० रामनरेश त्रिपाठी	सं० १९८५ वि०
३६—सुन्दरी तिलक	सम्पा० मन्नालाल द्विज	सं० १९२९ वि०

(ख) सहायक ग्रन्थ (१) : हिन्दी :

३७—अंग्रेजी साहित्य का इतिहास	हड्सन विलियम हेनरी	सन् १९६३ ई०
३८—अंग्रेजी की स्वच्छन्द कविता	प्रमोद वर्मा	सन् १९७१ ई०
३९—आस्था के चरण	डॉ० नगेन्द्र	सन् १९६८ ई०
४०—आधुनिक हिन्दी काव्य-भाषा	रामकुमार सिंह	सं० १९६५ वि०
४१—आधुनिक हिन्दी कवित में प्रेम और सौन्दर्य	डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल	सन् १९५५ ई०
४२—आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ	डॉ० अजब सिंह	प्र० सं० १९७५ ई०
४३—आधुनिक हिन्दी काव्य	डॉ० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र	प्र० सं० १९६६ ई०
४४—हिन्दी कविता में प्रेम और शृंगार	रांगेय राघव	प्र० सं० १९६१ ई०
४५—आधुनिक कवि भाग-८	पं० रामनरेश त्रिपाठी	सन् १९६८ ई०
४६—आधुनिक कवि	सुमित्रानंदन 'पंत'	सन् १९६४ ई०
४७—आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी-भावना	डॉ० शैलकुमारी	सन् १९५१ ई०
४८—आधुनिक हिन्दी कविता का अभि-व्यंजना-शिल्प	डॉ० हरदयाल	सन् १९७८ ई०

४९—आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम एवं सौन्दर्य	डॉ० नगेन्द्र	सन् १९६२ ई०
५०—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ	डॉ० रामेश्वर दयाल खण्डेलवाल	सन् १९६२ ई०
५१—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	शैवा झा	प्र० सं० १९७७ ई०
५२—आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार-विधान	डॉ० जगदीश नारायण त्रिपाठी	सन् १९६२ ई०
५३—आधुनिक हिन्दी काव्य का विकास	डॉ० श्रीकृष्ण लाल	सं० १९९९ वि०
५४—आधुनिक हिन्दी का आदिकाल (१८५७-१९०८)	श्रीनारायण चतुर्वेदी	सन् १९७३ ई०
५५—आधुनिक कविता और युग-दृष्टि	शिवकुमार मिश्र	प्र० सं० १९६६ ई०
५६—आधुनिक हिन्दी साहित्य	लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	सन् १९७१ ई०
५७—आधुनिक हिन्दी काव्य में रहस्यवाद	डॉ० विश्वनाथ गौड़	सन् १९६१ ई०
५८—आधुनिक काव्य प्रवृत्तियाँ : एक मूल्यांकन	डॉ० गणेश खरे	प्र० सं० १९७६ ई०
५९—आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब-विधान का विकास	डॉ० केदारनाथ सिंह	सन् १९७१ ई०
६०—आधुनिक गीति काव्य का शिल्प-विधान	मंजू गुप्ता	सन् १९७४ ई०
६१—आधुनिक काव्य-धारा का सांस्कृतिक स्रोत	डॉ० केशरी नारायण शुक्ल	सं० २००८ वि०
६२—आधुनिक काव्य-धारा	डॉ० केशरी नारायण शुक्ल	प्र० सं० २००४ वि०

६३—आँसू भाष्य	डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना	प्र० सं० १६७१ ई०
६४—आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक-विधान	डॉ० नित्यानन्द शर्मा	प्र० सं० २०२३ वि०
६५—आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद-योजना	डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल	प्र० सं० २०१४ वि०
६६—आधुनिक कवि भाग-१२	गुरुभक्त सिंह 'भक्त'	प्र० सं० १६६७ ई०
६७—आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	डॉ० नामवर सिंह	तृ० सं० १६६४ ई०
६८—आधुनिक साहित्य	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी	सं० २०२२ वि०
६९—आधुनिक हिन्दी साहित्य भाग-२	सम्पा० डॉ० नगेन्द्र	सन् १६४६ ई०
७०—आधुनिक हिन्दी काव्य	डॉ० राजेन्द्र मिश्र	सन् १६६६ ई०
७१—आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द काव्यधारा	डॉ० त्रिभुवन सिंह	तृ० सं० १६७७ ई०
७२—आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ० बच्चन सिंह	प्र० सं० १६७८ ई०
७३—आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ	डॉ० नगेन्द्र	सन् १६५१ ई०
७४—आधुनिक हिन्दी काव्य-शिल्प	डॉ० मोहन अवस्थी	सन् १६६२ ई०
७५—आधुनिक हिन्दी मुक्तक काव्य में नारी	डॉ० सावित्री डागा	सन् १६७७ ई०
७६—आधुनिक परिवेश और नवलेखन	डॉ० शिवप्रसाद सिंह	सन् १६७० ई०
७७—आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ	प्रेम प्रकाश गौतम	सन् १६७२ ई०
७८—आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना	सुधाकर शंकर कलवडे	सन् १६७३ ई०
७९—आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय चेतना का विकास	डॉ० जीतराम पाठक	सन् १६७६ ई०

८०—इतिहास और आलोचना	डॉ० नामवर सिंह	प्र० सं० १९५६ ई०
८१—उत्तरा	सुमित्रानंदन 'पंत'	सं० २००६ वि०
८२—उत्तरी भारत में मुस्लिम समाज	के० एम० मिश्र	प्र० सं० १९७४ ई०
८३—उद्धव-शतक	डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'	प्र० सं० १९७० ई०
८४—उर्दू साहित्य का इतिहास भाग-२	बाबूराम सक्सेना अनु० श्री शालिग्राम श्रीवास्तव	प्र० सं० १९५१ ई०
८५—कला साहित्य और समीक्षा	भगीरथ मिश्र	सन् १९६३ ई०
८६—कविता-कौमुदी	सम्पा० रामनरेश त्रिपाठी	तृ० सं० १९८३ वि०
८७—कवि सुमित्रानंदन 'पंत'	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी प्रस्तोता--डॉ० शिवकुमार मिश्र	प्र० सं० १९७६ ई०
८८—कवि निराला	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी	प्र० सं० १९६५ ई०
८९—कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध	विष्णुकान्त शास्त्री	प्र० सं० १९६३ ई०
९०—काव्य की भूमिका	डॉ० रामधारी सिंह दिनकर	प्र० सं० १९५८ ई०
९१—काव्य दर्पण (अभिनव साहित्यशास्त्र)	पं० रामदहिन मिश्र	सन् १९५१ ई०
९२—काव्य-बिम्ब	डॉ० नगेन्द्र	सन् १९६७ ई०
९३—काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	जयशंकर 'प्रसाद'	सं० २०१५ वि०
९४—काव्य-प्रभाकर	आचार्य भानु	प्र० सं० २०२८ वि०
९५—काव्य में अप्रस्तुत योजना	राम दहिन मिश्र	सं० २००५ वि०
९६—कामायनी	जयशंकर 'प्रसाद'	सं० १९९३ वि०
९७—काव्यकला और शास्त्र	रांगेय राघव	सन् १९५५ ई०
९८—क्रान्तिकारी कवि निराला	डॉ० बच्चन सिंह	सन् १९६१ ई०
९९—खड़ीबोली काव्य में अभिव्यंजनावाद	आशा गुप्ता	सन् १९६१ ई०

१००—गीतांजलि	रवीन्द्र ठाकुर कवि	सन् १९१५ ई०
१०१—गीतांजलि	सम्पा० भवानी प्रसाद तिवारी	तृ० सं० १९६१ ई०
१०२—घनआनँद कवित्त (सटीक)	अशोक शुक्ल एवं पूर्णचन्द्र शर्मा	प्र० सं० १९६८ ई०
१०३—घनआनन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा	डॉ० मनोहर लाल गौड़	द्वि० सं० २०२९ वि०
१०४—घनानन्द कवित्त सटीक	लक्ष्मण दत्त गौतम	प्र० सं० १९६५ ई०
१०५—घनआनंद चयनिका	डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा	
१०६—घनानन्द का काव्य	डॉ० रामदेव शुक्ल	द्वि० सं० १९७९ ई०
१०७—घनानन्द का काव्य-दर्शन	डॉ० सहदेव शुक्ल	सन् १९७७ ई०
१०८—घनानन्द का शृंगार काव्य	डॉ० रामदेव शुक्ल	प्र० सं० १९७५ ई०
१०९—घनानन्द का रचना संसार	शशि सहगल	सन् १९७९ ई०
११०—घनानन्द : संवेदना और शिल्प	डॉ० राजबुद्धि राजा	प्र० सं० १९७६ ई०
१११—घनानन्द के काव्य में अप्रस्तुत योजना	डॉ० मनोहर लाल गौड़	सन् १९७५ ई०
११२—घनानन्द	डॉ० गणेशदत्त सारस्वत	सन् १९७४ ई०
११३—घनानन्द काव्य और आलोचना	डॉ० किशोरी लाल	प्र० सं० १९७८ ई०
११४—चक्रवाल	'दिनकर'	सन् १९५६ ई०
११५—चिन्तामणि भाग-१	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	सन् १९३९ ई०
११६—चिन्तामणि भाग-२	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	तृ० सं० २०१० वि०
११७—चित्र मीमांसा	अप्पय दीक्षित	सन् १९६५ ई०
११८—चित्राधार	जयशंकर 'प्रसाद'	सं० १९८५ वि०
११९—छंद का आधुनिक रचना-विधान	सुशील त्रिवेदी	प्र० सं० १९८० ई०
१२०—छंद-प्रभाकर	आचार्य भानु	तृ० सं० १९१५ ई०
१२१—छायावादी काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना	रवीन्द्रनाथ दरगन	सन् १९७३ ई०

१२२—छायावाद का पतन डॉ० देवराज सन् १९४८ ई०
१२३—छायावाद का काव्य-शिल्प प्रतिभा कृष्णबल सन् १९७१ ई०
१२४—छायावाद की प्रासंगिकता रमेशचन्द्र शाह सन् १९७३ ई०
१२५—छायावाद डॉ० नामवर सिंह सन् १९६८ ई०
१२६—छायावादी प्रकृति और प्रयोग डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय प्र० सं० १९७२ ई०
१२७—छायावाद-युग डॉ० शम्भूनाथ सिंह द्वि० सं० १९६२ ई०
१२८—छायावादी काव्य में लोक मंगल की भावना डॉ० अम्बादत्त पाण्डेय प्र० सं० १९७३ ई०
१२९—छायावाद काव्य तथा दर्शन डॉ० हरनारायण सिंह सन् १९६४ ई०
१३०—छायावादी कवियों का सौन्दर्य-विधान डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित सन् १९७४ ई०
१३१—छायावाद का सौन्दर्य-शास्त्रीय अध्ययन डॉ० कुमार विमल प्र० सं० १९७० ई०
१३२—छायावाद : पुनर्मूल्यांकन सुमित्रानन्दन पंत प्र० सं० १९६५ ई०
१३३—छायावादी काव्य दर्शन राम चन्द्रन नायर, जे० प्र० सं० १९७६ ई०
१३४—जगद्विनोद पद्माकर कृत सम्पा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र सं० २०१५ वि०
१३५—ठाकुर चन्द्रशेखर मिश्र प्र० सं० २०३० वि०
१३६—देव और उनकी कविता डॉ० नगेन्द्र सन् १९६० ई०
१३७—देव सुकवि सुधा, मानमयंक श्री हरदयालु सिंह सं० १९९७ वि०
१३८—द्विजदेव और उनका काव्य डॉ० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी प्र० सं० २०२४ वि०
१३९—द्विवेदी-युगीन हिन्दी काव्य रामशकल राम शर्मा प्र० सं० १९६६ ई०

१४०—नया साहित्य नये प्रश्न	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी	प्र० सं० १९७८ ई०
१४१—निराला के काव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ० देवव्रत शर्मा	प्र० सं० १९७७ ई०
१४२—निराला	डॉ० रामविलास शर्मा	सन् १९६२ ई०
१४३—निराला की साहित्य-साधना	डॉ० रामविलास शर्मा	प्र० सं० १९७२ ई०
१४४—निराला जी	आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	प्र० सं० १९६३ ई०
१४५—निराला की काव्य-भाषा	डॉ० शिवशंकर सिंह	प्र० सं० १९७८ ई०
१४६—निराला साहित्य संदर्भ	सं० सुधाकर पाण्डेय	प्र० सं० १९७३ ई०
१४७—निराला आत्महंता	डॉ० दूधनाथ सिंह	प्र० सं० १९७२ ई०
१४८—निराला	सम्पा० इन्द्रनाथ मदान	प्र० सं० १९७५ ई०
१४९—पंत काव्य में सौन्दर्य-भावना	डॉ० अन्नपुरेड्डी श्रीराम रेड्डी	प्र० सं० १९७६ ई०
१५०—पंत काव्य में बिम्ब-योजना	डॉ० एन० पी० कुट्टन पिल्ले	सन् १९७४ ई०
१५१—पंचवटी	मैथिलीशरण गुप्त	सं० २००५ वि०
१५२—पश्चिमी आलोचना शास्त्र	डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	प्र० सं० १९६५ ई०
१५३—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव	रवीन्द्र सहाय वर्मा	सन् १९६० ई०
१५४—पाश्चात्य काव्य-शास्त्र की परम्परा	प्र० सं० डॉ० नगेन्द्र सावित्री सिन्हा	तृ० सं० १९७२ ई०
१५५—पाश्चात्य काव्य-शास्त्र सिद्धान्त और वाद	डॉ० नगेन्द्र	सन् १९६६ ई०
१५६—पाश्चात्य काव्य-शास्त्र	कृष्णदेव शर्मा	प्र० सं० १९७६ ई०

१५७—प्रेमी कवि दम्पति आलम और शेख, मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ तथा नव-निबन्ध	परशुराम चतुर्वेदी	प्र० सं० १६५५ ई०
१५८—प्रसाद की कला	गुलाब राय	तृ० सं० १६५६ ई०
१५६—प्रसाद की प्रगति	गणेशदत्त खरे	प्र० सं० १६६० ई०
१६०—प्रसाद की दार्शनिक चेतना	डॉ० चक्रवर्ती	प्र० सं० १६६५ ई०
१६१—प्राचीन साहित्य	रवीन्द्रनाथ (अनु० रामदहिन)	सन् १६२७ ई०
१६२—प्रसाद काव्य-विवेचन	डॉ० हरदेव बाहरी	सन् १६५८ ई०
१६३—प्रसाद और उनका साहित्य	विनोदशंकर व्यास	प्र० सं० १६४० ई०
१६४—प्रकृति और काव्य	डॉ० रघुवंश	सन् १६६० ई०
१६५—फ्रेन्च साहित्य का इतिहास	भूपेन्द्रनाथ सान्याल	सन् १६६३ ई०
१६६—बिहारी-सतसई सटीक	टी० कृष्णदत्त कवि	नवां सं० १६२७ ई०
१६७—बिहारी	विश्वनाथप्रसाद मिश्र	तृ० सं० २०१६ वि०
१६८—बोध और व्याख्या	डॉ० कामेश्वर शर्मा	प्र० सं० १६६२ ई०
१६६—ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली	डॉ० कपिलदेव सिंह	प्र० सं० १६५६ ई०
१७०—भारतेन्दु ग्रन्थावली (नाटक)	शिव प्रसाद मिश्र 'रुद्र'	प्र० सं० २०२७ वि०
१७१—भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा	परशुराम चतुर्वेदी	सन् १६५६ ई०
१७२—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	डॉ० रामविलास शर्मा	सन् १६६६ ई०
१७३—भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवि	डॉ० किशोरीलाल गुप्त	सं० २००६ वि०
१७४—भाषा-संवेदना	रामस्वरूप चतुर्वेदी	सन् १६६४ ई०
१७५—भारत वर्ष का बृहद् इतिहास	ओम प्रकाश केला प्रभाकर ठाकुर	सन् १६७२ ई०

१७६—भारत का इतिहास | क्षितीश्वर प्रसाद सिंह | सन् १९५० ई०

१७७—भाषा साहित्य समीक्षा | विनयमोहन शर्मा | प्र० सं० १९७२ ई०

१७८—महाकवि घनानंद | रामवशिष्ठ | प्र० सं० १९५५ ई०

१७९—महाकवि 'प्रसाद' | विजयेन्द्र स्नातक रा० ला० खण्डेलवाल | सन् १९५८ ई०

१८०—महाकवि 'प्रसाद' | डॉ० सत्यकाम वर्मा | सन् १९६४ ई०

१८१—महादेवी की रहस्य साधना | विश्वम्भर मानव | पाँचवाँ सं० १९६७ ई०

१८२—मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ | परशुराम चतुर्वेदी | सन् १९६१ ई०

१८३—माडर्न इण्डियन लिटरेचर | डॉ० पी० डी० मुकर्जी | द्वि० सं० १९४८ ई०

१८४ मिट्टी की ओर | रामधारी सिंह 'दिनकर' | सन् १९४६ ई०

१८५—मिथक और साहित्य | डॉ० नगेन्द्र | प्र० सं० १९७९ ई०

१८६—मुकुटधर पाण्डेय | नन्दकिशोर तिवारी | सन् १९७० ई०

१८७—यामा | महादेवी वर्मा | सन् १९३९ ई०

१८८—युग और साहित्य | शान्तिप्रिय द्विवेदी | सन् १९४१ ई०

१८९—युगान्त | सुमित्रानन्दन 'पंत' | सन् १९६६ ई०

१९०—युगवाणी | सुमित्रानन्दन 'पंत' | सं० २००१ वि०

१९१—रसराज | कविवर मतिराम | सं० १९९६ वि०

१९२—रसखान : काव्य तथा भक्ति भावना | डॉ० माजिद असद | प्र० सं० १९६८ ई०

१९३—रसिक प्रिया का प्रिया प्रसाद तिलक | आचार्य केशवदास टी० विश्वनाथप्रसाद मिश्र | प्र० सं० २०१५ वि०

१९४—रसखान और घनानंद | संक० स्व० बाबू अमीर सिंह | द्वि० सं० २००८ वि०

१९५—रसखान और उनका काव्य | चन्द्रशेखर पाण्डेय | शक १८८४

१९६—रसखान भक्त और कवि | डॉ० लीलाधर वियोगी | सन् १९७२ ई०

१९७—रहस्यवाद और हिन्दी कविता | गुलाब राय, डॉ० शम्भूनाथ पाण्डेय | प्र० सं० २०१३ वि०

१९८—रसखान — कृष्णदेव झारी, प्र० सं० १९७२ ई०

१९९—रहस्यवाद — आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, सन् १९६३ ई०

२००—रहस्यवाद — राममूर्ति त्रिपाठी, सन् १९६६ ई०

२०१—रहस्यवाद और हिन्दी कविता — सम्पा० प्रेम नारायण टण्डन, प्र० सं० १९४५ वि०

२०२—रामनरेश त्रिपाठी व्यक्तित्व और कृतित्व — डॉ० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, सन् १९६२ ई०

२०३—राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध — नन्ददुलारे वाजपेयी, सन् १९६५ ई०

२०४—'राम की शक्ति पूजा' — डॉ० निर्मला जैन, ४ फरवरी, १९६८ ई०

२०५—रीतिमुक्त कवि : नया परिदृश्य — डॉ० रामफेर त्रिपाठी, सन् १९८२ ई०

२०६—रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता — डॉ० रमेश कुमार शर्मा, प्र० सं० १९६७ ई०

२०७—रीति काव्य में श्रृंगार निरूपण — डॉ० सुख स्वरूप श्रीवास्तव, प्र० सं० १९७८ ई०

२०८—रीति स्वच्छन्द काव्यधारा — डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, प्र० सं० १९६७ ई०

२०९—रीतियुगीन काव्य — डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, सन् १९६५ ई०

२१०—रीतिकाव्य की भूमिका — डॉ० नगेन्द्र, द्वि० सं० १९५३ ई०

२११—रीतिकालीन स्वच्छन्द काव्यधारा : अभिव्यंजना शिल्प — डॉ० चन्द्रशेखर, प्र० सं० १९७८ ई०

२१२—रीतिकालोत्तर कवि और काव्य — डॉ० श्यामानन्द प्रसाद, सन् १९७९ ई०

२१३—रीतिमुक्त कविता : मुक्त रचना-विधान — डॉ० चन्द्रशेखर, प्र० सं० १९७९ ई०

२१४—रीति कवियों की मौलिक देन — डॉ० किशोरीलाल, प्र० सं० १९७१ ई०

२१५—रीति काव्य — डॉ० जगदीश गुप्त, प्र० सं० १९६८ ई०

२१६—रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना — डॉ० बच्चन सिंह, सं० २०१५ वि०

२१७—रीतिकाव्य संग्रह — सम्पा० डॉ० विजयपाल सिंह — सन् १९७२ ई०
२१८—रोमाण्टिक युगीन अंग्रेजी कविता और छायावाद — डॉ० कृष्णमुरारी मिश्र — सन् १९७९ ई०
२१९—रोमांसवादी साहित्य शास्त्र — डॉ० रवीन्द्र सहाय वर्मा — सन् १९५७ ई०
२२०—लक्षणा और उनका हिन्दी काव्य में प्रसार — डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी — सं० २०२३ वि०
२२१—शर्की राज्य जौनपुर का इतिहास — सैयद इकबाल अहमद — प्र० सं० १९६८ ई०
२२२—शुद्ध कविता की खोज — डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' — प्र० सं० १९६६ ई०
२२३—शृंगार लतिका सौरभ — प्रताप नारायण सिंह बहादुर — सं० १९९३ वि०
२२४—श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य (१८७५-१९२५) — डॉ० रामचन्द्र मिश्र — सन् १९५९ ई०
२२५—संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास — डॉ० बी० पट्टभिसीता रामय्या — सन् १९५७ ई०
२२६—संस्कृति के चार अध्याय — रामधारी सिंह 'दिनकर' — चतुर्थ सं० १९६६ ई०
२२७—समीक्षाशास्त्र के भारतीय तथा पाश्चात्य मानदण्ड — डॉ० रामसागर त्रिपाठी — प्र० सं० १९७२ ई०
डॉ० श्याम मिश्र — सन् १९५८ ई०
२२८—सरोज सर्वेक्षण — डॉ० किशोरीलाल गुप्त — प्र० सं० १९६७ ई०
२२९—साहित्य निबन्ध — डॉ० त्रिभुवन सिंह — प्र० सं० १९७० ई०
२३०—सिद्धान्त और अध्ययन — गुलाब राय — सन् १९७० ई०
२३१—सुजान शतक — डॉ० किशोरीलाल गुप्त — प्र० सं० १९७७ ई०
२३२—सुन्दरी सिन्दूर — डॉ० किशोरी लाल — सन् १९८३ ई०
२३३—सुमित्रानंदन 'पंत' — डॉ० नगेन्द्र — सं० १९९५ वि०

२३४—सुमित्रानंदन पंत तथा आधुनिक हिन्दी कवियों में परम्परा और नवीनता	डॉ० ई० चेलिशेव	सन् १९७० ई०
२३५—सूरसागर भाग-१	सम्पा० नन्ददुलारे वाजपेयी	चौ० २०२१ वि०
२३६—सूरसागर भाग-२	सम्पा० नन्ददुलारे वाजपेयी	सं० २०१८ वि०
२३७—स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० शिवकरण सिंह	द्वि० सं० १९६७ ई०
२३८—स्वच्छन्दतावादी काव्य का दार्शनिक विवेचन	डॉ० जगदीश गुप्त	प्र० सं० १९७७ ई०
२३९—स्वच्छन्दतावाद और छायावाद	डॉ० अजब सिंह	प्र० सं० १९७५ ई०
२४०—स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ० पी० आदेश्वर राव	प्र० सं० १९७२ ई०
२४१—स्वच्छन्दतावाद	दुर्गा शंकर	प्र० सं० १९४७ ई०
२४२—स्वच्छन्दतावाद का स्वरूप विश्लेषण	डॉ० कृष्ण मुरारी मिश्र	सन् १९७९ ई०
२४३—स्वच्छन्दता और परम्परा 'आधुनिक साहित्य'	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी	प्र० सं० २००७ वि०
२४४—हमारे कवि	राजेन्द्र सिंह गौड़	प्र० सं० १९७८ ई०
२४५—हमारे प्रतिनिधि कवि	विश्वम्भर 'मानव'	द्वि० सं० १९६५ ई०
२४६—हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण	किरन कुमारी गुप्ता	सं० २००७ वि०
२४७—हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ	डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल	ग्यारहवाँ सं० १९८१ ई०
२४८—हिन्दी कृष्ण काव्य में स्वच्छन्दतामूलक प्रवृत्तियाँ	डॉ० चन्द्रकला गुप्त	प्र० सं० १९७४ ई०

२४९—हिन्दी साहित्य	डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा	प्र० सं० १९६९ ई०
२५०—हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ	डॉ० रघुवंश	द्वि० सं० १९५८ ई०
२५१—हिन्दी साहित्य में विविध वाद	डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल	सं० २०१० वि०
२५२—हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि	डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना	प्र० सं० १९६८ ई०
२५३—हिन्दी काव्यधारा में प्रेम प्रवाह	परशुराम चतुर्वेदी	प्र० सं० १९५२ ई०
२५४—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी	सन् १९६३ ई०
२५५—हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी	प्र० सं० १९७९ ई०
२५६—हिन्दी साहित्य कोश भाग-१-२	सं० धीरेन्द्र वर्मा	सं० २०२० वि०
२५७—हिन्दी साहित्य का अतीत भाग-२	आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र	प्र० सं० २०१७ वि०
२५८—हिन्दी कविता में युगान्तर	प्रो० सुधीन्द्र	प्र० सं० १९५० ई०
२५९—हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना	विश्वनाथ गुप्त	सन् १९६६ ई०
२६०—हिन्दी लिटरेचर	रामअवध द्विवेदी	प्र० सं० १९५३ ई०
२६१—हिन्दी कविता का क्रान्ति-युग	प्रो० सुधीन्द्र	प्र० सं० १९४७ ई०
२६२—हिन्दी काव्य पर आँग्ल प्रभाव	डॉ० रवीन्द्र सहाय वर्मा	प्र० सं० २०११ वि०
२६३—हिन्दी कविता पर फारसी और अंग्रेजी का प्रभाव	डॉ० मोहनलाल तिवारी	प्र० सं० २०२६ वि०
२६४—हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव	विश्वनाथ मिश्र	प्र० सं० १९६३ ई०
२६५—हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	सं० २०१५ वि०
२६६—हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास	डॉ० नगेन्द्र	प्र० सं० २०१५ वि०

२६७—हिन्दी साहित्य का इतिहास | सम्पा० डॉ० नगेन्द्र | द्वि० सं० १९७६ ई०

२६८—हिन्दी साहित्य का इतिहास | डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, हरेन्द्र सिनहा | सन् १९६५ ई०

२६९—हिन्दी साहित्य का इतिहास | डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' | प्र० सं० १९३१ ई०

२७०—हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास | डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त | सन् १९६५ ई०

२७१—हिन्दी साहित्य प्रमुख वाद एवं प्रवृत्तियाँ | डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त | सन् १९७१ ई०

२७२—हिन्दी साहित्य का समसामयिक इतिहास | आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र | सन् १९५६ ई०

२७३—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास | डॉ० रामकुमार वर्मा | सन् १९५४ ई०

२७४—हिन्दी साहित्य का इतिहास | डॉ० रामकुमार वर्मा | सन् १९५५ ई०

२७५—हिन्दी साहित्य का इतिहास | डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी | सन् १९६८ ई०

२७६—कविता की कहानी (नवशताब्दी) हस्तलिखित प्रति | गुरुभक्त सिंह 'भक्त' डॉ० किशोरीलाल गुप्त से प्राप्त

(२) संस्कृत ग्रन्थ

२७७—श्रीमद्भगवद्गीता | मोतीलाल जालान | सं० २०३१ वि०

२७८—यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद सरल हिन्दी भाष्य | | विशिष्ट संस्करण

(३) अंग्रेजी ग्रन्थ

२७९—इन ए लेटर टु हिज फादर | मैकाले | एडी० १८३६ ई०

२८०—ए च्वाएस आफ इंग्लिश रोमाण्टिक पोयट्री | स्टीफेन स्पेण्डर | एडी० १९४७ ई०

२८१—ए हिस्ट्री आफ इंग्लिश लिटरेचर — कांप्टन रिकेट — एडी० १९५६ ई०
२८२—ए हिस्ट्री आफ इंग्लिश लिटरेचर — लगविस एण्ड कजामियाँ — एडी० १९६१ ई०
२८३—द प्रीफेस टू लिरिकल बैलेड्स — वर्ड्सवर्थ, एच० डब्ल्यू० गैरड — एडी० १९३९ ई०
२८४—द पोयटिक इमेज — लीविस — एडी० १९६५ ई०
२८५—बायोग्रेफिया लिटरेरिया — एस० टी० कालरिज — एडी० १९४९ ई०
२८६—न्यू स्टैण्डर्ड द इंग्लिश लैंग्वेज — फंक एण्ड वग्नल—वालूम-III
२८७—रोमाण्टिसिज्म — एबर क्राम्बी — एडी० १९३६ ई०
२८८—रोमाण्टिक इमेजिनेशन — हिल, जान स्पेन्सर — एडी० १९७७ ई०
२८९—रोमाण्टिक इमेजिनेशन — बोवरा, सी० एम० — एडी० १९७८ ई०
२९०—स्पेकुलेशन एडीटेड बाई हरबर्ट — टी० ई० हलुम — एडी० १९३६ ई०

(४) पत्र-पत्रिकाएँ

२९१—'आज' साप्ताहिक विशेषांक
२९२—'इन्दु'
२९३—हिन्दुस्तानी
२९४—आलोचना
२९५—माधुरी
२९६—सरस्वती
२९७—विश्वभारती पत्रिका
२९८—भाषा
२९९—नागरी प्रचारिणी पत्रिका